नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग 17

आगम १४

"जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं वृत्तिः [2]

मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

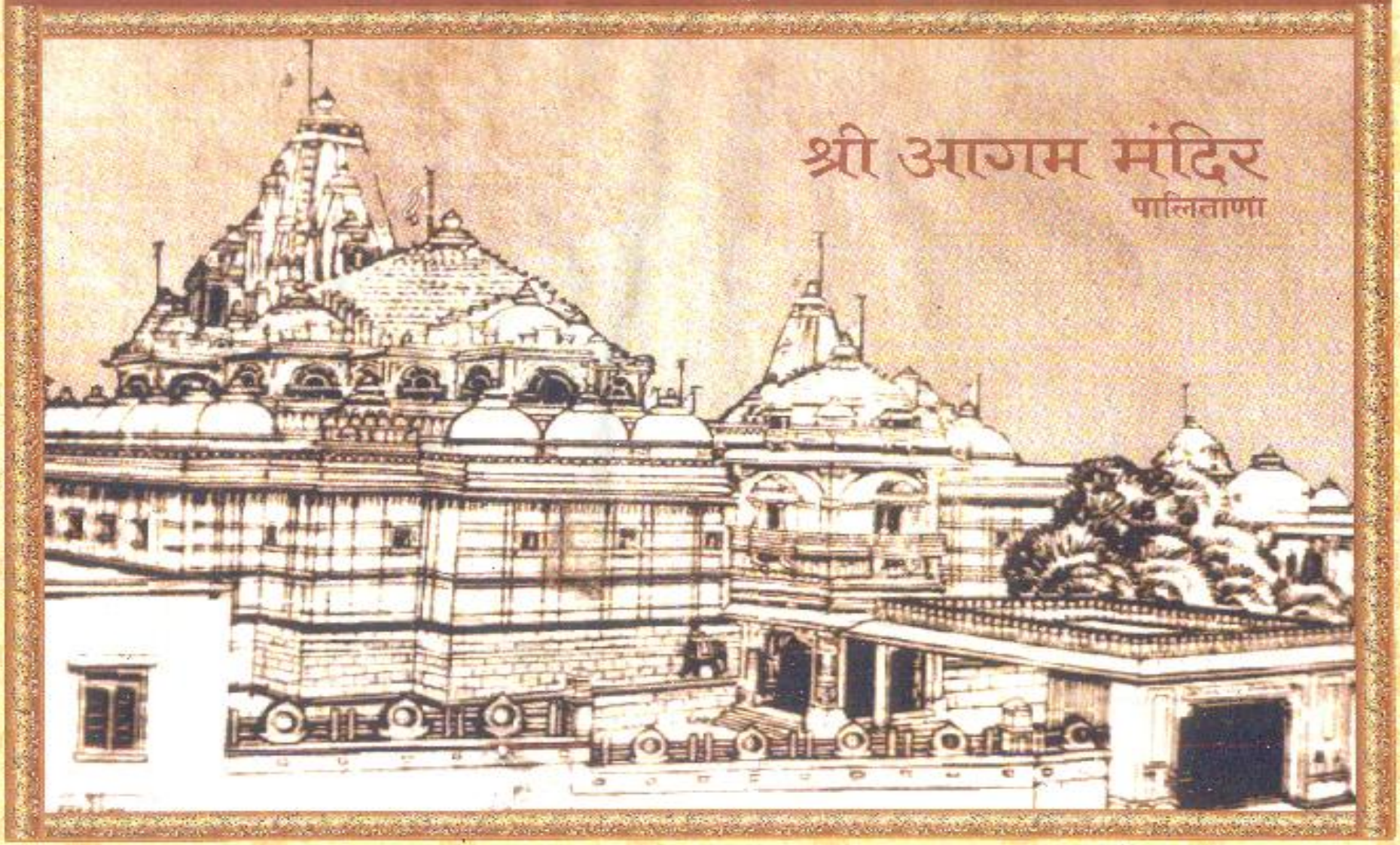

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

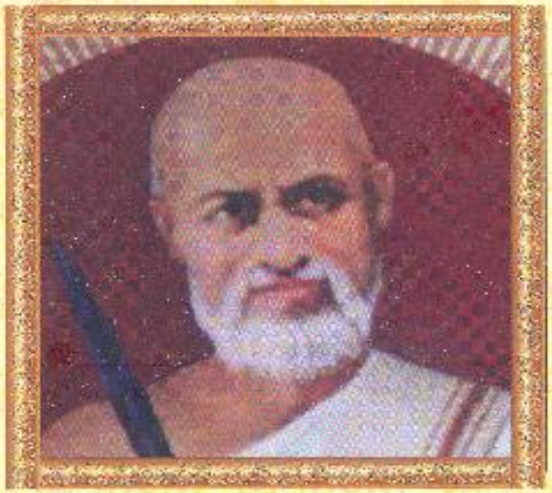

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

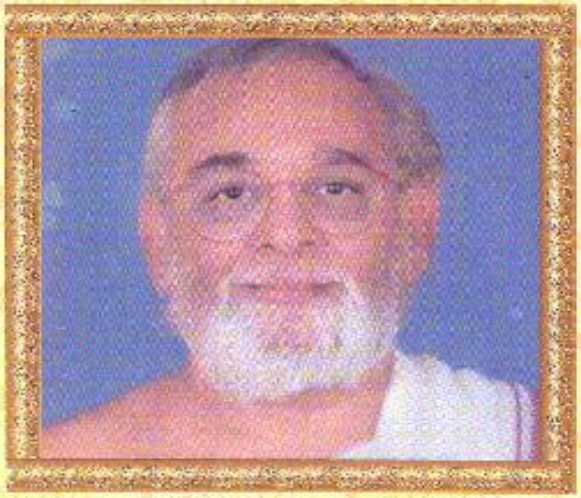

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

"जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं वृत्ति: (भाग-२)

[मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:]

[आद्य संपादकश्री]

पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर सूरीश्वरजी म॰ सा॰

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५ 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग-१७

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त 'आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट'

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ८७० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... *.....मुनि दीपरत्नसागर...*

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- " *अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण* " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना | *** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

*** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई, उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रज]पूना, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [–]

दीप अनुक्रम [–]

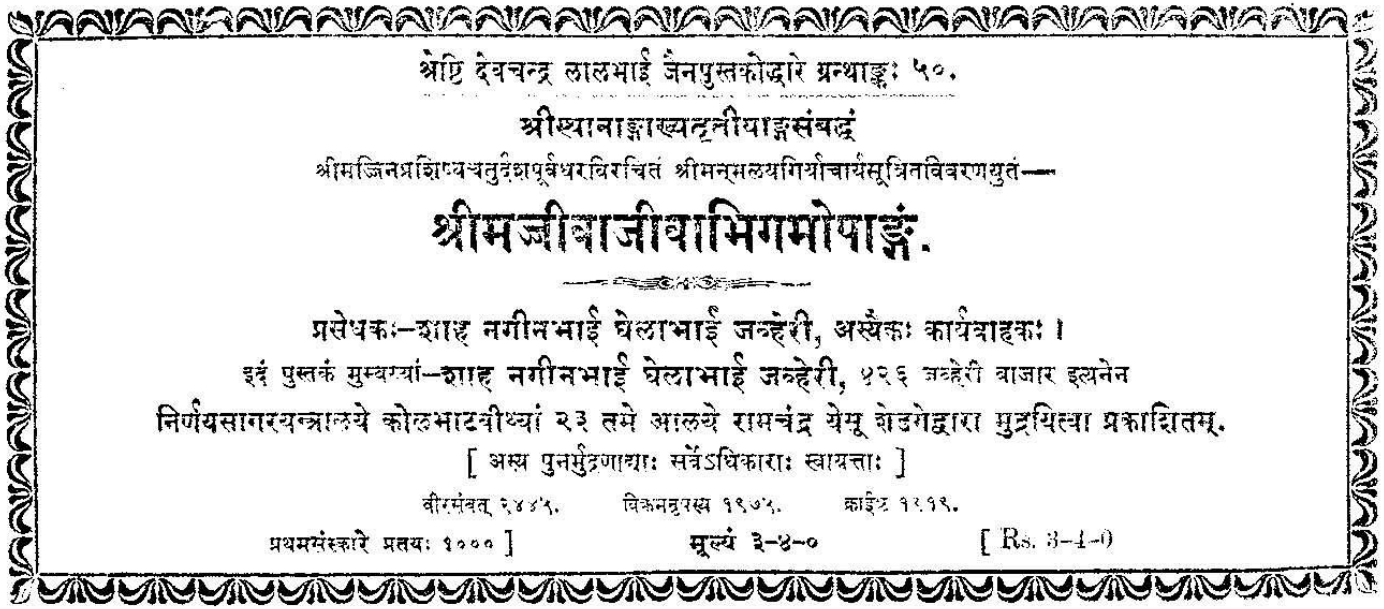

श्रेष्टि देवचन्द्र लालभाई जैनपुस्तकोद्धारे ग्रन्थाङ्कः ५०.

श्रीस्थानाङ्गाख्यतृतीयाङ्गसंबद्धं

श्रीमज्जिनप्रशिष्यचतुर्दशपूर्वधरविरचितं श्रीमन्मलयगिर्याचार्यसूत्रितविवरणयुतं—

श्रीमज्जीवाजीवाभिगमोपाङ्गं.

प्रसेधकः—शाह नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी, अस्यैकः कार्यवाहकः ।

इदं पुस्तकं मुम्बय्यां—शाह नगीनभाई घेलाभाई जव्हेरी, ४२६ जव्हेरी बाजार इत्यनेन

निर्णयसागरयन्त्रालये कोलभाटवीथ्यां २३ तमे आलये रामचंद्र येसू शेडगेद्वारा मुद्रयित्वा प्रकाशितम्.

[अस्य पुनर्मुद्रणाद्याः सर्वेऽधिकाराः स्वायत्ताः]

वीरसंवत् २४४५. विक्रमसंवत् १९७५. क्राईस्ट १९१९.

प्रथमसंस्करे प्रतयः १०००] मूल्यं ३-४-० [Rs. 3-4-0

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवाजीवाभिगम (उपांग)सूत्रस्य मूल "टाइटल पेज"

मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:		मूलांक:	विषय:	पृष्ठांक:
००१	प्रथमा- द्विविधा प्रतिपत्ति			१४०	मनुष्याधिकार:			३२४	वैमानिक देवाधिकार:	३१९
	जीवाभिगमस्य द्विविधे भेदे				मनुष्यस्य द्वैविध्यं				उद्देशक: १ एवं २	३१९ +
	अजीवाभिगमस्य द्विविधेभेदे				एकोरुकद्वीप-वर्णनं, आभासिक				सौधर्मादिकल्पस्य विमानानि,	३३६
	पृथिव्यादि जीवानाम् वर्णनं				आदि द्विपस्य स्थानादि वर्णनं				बाहल्यं, संस्थानं, उच्चत्वं,	
०५२	द्वितिया- त्रिविधा प्रतिपत्ति			१५२	देवाधिकार;				वर्ण, प्रभा,गन्धं: स्पर्शः,रचना	
	संसारिजीवानाम त्रैविध्यं--				देवानाम् चतुर्विधत्वं भवनवासी				सौधर्मादि देवानाम् संघयणं,	
	--स्त्री, पुरुष:, नपुंसकम्				देवानाम् भवनं, पर्षदा, देव-देवी				संस्थानं, वर्णादि:, पुद्गल:,	
०७४	तृतीया- चतुर्विधा प्रतिपत्ति				संख्या, स्थिति:, व्यंतर-वर्णनं				आहार,अवधिज्ञानं, समुद्घात	
	नैरयिका: उदेशक: १-			१६०	द्वीप-समुद्र:				वेदना, ऋद्धि:, काम-भोग:,	
	नैरयिकस्य नाम्नं एवं गोत्रं				स्थानं. संख्या, संस्थानं, जम्बू-				गत्यागति:, स्थिति:	
	नरक-वर्णनं, नरकावासे गति-				द्वीपस्य वर्णनं, विजयदेवस्य-	०१२		३४४	चतुर्थी- पञ्चविधा प्रतिपत्ति	३६३
	-आगति, नरकस्य अल्पबहुत्वं				अधिकार:, सुधर्मा आदि सभा:,				संसारिजीवस्य पञ्चविधत्वं	
	नैरयिका: उदेशक: २ + ३				लवणसमुद्र-वर्णनं, जंबूद्वीपस्य			३४६	पञ्चमी- षड्विधा प्रतिपत्ति	३६९
	नरकस्य नाम्नं-आकार: , --				अन्तर्गत द्वीपस्य अधिकार:				संसारिजीवस्य षड्विधत्वं	
	-वेदना, संस्थानं, वर्ण, गन्धं,				धातकीखण्ड-कालोदसमुद्र-पुष्कर			३६५	षष्ठी- सप्तविधा प्रतिपत्ति	४०२
	-स्पर्श, पुद्गल:, संहननं,				वरद्वीप-मानुषोत्तरपर्वत आदि				संसारिजीवस्य सप्तविधत्वं	
	-आहार, लेष्या, ज्ञानं, अज्ञानं				द्वीप-समुद्रानाम् अधिकार:			३६६	सप्तमी अष्टविधा प्रतिपत्ति	४०५
	-योग, उपयोग, इत्यादि.			३०६	इन्द्रियविषयाधिकार:	२९४			संसारिजीवस्य अष्टविधत्वं	
१३०	तिर्यञ्चयोनिक: उदेशक: १-				पञ्च-इन्द्रियस्य विषया:			३६७	अष्टमी नवविधा प्रतिपत्ति	४१०
	तिर्यञ्चयोनिकजीवानाम् भेदा:			३०७	ज्योतिष्क उद्देशक:	३०३-			संसारिजीवस्य नवविधत्वं	
	तिर्यञ्चयोनिक: उदेशक: २-				देवगति, वैक्रियशक्ति:, चन्द्र-	-३०५		३६८	नवमी- दशविधा प्रतिपत्ति	४१३
	-संसारिजीवानाम् षड्विधत्वं				सूर्यपरिवार:, ज्योतिष्कदेवस्य				संसारिजीवस्य दशविधत्वं	
	-पृथ्वीजीवानाम् षड्विधत्वं				गतिक्षेत्र:, अन्तरं, नक्षत्रवर्णनं			३६९	सर्वजीव-प्रतिपत्ति	४१९
	जीवानाम् संस्थिति-कालादि:				संस्थानं,अग्रमहिषी,अल्पबहुत्व				(अन्तर्) प्रतिपत्ति २ - १०	

['जीवाजीवाभिगम' - मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "जीवाजीवाभिगम सूत्रम्" के नामसे सन १९१९ (विक्रम संवत १९७५) में देवचंद्र लालभाई जैनपुस्तकोद्धार द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर से दुसरे पूज्यश्रीओने अपने-अपने नामसे भी छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, अपना एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. जिसमे किसीने पूज्यपाद् सागरानंदसूरिजी के नाम को आगे रखा, और अपनी वफादारी दिखाई, तो किसीने स्वयं को ही इस पुरे कार्य का कर्ता बता दिया और श्रीमद्सागरानंदसूरिजी तथा प्रकाशक का नाम ही मिटा दिया |

✣ हमारा ये प्रयास क्यों? ✣ आगम की सेवा करने के हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर प्रतिपत्ति, उद्देशक, मूलसूत्र के क्रमांक लिख दिए, ताँकि पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौन सी प्रतिपत्ति, उद्देशक, मूलसूत्रादि चल रहे है उसका सरलता से ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके | हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है या फिर गाथा शब्द लिख दिया है |

हमने एक अनुक्रमणिका भी बनायी है, जिसमे प्रत्येक प्रतिपत्ति, उद्देशक, मूलसूत्र आदि लिख दिये है और साथमें इस सम्पादन के पृष्ठांक भी दे दिए है, जिससे अभ्यासक व्यक्ति अपने चहिते विषय तक आसानी से पहुँच शकता है | अनेक पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट भी लिखी है, जिसमे उस पृष्ठ पर चल रहे ख़ास विषयवस्तु की, मूल प्रतमें रही हुई कोई-कोई मुद्रण-भूल की या क्रमांकन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-१७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३९]

दीप अनुक्रम [१७७]

सूत्र-१३९

सभाए णं सुधम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे पण्णत्ते अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छजोयणाइं सक्कोसाइं विक्खंभेणं नव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव गोमाणसिया वत्तव्वया जा चेव सहाए सुहम्माए वत्तव्वया सा चेव निरवसेसा भाणियव्वा तहेव दारा मुहमंडवा पेच्छा-घरमंडवा झया थूभा चेइयरुक्खा महिंदज्झया णंदाओ पुक्खरिणीओ, तंओ य सुधम्माए जहा पमाणं मणगुलियाणं गोमाणसीया धूवघडिओ तहेव भूमिभागे उल्लोए य जाव मणिफासे ॥ तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छा०, तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवच्छंदए पण्णत्ते दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयणामए अच्छे ॥ तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसतं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाण-मेत्ताणं संणिक्खित्तं चिट्ठइ ॥ तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा— तवणिज्जमता हत्थतला अंकामयाइं णक्खाइं अंतोलोहियक्खपरिसेयाइं कणगमया पादा कणगामया गोप्फा कणगामतीओ जंघाओ कणगामया जाणू कणगामया ऊरू कणगामयाओ गायलट्ठीओ तवणिज्जमतीओ णाभीओ रिट्ठामतीओ रोमरातीओ तवणिज्जमया चुचुया तवणिज्जमता सि-रिवच्छा कणगमयाओ बाहाओ कणगमईओ पासाओ कणगमतीओ गीवाओ रिट्ठामते मंसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

अत्र द्वितीय भागे द्वीप-समुद्र अधिकारे सूत्र-१३९ आरभ्यते, तन्मध्ये सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार: वर्तते

सिलप्पवालमया उट्ठा फलिहामया दंता तवणिज्जमतीओ जीहाओ तवणिज्जमया तालुया कणगमतीओ णासाओ अंतोलोहितक्खपरिसेयाओ अंकामयाइं अच्छीणि अंतोलोहितक्खपरिसेताइं पुलगमतीओ दिट्ठीओ रिट्ठामतीओ तारगाओ रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइं रिट्ठामतीओ भमुहाओ कणगामया कवोला कणगामया सवणा कणगामया णिडाला वट्टा वइरामतीओ सीसघडीओ तवणिज्जमतीओ केसंतकेसभूमीओ रिट्ठामया उवरिमुद्धजा । तासि णं जिणपडिमाणं पिट्ठतो पत्तेयं पत्तेयं छत्तधारपडिमाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिमरततकुंदेंदुसप्पकासाइं सकोरेंटमल्लदामधवलाइं आतपत्तातिं सलीलं ओहारमाणीओ चिट्ठंति ॥ तासि णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेयं पत्तेयं चामरधारपडिमाओ पन्नत्ताओ, ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियनाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ संखंककुंददगरयअमतमथितफेणपुंजसण्णिकासाओ सुहुमरयतदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठंति ॥ तासि णं जिणपडिमाणं पुरतो दो दो नागपडिमाओ दो २ जक्खपडिमाओ दो २ भूतपडिमाओ दो २ कुंडधारपडिमाओ विणओणयाओ पायवडियाओ पंजलिउडाओ संणिक्खित्ताओ चिट्ठंति सव्वरयणामतीओ अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्टाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३९]

दीप अनुक्रम [१७७]

जिणपडिमाणं पुरतो अट्ठसतं घंटाणं अट्ठसतं चंदणकलसाणं एवं अट्ठसतं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं थालाणं पातीणं सुपतिट्ठकाणं मणगुलियाणं वातकरगाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं हयकंठगाणं जाव उसभकंठगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं अट्ठसयं तेल्लसमुग्गाणं जाव धूवगडच्छुयाणं संणिक्खित्तं चिट्ठति ॥ तस्स णं सिद्धायतणस्स णं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया तंजहा—रयणेहिं जाव रिट्ठेहिं ॥ (सू० १३९)

'सभाए ण'मित्यादि, सभायाः सुधर्म्मायाः उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तम्, अर्द्धत्रयोदश योजनान्यायामेन षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भतो नव योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेनेत्यादि सर्वं सुधर्म्मावद्वक्तव्यं यावद् गोमानसीवक्तव्यता, तथा चाह—'जा चेव सभाए सुधम्माए वत्तव्वया सा चेव निरवसेसा भाणियव्वा जाव गोमाणसियाओ' इति, किमुक्तं भवति ?—यथा सुधर्म्मायाः सभायाः पूर्वदक्षिणोत्तरवर्त्तीनि त्रीणि द्वाराणि, तेषां च द्वाराणां पुरतो मुखमण्डपाः, तेषां च मुखमण्डपानां पुरतः प्रेक्षागृहमण्डपाः, तेषां च प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतश्चैत्यस्तूपाः सप्रतिमाः, तेषां च चैत्यस्तूपानां पुरतश्चैत्यवृक्षाः, तेषां च चैत्यवृक्षाणां पुरतो महेन्द्रध्वजाः, तेषां च महेन्द्रध्वजानां पुरतो नन्दापुष्करिण्य उक्ताः, तदनन्तरं च सभायां सुधर्म्मायां षड् गुलिकासहस्राणि षड् गोमानसीसहस्राण्यप्युक्तानि तथाऽत्रापि सर्वमनेनैव क्रमेण निरवशेषं वक्तव्यम्, उल्लोकवर्णनं बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनमपि तथैव ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य (सिद्धायतनस्य) बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता द्वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनमेकं बाहल्येन सर्वमणिमयी अच्छा इत्यादि प्राग्वत् । तस्याश्च मणिपीठिकाया उपरि अत्र महानेको देवच्छन्दकः प्रज्ञप्तः सातिरेके द्वे योजने ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां सर्वात्मना रत्नमया अच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, तत्र देवच्छन्दके **'अष्टशतम्'** अष्टाधिकं शतं जिनप्रतिमानां जिनोत्सेधप्रमाणमात्राणां पञ्चधनुःशतप्रमाणानामिति भावः सन्निक्षिप्तं तिष्ठति ॥ **'तासि णं जिणपडिमाण'**मित्यादि, तासां जिनप्रतिमानामयमेतद्रूपो **'वर्णावासः'** वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तपनीयमयानि हस्ततलपादतलानि **'अङ्कमयाः'** अङ्करत्नमया अन्तः–मध्ये लोहिताक्षरत्नप्रतिषेका नखाः, कनकमय्यो जङ्घाः, कनकमयानि जानूनि, कनकमया ऊरवः, कनकमय्यो गात्रयष्टयः, तपनीयमया नाभयः, रिष्टरत्नमय्यो रोमराजयः, तपनीयमयाः **'चुचुकाः'** स्तनाग्रभागाः, तपनीयमयाः श्रीवृक्षाः (वत्साः) **'शिलाप्रवालमयाः'** विद्रुममया ओष्ठाः, स्फटिकमया दन्ताः, तपनीयमय्यो जिह्वाः, तपनीयमयानि तालुकानि, कनकमय्यो नासिकाः अन्तर्लोहिताक्षरत्नप्रतिसेकाः, अङ्कमयानि अक्षीणि अन्तर्लोहिताक्षप्रतिसेकानि, रिष्टरत्नमय्योऽक्षिमध्यगतास्तारिकाः, रिष्टरत्नमयानि अक्षिपत्राणि, रिष्टरत्नमय्यो भ्रुवः, कनकमयाः कपोलाः, कनकमयाः श्रवणाः, कनकमय्यो ललाटपट्टिकाः, वज्रमय्यः शीर्षघटिकाः, तपनीयमय्यः केशान्तकेशभूमयः, केशानामन्तभूमयः केशभूमयश्चेति भावः, रिष्टमया उपरि मूर्द्धजाः–केशाः, तासां जिनप्रतिमानां पृष्ठत एकैका छत्रधरप्रतिमा हेमरजतकुन्देन्दु (समान) प्रकाशं सकोरिंटमाल्यदामधवलमातपत्रं गृहीत्वा सलीलं धरन्ती तिष्ठति ॥ **'तासि णं जिणपडिमाण'**मित्यादि, तासां जिनप्रतिमानां प्रत्येकमुभयोः पार्श्वयोर्द्वे द्वे चमरधारप्रतिमे प्रज्ञप्ते, **'चंदप्पभवइरवेरुलियनाणामणिरयणखचितदंडाओ'** इति चन्द्रप्रभः–चन्द्रकान्तो वज्रं वैडूर्यं च प्रतीतं चन्द्रप्रभवज्रवैडूर्याणि शेषाणि च नानामणिरत्नानि खचितानि येषु दण्डेषु ते तथा, एवंरूपाश्चित्राः–नानाप्र-

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

सिद्धायतन अधिकारः, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकारः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

कारा दण्डा येषां तानि तथा, सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, 'सुहुमरययदीहवालाओ' इति सूक्ष्माः–श्लक्ष्णा रजतस्य–रजतमया वाला येषां तानि तथा, 'संखंककुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसन्निकासाओ धवलाओ चामराओ' इति प्रतीतं चामराणि गृहीत्वा सलीलं वीजयन्त्यस्तिष्ठन्ति ॥ 'तासि णं'मित्यादि, तासां जिनप्रतिमानां पुरतो द्वे द्वे नागप्रतिमे द्वे द्वे यक्षप्रतिमे द्वे द्वे भूतप्रतिमे द्वे द्वे कुण्डधारप्रतिमे संनिक्षिप्ते तिष्ठतः, ताश्च 'सव्वरयणामईओ अच्छाओ' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'तत्थ णं'मित्यादि, 'तस्मिन्' देवच्छन्दके जिनप्रतिमानां पुरतोऽष्टशतं घण्टानामष्टशतं चन्दनकलशानामष्टशतं भृङ्गाराणामष्टशतमादर्शानामष्टशतं स्थालानामष्टशतं पात्रीणामष्टशतं सुप्रतिष्ठानामष्टशतं मनोगुलिकानां–पीठिकाविशेषरूपाणामष्टशतं वातकरकाणामष्टशतं चित्राणां रत्नकरण्डकाणामष्टशतं हयकण्ठानामष्टशतं गजकण्ठानामष्टशतं नरकण्ठानामष्टशतं किंनरकण्ठानामष्टशतं किंपुरुषकण्ठानामष्टशतं महोरगकण्ठानामष्टशतं गन्धर्वकण्ठानामष्टशतं वृषभकण्ठानामष्टशतं पुष्पचङ्गेरीणामष्टशतं माल्यचङ्गेरीणामष्टशतं चूर्णचङ्गेरीणामष्टशतं गन्धचङ्गेरीणामष्टशतं वस्त्रचङ्गेरीणामष्टशतमाभरणचङ्गेरीणामष्टशतं लोमहस्तचङ्गेरीणां लोमहस्तका–मयूरपिच्छपुञ्जनिकाः अष्टशतं पुष्पपटलकानामष्टशतं माल्यपटलकानां मुत्कलानि पुष्पाणि ग्रथितानि माल्यानि अष्टशतं चूर्णपटलकानाम्, एवं गन्धवस्त्राभरणसिद्धार्थलोमहस्तकपटलकानामपि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टशतं वक्तव्यम्, अष्टशतं सिंहासनानामष्टशतं छत्राणामष्टशतं चामराणामष्टशतं तैलसमुद्गकानामष्टशतं कोष्ठसमुद्गकानामष्टशतं चोयकसमुद्गकानामष्टशतं तगरसमुद्गकानामष्टशतमेलासमुद्गकानामष्टशतं हरितालसमुद्गकानामष्टशतं हिङ्गुलकसमुद्गकानामष्टशतं मनःशिलासमुद्गकानामष्टशतं अंजनसमुद्गकानां, सर्वाण्यप्येतानि तैलादीनि परमसुरभिगन्धोपेतानि द्रष्टव्यानि, अष्टशतं ध्वजानाम्, अत्र सङ्ग्रहणिगाथे—"वंदणकलसा भिंगारगा य आयंसगा य थाला य। पाईओ सुपइट्ठा मणगुलिया वायकरगा य ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१३९]

दीप अनुक्रम [१७७]

चित्ता रयणकरंडा हयगयनरकंठगा य चंगेरी । पडला सिंहासणछत्तचामरा समुग्गयक(ज)या य ॥ २ ॥" अष्टशतं धूपकडुच्छुकानां संनिक्षिप्तं तिष्ठति ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य सिद्धायतनस्य उपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि, ध्वजच्छत्रातिछत्रादीनि तु प्राग्वत् ॥

तस्स णं सिद्धाययणस्स णं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं उववायसभा पण्णत्ता जहा सुधम्मा तहेव जाव गोमाणसीओ उववायसभाएवि दारा मुहमंडवा सव्वं भूमिभागे तहेव जाव मणिफासो (सुहम्मासभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव भूमीए फासो) ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमती अच्छा, तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, तस्स णं देवसयणिज्जस्स वण्णओ, उववायसभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता जाव उत्तिमागारा, तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरच्छिमेणं एत्थ णं एगे महं हरए पण्णत्ते, से णं हरए अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं छक्कोसातिं जोयणाइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे वण्णओ जहेव णंदाणं पुक्खरिणीणं जाव तोरणवण्णओ, तस्स णं हरतस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अभिसेयसभा पण्णत्ता जहा सभासुधम्मा तं चेव निरवसेसं जाव गोमाणसीओ भूमिभाए उल्लोए तहेव ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं

जी०च० ४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमया अच्छा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उप्पिं एत्थ णं महं एगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ अपरिवारो ॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अभिसेक्के भंडे संणिक्खित्ते चिट्ठति, अभिसेयसभाए उप्पिं अट्ठट्ठमंगलए जाव उत्तिमागारा सोलसविधेहिं रयणेहिं, तीसे णं अभिसेयसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अलंकारियसभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव गोमाणसीओ मणिपेढियाओ जहा अभिसेयसभाए उप्पिं सीहासणं स(अ)-परिवारं ॥ तत्थ णं विजयस्स देवस्स सुबहु अलंकारिए भंडे संनिक्खित्ते चिट्ठति, उत्तिमागारा अलंकारिय० उप्पिं मंगलगा झया जाव (छत्ताइछत्ता) ॥ तीसे णं आलंकारियसहाए उत्तरपुरत्थि-मेणं एत्थ णं एगा महं ववसातसभा पण्णत्ता, अभिसेयसभावत्तव्वया जाव सीहासणं अपरिवारं ॥ त(ए)त्थणं विजयस्स देवस्स एगे महं पोत्थयरयणे संनिक्खित्ते चिट्ठति, तत्थ णं पोत्थयरयणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पन्नत्ते, तंजहा—रिट्ठामतीओ कंबियाओ [रयतामतातिं पत्तकाइं रिट्ठाम-यातिं अक्खराइं] तवणिज्जमए दोरे णाणामणिमए गंठी (अंकमयाइं पत्ताइं) वेरुलियमए लिप्पासणे तवणिज्जमती संकला रिट्ठमए छादने रिट्ठामया मसी वइरामयी लेहणी रिट्ठामयाइं अक्खराइं धम्मिए सत्थे ववसायसभाए णं उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्तातिछत्ता उत्तिमागारेति । तीसे णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४०]

दीप अनुक्रम [१७८]

ववसा(उववा)यसभाए उत्तरपुरच्छिमेणं एगे महं बलिपेढे पण्णत्ते दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वरयतामए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ एत्थ णं तस्स णं बलिपेढस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एगा महं णंदापुक्खरिणी पण्णत्ता जं चेव माणं हरयस्स तं चेव सव्वं ॥ (सू० १४०)

'तस्स ण'मित्यादि, तस्य सिद्धायतनस्य उत्तरपूर्वस्यामत्र महत्येका उपपातसभा प्रज्ञप्ता, तस्याश्च सुधर्म्मासभाया इव प्रमाणं त्रीणि द्वाराणि तेषां च द्वाराणां पुरतो मुखमण्डपा इत्यादि सर्वं तावद्वक्तव्यं यावद् गोमानसीवर्णनं, तदनन्तरमुल्लोकवर्णनं ततो भूमिभागवर्णनं तावद् यावन्मणीनां स्पर्शः, तथा चाह—'सुहुम्मसभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव भूमीए फासो' इति ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य च बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी अच्छा इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत्, तस्याश्च मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं देवशयनीयं प्रज्ञप्तं, तस्य स्वरूपवर्णनं यथा सुधर्म्मायां सभायां देवशयनीयस्य तस्य तथा द्रष्टव्यं, तस्या अपि उपपातसभाया उपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानीत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, तस्या उपपातसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महानेको ह्रदः प्रज्ञप्तः, अर्द्धत्रयोदश योजनान्यायामेन षड् योजनानि सक्रोशानि विष्कम्भेन दश योजनान्युद्वेधेन 'अच्छे सण्हे रययाकूले' इत्यादि नन्दापुष्करिणीवत्सर्वनिरवशेषं वाच्यं, तथा चाह—'आयामुव्वेहेणं विक्खंभेणं वन्नओ जो चेव नंदापुक्खरिणीण'मिति ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, स ह्रद

१ अत्र प्रथमं जीर्णपुस्तके नंदापुष्करिणीविवेचनं वर्त्तते पश्चात् बलिपीठस्य परं च टीकायां प्रथमं बलिपीठस्य पश्चात् नंदायाः, एतदनुसारेण मयाऽप्यत्रैवं लिखितं
२ अस्या वक्ष्यमाणव्याख्यायाः मूलपाठो न दृश्यते पुस्तकेषु.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४०]

दीप अनुक्रम [१७८]

एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनखण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, पद्मवरवेदिकाया वर्णनं वनषण्डवर्णनं च तावद् यावत् 'तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंती'ति, तस्य ह्रदस्य 'त्रिदिशि' तिसृषु दिक्षु त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां तोरणानां च (वर्णनं पूर्ववत्) **'तस्स णं'**मित्यादि, तस्य ह्रदस्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येकाऽभिषेकसभा प्रज्ञप्ता, साऽपि प्रमाणस्वरूपद्वारमुखमण्डपप्रेक्षागृहमण्डपचैत्यस्तूपवर्णनादिप्रकारेण सुधर्मासभावत्तावद्वक्तव्या यावद् गोमानसीवक्तव्यता, तदनन्तरं तथैवोल्लोकवर्णनं भूमिभागवर्णनं च तावद् यावन्मणीनां स्पर्शः ॥ **'तस्स णं'**मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता योजनमेकमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा सण्हा' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत् ॥ **'तीसे णं'**मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महदेकं सिंहासनं प्रज्ञप्तं, सिंहासनवर्णकः प्राग्वत्, नवरमत्र परिवारभूतानि भद्रासनानि न वक्तव्यानि ॥ **'तत्थ णं'**मित्यादि, तस्मिन् सिंहासने विजयस्य देवस्य योग्यं सुबहु **'अभिषेकभाण्डम्'** अभिषेकोपस्करः संनिक्षिप्तः तिष्ठति, तस्याश्चाभिषेकसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येकाऽलङ्कारसभा प्रज्ञप्ता, सा च प्रमाणस्वरूपद्वारत्रयमुखमण्डपप्रेक्षागृहमण्डपादिवर्णनप्रकारेणाभिषेकसभावत्तावद्वक्तव्या यावदपरिवारं सिंहासनम् ॥ **'तत्थ णं'**मित्यादि, **'तत्र'** सिंहासने विजयदेवस्य योग्यं सुबहु **'आलङ्कारिकम्'** अलङ्कारयोग्यं भाण्डं संनिक्षिप्तं तिष्ठति ॥ **'तीसे णं'**मित्यादि, तस्या अलङ्कारसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येका व्यवसायसभा प्रज्ञप्ता, सा चाभिषेकसभावत्प्रमाणस्वरूपद्वारत्रयमुखमण्डपादिवर्णकप्रकारेण तावद्वक्तव्या यावदपरिवारं सिंहासनम् ॥ **'एत्थ णं'**मित्यादि, **'अत्र'** सिंहा-

1 अत्र संबंधत्रुटितो दृश्यते.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् सिद्धायतन अधिकार:, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकार:

प्रत सूत्रांक [१४०]

दीप अनुक्रम [१७८]

सने महदेकं पुस्तकरत्नं संनिक्षिप्तं तिष्ठति, तस्य च पुस्तकरत्नस्यायमेतद्रूपः 'वर्णावासः' वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः—'रिष्ठमय्यौ' रिष्टरत्नात्मिके कम्बिके पुष्टके इति भावः, रजतमयो(तपनीयमयो)दवरको यत्र पत्राणि प्रोतानि सन्ति, नानामणिमयो ग्रन्थिर्दवरकस्यादौ येन पत्राणि न निर्गच्छन्ति 'अङ्कमयानि' अङ्करत्नमयानि पत्राणि नानामणि(वैडूर्य)मयं लिप्पासनं—मषीभाजनमित्यर्थः, तपनीयमयी शृङ्खला मषीभाजनसत्का रिष्टरत्नमयमुपरितनं तस्य छादनं 'रिष्ठमयी' रिष्टरत्नमयी मषी वज्रमयी लेखिनी रिष्टमयान्यक्षराणि धार्मिकं लेख्यं, तस्याश्च उपपातसभाया उत्तरपूर्वस्यां दिशि महदेकं बलिपीठं प्रज्ञप्तं द्वे योजने आयामविष्कम्भाभ्यां योजनमेकं बाहल्येन 'अच्छे सण्हे' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बलिपीठस्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि अत्र महत्येका नन्दापुष्करिणी प्रज्ञप्ता, सा च ह्रदप्रमाणा, ह्रदस्येव च तस्या अपि त्रिसोपानवर्णनं तोरणवर्णनं च प्राग्वत् ॥ तदेवं यत्र यादृग्भूता च राजधानी विजयस्य देवस्य तदेतद् उपवर्णितं, सम्प्रति विजयो देवस्तत्रोत्पन्नस्तदा यदकरोद् यथा च तस्याभिषेकोऽभवत्तदुपदर्शयति—

तेणं कालेणं तेणं समएणं विजए देवे विजयाए रायहाणीए उववातसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिते अंगुलस्स असंखेज्जतिभागमेत्तीए बोंदीए विजयदेवत्ताए उववण्णे ॥ तए णं से विजये देवे अहुणोववण्णमेत्तए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छति, तंजहा —आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणापाणुपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिते मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं मे पुव्वं सेयं किं मे पच्छा सेयं किं मे पुव्विं कर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धायतन अधिकारः, शाश्वत-जिनप्रतिमा अधिकारः, विजयदेव-अधिकारः

णिज्जं किं मे पच्छा करणिज्जं किं मे पुव्विं वा पच्छा वा हिताए सुहाए खेमाए णीस्सेसयाते अणुगामियत्ताए भविस्सतीतिकट्टु एवं संपेहेति ॥ तते णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा विजयस्स देवस्स इमं एतारूवं अज्झत्थितं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता जेणामेव से विजए देवे तेणामेव उवागच्छंति तेणामेव उवागच्छित्ता विजयं देवं करतलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति जएणं विजएणं वद्धावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं विजयाए रायहाणीए सिद्धायतणंसि अट्ठसतं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं संनिक्खित्तं चिट्ठति सभाए य सुधम्माए माणवए चेतियखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गतेसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति जाओ णं देवाणुप्पियाणं अन्नेसिं च बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं देवाणं देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेतियं पज्जुवासणिज्जाओ एतण्णं देवाणुप्पियाणं पुव्विंपि सेयं एतण्णं देवाणुप्पियाणं पच्छावि सेयं एतण्णं देवा० पुव्विं करणिज्जं पच्छा करणिज्जं एतण्णं देवा० पुव्विंव वा पच्छा वा जाव आणुगामियत्ताते भविस्सतीतिकट्टु महता महता जय(जय)सद्दं पउंजंति ॥ तए णं से विजए देवे तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हियते देवसयणिज्जा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् विजयदेव-अधिकार:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

ओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता दिव्वं देवदूसजुयलं परिहेइ २ त्ता देवसयणिज्जाओ पच्चोरुहइ २ हित्ता उपपातसभाओ पुरत्थिमेणं बारेण णिग्गच्छइ २ त्ता जेणेव हरते तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता हरयं अणुपदाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमेणं तोरणेणं अणुप्पविसति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहति २ हरयं ओगाहति २ त्ता जलावगाहणं करेति २ त्ता जलमज्जणं करेति २ त्ता जलकिडुं करेति २ त्ता आयंते चोक्खे परमसूतिभूते हरतातो पच्चुत्तरति २ त्ता जेणामेव अभिसेयसभा तेणामेव उवागच्छति २ त्ता अभिसेयसभं पदाहिणं करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं बारेणं अणुपविसति २ त्ता जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे॥ तते णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिते देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह ॥ तते णं ते आभिओगिता देवा सामाणियपरिसोववण्णेहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हितया करतलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कटु एवं देवा तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति २ त्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति २ त्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसरंति तं०—रयणाणं जाव रिट्ठाणं, अहाबायरे पोग्गले परिसाडंति २ त्ता अहासुहुमे पोग्गले परियायंति २ त्ता दोच्चंपि वेउ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

व्वियसमुग्घाएणं समोहणंति २ त्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं रुप्पामयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं मणिमयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पामयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णमणिमयाणं अट्ठसहस्सं रुप्पामणिमयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पामताणं अट्ठसहस्सं भोमेज्जाणं अट्ठसहस्सं भिंगारगाणं एवं आयंसगाणं थालाणं पातीणं सुपतिट्ठकाणं चित्ताणं रयणकरंडगाणं पुप्फचंगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थगपडलगाणं अट्ठसतं सीहासणाणं छत्ताणं चामराणं अवपडगाणं वट्टकाणं तवसिप्पाणं खोरकाणं पीणकाणं तेल्लसमुग्गकाणं अट्ठसतं धूवकडुच्छुयाणं विउव्वंति ते साभाविए विउव्विए य कलसे य जाव धूवकडुच्छुए य गेण्हंति गेण्हित्ता विजयातो रायहाणीतो पडिनिक्खमंति २ त्ता ताए उक्किट्ठाए जाव उद्धुताए दिव्वाए देवगतीए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं वीयीवयमाणा २ जेणेव खीरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता खीरोदगं गिण्हित्ता जातिं तत्थ उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्तातिं तातिं गिण्हंति २ त्ता जेणेव पुक्खरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता पुक्खरोदगं गेण्हंति पुक्खरोदगं गिण्हित्ता जातिं तत्थ उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति २ त्ता जेणेव समयखेत्ते जेणेव भरहेरवयातिं वासाइं जेणेव मागधवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गिण्हंति २ त्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति २ त्ता जेणेव गंगासिं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् विजयदेव-अधिकार:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

धुरत्तारत्तवतीसलिला तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सरितोदगं गेण्हंति २ त्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंतसिहरिवासधरपव्वता तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतूवरे य सव्वपुप्फे य सव्वगंधे य सव्वमल्ले य सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हित्ता जेणेव पउमद्दहपुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति तेणेव २ दहोदगं गेण्हंति जातिं तत्थ उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति ताइं गिण्हित्ता जेणेव हेमवयहेरण्णवयाइं वासाइं जेणेव रोहियरोहितंससुवण्णकूलरुप्पकूलाओ तेणेव उवागच्छंति २ त्ता सलिलोदगं गेण्हंति २ त्ता उभओ तडमट्टियं गिण्हंति गेण्हित्ता जेणेव सद्दावातिमालवंतपरियागा वट्टवेतड्ढपव्वता तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति, सिद्धत्थए य गेण्हित्ता जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासधरपव्वता तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वपुप्फे तं चेव जेणेव महापउमद्दहमहापुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव जेणेव हरिवासे रम्मावासेति जेणेव हरकान्तहरिकंतणरकंतनारिकंताओ सलिलाओ तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति सलिलोदगं गेण्हित्ता जेणेव वियडावइगंधावतिवट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छंति सव्वपुप्फे य तं चेव जेणेव णिसहनीलवंतवासहरपव्वता तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

गच्छित्ता सव्वतूवरे य तहेव जेणेव तिगिच्छिदहकेसरिदहा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव जेणेव पुव्वविदेहावरविदेहवासाइं जेणेव सीयासीओयाओ महाणईओ जहा णईओ जेणेव सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तहेव जहेव जेणेव सव्वक्खारपव्वता सव्वतुवरे य जेणेव सव्वंतरणदीओ सलिलोदगं गेण्हंति २ तं चेव जेणेव मंदरे पव्वते जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छंति सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति २ त्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता सव्वतुवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थे य सरसं च गोसीसचंदणं गिण्हंति २ त्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणदामं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणामेव समुवागच्छंति तेणेव समुवा० २ त्ता सव्वतूवरे जाव सव्वोसहि-सिद्धत्थए सरसं च गोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणोदामं दद्दरयमलयसुगंधिए य गंधे गेण्हंति २ त्ता एगतो मिलंति २ त्ता जंबूदीवस्स पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं णिग्गच्छंति पुरत्थिमिल्लेणं निग्ग-च्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगतीए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीयीवयमाणा २ जेणेव विजया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति २ त्ता विजयं रायहाणिं अणुप्पया-हिणं करेमाणा २ जेणेव अभिसेयसभा जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करतलपरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् विजयदेव-अधिकार:

ग्गहितं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति विजयस्स देवस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं अभिसेयं उवट्ठवेंति ॥ तते णं तं विजयदेवं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ तिण्णि परिसाओ सत्त अणिया सत्त अणियाहिवई सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे विजयरायधाणिवत्थव्वगा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं साभाविएहि उत्तरवेउव्वितेहिं य वरकमलपतिट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चंदणकयचच्चातेहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिधाणेहिं करतलसुकुमालकोमलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्साणं सोवण्णियाणं कलसाणं रूप्पमयाणं ताव अट्ठसहस्साणं भोमेयाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए सव्वजुत्तीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूतिए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वोरोहेणं सव्वणाडएहिं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडियणिणाएणं महया इड्ढीए महया जुत्तीए महया बलेणं महता समुदएणं महता तुरियजमगसमगपडुप्पवादितरवेणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिमुरवमुयंगदुंदुहिहुडुक्कणिग्घोससंनिनादितरवेणं महता महता इंदाभिसेगेणं अभिसिंचंति ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स महता महता इंदाभिसेगंसि वट्टमाणंसि अप्पेगतिया देवा णच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलफुसियं दिव्वं सुरभिं रयरेणुविणासणं गंधोदगवासं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

वासंति, अप्पेगतिया देवा णिहतरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्तसम्मज्जितोवलित्तं सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं मंचातिमंचकलितं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं णाणाविहरागरंजियऊसियजयविजयवेजयन्तीपडागातिपडागमंडितं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं रायहाणिं लाउल्लोइयमहियं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागं करेंति, अप्पेगतिया देवा विजयं आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारितमल्लदामकलावं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणिं पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलितं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेंति, अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा सुवण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा एवं रयणवासं वइरवासं पुप्फवासं मल्लवासं गंधवासं चुण्णवासं वत्थवासं आहरणवासं, अप्पेगइया देवा हिरण्णविधिं भाइंति, एवं सुवण्णविधिं रयणविधिं वतिरविधिं पुप्फविधिं मल्लविधिं चुण्णविधिं गंधविधिं वत्थविधिं भाइंति आभरणविधिं ॥ अप्पेगतिया देवा दुयं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-अधिकार:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

विलंबितं णट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा दुतविलंबितं णाम णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा अंचियं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा रिभितं णट्टविधिं उवदंसेंति अ० अंचितरिभितं णाम दिव्वं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा आरभडं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा भसोलं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा आरभडभसोलं णाम दिव्वं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा उप्पायणिवायपवुत्तं संकुचियपसारियं रियारियं भंतसंभंतं णाम दिव्वं णट्टविधिं उवदंसेंति अप्पेगतिया देवा चउव्विधं वातियं वादेंति, तंजहा—ततं वितततं घणं झुसिरं, अप्पेगतिया देवा चउव्विधं गेयं गातंति, तंजहा—उक्खित्तयं पवत्तयं मंदायं रोइदावसाणं, अप्पेगतिया देवा चउव्विधं अभिणयं अभिणयंति, तंजहा—दिट्ठंतियं पाडंतियं सामन्तोवणिवातियं लोगमज्झावसाणियं, अप्पेगतिया देवा पीणंति अप्पेगतिया देवा वुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा तंडवेंति अप्पे० लासेंति अप्पेगतिया देवा पीणंति वुक्कारेंति तंडवेंति लासंति अप्पेगतिया देवा वुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा अप्फोडेंति अप्पेगतिया देवा वग्गंति अप्पेगतिया देवा तिवतिं छिंदंति अप्पेगतिया देवा अप्फोडेंति वग्गंति तिवतिं छिंदंति अप्पेगतिया देवा हत्थहेसियं करेंति अप्पेगतिया देवा हत्थिगुलगुलाइयं करेंति अप्पेगतिया देवा रहघणघणाइयं करेंति अप्पेगतिया देवा हयहेसियं करेंति हत्थिगुलगुलाइयं करेंति रहघणघणाइयं करेंति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

अप्पेगतिया देवा उच्छोलेंति अप्पेगतिया देवा पच्छोलेंति [अप्पेगतिया देवा उक्किट्ठिं करेंति] अप्पेगतिया देवा उक्किट्ठीओ करेंति अप्पेगतिया देवा उच्छोलेंति पच्छोलिंति उक्किट्ठिओ करेंति अप्पेगतिया देवा सीहणादं करेंति अप्पेगतिया देवा पाददद्दरयं करेंति अप्पेगतिया देवा भूमिचवेडं दलयंति अप्पेगतिया देवा सीहनादं पाददद्दरयं भूमिचवेडं दलयंति, अप्पेगतिया देवा हक्कारेंति अप्पेगतिया देवा वुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा थक्कारेंति अप्पे० पुक्कारेंति अप्पेगतिया देवा नामाइं सावेंति अप्पेगतिया देवा हक्कारेंति वुक्कारेंति थक्कारेंति पुक्कारेंति णामाइं सावेंति अप्पेगतिया देवा उप्पतंति अप्पेगतिया देवा णिवयंति अप्पेगतिया देवा परिवयंति अप्पेगतिया देवा उप्पयंति णिवयंति परिवयंति अप्पेगतिया देवा जलंति अप्पेगतिया देवा तवंति अप्पेगतिया देवा पतवंति अप्पेगतिया देवा जलंति तवंति पतवंति अप्पेगइया देवा गज्जंति अप्पेगइया देवा विज्जुयायंति अप्पेगइया देवा वासंति अप्पेगइया देवा गज्जंति विज्जुयायंति वासंति अप्पेगतिया देवा देव सन्निवायं करेंति अप्पेगतिया देवा देवुक्कलियं करेंति अप्पेगइया देवा देवकहकहं करेंति-अप्पेगतिया देवा दुहदुहं करेंति अप्पेगतिया देवा देवसन्निवायं देवउक्कलियं देवकहकहं देवदुहदुहं करेंति अप्पेगतिया देवा देवुज्जोयं करेंति अप्पेगतिया देवा विज्जुयारं करेंति अप्पेगतिया देवा चेलुक्खेवं करेंति अप्पेगतिया देवा देवुज्जोयं विज्जुतारं चेलुक्खेवं करेंति अप्पेगतिया देवा उप्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-अधिकार:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

लहत्थगता जाव सहस्सपत्त० घंटाहत्थगता कलसहत्थगता जाव धूवकडुच्छहत्थगता हट्ठ तुट्ठा जाव हरिसवसविसप्पमाणहियया विजयाए रायहाणीए सव्वतो समंता आधावेंति परिधावेंति ॥ तए णं तं विजयं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ जाव सोलसआयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे विजयरायहाणीवत्थव्वा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं वरकमलपतिट्ठाणेहिं जाव अट्ठसतेणं सोवण्णियाणं कलसाणं तं चेव जाव अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदगेहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव निग्घोसनाइयरवेणं महया २ इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति २ पत्तेयं २ सिरसावत्तं अंजलिं कट्टु एवं वयासि—जय जय नंदा! जय जय भद्दा! जय जय नंद भद्दं ते अजियं जिणेहि जियं पालयाहि अजितं जिणेहि सत्तुपक्खं जितं पालेहि मित्तपक्खं जियमज्झे वसाहि तं देव! निरुवसग्गं इंदो इव देवाणं चंदो इव ताराणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं भरहो इव मणुयाणं बहूणि पलिओवमाइं बहूणि सागरोवमाणि चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं विजयस्स देवस्स विजयाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं वाणमंतराणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहराहित्तिकट्टु महता २ सद्देणं जयजयसद्दं पउंजंति ॥ (सू० १४१) ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

'तेणं कालेणं तेणं समएणं' इत्यादि, तस्मिन् काले तस्मिन् समये विजयो देव उपपातसभायां देवशयनीये देवदूष्यान्तरिते प्रथमतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रयाऽवगाहनया समुत्पन्नः ॥ 'तए ण'मित्यादि, सुगमं नवरमिह भाषामनःपर्याप्त्योः समाप्तिकालान्तरस्य प्रायः शेषपर्याप्तिकालान्तरापेक्षया स्तोकत्वादेकत्वेन विवक्षणमिति 'पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ' इत्युक्तम् ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पञ्चविधया पर्याप्त्या पर्याप्तभावं गतस्य सतोऽयम्—एतद्रूपः संकल्पः समुदपद्यत, कथम्भूतः? इत्याह—'मनोगतः' मनसि गतो—व्यवस्थितो नाद्यापि वचसा प्रकाशितस्वरूप इति भावः, पुनः कथम्भूतः? इत्याह—'आध्यात्मिकः' आत्मन्यधि अध्यात्मं तत्र भव आध्यात्मिक आत्मविषय इति भावः, सङ्कल्पश्च द्विधा भवति—कश्चिदध्यात्मिकोऽपरश्च चिन्तात्मकः, तत्रायं चिन्तात्मक इति प्रतिपादनार्थमाह—'चिन्तितः' चिन्ता संजाताऽस्मिन्निति चिन्तितश्चिन्तात्मक इति भावः, सोऽपि कश्चिदभिलाषात्मको भवति कश्चिदन्यथा, तत्रायमभिलाषात्मकस्तथा चाह—प्रार्थितं प्रार्थो णिजन्तादच् प्रार्थः संजातोऽस्मिन्निति प्रार्थितोऽभिलाषात्मक इति भावः, किंस्वरूपः? इत्याह—'किं मे' इत्यादि, किं 'मे' मम पूर्वं करणीयं किं मे पश्चात्करणीयं, तथा किं मे पूर्वं कर्त्तुं श्रेयः किं मे पश्चात्कर्त्तुं श्रेयः, तथा किं मे पूर्वमपि च पश्चादपि च हिताय भावप्रधानोऽयं निर्देशो हितत्वाय—परिणामसुन्दरतायै सुखाय—शर्म्मणे क्षेमायेति अयमपि भावप्रधानो निर्देशः संगतत्वाय, निःश्रेयसाय—निश्चितकल्याणाय अनुगामिकतायै—परम्परया शुभानुबन्धसुखाय भविष्यतीति ॥ 'तए ण'मित्यादि, 'ततः' एतच्चिन्तासमनन्तरमेव दिव्यानुभावतो विजयस्य देवस्य 'सामाणियपरिसोववन्नगा देवा' इति सामानिकाः पर्षदुपपन्नकाश्च—अभ्यन्तरादिपर्षदुपगताः 'इमम्' अनन्तरोक्तम् 'एतद्रूपम्' अनन्तरोदितस्वरूपमाध्यात्मिकं चिन्तितं प्रार्थितं मनोगतं सङ्कल्पं समभिज्ञाय 'जेणेव'ति यत्रैव विजयो देवस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागम्य च

॥ २४२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् विजयदेव-अधिकारः

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

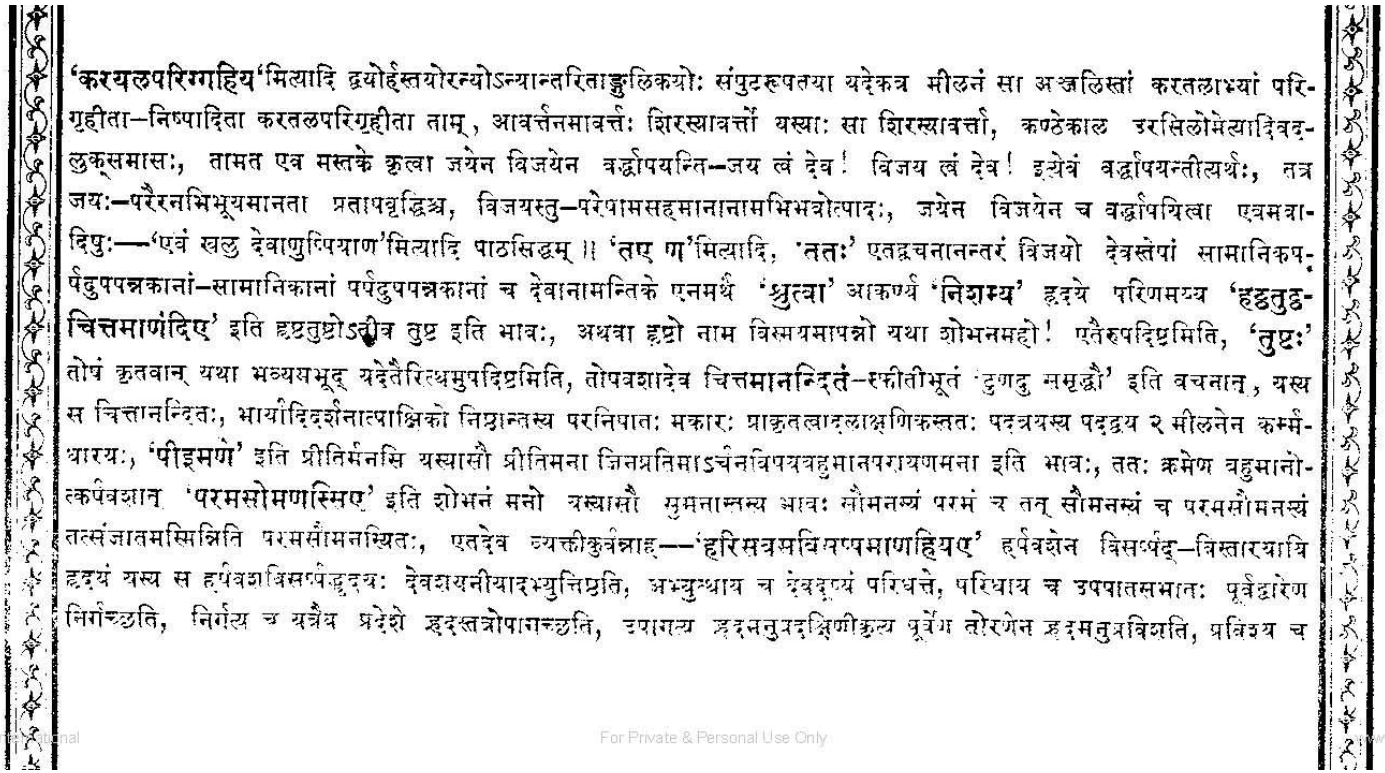

'करयलपरिग्गहिय'मित्यादि द्वयोर्हस्तयोरन्योऽन्यान्तरिताङ्गुलिकयोः संपुटरूपतया यदेकत्र मीलनं सा अञ्जलिस्तां करतलाभ्यां परिगृहीता–निष्पादिता करतलपरिगृहीता ताम्, आवर्त्तनमावर्त्तः शिरस्यावर्त्तो यस्याः सा शिरस्यावर्त्ता, कण्ठेकाल उरसिलोमेत्यादिवद्लुक्समासः, तामत एव मस्तके कृत्वा जयेन विजयेन वर्द्धापयन्ति–जय त्वं देव! विजय त्वं देव! इत्येवं वर्द्धापयन्तीत्यर्थः, तत्र जयः–परैरनभिभूयमानता प्रतापवृद्धिश्च, विजयस्तु–परेषामसहमानानामभिभवोत्पादः, जयेन विजयेन च वर्द्धापयित्वा एवमवादिषुः—'एवं खलु देवाणुप्पियाण'मित्यादि पाठसिद्धम् ॥ 'तए ण'मित्यादि, 'ततः' एतद्वचनानन्तरं विजयो देवस्तेषां सामानिकपर्षदुपपन्नकानां–सामानिकानां पर्षदुपपन्नकानां च देवानामन्तिके एनमर्थं 'श्रुत्वा' आकर्ण्य 'निशम्य' हृदये परिणमय्य 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए' इति हृष्टतुष्टोऽतीव तुष्ट इति भावः, अथवा हृष्टो नाम विस्मयमापन्नो यथा शोभनमहो! एतैरुपदिष्टमिति, 'तुष्टः' तोषं कृतवान् यथा भव्ययभूद् यदेतैरित्थमुपदिष्टमिति, तोषवशादेव चित्तमानन्दितं–स्फीतीभूतं 'टुणदु समृद्धौ' इति वचनात्, यस्य स चित्तानन्दितः, भार्यादिदर्शनात्पाक्षिको निष्ठान्तस्य परनिपातः मकारः प्राकृतलक्षणिकस्ततः पदत्रयस्य पदद्वय २ मीलनेन कर्मधारयः, 'पीइमणे' इति प्रीतिर्मनसि यस्यासौ प्रीतिमना जिनप्रतिमार्चनविषयबहुमानपरायणमना इति भावः, ततः क्रमेण बहुमानोत्कर्षवशात् 'परमसोमणस्सिए' इति शोभनं मनो यस्यासौ सुमनास्तस्य भावः सौमनस्यं परमं च तत् सौमनस्यं च परमसौमनस्यं तत्संजातमस्मिन्निति परमसौमनस्थितः, एतदेव व्यक्तीकुर्वन्नाह—'हरिसवसविसप्पमाणहियए' हर्षवशेन विसर्पद्–विस्तारयाद्धि हृदयं यस्य स हर्षवशविसर्पद्हृदयः देवशयनीयादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय च देवदूष्यं परिधत्ते, परिधाय च उपपातसभातः पूर्वद्वारेण निर्गच्छति, निर्गत्य च यत्रैव प्रदेशे ह्रदस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य ह्रदमनुप्रदक्षिणीकृत्य पूर्वेण तोरणेन ह्रदमनुप्रविशति, प्रविश्य च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकारः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

ह्रदे प्रत्यवरोहति, मध्ये प्रविशतीति भावः, प्रत्यवरुह्य च ह्रदमवगाहते, अवगाह्य जलमज्जनं करोति, कृत्वा च क्षणमात्रं जलक्रीडां करोति, ततः **'आयंते'** इति नवानामपि श्रोतसां शुद्धोदकप्रक्षालनेनाऽऽचान्तो–गृहीताचमनश्चोक्षः–स्वल्पस्यापि शङ्कितमलस्यापनयनात्, अत एव परमशुचिभूतो ह्रदात् प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य यत्रैव प्रदेशेऽभिषेकसभा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्याभिषेकसभामनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वद्वारेणानुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव च मणिपीठिकाया उपरि सिंहासनं तत्रोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः ॥ **'तए णं'**इत्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य सामानिकाः पर्षदुपपन्नकाश्च देवाः **'आभियोगिकान्'** अभियोजनमभियोगः, प्रेष्यकर्म्मणि व्यापार्यमाणत्वमिति भावः, अभियोगे नियुक्ता आभियोगिकास्तान् देवान् **'शब्दायन्ते'** आकारयन्ति, शब्दायित्वा च तानेवमवादिषुः—**'क्षिप्रमेव'** शीघ्रमेव भो देवानां प्रियाः! विजयस्य देवस्य **'महार्थं'** महान् अर्थो–मणिकनकरत्नादिक उपकुर्व्यमानो यस्मिन् स महार्थस्तं महार्थं, तथा महान् अर्घः–पूजा यत्र स महार्घस्तं, महं–उत्सवमर्हतीति महार्हस्तं 'विपुलं' विस्तीर्णं शक्राभिषेकवद् इन्द्राभिषेकमुपस्थापयत ॥ **'तए णं ते'** इत्यादि, ततस्ते आभियोगिका देवाः सामानिकपर्षदुपपन्नकैर्देवैरेवमुक्ताः 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसण्हं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु' इति पूर्ववत्, विनयेन वचनं **'प्रतिशृण्वन्ति'** अभ्युपगच्छन्ति, कथम्भूतेन विनयेन? इत्याह—'एवं देवा तहत्ति आणाए' इति हे देवाः! एवं–यथैव यूयमादिशत तथैवाज्ञया–युष्मदादेशेन कुर्म्म इत्येवंरूपेण प्रतिश्रुत्य वचनमुत्तरपूर्व दिग्भागमीशानकोणमित्यर्थः तस्यात्यन्तप्रशस्तत्वात् **'अपक्रामन्ति'** गच्छन्ति अपक्रम्य च वैक्रियसमुद्घातेन–वैक्रियकरणाय प्रयत्नविशेषेण **'समोहणंति'** समवहन्यन्ते समवहता भवन्तीत्यर्थः, समवहताश्चात्मप्रदेशान् दूरतो विक्षिपन्ति, तथा चाह—**'संखेज्जाणि जो-**

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-अधिकार:

यणाणि दंडं निसरंति' दण्ड इव दण्ड ऊर्ध्वायतः शरीरबाहल्यो जीवप्रदेशसमूहस्तं शरीरस्य बहिः सङ्ख्येयानि योजनानि यावत् **'निसृजन्ति'** निष्काशयन्ति, निसृज्य च तथाविधान् पुद्गलानाददते, एतदेव दर्शयति—तद्यथा—'रत्नानां' कर्केतनादीनां १ वज्राणां २ वैडूर्याणां ३ लोहिताक्षाणां ४ मसारगल्लानां ५ हंसगर्भाणां ६ पुलकानां ७ सौगन्धिकानां ८ ज्योतीरसानाम् ९ अञ्जनानाम् १० अञ्जनपुलकानां ११ रजतानां १२ जातरूपाणाम् १३ अङ्कानां १४ स्फटिकानां १५ रिष्टानां १६, यथाबादरान्—असारान् पुद्गलान् परिशातयन्ति यथासूक्ष्मान्—सारान् पुद्गलान् पर्यादत्ते, पर्यादाय च चिकीर्षितरूपनिर्माणार्थं द्वितीयमपि वारं वैक्रियसमुद्घातेन **समवहन्यन्ते** समवहत्य यथोक्तानां रत्नादीनां योग्यान् यथाबादरान् पुद्गलान् परिशातयन्ति यथासूक्ष्मानाददते आदाय च **'अष्टसहस्रम्'** अष्टाधिकं सहस्रं सौवर्णिकानां कलशानां विकुर्वन्ति १ अष्टसहस्रं रूप्यमयानाम् २ अष्टसहस्रं मणिमयानाम् ३ अष्टसहस्रं सुवर्णरूप्यमयानाम् ४ अष्टसहस्रं सुवर्णमणिमयानाम् ५ अष्टसहस्रं रूप्यमणिमयानाम् ६ अष्टसहस्रं सुवर्णरूप्यमणिमयानाम् ७ अष्टसहस्रं भौमेयानाम् ८ अष्टसहस्रं भृङ्गाराणाम् ९, एवमादर्शस्थालपात्रीसुप्रतिष्ठमनोगुलिकावातकरकचित्ररत्नकरण्डकपुष्पचङ्गेरीयावल्लोमहस्तचङ्गेरीपुष्पपटलकयावल्लोमहस्तकपटलकसिंहासनच्छत्रचामरसमुद्गकध्वजधूपकडुच्छुकानां प्रत्येकं प्रत्येकमष्टसहस्रं विकुर्वन्ति, विकुर्वित्वा 'ताए उक्किट्ठाए' इत्यादि पूर्वं व्याख्यातार्थं यत्रैव क्षीरोदसमुद्रस्तत्रागच्छन्ति, आगत्य च क्षीरोदकं गृह्णन्ति, यानि च तत्र उत्पलानि पद्मानि कुमुदानि नलिनानि सुभगानि सौगन्धिकानि पुण्डरीकाणि महापुण्डरीकाणि शतपत्राणि सहस्रपत्राणि शतसहस्रपत्राणि च तानि गृह्णन्ति, गृहीत्वा पुष्करोदे समुद्रे समागत्य तत्रोदकमुत्पलादीनि च गृह्णन्ति, तदनन्तरं यत्रैव समयक्षेत्रं यत्रैव भरतैरावतानि क्षेत्राणि यत्रैव च तेषु भरतैरावतेषु वर्षेषु मागधवरदामप्रभासाख्यानि तीर्थानि तत्रैवोपागत्य तीर्थोदकं तीर्थमृत्तिकां च गृह्णन्ति, ततो गङ्गा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

सिन्धुरक्तारक्तवतीषु महानदीषु नद्युदकमुभयतटमृत्तिकां च गृह्णन्ति, ततः क्षुल्लहिमवच्छिखरिषु समागत्य सर्वतुवरान्–कषायान् सर्वाणि जातिभेदेन पुष्पाणि सर्वान् **'गन्धान्'** गन्धवासादीन् सर्वाणि माल्यानि–ग्रथितादिभेदभिन्नानि सर्वौषधीः सिद्धार्थकांश्च गृह्णन्ति, गृहीत्वा तदनन्तरं पद्महृदपुण्डरीकहृदेभ्यागत्य तदुदकमुत्पलादीनि च गृह्णन्ति, ततो हैमवतैरण्यवतेषु वर्षेषु रोहितारोहितांशासुवर्णकूलारूप्यकूलासु महानदीषु नद्युदकमुभयतटमृत्तिकां तदनन्तरं शब्दापातिविकटापातिवृत्तवैताढ्येषु सर्वतुवरादीन् ततो महाहिमवद्रुक्मिवर्षधरपर्वतेषु सर्वतुवरादीन् ततो महापद्ममहापौण्डरीकहृदेषु हृदोदकमुत्पलादीनि च तदनन्तरं हरिवर्षरम्यकवर्षेषु हरकान्ताहरिकान्तानरकान्तानारीकान्तासु महानदीषु सलिलोदकम् उभयतटमृत्तिकां च ततो गन्धापातिमाल्यवत्पर्यायवृत्तवैताढ्येषु सर्वतुवरादीन् ततो निषधनीलवर्षधरपर्वतेषु सर्वतुवरादीन् तदनन्तरं तद्गतेषु तिगिञ्छिकेसरिमहाहृदेषु हृदोदकमुत्पलादीनि च ततः पूर्वविदेहापरविदेहेषु शीताशीतोदामहानदीषु नद्युदकम् उभयतटमृत्तिकां च तदनन्तरं सर्वेषु चक्रवर्त्तिविजेतव्येषु मागधवरदामप्रभासाख्यतीर्थेषु तीर्थोदकानि तीर्थमृत्तिकाश्च ततः सर्वेषु वक्षस्कारपर्वतेषु सर्वतुवरादीन् तदनन्तरं सर्वान्तरनदीषु नद्युदकमुभयतटमृत्तिकाश्च ततो मन्दरपर्वते भद्रशालवने सर्वतुवरादीन् ततो नन्दनवने सर्वतुवरादीन् सरसं च गोशीर्षचन्दनं ततः सौमनसवने सर्वतुवरादीन् सरसं च गोशीर्षचन्दनं दिव्यं च सुमनोदाम गृह्णन्ति, ततः पण्डकवने सर्वतुवरपुष्पगन्धमाल्यसरसगोशीर्षचन्दनदिव्यसुमनोदामानि **'दद्दरमलए सुगंधिए य गिण्हंति'** इति दर्दरः–चीवरावनद्धकुण्डिकादिभाजनमुखं तेन गालितं तत्र पक्वं वा यन्मलयोद्भवतया प्रसिद्धत्वान्मलयं–श्रीखण्डं येषु तान् 'सुगन्धान्' परमगन्धोपेतान् गन्धान् गृह्णन्ति, गृहीत्वा एकत्र मिलन्ति, मिलित्वा तया उत्कृष्टया दिव्यया देवगत्या यत्रैव विजया राजधानी यत्रैव विजयो देवस्तत्रैवोपागच्छन्ति, उपागत्य च करतलपरिगृहीतां शिरस्यावर्त्तिकां मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वा विजयं देवं जयेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-अधिकार:

विजयेन वर्द्धापयन्ति, वर्द्धापयित्वा महार्थं महार्घं महार्हं विपुलमिन्द्राभिषेकयोग्यं क्षीरोदकादि 'उपनयन्ति' समर्पयन्ति ॥ **'तए ण'**-मित्यादि, ततो णमिति वाक्यालङ्कारे तं विजयं देवं चत्वारि देवसामानिकसहस्राणि चतस्रोऽग्रमहिष्यः सपरिवारास्तिस्रः पर्षदो यथाक्रममष्टदशद्वादशदेवसहस्रपरिमाणाः सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयः षोडश आत्मरक्षदेवसहस्राणि, अन्ये च बहवो विजयराजधानीवास्तव्या वानमन्तरा देवा देव्यश्च तैः–तत्रतदेवजनप्रसिद्धैः स्वाभाविकैर्वैक्रियकैश्च वरकमलप्रतिस्थानैः सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णैश्चन्दनकृतचर्चाकैः **'आविद्धकण्ठेगुणैः'** आरोपितकण्ठे रक्तसूत्रतन्तुभिः पद्मोत्पलपिधानैः सुकुमारकरतलपरिगृहीतैरनेकसहस्रसङ्ख्यैः कलशैरिति गम्यते, तानेव विभागतो दर्शयति–अष्टसहस्रेण सौवर्णिकानां कलशानाम्, अष्टसहस्रेण रूप्यमयानाम्, अष्टसहस्रेण मणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमयानाम्, अष्टसहस्रेण सुवर्णमणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण रूप्यमणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण सुवर्णरूप्यमणिमयानाम्, अष्टसहस्रेण भौमेयानां, सर्वसङ्ख्याऽष्टभिः सहस्रैश्चतुःषष्ट्यधिकैः, तथा **'सर्वोदकैः'** सर्वतीर्थेभ्यआनीतोदकैः सर्वतुवरैः सर्वपुष्पैः सर्वगन्धैः सर्वमाल्यैः सर्वौषधिसिद्धार्थकैश्च **'सर्वर्द्ध्या'** परिवारादिकया **'सर्वद्युत्या'** यथाशक्ति विस्फारितेन शरीरतेजसा **'सर्वबलेन'** सामस्त्येन स्वसैन्यादिसैन्येन **'सर्वसमुदयेन'** स्वस्वाभियोग्यादिसमस्तपरिवारेण **'सर्वादरेण'** समस्तयावच्छक्तितोलनेन **'सर्वविभूत्या'** स्वस्वाभ्यन्तरवैक्रियकरणादिबाह्यरत्नादिसम्पदा, तथा **'सर्वविभूषया'** यावच्छक्तिस्फारोदारशृङ्गारकरणेन **'सव्वसंभमेणं'**ति सर्वोत्कृष्टेन संभ्रमेण, सर्वोत्कृष्टसंभ्रमो नाम इह स्वनायकविषयबहुमानख्यापनार्थवरा स्वनायककार्यसम्पादनाय यावच्छक्ति त्वरितत्वरिता प्रवृत्तिः, सर्वपुष्पवस्त्रगन्धमाल्यालङ्कारेण, अत्र गन्धा–वासा माल्यानि–पुष्पदामानः अलङ्कारा–आभरणानि ततः समाहारो द्वन्द्वः, ततः सर्वदिव्ययुटितानि तेषां शब्दाः सर्वदिव्ययुटितशब्दास्तैः सह सर्वशब्देन विशेषणसमासः, **'सव्वदिव्वतुडियसद्दनि-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

नाएण'मिति सर्वाणि च तानि दिव्यत्रुटितानि च–दिव्यतूर्याणि च, एषामेकत्र मीलनेन यः संगतो नितरां नादो–महान् घोषः सर्वदिव्यत्रुटितशब्दसंनिनादस्तेन, इह तुल्येष्वपि सर्वशब्दो दृष्टो यथाऽनेन सर्वं पीतं घृतमिति, तत आह—**'महया इड्ढीए'** इत्यादि, महत्या यावच्छक्तितुलितया **'ऋद्ध्या'** परिवारादिकया **'महया जुईए'** इत्याद्यपि भावनीयं, तथा महता–स्फूर्तिमता वराणां–प्रधानानां त्रुटितानां–आतोद्यानां यमकसमकं–एककालं पटुभिः पुरुषैः प्रवादितानां यो रवस्तेन, एतदेव विशेषेणाचष्टे—**'संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कमुरवमुइंगदुंदुहिनिग्घोससंनिनादितरवेणं'** शङ्खः प्रतीतः पणवो–भाण्डानां पटहः–प्रतीतः भेरी–ढक्का झल्लरी–चर्मावनद्धा विस्तीर्णा वलयरूपा खरमुही–काहला हुडुक्का–महाप्रमाणो मर्दलो मुरजः–स एव लघुर्मृदङ्गो दुन्दुभिः–भेर्याकारा सङ्कटमुखी, तासां द्वन्द्वः, तासां निर्घोषो–महान् ध्वानो नादितं च घण्टायामिव वादनोत्तरकालभावी सततध्वनिस्तल्लक्षणो यो रवस्तेन महता महता इन्द्राभिषेकेणाभिषिञ्चति ॥ **'तए ण'**मित्यादि, ततो णमिति पूर्ववत् तस्य विजयस्य देवस्य **'महया'** इति अतिशयेन महति इन्द्राभिषेके वर्त्तमानेऽप्येककादेवा विजयां राजधानीं, सप्तम्यर्थे द्वितीया प्राकृतत्वात्ततोऽयमर्थः–विजयायां राजधान्यां नात्युदके प्रभूतजलसंग्रहभावतो वैरस्योपपत्तेः नातिमृत्तिके अतिमृत्तिकाया अपि कर्दमरूपतायां उत्साहवृद्धिजनकत्वाभावात् **'पविरलफुसिय'**मिति प्रविरलानि–वनभावे कर्दमसम्भवात् प्रकर्षेण यावता रेणवः स्थगिता भवन्ति तावन्मात्रेणोत्कर्षेण स्पृष्टानि–स्पर्शनानि यत्र वर्षे तत् प्रविरलस्पृष्टं **'रयरेणुविणासणं'**ति श्लक्ष्णतरा रेणुपुद्गला रजस्त एव स्थूला रेणवः रजांसि च रेणवश्च रजोरेणवस्तेषां विनाशनं रजोरेणुविनाशनं **'दिव्वं'** प्रधानं सुरभिगन्धोदकवर्षं वर्षन्ति, अप्येककाविजयां राजधानीं समस्तामपि **'निहतरजसं'** निहतं रजो यस्यां सा निहतरजास्तां, तत्र निहतत्वं रजसः क्षणमात्रमुत्थानाभावेनापि संभवति तत आह—**'नष्टरजसं'** नष्टं–सर्वथाऽदृश्यी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-अधिकार:

भूतं रजो यत्र [ग्रन्थाग्रं ७०००] सा नष्टरजास्तां, तथा भ्रष्टं–वातोद्धूततया राजधान्या दूरतः पलायितं रजो यस्याः सा भ्रष्टरजास्ताम्, एतदेवैकार्थिकद्वयेन प्रकटयति–प्रशान्तरजसं उपशान्तरजसं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीम् **'आसियसंमज्जिओवलित्तं सित्तं सुइसम्मट्ठ[रय]रत्थंतरावणवीहियं करेंति'** इति आसिक्तमुदकच्छटेन संमार्जितं कचवरशोधनेन उपलिप्तमिव गोमयादिनोपलिप्तं, तथा सिक्तानि जलेनात एव शुचीनि–पवित्राणि संमृष्टानि–कचवरापनयनेन रथ्यान्तराणि आपणवीथय इव–हट्टमार्गा इव आपणवीथयो रथ्याविशेषाश्च यस्यां सा तथा तां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा मञ्चातिमञ्चकलितां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा नानाविधा विशिष्टा रागा येषु ते नानाविरागा नानाविरागैरुच्छ्रितैः–ऊर्द्धीकृतैर्ध्वजैः पताकातिपताकाभिश्च मण्डितां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा लाउल्लोइयमहितां गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीमुपचितचन्दनकलशां कुर्वन्ति अप्येकका देवा चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीमासिक्तोत्सिक्तविपुलवृत्तवग्घारितमाल्यदामकलापां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीं पञ्चवर्णसुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा विजयां राजधानीं कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपवासोद्धुतामिरामां सुगन्धवरगन्धगन्धिकां गन्धवर्त्तिभूतां कुर्वन्ति, एतेषां च पदानां व्याख्यानं पूर्ववत्, अप्येकका देवा हिरण्यवर्षं वर्षन्ति, अप्येकका: सुवर्णवर्षमप्येकका आभरणवर्षं (रत्नवर्षमप्येकका वज्रवर्षमप्येकका:) पुष्पवर्षमप्येकका माल्यवर्षमप्येककाश्चूर्णवर्षं वस्त्रवर्षं (आभरणवर्षं) वर्षन्ति, अप्येकका देवा हिरण्यविधिं–हिरण्यरूपं मङ्गलप्रकारं **'भाजयन्ति'** विश्राणयन्ति शेषदेवेभ्यो ददतीति भावः, एवं सुवर्णरत्नाभरणपुष्पमाल्यगन्धचूर्णवस्त्रविधिभाजनमपि भावनीयम् ॥ **'अप्पेगइया देवा दुयं नट्टविहिं उवदंसेंति'** इत्यादि, इह द्वात्रिंशन्नाट्यविधयः, ते च येन क्रमेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः पुरतः सूर्याभदेवेन भाविता राजप्रश्नीयोपाङ्गे दर्शितास्तेन क्रमेण विनेयजनानुग्रहार्थमुपदर्श्यन्ते, तत्र स्वस्तिकश्रीवत्सनन्दावर्त्तवर्द्धमानकभद्रासनकलशमत्स्यदर्पणरूपाष्टमङ्गलाकाराभिनयात्मकः प्रथमो नाट्यविधिः १, द्वितीय आवर्त्तप्रत्यावर्त्तश्रेणिप्रतिश्रेणिस्वस्तिकपुष्पमाणवकवर्द्धमानकमत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारपुष्पावलिपद्मपत्रसागरतरङ्गवासन्तीलतापद्मलताभक्तिचित्राभिनयात्मकः २, तृतीय ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहगव्यालकिन्नररुरुसरभचमरकुञ्जरवनलतापद्मलताभक्तिचित्रात्मकः ३, चतुर्थ एकतोच(तश्च)क्रद्विधातोच(तश्च)क्रएकतश्चक्रवालद्विधातश्चक्रवालचक्रार्द्धचक्रवालाभिनयात्मकः ४, पञ्चमश्चन्द्रावलिप्रविभक्तिसूर्यावलिप्रविभक्तिरलयावलिप्रविभक्तिहंसावलीप्रविभक्तितारावलिप्रविभक्तिमुक्तावलिप्रविभक्तिरत्नावलिप्रविभक्तिपुष्पावलिप्रविभक्तिनामा ५, षष्ठश्चन्द्रोद्गमप्रविभक्तिसूर्योद्गमप्रविभक्त्यभिनयात्मक उद्गमनोद्गमनप्रविभक्तिनामा ६, सप्तमश्चन्द्रागमनसूर्यागमनप्रविभक्त्यभिनयात्मक आगमनागमनप्रविभक्तिनामा ७, अष्टमश्चन्द्रावरणप्रविभक्तिसूर्यावरणप्रविभक्त्यभिनयात्मक आवरणावरणप्रविभक्तिनामा ८, नवमश्चन्द्रास्तमयनप्रविभक्तिसूर्यास्तमयनप्रविभक्त्यभिनयात्मकोऽस्तमयनास्तमयनप्रविभक्तिनामा ९, दशमश्चन्द्रमण्डलप्रविभक्तिसूर्यमण्डलप्रविभक्तिनागमण्डलप्रविभक्तियक्षमण्डलप्रविभक्तिभूतमण्डलप्रविभक्त्यभिनयात्मको मण्डलप्रविभक्तिनामा १०, एकादश ऋषभमण्डलप्रविभक्तिसिंहमण्डलप्रविभक्तिहयविलम्बितगजविलम्बितहयविलसितगजविलसितमत्तहयविलसितमत्तगजविलसितमत्तहयविलम्बितमत्तगजविलम्बिताभिनयो द्रुतविलम्बितनामा ११, द्वादशः सागरप्रविभक्तिनागप्रविभक्त्यभिनयात्मकः सागरनागप्रविभक्तिनामा १२, त्रयोदशो नन्दाप्रविभक्तिचम्पाप्रविभक्त्यभिनयात्मको नन्दाचम्पाप्रविभक्त्यात्मकः १३, चतुर्दशो मत्स्याण्डकप्रविभक्तिमकराण्डकप्रविभक्तिजारप्रविभक्तिमारप्रविभक्त्यभिनयात्मको मत्स्याण्डकमकराण्डकजारमारप्रविभक्तिनामा १४, पञ्चदशः क इति ककारप्रविभक्तिः ख इति खकारप्रविभक्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
विजयदेव-अधिकारः

प्रत सूत्रांक [१४१]

दीप अनुक्रम [१७९]

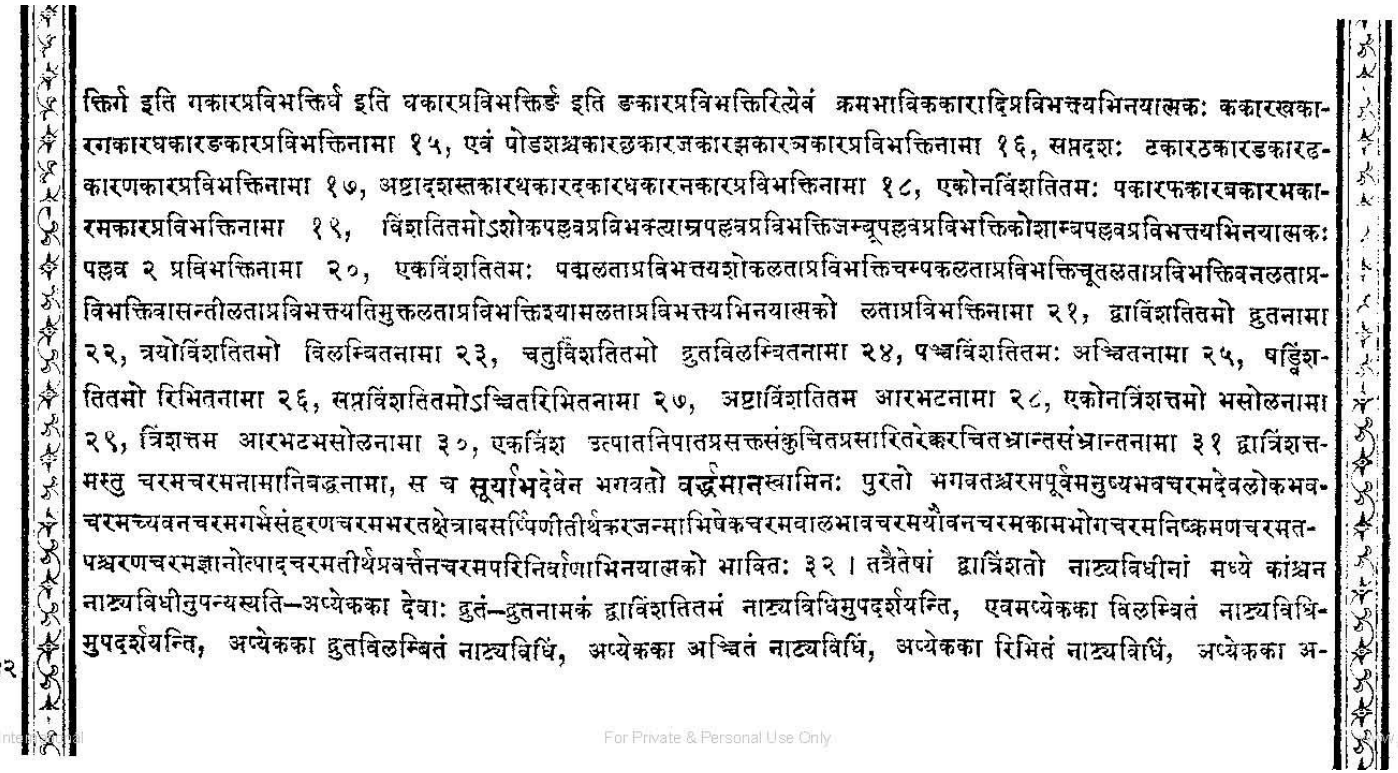

क्तिर्गे इति गकारप्रविभक्तिर्घे इति घकारप्रविभक्तिर्ङ इति ङकारप्रविभक्तिरित्येवं क्रमभाविककारादिप्रविभक्तयभिनयात्मक: ककारखकारगकारघकारङकारप्रविभक्तिनामा १५, एवं षोडशश्चकारछकारजकारझकारञकारप्रविभक्तिनामा १६, सप्तदश: टकारठकारडकारढकारणकारप्रविभक्तिनामा १७, अष्टादशस्तकारथकारदकारधकारनकारप्रविभक्तिनामा १८, एकोनविंशतितम: पकारफकारबकारभकारमकारप्रविभक्तिनामा १९, विंशतितमोऽशोकपल्लवप्रविभक्त्याम्रपल्लवप्रविभक्तिजम्बूपल्लवप्रविभक्तिकोशाम्बपल्लवप्रविभक्तयभिनयात्मक: पल्लव २ प्रविभक्तिनामा २०, एकविंशतितम: पद्मलताप्रविभक्तयशोकलताप्रविभक्तिचम्पकलताप्रविभक्तिचूतलताप्रविभक्तिवनलताप्रविभक्तिवासन्तीलताप्रविभक्तयतिमुक्तलताप्रविभक्तिश्यामलताप्रविभक्तयभिनयात्मको लताप्रविभक्तिनामा २१, द्वाविंशतितमो द्रुतनामा २२, त्रयोविंशतितमो विलम्बितनामा २३, चतुर्विंशतितमो द्रुतविलम्बितनामा २४, पञ्चविंशतितम: अञ्चितनामा २५, षड्विंशतितमो रिभितनामा २६, सप्तविंशतितमोऽञ्चितरिभितनामा २७, अष्टाविंशतितम आरभटनामा २८, एकोनत्रिंशत्तमो भसोलनामा २९, त्रिंशत्तम आरभटभसोलनामा ३०, एकत्रिंश उत्पातनिपातप्रसक्तसंकुचितप्रसारितरेक्करचितभ्रान्तसंभ्रान्तनामा ३१ द्वात्रिंशत्तमस्तु चरमचरमनामानिबद्धनामा, स च सूर्याभदेवेन भगवतो वर्द्धमानस्वामिन: पुरतो भगवतश्चरमपूर्वमनुष्यभवचरमदेवलोकभवचरमच्यवनचरमगर्भसंहरणचरमभरतक्षेत्रावसर्पिणीतीर्थकरजन्माभिषेकचरमबालभावचरमयौवनचरमकामभोगचरमनिष्क्रमणचरमतपश्चरणचरमज्ञानोत्पादचरमतीर्थप्रवर्त्तनचरमपरिनिर्वाणाभिनयात्मको भावित: ३२ । तत्रैतेषां द्वात्रिंशतो नाट्यविधीनां मध्ये कांश्चन नाट्यविधीनुपन्यस्यति–अप्येकका देवा: द्रुतं–द्रुतनामकं द्वाविंशतितमं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, एवमप्येकका विलम्बितं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, अप्येकका द्रुतविलम्बितं नाट्यविधिं, अप्येकका अञ्चितं नाट्यविधिं, अप्येकका रिभितं नाट्यविधिं, अप्येकका अ-

जी०च०४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

श्वितरिभितं नाट्यविधिं, अप्येकका आरभटं नाट्यविधिं, अप्येकका भसोलं नाट्यविधिं, अप्येकका आरभटभसोलं नाट्यविधिमुपदर्शयन्ति, अप्येकका देवा उत्पातनिपातम् उत्पातपूर्वो निपातो यस्मिन् स उत्पातनिपातस्तं, एवं निपातोत्पातं सङ्कुचितप्रसारितं 'रियारिय'मिति गमनागमनं भ्रान्तसम्भ्रान्तं नाम, नाट्यविधिं–सामान्यतो नर्त्तनविधिं द्वात्रिंशद्विध्युत्तीर्णमुपदर्शयन्ति । अप्येकका देवाश्चतुर्विधं वाद्यं वादयन्ति, तद्यथा—**'ततं'** मृदङ्गपटहादि **'विततं'** वीणादिकं **'घनं'** कंसिकादि **'शुषिरं'** काहलादि, अप्येकका देवाश्चतुर्विधं गेयं गायन्ति, तद्यथा—**'उत्क्षिप्तं'** प्रथमतः समारभ्यमाणं **'प्रवृत्तम्'** उत्क्षेपावस्थातो विक्रान्तं मनाग्भरेण प्रवर्त्तमानं **मन्दायमिति**–मध्यभागे मूर्छनादिगुणोपेततया मन्दं मन्दं घोलनात्मकं **'रोचितावसान'**मिति रोचितं–यथोचितलक्षणोपेततया भावितं सत्यापितमितियावद् अवसानं यस्य तद् रोचितावसानं । अप्येककाश्चतुर्विधमभिनयमभिनयन्ति, तद्यथा–दार्ष्टान्तिकं प्रतिश्रुतिकं सामान्यतोविनिपातिकं लोकमध्यावसानिकमिति, एतेऽभिनयविधयो नाट्यकुशलेभ्यो वेदितव्याः, अप्येकका देवाः **'पीनयन्ति'** पीनमात्मानं कुर्वन्ति स्थूला भवन्तीति भावः, अप्येकका देवाः **'ताण्डवयन्ति'** ताण्डवरूपं नृत्यं कुर्वन्ति, अप्येकका देवाः **'लास्ययन्ति'** लास्यरूपं नृत्यं कुर्वन्ति, अप्येकका देवाः **'छुक्कारेंति'** छूत्कारं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा एतानि पीनत्वादीनि चत्वार्यपि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा उच्छलन्ति अप्येकका देवाः प्रोच्छलन्ति अप्येकका देवास्त्रिपदिकां छिन्दन्ति अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा हयहेषितानि कुर्वन्ति अप्येकका देवा हस्तिगडगडायितं कुर्वन्ति अप्येकका रथघणघणायितं कुर्वन्ति अप्येकका देवास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा आस्फोटयन्ति, भूम्यादिकमिति गम्यते, अप्येकका देवा वल्गन्ति, अप्येकका देवाः सिंहनादं नदन्ति अप्येकका देवाः पाददर्दरकं कुर्वन्ति अप्येकका देवा भूमिचपेटां ददति–भूमिं चपेटयाऽऽस्फाल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-अधिकार:

यन्तीति भावः, अप्येकका देवा महता महता शब्देन **'रवन्ते'** शब्दं कुर्वन्ति अप्येकका देवाश्चत्वार्यपि सिंहनादादीनि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा **'हक्कारेंति'** हकारं कुर्वन्ति अप्येकका देवाः **'वुक्कारेंति'** मुखेन वुकारशब्दं कुर्वन्ति अप्येकका देवाः **'थक्कारेंति'** थक्क इत्येवं महता शब्देन कुर्वन्ति अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा अवपतन्ति अप्येकका देवा उत्पतन्ति अप्येकका देवाः परिपतन्ति–तिर्यगिपतन्तीत्यर्थः अप्येकका देवास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येककाः **'ज्वलन्ति'** ज्वालामालाकुला भवन्ति अप्येकका देवाः **'तपन्ति'** तप्ता भवन्ति अप्येककाः प्रतपन्ति अप्येकका देवास्त्रीण्यपि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा गर्जयन्ति अप्येककाः **'विज्जुयारेंति'** विद्युतं कुर्वन्ति अप्येकका देवा वर्षं वर्षन्ति अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवा देवोत्कलिकां कुर्वन्ति–देवानां वातस्येवोत्कलिका देवोत्कलिका तां कुर्वन्ति, अप्येकका देवा देवकहकहं कुर्वन्ति–प्रभूतानां देवानां प्रमोदभरवशतः स्वेच्छावचनैर्बोलः कोलाहलो देवकहकहस्तं कुर्वन्ति, अप्येकका देवा देवदुहुदुहुकं कुर्वन्ति–दुहुदुहुकमित्यनुकरणवचनमेतत्, अप्येककास्त्रीण्यप्येतानि कुर्वन्ति, अप्येकका देवाश्चेलोत्क्षेपं कुर्वन्ति. अप्येकका देवा वन्दनकलशहस्तगताः–वन्दनकलशा हस्ते गता येषां ते वन्दनकलशहस्तगताः, अप्येकका देवाः भृङ्गारकलशहस्तगताः, एवमादर्शस्थालपात्रीसुप्रतिष्ठकवातकरकचित्ररत्नकरण्डकपुष्पचङ्गेरीयावल्लोमहस्तचङ्गेरीपुष्पपटलकयावल्लोमहस्तपटलकसिंहासनचामरतैलसमुद्गकयावद्धूपनसमुद्गकधूपकडुच्छुकहस्तगताः प्रत्येकमभिलाप्याः, **'हट्ठतुट्ठे'**त्यादि यावत्करणात् 'हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीतिमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया' इति परिग्रहः, सर्वतः समन्ताद् आधावन्ति प्रधावन्ति ॥ 'तए णं तं विजयं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ' इत्याद्यभिषेकनिगमनसूत्रमाशीर्वादसूत्रं च पाठसिद्धम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-अधिकार:

तए णं से विजए देवे महया २ इंदाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ सीहासणाओ अब्भुट्ठेत्ता अभिसेयसभातो पुरत्थिमेणं दारेणं पडिनिक्खमति २ त्ता जेणामेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छति २ त्ता आलंकारियसभं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसति पुरत्थिमेणं दारेणं अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति २ एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! विजयस्स देवस्स आलंकारियं भंडं उवणेह, तेणेव ते आलंकारियं भंडं जाव उवट्ठवेंति ॥ तए णं से विजए देवे तप्पढमयाए पम्हलसूमालाए दिव्वाए सुरभीए गंधकासाईए गाताइं लूहेति गाताइं लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गाताइं अणुलिंपति सरसेणं गोसीसचंदणेणं गाताइं अणुलिंपेत्ता ततोऽणंतरं च णं नासाणीसासवायवज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवलं कणगखइयंतकम्मं आगासफलिहसरिसप्पभं अहतं दिव्वं देवदूसजुयलं णियंसेइ णियंसेत्ता हारं पिणिद्धेइ हारं पिणिद्धेत्ता एवं एकावलिं पिणिंधति एकावलिं पिणिंधेत्ता एवं एतेणं अभिलावेणं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं कडगाइं तुडियाइं अंगयाइं केयूराइं दसमुद्दिताणंतकं कडिसुत्तकं तेअत्थिसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबंसि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

कुंडलाइं चूडामणिं चित्तरयणुक्कडं मउडं पिणिंधेइ पिणिंधित्ता गंठिमवेढिमपूरिमसंघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयंपिव अप्पाणं अलंकियविभूसितं करेति, कप्परुक्खयंपिव अप्पाणं अलंकियविभूसियं करेत्ता दद्दरमलयसुगंधगंधितेहिं गंधेहिं गाताइं सुक्किडति २ त्ता दिव्वं च सुमणदामं पिणिद्धति ॥ तए णं से विजए देवे केसालंकारेणं वत्थालंकारेणं मल्लालंकारेणं आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकिते विभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ २ त्ता आलंकारियसभाओ पुरच्छिमिल्लेणं दारेणं पडिनिक्खमति २ त्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छति २ त्ता ववसायसभं अणुप्पदाहिणं करेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति २ त्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे । तते णं तस्स विजयस्स देवस्स आहिओगिया देवा पोत्थयरयणं उवणेंति ॥ तए णं से विजए देवे पोत्थयरयणं गेण्हति २ त्ता पोत्थयरयणं मुयति पोत्थयरणं मुएत्ता पोत्थयरयणं विहाडेति पोत्थयरयणं विहाडेत्ता पोत्थयरयणं वाएति पोत्थयरयणं वाएत्ता धम्मियं

१ 'गंठिमे'त्यादितो यावत् 'करेत्ता' इत्ययं पाठोऽग्रलिखितसूत्रस्यादावेव दृश्यते व्याख्यानुसारेण. २ अस्य व्याख्या न दृश्यते. ३ 'गंठिमे'त्यादि यावत् 'करेत्ता' इत्ययं पाठः व्याख्या न दृश्यते, 'केसालंकारेणं' इत्यादि यावत् 'विभूसिए समाणे' इत्येतस्य व्याख्याऽपि न दृश्यते । गंठिमे'त्यादि यावत् 'करेत्ता' इत्येतस्य 'पडिपुण्णालंकारे' इत्येतेन सह संबंधो दृश्यते व्याख्यानुसारेण. ४ अयं पुस्तकद्वयेऽप्यत्रैव दृश्यतेऽतोऽहं व्याख्यानुसारेण मूलपाठे कर्तुं न शक्तोऽभूवम्.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

ववसायं पगेण्हति धम्मियं ववसायं पगेण्हित्ता पोत्थयरयणं पडिणिक्खिवेइ २ त्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेति २ त्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति २ त्ता णंदं पुक्खरिणिं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोपाणपडिरूवगएणं पच्चोरुहति २ त्ता हत्थं पादं पक्खालेति २ त्ता एगं महं सेतं रयतामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकितिसमाणं भिंगारं पगिण्हति भिंगारं पगेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हति २ त्ता णंदातो पुक्खरिणीतो पच्चुत्तरेइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव अण्णे य बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव हत्थगया विजयं देवं पिट्ठतो पिट्ठतो अणुगच्छंति ॥ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा देवीओ य कलसहत्थगता जाव धूवकडुच्छुयहत्थगता विजयं देवं पिट्ठतो २ अणुगच्छंति । तते णं से विजए देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहि य बहूहिं वाणमंतरेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए सव्वजुत्तीए जाव णिग्घोसणाइयरवेणं जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति अणु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

पविसित्ता जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छति २ त्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेति २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हति लोमहत्थगं गेण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जति २ त्ता सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेति २ त्ता दिव्वाए सुरभिगंधकासाइए गाताइं लूहेति २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गाताणि अणुलिंपइ अणुलिंपेत्ता जिणपडिमाणं अहयाइं सेताइं दिव्वाइं देवदूसजुयलाइं णियंसेइ नियंसेत्ता अग्गेहिं वरेहि य गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेति २ त्ता पुप्फारुहणं गंधारुहणं मल्लारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहणं आभरणारुहणं करेति करेत्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारितमल्लदाम० करेति २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं [सेएहिं] रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरतो अट्ठट्ठमंगलए आलिहति सोत्थियसिरिवच्छ जाव दप्पण अट्ठट्ठमंगलगे आलिहति आलिहित्ता कयग्गाहग्गहितकरतलपब्भट्ठविप्पमुक्केण दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलितं करेति २ त्ता चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगंधुत्तमाणुविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियामयं कडुच्छुयं पग्गहित्तु पयत्तेण धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं संथुणइ २ त्ता सत्तट्ठ पयाइं ओसरति सत्तट्ठपयाइं ओसरित्ता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि णिवाडेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

यलंसि णमेइ नमित्ता ईसिं पच्चुण्णमति २ त्ता कडयतुडियथंभियाओ भुयाओ पडिसाहरति २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—णमोऽत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताणं निकट्टु वंदति णमंसति वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छति २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खति २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलं आलिहति २ त्ता वच्चए दलयति वच्चए दलयित्ता कयग्गाहग्गहियकरतलपब्भट्ठविमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति २ त्ता धूवं दलयति २ जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छति २ त्ता लोमहत्थयं गेण्हइ २ दारचेडीओ य सालिभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जति २ बहुमज्झदेसभाए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं अणुलिंपति २ चच्चए दलयति २ पुप्फारुहणं जाव आहरणारुहणं करेति २ आसत्तोसत्तविपुल जाव मल्लदामकलावं करेति २ कयग्गाहग्गहित जाव पुंजोवयारकलितं करेति २ धूवं दलयति २ जेणेव मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छति २ त्ता बहुमज्झदेसभाए लोमहत्थेणं पमज्जति २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेति २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलेणं मंडलगं आलिहति २ चच्चए दलयति २ कयग्गाह जाव धूवं दलयति २ जेणेव मुहमंडवगस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

उवा० लोमहत्थगं गेण्हति २ दारचेडीओ य सालिभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थगेण पमज्जति २ दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेति २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं जाव चच्चए दलयति २ आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति २ जेणेव मुहमंडवगस्स उत्तरिल्ला णं खंभपंती तेणेव उवागच्छइ २ लोमहत्थगं परा० सालभंजियाओ दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति जेणेव मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव दारस्स अच्चणिया जेणेव दाहिणिल्ले दारे तं चेव जेणेव पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए जेणेव वइरामए अक्खाडए जेणेव मणिपेढिया जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छति २ लोमहत्थगं गिण्हति लोमहत्थगं गिण्हित्ता अक्खाडगं च सीहासणं च लोमहत्थगेण पमज्जति २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भु० पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयति जेणेव पेच्छाघरमंडवपच्चत्थिमिल्ले दारे दारच्चणिया उत्तरिल्ला खंभपंती तहेव पुरत्थिमिल्ले दारे तहेव जेणेव दाहिणिल्ले दारे तहेव जेणेव चेतियथूभे तेणेव उवागच्छति २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हति २ त्ता चेतियथूभं लोमहत्थएणं पमज्जति २ दिव्वाए दग० सरसेण० पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त जाव धूवं दलयति २ जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव जिणपडिमा तेणेव उवागच्छति जिणपडिमाए आलोए पणामं करेइ २ त्ता लोमहत्थगं गेण्हति २ त्ता तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

॥ २५१ ॥

चेव सव्वं जं जिणपडिमाणं जाव सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं वंदति णमंसति, एवं उत्तरिल्लाएवि, एवं पुरत्थिमिल्लाएवि, एवं दाहिणिल्लाएवि, जेणेव चेइयरुक्खा दारविही य मणिपेढिया जेणेव महिंदज्झए दारविही, जेणेव दाहिणिल्ला नंदापुक्खरणी तेणेव उवा० लोमहत्थगं गेण्हति चेतियाओ य तिसोपाणपडिरूवए य तोरणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जति २ त्ता दिव्वाए उदगधाराए सिंचति सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपति २ पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयति २ सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणं करेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति २ त्ता तहेव महिंदज्झया चेतियरुक्खो चेतियथूभे पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जिणपडिमा उत्तरिल्ला पुरत्थिमिल्ला दक्खिणिल्ला पेच्छाघरमंडवस्सवि तहेव जहा दक्खिणिल्लस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे जाव दक्खिणिल्ला णं खंभपंती मुहमंडवस्सवि तिण्हं दाराणं अच्चणिया भणिऊणं दक्खिणिल्ला णं खंभपंती उत्तरे दारे पुरच्छिमे दारे सेसं तेणेव कमेण जाव पुरत्थिमिल्ला णंदापुक्खरिणी जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए ॥ तते णं तस्स विजयस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ एयप्पभितिं जाव सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छंति २ त्ता तं णं सभं सुधम्मं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेणं अणुपविसंति २ आलोए जिणसकहाणं पणामं करेंति २ जेणेव मणिपेढिया

॥ २५१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

जेणेव माणवचेतियक्खंभे जेणेव वइरामया गोलवट्टसमुग्गका तेणेव उवागच्छति २ लोम-
हत्थयं गेण्हति २ त्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थएणं पमज्जइ २ त्ता वइरामए गोल-
वट्टसमुग्गए विहाडेति २ त्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएणं पमज्जति २ त्ता सुरभिणा गंधोद-
एणं तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेति २ सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ २ त्ता
अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहि य अच्चिणति २ त्ता धूवं दलयति २ त्ता वइरामएसु गोलवट्टस-
मुग्गएसु पडिणिक्खवति २ त्ता माणवकं चेतियखंभं लोमहत्थएणं पमज्जति २ दिव्वाए उदग-
धाराए अब्भुक्खेइ २ त्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयति २ पुप्फारुहणं जाव आसत्तो-
सत्त० कयग्गाह० धूवं दलयति २ जेणेव सभाए सुधम्माए बहुमज्झदेसभाए तं चेव जेणेव सीहा-
सणे तेणेव जहा दारचणिता जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव जेणेव खुड्डागे महिंदज्झए तं चेव जेणेव
पहरणकोसे चोप्पाले तेणेव उवागच्छति २ पत्तेयं २ पहरणाइं लोमहत्थएणं पमज्जति पमज्जित्ता
सरसेणं गोसीसचंदणेणं तहेव सव्वं सेसंपि दक्खिणदारं आदिकाउं तहेव णेयव्वं जाव पुरच्छिमिल्ला
णंदापुक्खरिणी सव्वाणं सभाणं जहा सुधम्माए सभाए तहा अच्चणिया उववायसभाए णवरि
देवसयणिज्जस्स अच्चणिया सेसासु सीहासणाण अच्चणिया हरयस्स जहा णंदाए पुक्खरिणीए
अच्चणिया, ववसायसभाए पोत्थयरयणं लोम० दिव्वाए उदगधाराए सरसेणं गोसीसचंदणेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

अणुलिंपति अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि य मल्लेहि य अच्चिणंति २ त्ता [मल्लेहि] सीहासणे लोमहत्थ-एणं पमज्जति जाव धूवं दलयति सेसं तं चेव णंदाए जहा हयस्स तहा जेणेव बलिपीढं तेणेव उवागच्छति २ त्ता अभिओगे देवे सद्दावेंति २ त्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणु-प्पिया! विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य तिएसु य चउक्केसु य चच्चरेसु य चतुमुहेसु य महापहपहेसु य पासाएसु य पागारेसु य अट्टालएसु य चरियासु य दारेसु य गो-पुरेसु य तोरणेसु य आवीसु य पुक्खरिणीसु य जाव बिलपंतिगासु य आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसंडेसु य वणराईसु य अच्चणियं करेह करेत्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह। तए णं ते आभिओगिया देवा विजएणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा जाव हट्ठतुट्ठा विजएणं पडिसुणेंति २ त्ता विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य जाव अच्चणियं करेत्ता जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छन्ति २ त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥ तए णं से विजए देवे तेसिं णं आभिओगियाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिय जाव हयहियए जेणेव णंदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं जाव हत्थपायं पक्खालेति २ त्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए णंदापुक्खरिणीओ पच्चुत्तरति २ त्ता जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से विजए देवे चउहिं सामाणियसाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

प्रत सूत्रांक [१४२]

दीप अनुक्रम [१८०]

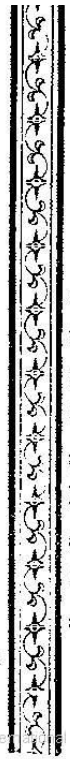

स्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सव्विड्ढीए जाव निग्घोसनाइयरवेणं जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव उवागच्छति २ त्ता सभं सुधम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति २ त्ता जेणेव मणिपेढिया तेणेव उवागच्छति २ त्ता सीहासणवरगते पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥ (सू० १४२)

'तए ण'मित्यादि, ततः स विजयो देवो वानमन्तरैः 'महया २' इति अतिशयेन महता इन्द्राभिषेकेणाभिषिक्तः सन् सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायाभिषेकसभातः पूर्वद्वारेण विनिर्गत्य यत्रैवालङ्कारसभा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यालङ्कारिकसभामनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वद्वारेणानुप्रविशति, अनुप्रविश्य च यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव च सिंहासनं तत्रोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः संनिषण्णः, ततस्तस्य विजयस्य देवस्याभियोग्या देवा सुबहु 'आलङ्कारिकम्' अलङ्कारयोग्यं भाण्डमुपनयन्ति ॥ 'तए ण'मित्यादि, ततः स विजयो देवस्तत्प्रथमतया तस्यामलङ्कारसभायां प्रथमतया पक्ष्मला च सा सुकुमारा च पक्ष्मलसुकुमारा तया 'सुरभिगन्धकाषायिक्या' सुरभिगन्धकषायद्रव्यपरिकर्मितया लघुशाटिकयेति गम्यते गात्राणि रूक्षयति रूक्षयित्वा सरसेन गोशीर्षचन्दनेन गात्राण्यनुलिम्पति अनुलिप्य देवदूष्ययुगलं निवत्त इति योगः, कथम्भूतः ? इत्याह—'नासानीसासवायवज्झं' नासिकानिःश्वासवातवाह्यं, एतेन श्लक्ष्णतामाह, 'चक्षुर्हरं' चक्षुर्हरति–आत्मवशं नयति विशिष्टरूपातिशयकलितत्वाच्चक्षुर्हरं 'वर्णस्पर्शयुक्तम्' अतिशायिना वर्णेनातिशायिना स्पर्शेन युक्तं 'हयलालापेलवाइरेग'मिति हयलाला–अश्वलाला तस्या अपि पेलवमतिरेकेण हयलालापेलवातिरेकं 'नाम नाम्नैकार्थ्ये समासो बहुल'मिति समासः, अतिविशिष्टमृदुत्वलघुत्वगुणोपेतमिति भावः,

जी०च० ४३

Jain Education Inte For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

धवलं–श्वेतं कनकखचितानि–विच्छुरितानि **अन्तकर्म्माणि**–अञ्चलयोर्वानलक्षणानि यस्य तत् कनकखचितान्तकर्म्म आकाशस्फटिकं नाम–अतिस्वच्छस्फटिकविशेषस्तत्सदृशप्रभं दिव्यं **'देवदूष्ययुगलं'** देवदूष्ययुगलं **'निवत्थे'** परिहितः, परिधाय हारादीन्याभरणानि पिनद्धवान्, तत्र **हारः**–अष्टादशसरिकः **अर्द्धहारो**–नवसरिकः **एकावली**–विचित्रमणिका **मुक्तावली**–मुक्ताफलमयी **कनकावली**–कनकमणिमयी **प्रालम्बः**–तपनीयमयो विचित्रमणिरत्नभक्तिचित्र आत्मनः प्रमाणेन स्वप्रमाण आभरणविशेषः कटकानि–कलाचिकाभरणानि **त्रुटितानि**–बाहुरक्षकाः **अङ्गदानि**–बाह्याभरणविशेषा **'दशमुद्रिकाऽनन्तकं'** हस्ताङ्गुलिसम्बन्धि मुद्रिकादशकं **'कुण्डले'** कर्णाभरणे **चूडामणि**मिति–चूडामणिर्नाम सकलपार्थिवरत्नसर्वसारो देवेन्द्रमनुष्येन्द्रमूर्द्धकृतनिवासो निःशेषापमङ्गलाशान्तिरोगप्रमुखदोषापहारकारी प्रवरलक्षणोपेतः परममङ्गलभूत आभरणविशेषः **'चित्तरयणसंकडं मउड'**मिति चित्राणि–नानाप्रकाराणि यानि रत्नानि तैः सङ्कटः चित्ररत्नसङ्कटः प्रभूतरत्ननिचयोपेत इति भावः । **'तं दिव्वं सुमणदामं'**ति **'दिव्यां'** प्रधानां पुष्पमालाम् ॥ **'तए णं से विजए'**इत्यादि, **ग्रन्थिमं**–ग्रंथनं ग्रन्थस्तेन निर्वृत्तं ग्रन्थिमं 'भावादिमः प्रत्ययः' यत् सूत्रादिना ग्रथ्यते तद् ग्रन्थिममिति भावः, **भरिमं**–यद् ग्रन्थितं सद् वेष्टते यथा पुष्पलम्बूसको गण्डूक इत्यर्थः, **पूरिमं** येन वंशशलाकादिमयपञ्जरी पूर्यते, सङ्घातिमं यत्परस्परतो नालसङ्घातेन सङ्घात्यते, एवंविधेन चतुर्विधेन माल्येन कल्पवृक्षमिवात्मानमलङ्कृतविभूषितं करोति कृत्वा परिपूर्णालङ्कारः सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थायालङ्कारसभातः पूर्वेण द्वारेण निर्गत्य यत्रैव व्यवसायसभा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः । **'तए ण'**मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्याभियोग्याः पुस्तकरत्नमुपनयन्ति ॥ **'तए ण'**मित्यादि, ततः स विजयो देवः **पुस्तकरत्नं** गृह्णाति गृहीत्वा पुस्तकरत्नमुत्सङ्गादाविति गम्यते मुञ्चति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

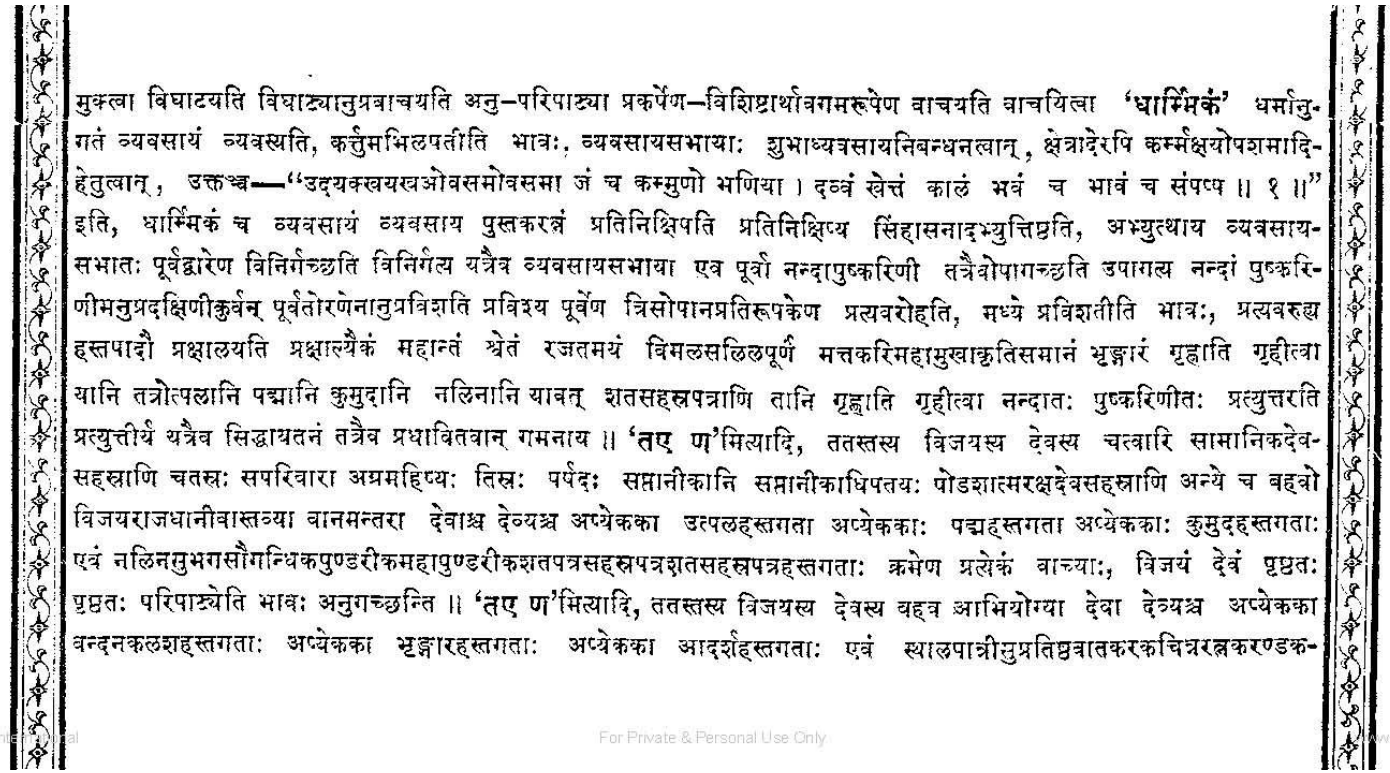

मुक्त्वा विघाटयति विघाट्यानुप्रवाचयति अनु–परिपाट्या प्रकर्षेण–विशिष्टार्थावगमरूपेण वाचयति वाचयित्वा **'धार्मिकं'** धर्मानुगतं व्यवसायं व्यवस्यति, कर्तुमभिलषतीति भावः, व्यवसायसभायाः शुभाध्यवसायनिबन्धनत्वात्, क्षेत्रादेरपि कर्म्मक्षयोपशमादिहेतुत्वात्, उक्तञ्च—"उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया । दव्वं खेत्तं कालं भवं च भावं च संपप्प ॥ १ ॥" इति, धार्मिकं च व्यवसायं व्यवसाय पुस्तकरत्नं प्रतिनिक्षिपति प्रतिनिक्षिप्य सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय व्यवसायसभातः पूर्वद्वारेण विनिर्गच्छति विनिर्गत्य यत्रैव व्यवसायसभाया एव पूर्वा नन्दापुष्करिणी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य नन्दां पुष्करिणीमनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वतोरणेनानुप्रविशति प्रविश्य पूर्वेण त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति, मध्ये प्रविशतीति भावः, प्रत्यवरुह्य हस्तपादौ प्रक्षालयति प्रक्षाल्यैकं महान्तं श्वेतं रजतमयं विमलसलिलपूर्णं मत्तकरिमहामुखाकृतिसमानं भृङ्गारं गृह्णाति गृहीत्वा यानि तत्रोत्पलानि पद्मानि कुमुदानि नलिनानि यावत् शतसहस्रपत्राणि तानि गृह्णाति गृहीत्वा नन्दातः पुष्करिणीतः प्रत्युत्तरति प्रत्युत्तीर्य यत्रैव सिद्धायतनं तत्रैव प्रधावितवान् गमनाय ॥ **'तए ण'**मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य चत्वारि सामानिकदेवसहस्राणि चतस्रः सपरिवारा अग्रमहिष्यः तिस्रः पर्षदः सप्तानीकानि सप्तानीकाधिपतयः षोडशात्मरक्षदेवसहस्राणि अन्ये च बहवो विजयराजधानीवास्तव्या वानमन्तरा देवाश्च देव्यश्च अप्येकका उत्पलहस्तगता अप्येककाः पद्महस्तगता अप्येककाः कुमुदहस्तगताः एवं नलिनसुभगसौगन्धिकपुण्डरीकमहापुण्डरीकशतपत्रसहस्रपत्रशतसहस्रपत्रहस्तगताः क्रमेण प्रत्येकं वाच्याः, विजयं देवं पृष्ठतः पृष्ठतः परिपाट्येति भावः अनुगच्छन्ति ॥ **'तए ण'**मित्यादि, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य बहव आभियोग्या देवा देव्यश्च अप्येकका वन्दनकलशहस्तगताः अप्येकका भृङ्गारहस्तगताः अप्येकका आदर्शहस्तगताः एवं स्थालपात्रीसुप्रतिष्ठवातकरकचित्ररत्नकरण्डक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पुष्पचङ्गेरीयावल्लोमहस्तचङ्गेरीपुष्पपटलकयावल्लोमहस्तपटलकसिंहासनच्छत्रचामरतैलसमुद्गकयावद्धूपकडुच्छुकहस्तगताः क्रमेण प्रत्येकमालाप्याः, विजयं देवं पृष्ठतः पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति । ततः स विजयो देवश्चतुर्भिः सामानिकसहस्रैश्चतसृभिः सपरिवाराभिरग्रमहिषीभिस्तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षदेवसहस्रैरन्यैश्च बहुभिर्विजयराजधानीवास्तव्यैर्वानमन्तरैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्ध्या **'जाव निग्घोसनादितरवेण'**मिति यावत्करणादेवं परिपूर्णः पाठो द्रष्टव्यः—'सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वविभूईए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दनिनाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगपडुप्पवाइयरवेणं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्कदुंदुभिनिग्घोसनादितरवेणं' अस्य व्याख्या प्राग्वत् । यत्रैव सिद्धायतनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिद्धायतनमनुप्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वद्वारेण प्रविशति, प्रविश्यालोक्य जिनप्रतिमानां प्रणामं करोति, कृत्वा यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव देवच्छन्दको यत्रैव जिनप्रतिमास्तत्रोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं परामृशति परामृश्य च जिनप्रतिमाः प्रमार्जयति प्रमार्ज्य दिव्यया उदकधारया स्नपयति स्नपयित्वा सरसेनार्द्रेण गोशीर्षचन्दनेन गात्राण्यनुलिम्पति, अनुलिप्य **'अहतानि'** अपरिमलितानि दिव्यानि देवदूष्ययुगलानि **'नियंसइ'**त्ति परिधापयति परिधाप्य **'अग्रैः'** अपरिभुक्तैः **'वरैः'** प्रधानैर्गन्धैर्माल्यैश्चार्चयति । एतदेव सविस्तरमुपदर्शयति—पुष्पारोपणं माल्यारोपणं वर्णकारोपणं चूर्णारोपणं गन्धारोपणम् आभरणारोपणं (च) करोति, कृत्वा तासां जिनप्रतिमानां पुरतः **'अच्छैः'** स्वच्छैः **'श्लक्ष्णैः'** मसृणै रजतमयैः, अच्छो रसो येषां तेऽच्छरसाः, प्रत्यासन्नवस्तुप्रतिबिम्बाधारभूता इवातिनिर्मला इति भावः, ते च ते तन्दुलाश्चाच्छरसतन्दुलाः, पूर्वपदस्य दीर्घान्तता प्राकृतत्वात्, यथा 'वइरामया नेमा' इत्यादौ, तैरष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गल-

॥ २५४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

कान्यालिखति, आलिख्य **'कयग्गाहगहिय'**मित्यादि मैथुनप्रथमसंरम्भे मुखचुम्बनाद्यर्थं युवत्याः पञ्चाङ्गुलिभिः केशेषु ग्रहणं कचग्राहस्तेन कचग्राहेण गृहीतं करतलाद्विमुक्तं सत् प्रभ्रष्टं करतलप्रभ्रष्टविमुक्तं, प्राकृतत्वादेवं पदव्यत्ययः, तेन **'दशार्द्धवर्णेन'** पञ्चवर्णेन **'कुसुमेन'** कुसुमसमूहेन **'पुष्पपुञ्जोपचारकलितं'** पुष्पपुञ्ज एवोपचारः–पूजा पुष्पपुञ्जोपचारस्तेन कलितं–युक्तं करोति, कृत्वा च **'चंदप्पभवइरवेरुलियविमलदंडं'** चन्द्रप्रभवज्रवैडूर्यमयो विमलो दण्डो यस्य स तथा तं काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्रं कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपेन गन्धोत्तमेनानुविद्धा कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपगन्धोत्तमानुविद्धा, प्राकृतत्वात्पदव्यत्ययः, तां धूपवर्त्तिं विनिर्मुञ्चन्तं वैडूर्यमयं धूपकडुच्छुकं प्रगृह्य प्रयतो धूपं दत्त्वा जिनवरेभ्यः, सूत्रे षष्ठी प्राकृतत्वात्, सप्ताष्टानि पदानि पश्चादपसृत्य दशाङ्गुलिमञ्जलिं मस्तके कृत्वा प्रयतः **'अट्ठसयविसुद्धगंठजुत्तेहिं'** इति विशुद्धो–निर्मलो लक्षणदोषरहित इति भावः यो ग्रन्थः–शब्दसंदर्भस्तेन युक्तानि विशुद्धग्रन्थयुक्तानि अष्टशतं च तानि विशुद्धग्रन्थयुक्तानि च तैः **'अर्थयुक्तैः'** अर्थसारैः अपुनरुक्तैः महावृत्तैः, तथाविधदेवलब्धेः प्रभाव एषः, संस्तौति संस्तुत्य वामं जानुं **'अञ्चति'** उत्पाटयति दक्षिणं जानुं धरणितले **'निवाडेइ'** इति निपातयति लगयतीत्यर्थः **'त्रिकृत्वः'** त्रीन् वारान् मूर्द्धानं धरणितले **'नमेइ'**त्ति नमयति नमयित्वा चेषत्प्रत्युन्नमयति, ईषत्प्रत्युन्नम्य कटकत्रुटितस्तम्भितौ भुजौ **'संहरति'** सङ्कोचयति, संहृत्य करतलपरिगृहीतं शिरस्यावर्त्तं मस्तकेऽञ्जलिं कृत्वैवमवादीत्—**'नमोऽत्थु ण'**मित्यादि, नमोऽस्तु णमिति वाक्यालङ्कारे देवादिभ्योऽतिशयपूजामर्हन्तीत्यर्हन्तस्तेभ्यः, सूत्रे षष्ठी "छट्ठिविभत्तीएँ भन्नइ चउत्थी"इति प्राकृतलक्षणात्, ते चार्हन्तो नामादिरूपा अपि सन्ति ततो भावार्हत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—**'भगवद्भ्यः'** भगः–समग्रैश्वर्यादिलक्षणः स एषामस्तीति भगवन्तस्तेभ्यः, आदिः–धर्म्मस्य प्रथमा प्रवृत्तिस्तत्करणशीला आदिकरास्तेभ्यः, तीर्यते संसारसमुद्रोऽनेनेति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

तीर्थं तत्करणशीलास्तीर्थकरास्तेभ्यः, स्वयं–अपरोपदेशेन सम्यग्वरबोधिप्राप्त्या बुद्धा मिथ्यात्वनिद्रापगमसम्बोधेन स्वयंसंबुद्धास्तेभ्यः, तथा पुरुषाणामुत्तमाः पुरुषोत्तमाः, भगवन्तो हि संसारमप्यावसन्तः सदा परार्थव्यसनिन उपसर्जनीकृतस्वार्था उचितक्रियावन्तोऽदीनभावाः कृतज्ञतापतयोऽनुपहतचित्ता देवगुरुबहुमानिन इति भवन्ति पुरुषोत्तमास्तेभ्यः, तथा पुरुषाः सिंहा इव कर्म्मगजान् प्रति पुरुषसिंहास्तेभ्यः, तथा पुरुषा वरपुण्डरीकाणीव संसारजलासङ्गादिना धर्म्मकलापेनेति पुरुषवरपुण्डरीकाणि तेभ्यः, तथा पुरुषा वरगन्धहस्तिन इव परचक्रदुर्भिक्षमारिप्रभृतिक्षुद्रगजनिराकरणेनेति पुरुषवरगन्धहस्तिनस्तेभ्यः, तथा लोको–भव्यसत्त्वलोकस्तस्य सकलकल्याणैकनिबन्धनतया भव्यत्वभावेनोत्तमा लोकोत्तमास्तेभ्यः तथा लोकस्य–भव्यलोकस्य नाथा–योगक्षेमकृतो लोकनाथास्तेभ्यः, तत्र योगो–बीजाधानोद्भेदपोषणकरणं क्षेमं–तदुपद्रवाद्यभावापादनं, तथा लोकस्य–प्राणिलोकस्य पञ्चास्तिकायात्मकस्य वा हितोपदेशेन सम्यक्प्ररूपणया वा हिता लोकहितास्तेभ्यः, तथा लोकस्य–देशनायोग्यस्य विशिष्टस्य प्रदीपा–देशनांशुभिर्यथाऽवस्थितवस्तुप्रकाशका लोकप्रदीपास्तेभ्यः, तथा लोकस्य–उत्कृष्टमतेर्भव्यसत्त्वलोकस्य प्रद्योतनं प्रद्योतः प्रद्योतकत्वं–विशिष्टज्ञानशक्तिस्तत्करणशीला लोकप्रद्योतकराः, तथा च भवन्ति भगवत्प्रसादात् तत्क्षणमेव भगवन्तो गणभृतो विशिष्टज्ञानसम्पत्समन्विता यद्वशाद् द्वादशाङ्गमारचयन्तीति तेभ्यः, तथाऽभयं–विशिष्टमात्मनः स्वास्थ्यं निःश्रेयसधर्म्मभूमिकानिबन्धनभूता परमा धृतिरिति भावः, तद् अभयं ददतीत्यभयदास्तेभ्यः, सूत्रे च कप्रत्ययः स्वार्थिकः प्राकृतलक्षणवशात्, एवमन्यत्रापि, तथा चक्षुरिव चक्षुः–विशिष्ट आत्मधर्मस्तत्त्वावबोधनिबन्धनं श्रद्धात्मभावः, श्रद्धाविहीनस्याचक्षुष्मत इव तत्त्वदर्शनायोगात्, तद्ददातीति चक्षुर्दास्तेभ्यः, तथा मार्गो–विशिष्टगुणस्थानावाप्तिप्रगुणः स्वरसवाही क्षयोपशमविशेषस्तं ददतीति मार्गदास्तेभ्यः, तथा शरणं–संसारकान्तारगतानामतिप्रबलरागादिपीडितानां समाश्वसनस्थान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

कल्पं तत्त्वचिन्तारूपमध्यवसानं तद्ददतीति शरणदास्तेभ्यः, तथा बोधिः–जिनप्रणीतधर्मप्राप्तिस्तां तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनरूपां ददतीति बोधिदास्तेभ्यः, तथा धर्म–चारित्ररूपं ददतीति धर्मदास्तेभ्यः कथं धर्म्मदाः? इत्याह–धर्मं दिशन्तीति धर्म्मदेशकास्तेभ्यः, तथा धर्म्मस्य नायकाः–स्वामिनस्तद्वशीकरणात्तत्फलपरिभोगाच्च धर्मनायकास्तेभ्यः, धर्म्मस्य सारथय इव सम्यक्प्रवर्त्तनयोगेन धर्म्मसारथयस्तेभ्यः, तथा धर्मं एव वरं–प्रधानं चतुरन्तहेतुत्वात् चतुरन्तं २ चक्रमिव चतुरन्तचक्रं तेन वर्त्तितुं शीलं येषां ते धर्म्मवरचतुरन्तचक्रवर्त्तिनस्तेभ्यः, तथाऽप्रतिहते–अप्रतिस्खलिते क्षायिकत्वाद् वरे–प्रधाने ज्ञानदर्शने धरन्तीति अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरास्तेभ्यः, तथा छादयति–आवरयतीति छद्म–घातिकर्म्मचतुष्टयं व्यावृत्तं–अपगतं छद्म येभ्यस्ते व्यावृत्तछद्मानस्तेभ्यः, तथा रागद्वेषकषायेन्द्रियपरीषहोपसर्गघातिकर्म्मशत्रून् जितवन्तो जिनाः अन्यान् जापयन्तीति जापकास्तेभ्यो जिनेभ्यो जापकेभ्यः, तथा भवार्णवं स्वयं तीर्णा अन्यांश्च तारयन्तीति तीर्णास्तारकास्तेभ्यः, तथा केवलवेदसा अवगततत्त्वा बुद्धा अन्यांश्च बोधयन्तीति बोधकास्तेभ्यः, मुक्ताः–कृतकृत्या निष्ठितार्था इति भावः, अन्यांश्च मोचयन्तीति मोचकास्तेभ्यः, सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः, शिवं–सर्वोपद्रवरहितत्वात् 'अचलं' स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाव्यपोहात् 'अरुजं' शरीरमनसोरभावेनाऽऽधिव्याध्यसम्भवात् अनन्तं–केवलात्मनाऽनन्तत्वात् 'अक्षयं' विनाशकारणाभावात् 'अव्याबाधं' केनापि विबाधयितुमशक्यत्वात् न पुनरावृत्तिर्यस्मात्तदपुनरावृत्ति, सिध्यन्ति–निष्ठितार्था भवन्त्यस्यामिति सिद्धिः–लोकान्तक्षेत्रलक्षणा सैव गम्यमानत्वाद् गतिः सिद्धिगतिः २ रिति नामधेयं यस्य तत्सिद्धिगतिनामधेयं, तिष्ठत्यस्मिन्निति स्थानं–व्यवहारतः सिद्धक्षेत्रं निश्चयतो यथाऽवस्थितं स्वं स्वरूपं, स्थानस्थानिनोरभेदोपचारात्तु सिद्धिगतिनामधेयं तत्संप्राप्तेभ्यः। एवं प्रणिपातदण्डकं पठित्वा 'वंदइ नमंसइ' इति वन्दते–ताः प्रतिमाश्चैत्यवन्दनविधिना प्रसिद्धेन, नमस्करोति–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पश्चात्प्रणिधानादियोगेनेत्येके, अन्ये त्वभिदधति–विरतिमतामेव प्रसिद्धश्चैत्यवन्दनविधिरन्येषां तथाऽभ्युपगमे कायोत्सर्गासिद्धेरिति व-न्दते सामान्येन, नमस्करोत्याशयवृद्धेरुत्थाननमस्कारेणेति, तत्त्वमत्र भगवन्तः परमर्षयः केवलिनो विदन्ति, ततो वन्दित्वा नमस्थित्वा यत्रैव सिद्धायतनस्य बहुमध्यदेशभागस्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य बहुमध्यदेशभागं दिव्ययोदकधारया 'अभ्युक्षति' अभिमुखं सिञ्चति, अभ्युक्ष्य सरसेन गोशीर्षचन्दनेन पञ्चाङ्गुलितलं ददाति, दत्त्वा कचग्राहगृहीतेन करतलप्रभ्रष्टविमुक्तेन दशार्द्धवर्णेन 'कुसुमेन' कुसुम-जातेन पुष्पपुञ्जोपचारकलितं करोति कृत्वा धूपं ददाति, दत्त्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं गृह्णाति, गृहीत्वा तेन द्वारशाखाशालभञ्जिकाव्यालरूपकाणि च प्रमार्जयति, प्रमृज्य दिव्ययोदकधारयाऽभ्युक्षणं गोशीर्षचन्दनचर्चां पुष्पाद्या-रोपणं धूपदानं करोति, ततो दक्षिणद्वारेण निर्गत्य यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य बहुमध्यदेशभागस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य लोम-हस्तकं परामृशति, परामृश्य च बहुमध्यदेशभागं लोमहस्तकेन प्रमार्जयति, प्रमृज्य दिव्ययोदकधारयाऽभ्युक्षणं सरसेन गोशीर्षचन्दनेन पञ्चाङ्गुलितलं मण्डलमालिखति, कचग्राहगृहीतेन करतलप्रभ्रष्टविमुक्तेन दशार्द्धवर्णेन कुसुमेन पुष्पपुञ्जोपचारकलितं करोति, कृत्वा धूपं ददाति, दत्त्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य पश्चिमं द्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तपरामर्शनं, तेन च लोमहस्त-केन द्वारशाखाशालभञ्जिकाव्यालरूपकप्रमार्जनं, उदकधारयाऽभ्युक्षणं गोशीर्षचन्दनचर्चां पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं करोति, कृत्वा यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्योत्तरद्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववद् द्वारार्चनिकां करोति, कृत्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य पूर्वद्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववत्तत्राप्यर्चनिकां करोति, कृत्वा च दाक्षिणात्यस्य मुखमण्डपस्य यत्रैव दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रोपाग-च्छति, उपागत्य पूर्ववत्तत्र पूजां विधाय तेन द्वारेण विनिर्गत्य यत्रैव दाक्षिणात्यः प्रेक्षागृहमण्डपो यत्रैव दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

बहुमध्यदेशभागो यत्रैव वज्रमयोऽक्षपाटको यत्रैव च मणिपीठिका यत्रैव च सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं परामृशति, परामृश्याक्षपाटकं मणिपीठिकां सिंहासनं च प्रमार्जयति, प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्ष्य चन्दनचर्चां पुष्पपूजां धूपदानं च करोति, कृत्वा च यत्रैव दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्योत्तरद्वारं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववद्वारार्चनिकां करोति, कृत्वा यत्रैव दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्य पूर्वद्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्वद्वारार्चनिकां करोति, कृत्वा यत्रैव तस्य दाक्षिणात्यस्य प्रेक्षागृहमण्डपस्य दाक्षिणात्यं द्वारं तत्रोपागच्छति, उपागत्य तत्रार्चनिकां कृत्वा यत्रैव दाक्षिणात्यश्चैत्यस्तम्भस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य स्तूपं मणिपीठिकां च लोमहस्तकेन प्रमृज्य दिव्ययोदकधारयाऽभ्युक्षति सरसगोशीर्षचन्दनचर्चां पुष्पाद्यारोहणधूपदानादि करोति, कृत्वा च यत्रैव पाश्चात्या मणिपीठिका यत्रैव च पाश्चात्या जिनप्रतिमा तत्रोपागच्छति, उपागत्य जिनप्रतिमाया आलोके प्रणामं करोतीत्यादि पूर्ववद् यावन्नमस्त्विा यत्रैवोत्तरा जिनप्रतिमा तत्रोपागच्छति, उपागत्य तत्रापि यावन्नमस्त्विा यत्रैव पूर्वा जिनप्रतिमा तत्रोपागच्छति उपागत्य पूर्ववद् यावन्नमस्त्विा यत्रैव दाक्षिणात्या जिनप्रतिमा पूर्ववत् सर्वं तदेव यावन्नमस्त्विा यत्रैव दाक्षिणात्यश्चैत्यवृक्षस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववदर्चनिकां करोति, कृत्वा च यत्रैव महेन्द्रध्वजस्तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववदर्चनिकां विधाय यत्रैव दाक्षिणात्या नन्दापुष्करिणी तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य लोमहस्तकं परामृशति, परामृश्य तोरणानि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि शालभञ्जिकाव्यालरूपकाणि च प्रमार्जयति, प्रमार्ज्य दिव्ययोदकधारया सिञ्चति, सिक्त्वा सरसगोशीर्षचन्दनपञ्चाङ्गुलितलप्रदानपुष्पाद्यारोहणधूपदानादि करोति, कृत्वा च सिद्धायतनमनुप्रदक्षिणीकृत्य यत्रैवोत्तरा नन्दापुष्करिणी स तत्रोपागच्छति, उपागत्य पूर्ववत्सर्वं करोति, कृत्वा चौत्तराहे माहेन्द्रध्वजे तदनन्तरमौत्तराहे चैत्यवृक्षे तत औत्तराहे चैत्यस्तूपे, ततः पश्चिमोत्तरपूर्वदक्षिणजिनप्रतिमासु पूर्ववत्सर्वा वक्तव्यता वक्तव्या,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

तदनन्तरमौत्तराहे प्रेक्षागृहमण्डपे समागच्छति, तत्र दाक्षिणात्ये प्रेक्षागृहमण्डपे पूर्ववत्सर्वं वक्तव्यं, तत उत्तरद्वारेण विनिर्गत्यौत्तराहे मुखमण्डपे समागच्छति, तत्रापि दाक्षिणात्यमुखमण्डपवत्सर्वं कृत्वोत्तरद्वारेण विनिर्गत्य सिद्धायतनस्य पूर्वद्वारे समागच्छति, तत्रार्चनिकां पूर्ववत्कृत्वा पूर्वस्य मुखमण्डपस्य दक्षिणोत्तरपूर्वद्वारेषु क्रमेणोक्तरूपां पूजां विधाय पूर्वद्वारेण विनिर्गत्य पूर्वप्रेक्षामण्डपे समागत्य पूर्ववदर्चनिकां करोति, ततः पूर्वप्रकारेणैव क्रमेण चैत्यस्तूपजिनप्रतिमाचैत्यवृक्षमाहेन्द्रध्वजनन्दापुष्करिणीनां ततः सभायां सुधर्मायां पूर्वद्वारेण प्रविशति, प्रविश्य यत्रैव मणिपीठिका तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यालोके जिनसक्थ्नां प्रणामं करोति, कृत्वा च यत्र माणवकचैत्यस्तम्भो यत्र वज्रमया गोलवृत्ताः समुद्गकास्तत्रागत्य समुद्गकान् गृह्णाति, गृहीत्वा च विघाटयति, विघाट्य लोमहस्तकेन प्रमार्जयति, प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्षति, अभ्युक्ष्य गोशीर्षचन्दनेनानुलिम्पति, ततः प्रधानैर्गन्धमाल्यैरर्चयति, अर्चयित्वा धूपं दहति, तदनन्तरं भूयोऽपि वज्रमयेषु गोलवृत्तसमुद्गकेषु प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य तान् वज्रमयान् गोलवृत्तसमुद्गकान् स्वस्थाने प्रतिनिक्षिपति, प्रतिनिक्षिप्य तेषु पुष्पगन्धमाल्यवस्त्राभरणान्यारोपयति, ततो लोमहस्तकेन माणवकचैत्यस्तम्भं प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्ष्य चन्दनचर्चां पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं च करोति, कृत्वा सिंहासनप्रदेशे समागत्य सिंहासनस्य लोमहस्तकेन प्रमार्जनादिरूपां पूर्ववदर्चनिकां करोति, कृत्वा यत्र मणिपीठिका यत्र च देवशयनीयं तत्रोपागत्य मणिपीठिकाया देवशयनीयस्य च प्राग्वदर्चनिकां करोति, तत उक्तप्रकारेणैव क्षुल्लकेन्द्रध्वजपूजां करोति, कृत्वा च यत्र चोप्पालको नाम प्रहरणकोशस्तत्र समागत्य लोमहस्तेन परिघरत्नप्रमुखाणि प्रहरणरत्नानि प्रमार्जयति, प्रमार्ज्योदकधारयाऽभ्युक्षणं चन्दनचर्चां पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं करोति, कृत्वा सभायाः सुधर्मायाः बहुमध्यदेशभागेऽर्चनिकां पूर्ववत्करोति, कृत्वा सभायाः सुधर्मायाः दक्षिणद्वारे समागत्यार्चनिकां पूर्ववत्करोति, ततो दक्षिणद्वारे विनिर्गच्छति, इत ऊर्द्धं यथैव सिद्धायत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

नान्निष्क्रामतो दक्षिणद्वारादिका दक्षिणनन्दापुष्करिणीपर्यवसाना पुनरपि प्रविशत उत्तरनन्दापुष्करिणीप्रभृतिका उत्तरान्ता ततो द्वितीयं वारं निष्क्रामत: पूर्वद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानार्चनिका वक्तव्या तथैव सुधर्माया: सभाया अप्यन्यूनातिरिक्ता द्रष्टव्या, तत: पूर्वनन्दापुष्करिण्या अर्चनिकां कृत्वोपपातसभां पूर्वद्वारेण प्रविशति, प्रविश्य च मणिपीठिकाया देवशयनीयस्य तदनन्तरं बहुमध्यदेशभागे प्राग्वदर्चनिकां विदधाति, ततो दक्षिणद्वारेण समागत्य तस्यार्चनिकां कुरुते, अत ऊर्द्धमत्रापि सिद्धायतनवद्दक्षिणद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानाऽर्चनिका वक्तव्या । तत: पूर्वनन्दापुष्करिणीतोऽपक्रम्य ह्रदे समागत्य पूर्ववत्तोरणार्चनिकां करोति, कृत्वा पूर्वद्वारेणाभिषेकसभायां प्रविशति, प्रविश्य मणिपीठिकाया: सिंहासनस्याभिषेकभाण्डस्य बहुमध्यदेशभागस्य च पूर्ववदर्चनिकां क्रमेण करोति, तदनन्तरमत्रापि सिद्धायतनवद्दक्षिणद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानाऽर्चनिका वक्तव्या, तत: पूर्वनन्दापुष्करिणीत: पूर्वद्वारेण व्यवसायसभां प्रविशति प्रविश्य पुस्तकरत्नं लोमहस्तकेन प्रमृज्योदकधारयाऽभ्युक्ष्य चन्दनेन चर्चयित्वा वरगन्धमाल्यैरर्चयित्वा पुष्पाद्यारोपणं धूपदानं च करोति, तदनन्तरं मणिपीठिकाया: सिंहासनस्य बहुमध्यदेशभागस्य च क्रमेणार्चनिकां करोति, तदनन्तरमत्रापि सिद्धायतनवद्दक्षिणद्वारादिका पूर्वनन्दापुष्करिणीपर्यवसानाऽर्चनिका वक्तव्या, तत: पूर्वनन्दापुष्करिणीतो बलिपीठे समागत्य तस्य बहुमध्यदेशभागे पूर्ववदर्चनिकां करोति, कृत्वा चोत्तरपूर्वस्यां नन्दापुष्करिण्यां समागत्य तस्यास्तोरणेषु पूर्ववदर्चनिकां कृत्वाऽऽभियोगिकान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—**'खिप्पामेवे'**त्यादि सुगमं यावत् **'एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति'** नवरं शृङ्गाटकं—त्रिकोणं स्थानं त्रिकं—यत्र रथ्यात्रयं मिलति चतुष्कं—चतुष्पथयुक्तं चत्वरं—बहुरथ्यापातस्थानं चतुर्मुखं—यस्माच्चतसृष्वपि दिक्षु पन्थानो निस्सरन्ति महापथो—राजपथ: शेष: सामान्य: पन्था: प्राकार:—प्रतीत: अट्टालका:—प्राकारस्योपरि भृत्याश्रयविशेषा: चरिका—अष्टह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

स्वप्रमाणो नगरप्राकारान्तरालमार्गः द्वाराणि– प्रासादादीनां गोपुराणि–प्राकारद्वाराणि तोरणानि–द्वारादिसम्बन्धीनि आगत्य रमन्तेऽत्र माधवीलतागृहादिषु दम्पत्य इति स आरामः पुष्पादिसद्वृक्षसङ्कुलमुत्सवादौ बहुजनोपभोग्यमुद्यानं सामान्यवृक्षवृन्दं नगरासन्नं काननं नगरविप्रकृष्टं वनं एकानेकजातीयोत्तमवृक्षसमूहो वनषण्डः एकजातीयोत्तमवृक्षसमूहो वनराजी ॥ 'तए णं'मित्यादि, ततः स विजयो देवो बलिपीठे बलिविसर्जनं करोति, कृत्वा च यत्रैवोत्तरनन्दापुष्करिणी तत्रोपागच्छति, उपागत्योत्तरपूर्वां नन्दां पुष्करिणीं प्रदक्षिणीकुर्वन् पूर्वतोरणेनानुप्रविशति, अनुप्रविश्य पूर्वत्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य हस्तपादौ प्रक्षालयति, प्रक्षाल्य नन्दापुष्करिणीतः प्रत्युत्तरति, प्रत्युत्तीर्य चतुर्भिः सामानिकसहस्रैश्चतसृभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिस्तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षदेवसहस्रैरन्यैश्च बहुभिर्विजयराजधानीवास्तव्यैर्वानमन्तरैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः सर्वर्द्ध्या यावद् दुन्दुभिनिर्घोषनादितरवेण विजयाया राजधान्या मध्यंमध्येन यत्रैव सभा सुधर्मा तत्रोपागच्छति, उपागत्य सभां सुधर्मां पूर्वद्वारेणानुप्रविशति, अनुप्रविश्य यत्रैव मणिपीठिका यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः ॥

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पुरत्थिमेणं पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पत्तेयं २ जाव णिसी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् विजयदेव-कृता जिन-पूजा-अधिकार

यंति। एवं दक्खिणेणं मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ जाव णिसीदंति। दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पत्तेयं २ जाव णिसीदंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवती पत्तेयं २ जाव णिसीयंति। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ पत्तेयं २ पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीदंति, तंजहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ जाव उत्तरेणं ४॥ ते णं आयरक्खा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेवेज्जविमलवरचिंधपट्टा गहियाउहपहरणा तिणयाइं तिसंधीणि वइरामया कोडीणि धणूइं अहिगिज्झ परियाइयकंडकलावा णीलपाणिणो पीयपाणिणो रत्तपाणिणो चावपाणिणो चारुपाणिणो चम्मपाणिणो खग्गपाणिणो दंडपाणिणो पासपाणिणो णीलपीयरत्तचावचारुचम्मखग्गदंडपासवरधरा आयरक्खा रक्खोवगा गुत्ता गुत्तपालिता जुत्ता जुत्तपालिता पत्तेयं २ समयतो विणयतो किंकरभूताविव चिट्ठंति॥ विजयस्स णं भंते! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गो०! एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, विजयस्स णं भंते! देवस्स सामाणियाणं देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, एवंमहिड्ढीए एवंमहज्जुतीए एवंमहब्बले एवंमहायसे एवंमहासुक्खे एवंमहाणुभागे विजए देवे २॥ (सू० १४३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततस्तस्य विजयस्य देवस्यापरोत्तरेण–अपरोत्तरस्यां दिशि एवमुत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां दिशि च चत्वारि २ सामानिकदेवसहस्राणि चतुर्षु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पूर्वस्यां दिशि चतस्रोऽग्रमहिष्यश्चतुर्षु भद्रासनेषु निषीदन्ति, ततस्तस्य विजयस्य देवस्य दक्षिणपूर्वस्यामभ्यन्तरिकायाः पर्षदोऽष्टौ देवसहस्राणि अष्टासु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य दक्षिणस्यां दिशि मध्यमिकायाः पर्षदो दश देवसहस्राणि दशसु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पश्चिमायां दिशि बाह्यायाः पर्षदो द्वादश देवसहस्राणि द्वादशसु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य पश्चिमायां दिशि सप्तानीकाधिपतयः सप्तसु भद्रासनेषु निषीदन्ति । ततस्तस्य विजयस्य देवस्य सर्वतः समन्तात् सर्वासु दिक्षु सामस्त्येन षोडश आत्मरक्षकदेवसहस्राणि षोडशसु भद्रासनसहस्रेषु निषीदन्ति, तद्यथा–चत्वारि सहस्राणि चतुर्षु भद्रासनसहस्रेषु पूर्वस्यां दिशि, एवं दक्षिणस्यां दिशि, एवं प्रत्येकं पश्चिमोत्तरयोरपि ॥ ते चात्मरक्षाः सन्नद्धबद्धवर्मितकवचाः, कवचं–तनुत्राणं वर्म–लोहमयकुतूलिकादिरूपं संजातमस्मिन्निति वर्मितं सन्नद्धं शरीरे आरोपणात् बद्धं गाढतरबन्धनेन बन्धनात् वर्मितं कवचं यैस्ते सन्नद्धबद्धवर्मितकवचाः, **'उप्पीलियसरासणपट्टिया'** इति उत्पीडिता–गाढीकृता शरा अस्यन्ते–क्षिप्यन्तेऽस्मिन्निति शरासनः–इषुधिस्तस्य पट्टिका यैरुत्पीडितशरासनपट्टिकाः **'पिणद्धगेवेज्जविमलवरचिंधपट्टा'** इति पिनद्धं ग्रैवेयं–ग्रीवाभरणं विमलवरचिह्नपट्टश्च यैस्ते पिनद्धवरग्रैवेयविमलवरचिह्नपट्टाः **'गहियाउहपहरणा'** इति आयुध्यतेऽनेनेत्यायुधं–खेटकादि प्रहरणं–असिकुन्तादि, गृहीतानि आयुधानि प्रहरणानि च यैस्ते गृहीतायुधप्रहरणाः **'त्रिनतानि'** आदिमध्यावसानेषु नमनभावात् **'त्रिसन्धीनि'** आदिमध्यावसानेषु सन्धिभावात्, वज्रमयकोटीनि धनूंषि अभिगृह्य **'परियाइयकंडकलावा'** इति पर्याप्तकाण्डकलापा विचित्रकाण्डकलापयोगात्, केचित् 'नीलपाणय' इति नीलः काण्डकलाप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४३]

दीप अनुक्रम [१८१]

इति गम्यते पाणौ येषां ते नीलपाणयः, एवं पीतपाणयः रक्तपाणयः, चापं पाणौ येषां ते चापपाणयः, चारुः–प्रहरणविशेषः पाणौ येषां ते चारुपाणयः, चर्म–अङ्गुष्ठाङ्गुल्योरुच्छादनरूपं पाणौ येषां ते चर्मपाणयः, एवं दण्डपाणयः खड्गपाणयः पाशपाणयः, एतदेव व्याचष्टे–यथायोगं नीलपीतरक्तचापचारुचर्मदण्डपाशधरा आत्मरक्षाः, रक्षामुपगच्छन्ति–तदेकचित्ततया तत्परायणा वर्त्तन्त इति रक्षोपगाः **'गुप्ताः'** न स्वामिभेदकारिणः तथा गुप्ता–पराप्रवेश्या पालिः–सेतुर्येषां ते गुप्तपालिकाः, तथा **'युक्ताः'** सेवकगुणोपेततयोचिताः, तथा युक्ता–परस्परं बद्धा न तु बृहदन्तराला पालिर्येषां ते युक्तपालिकाः, प्रत्येकं प्रत्येकं समयतः–आचारत आचारेणेत्यर्थः विनयतश्च किङ्करभूता इव तिष्ठन्ति, न खलु ते किङ्कराः, किन्तु तेऽपि मान्याः, तेषामपि पृथगासननिपातनात्, केवलं ते तदानीं निजाचारपरिपालनतो विनीतत्वेन च तथाभूता इव तिष्ठन्ति तदुक्तं किङ्करभूता इवेति ॥ **'तए णं से विजए'** इत्यादि सुप्रतीतं यावद्विजयदेववक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ तदेवमुक्ता विजयद्वारवक्तव्यता, सम्प्रति वैजयन्तद्वारवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाधाए जंबुद्दीवदीवदाहिणपेरंते लवणसमुद्ददाहिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स २ वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सच्चेव सव्वा वत्तव्वता जाव णिच्चे। कहि णं भंते!० रायहाणी?, दाहिणे णं जाव वेजयंते देवे २ ॥ कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स २ जयंते णाम दारे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पचत्थिमेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं जंबुद्दीवपचत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपचत्थिमद्धस्स पुर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४४--१४५]

दीप अनुक्रम [१८२--१८३]

च्छिमेणं सीओदाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं जंबुद्दीवस्स जयंते णाम दारे पण्णत्ते, तं चेव से पमाणं जयंते देवे पच्चत्थिमेणं से रायहाणी जाव महिड्ढीए ॥ कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स अपराइए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! मंदरस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए जंबुद्दीवे २ उत्तरपेरंते लवणसमुद्दस्स उत्तरद्धस्स दाहिणेणं एत्थ णं जंबुद्दीवे २ अपराइए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव पमाणं, रायहाणी उत्तरेणं जाव अपराइए देवे, चउण्हवि अण्णंमि जंबुद्दीवे ॥ (सू० १४४) जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! अउणासीतिं जोयणसहस्साइं बावण्णं च जोयणाइं देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य २ अबाधाए अंतरे पण्णत्ते ॥ (सू० १४५)

'कहि णं भंते' इत्यादि सर्वं पूर्ववत्, नवरमत्र वैजयन्तस्य द्वारस्य दक्षिणतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिक्रम्येति वक्तव्यं, शेषं प्राग्वत् ॥ एवं जयन्तापराजितद्वारवक्तव्यताऽपि वाच्या, नवरं जयन्तद्वारस्य पश्चिमायां दिशि, अपराजितद्वारस्योत्तरतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्येति वाच्यम् ॥ सम्प्रति विजयादिद्वाराणां परस्परमन्तरं प्रतिपिपादयिषुरिदमाह—'जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति प्राग्वत् भदन्त! द्वीपस्य सम्बन्धिनो द्वारस्य च द्वारस्य चैतत् कियत्प्रमाणाबाधया—अन्तरित्वा प्रतिघातेनान्तरं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! एकोनाशीतियोंजनसहस्राणि द्विपञ्चाशद् योजनानि देशोनं चार्द्धयोजनं द्वारस्य च द्वारस्य चाबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—चतुर्णामपि द्वाराणां प्रत्येकमेकैकस्य कुड्यस्य द्वारशाखापरपर्यायस्य बाहल्यं गव्यूतं द्वाराणां च वि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

स्तारः प्रत्येकं २ चत्वारि २ योजनानि, ततश्चतुर्ष्वपि द्वारेषु सर्वसङ्ख्यया कुड्यद्वारप्रमाणमष्टादश योजनानि, जम्बूद्वीपस्य च परिधिस्तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके ३१६२२७ क्रोशत्रयं ३ अष्टाविंशं धनुःशतं १२८ त्रयोदशाङ्गुलानि एकमर्धाङ्गुल १३॥ मिति, अस्माच्च जम्बूद्वीपपरिधेः सकाशात्तानि कुड्यद्वारपरिमाणभूतान्यष्टादश योजनानि शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु परिधिसत्को योजनराशिरेवंरूपो जातः–तिस्रो लक्षाः षोडश सहस्राणि द्वे शते नवोत्तरे ३१६२०९, शेषं तथैव, ततो योजनराशेश्चतुर्भिर्भागो ह्रियते, लब्धानि योजनानामेकोनाशीतिः सहस्राणि द्विपञ्चाशदधिकानि गव्यूतं चैकं ७९०५२ क्रो० १, यानि च परिधिसत्कानि त्रीणि गव्यूतानि तानि धनुस्त्वेन क्रियन्ते लब्धानि धनुषां षट् सहस्राणि, यदपि च परिधिसत्कमष्टाविंशं धनुःशतं तदप्येतेषु धनुःषु मध्ये प्रक्षिप्यते, ततो जातो धनूराशिरेकषष्टिः शतान्यष्टाविंशत्यधिकानि ६१२८, एषां चतुर्भिर्भागो ह्रियते, लब्धानि धनुषां पञ्चदश शतानि द्वात्रिंशदधिकानि १५३२, यान्यपि च त्रयोदशाङ्गुलानि तेषामपि चतुर्भिर्भागो ह्रियते, लब्धानि त्रीणि अङ्गुलानि, एतदपि सर्वं देशोनमेकं गव्यूतमिति लब्धं देशोनमर्द्धयोजनं, उक्तं च—"कुड्डुदुवारपमाणं अट्ठारस जोयणाइं परिहीए । सोहिय चउहि विभत्तं इणमो दारंतरं होइ ॥ १ ॥ अउणासीइ सहस्सा बावण्णा अद्धजोयणं नूणं । दारस्स य दारस्स य अंतरमेयं विणिद्दिट्ठं ॥ २ ॥"

जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स एएसा लवणं समुद्दं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा ॥ ते णं भंते! किं जंबुद्दीवे २

१ कुड्यद्वारप्रमाणमष्टादश योजनानि परिधेः । शोधयित्वा चतुर्भिर्विभक्ते इदं द्वारान्तरं भवति ॥ १ ॥ एकोनाशीतिः सहस्राणि द्विपञ्चाशत् अर्धयोजनमूनं द्वारस्य द्वारस्य चान्तरमेतत् विनिर्दिष्टं ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४६]

दीप अनुक्रम [१८४]

लवणसमुद्दे?, गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे नो खलु ते लवणसमुद्दे ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स पदेसा जंबूदीवं दीवं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा । ते णं भंते! किं लवणसमुद्दे जंबूदीवे दीवे?, गोयमा! लवणे णं ते समुद्दे नो खलु ते जंबुद्दीवे दीवे ॥ जंबुद्दीवे णं भंते! दीवे जीवा उद्दाइत्ता २ लवणसमुद्दे पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता २ जंबुद्दीवे २ पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति ॥ (सू० १४६)

'जंबूदीवस्स णं भंते!' इत्यादि, जम्बूद्वीपस्य णमिति पूर्ववत् भदन्त! द्वीपस्य 'प्रदेशाः' स्वसीमागतचरमरूपा लवणं समुद्रं 'स्पृष्टाः?' कर्तरि क्तप्रत्ययः, स्पृष्टवन्तः, काका पाठ इति प्रश्नार्थत्वावगतिः, पृच्छतश्चायमभिप्रायः—यदि स्पृष्टास्तर्हि वक्ष्यमाणं पृच्छयते नो चेत्तर्हि नेति भावः, भगवानाह—हंतेत्यादि, 'हन्त' इति प्रत्यवधारणे स्पृष्टाः ॥ एवमुक्ते भूयः पृच्छति—'ते ण'मित्यादि, ते भदन्त! स्वसीमागतचरमरूपाः प्रदेशाः किं जम्बूद्वीपः?, किं वा लवणसमुद्रः?, इह यद् येन संस्पृष्टं तत्किञ्चित्तद्व्यपदेशमश्नुवानमुपलब्धं यथा सुराष्ट्रेभ्यः संक्रान्तो मगधदेशं मागध इति, किञ्चित्पुनर्न तद्व्यपदेशभाग् यथा तर्जन्या संस्पृष्टा ज्येष्ठाऽङ्गुलिर्ज्येष्ठेवेति, इहापि च जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा लवणसमुद्रं स्पृष्टवन्तस्ततो व्यपदेशचिन्तायां संशय इति प्रश्नः, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीप एव णमिति निपातस्यावधारणार्थत्वात् ते चरमप्रदेशा द्वीपो, जम्बूद्वीपसीमावर्त्तित्वात्, न खलु ते जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा लवणसमुद्रः, (न ते) जम्बूद्वीपसीमानमतिक्रम्य लवणसमुद्रसीमानमुपगताः किन्तु स्वसीमागता एव लवणसमुद्रं स्पृष्टवन्तस्तेन तटस्थतया संस्पर्शभावात् तर्जन्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४६]

दीप अनुक्रम [१८४]

संस्पृष्टा ज्येष्ठाङ्गुलिरिव ते स्वव्यपदेशं भजन्ते न व्यपदेशान्तरं, तथा चाह–नो खलु ते जम्बूद्वीपचरमप्रदेशा लवणसमुद्रः । एवं 'लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स पदेसा' इत्यादि लवणविषयमपि सूत्रं भावनीयम् ॥ 'जंबुद्दीवे णं भंते!' इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे ये जीवास्ते **'उद्दाइत्ता'** इति **'अवद्राय २'** मृत्वा २ लवणसमुद्रे **'प्रत्यायान्ति'** आगच्छन्ति ?, भगवानाह–गौतम! अस्तीति निपातोऽत्र बहुत्वे, सन्त्येकका जीवा ये 'अवद्रायावद्राय' मृत्वा २ लवणसमुद्रे प्रत्यायान्ति, सन्त्येकका ये न प्रत्यायान्ति, जीवानां तथा तथा स्वस्वकर्म्मवशतया गतिवैचित्र्यसम्भवात् ॥ एवं लवणसूत्रमपि भावनीयं ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीप इति नाम्नो निबन्धनं जिज्ञासिषुः प्रश्नं करोति—

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जंबूदीवे २?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवंतस्स दाहिणेणं मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गंधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं उत्तरकुरा णाम कुरा पण्णत्ता, पाईणपडीणायता उदीणदाहिणविच्छिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिता एक्कारस जोयणसहस्साइं अट्ठ बायाले जोयणसते दोण्णि य एक्कोणवीस-तिभागे जोयणस्स विक्खंभेणं ॥ तीसे जीवा पाईणपडीणायता दुहओ वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पुर-त्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं वक्खारपव्वतं पुट्ठा पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खा-रपव्वयं पुट्ठा, तेवण्णं जोयणसहस्साइं आयामेणं, तीसे धणुपट्ठं दाहिणेणं सट्ठिं जोयणसह-

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

स्साइं चत्तारि य अट्ठारसुत्तरे जोयणसते दुवालस य एकूणवीसतिभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ उत्तरकुराए णं भंते! कुराए केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?, गोयमा! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा णाम ए आलिंगपुक्खरेति वा जाव एवं एक्कोरुयदीववत्तव्वया जाव देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो!, णवरि इमं णाणत्तं—छद्धणुसहस्समूसिता दोछप्पन्ना पिट्ठकरंडसता अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जति तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाइं पलिओवमस्सासंखिज्जइभागेण ऊणगाइं जहन्नेणं तिन्नि पलिओवमाइं उक्कोसेणं एकूणपण्णराइंदियाइं अणुपालणा, सेसं जहा एगूरुयाणं ॥ उत्तरकुराए णं कुराए छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जंति, तंजहा—पम्हगंधा १ मियगंधा २ अम्ममा ३ सहा ४ तेयालीसे ५ सणिचारी ६ (सू० १४७)

'से केणट्ठेणं भंते!' इत्यादि, अथ केन 'अर्थेन' केन कारणेन भदन्त! एवमुच्यते जम्बूद्वीपो द्वीपः? इति, भगवानाह—

१ यद्यपि सूत्रकारैः जहा एगोरुयवत्तव्वयेति वाक्येनातिदिश्यते उत्तरकुरुस्वरूपमशेषं तथापि व्याख्यातमत्राशेषं तत्, न चैकोरुकद्वीपस्वरूपावसरे तल्लेशोऽपि व्याख्यातो वर्णनस्य, व्याख्यायकसूरिभिश्चान्यत्रातिदिश्यते कल्पद्रुमादिवर्णने यथोत्तरकुरुष्विति नात्र धृतं मूलसूत्रं न च परावर्तिता व्याख्या, परमेतदनुगीयते बहुत टीकाकृद्भिः प्राप्ता आदर्शा अत्रैव कल्पवृक्षादिवर्णनयुक्ताः प्रथमोपस्थितैकोरुकवर्णनस्थाने च तद्रहिता अतिदिष्टाः स्युः, चिन्त्यमेतावदेवात्र यत्र सूत्रकारशैल्याऽग्रे वर्णनीयपदार्थातिदेशस्तत्रैव सूत्रे, तत्र सामान्येन वर्णनं स्यादत्र विशेषेणेति युक्तं विवेचनमत्र तत्रभवदीयादर्शानुसारेण वा, अत एवात्र प्रतिसूत्रं प्रतीकशस्तिमैलयगिरिपादानाम्.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम् उत्तरकुरु-देवकुरु अधिकारस्य विशद्-वर्णनं आरभ्यते

जम्बूद्वीपे णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीपे मन्दरपर्वतस्य **'उत्तरेण'** उत्तरतः नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य **'दक्षिणेन'** दक्षिणतो गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य **'पुरत्थिमेणं'**ति पूर्वस्यां दिशि माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायाम् **'अत्र'** एतस्मिन् प्रदेशे उत्तरकुरवो नाम कुरवः प्रज्ञप्ताः, सूत्र एकवचननिर्देशोऽकारान्ततानिर्देशश्च प्राकृतत्वात्, ताश्च कथम्भूताः? इत्याह—**'पाईणे'**त्यादि, प्राचीनापाचीनायता उदग्दक्षिणविस्तीर्णा अर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थिता एकादश योजनसहस्राण्यष्टौ योजनशतानि **'द्विचत्वारिंशानि'** द्विचत्वारिंशदधिकानि द्वौ चैकोनविंशतिभागौ योजनस्य **'विष्कम्भेन'** दक्षिणोत्तरतया विस्तारेण, तथाहि—महाविदेहे मेरोरुत्तरत उत्तरकुरवो दक्षिणतो दक्षिणकुरवः, ततो यो महाविदेहक्षेत्रस्य विष्कम्भस्तस्मान्मन्दरविष्कम्भे शोधिते यदवशिष्यते तस्यार्द्धं यावत्परिमाणमेतावत्प्रत्येकं दक्षिणकुरूणामुत्तरकुरूणां च विष्कम्भः, उक्तं च—"वइदेहा विक्खंभा मंदरविक्खंभसोहियद्धं जं । कुरुविक्खंभं जाणसु" इति, स च यथोक्तप्रमाण एव, तथाहि—महाविदेहे विष्कम्भस्त्रयस्त्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि योजनानां चतस्रः कलाः ३३६८४ क० ४, एतस्मान्मेरुविष्कम्भो दश योजनसहस्राणि शोध्यन्ते १०००० स्थितानि पञ्चात्रयोविंशतिः सहस्राणि षट् शतानि चतुरशीत्यधिकानि योजनानां चतस्रः कलाः २३६८४ क० ४, एतेषामर्द्धे लब्धान्येकादश सहस्राणि अष्टौ शतानि द्विचत्वारिंशदधिकानि योजनानां द्वे च कले ११८४२ क० २ ॥ **'तीसे'** इत्यादि, तासामुत्तरकुरूणां जीवा उत्तरतो नीलवर्षधरसमीपे प्राचीनापाचीनायता उभयतः पूर्वपश्चिमभागाभ्यां वक्षस्कारपर्वतं यथाक्रमं माल्यवन्तं गन्धमादनं च **'स्पृष्टा'** स्पृष्टवती, एतदेव भावयति—**'पुरत्थिमिल्लाए'** इत्यादि, पूर्वया **'कोट्या'** अग्रभागेन पूर्वं वक्षस्कारपर्वतं माल्यवदभिधानं **'स्पृष्टा'** स्पृष्टवती **'पश्चिमया'** पश्चिमदिग्वलम्बिन्या कोट्या पश्चिमवक्षस्कारपर्वतं गन्धमादनाख्यं स्पृष्टा, सा च जीवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

आयामेन त्रिपञ्चाशद् योजनसहस्राणि, कथमिति चेदुच्यते–इह मेरोः पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि भद्रशालवनस्य यदायामेन परिमाणं यच्च मेरोर्विष्कम्भस्य तदेकत्र मीलितं गन्धमादनमाल्यवद्वक्षस्कारपर्वतमूलपृथुत्वपरिमाणरहितं यावत्प्रमाणं भवति तावदुत्तरकुरूणां जीवायाः परिमाणम्, उक्तं च—"मंदरपुव्वेणायय बावीस सहस्स भद्दसालवणं । दुगुणं मंदरसहियं दुसेलरहियं च कुरुजीवा ॥ १ ॥" तच्च यथोक्तप्रमाणमेव, तथाहि–मेरोः पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि प्रत्येकं भद्रशालवनस्य दैर्घ्यपरिमाणं द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणि, ततो द्वाविंशतिः सहस्राणि द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जातानि चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि ४४०००, मेरोश्च पृथुत्वपरिमाणं दश योजनसहस्राणि १००००, तानि पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि ५४०००, गन्धमादनस्य माल्यवतश्च वक्षस्कारपर्वतस्य प्रत्येकं मूले पृथुत्वं पञ्च योजनशतानि, ततः पञ्च शतानि द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जातं योजनसहस्रं, तत् पूर्वराशेरपनीयते, जातानि त्रिपञ्चाशद् योजनसहस्राणि ५३००० ॥ **'तीसे धणुपट्ठे'**मित्यादि, तासामुत्तरकुरूणां धनुःपृष्ठं **'दक्षिणेन'** दक्षिणतः, तच्च षष्टियोजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि अष्टादशोत्तराणि द्वादश एकोनविंशतिभागा योजनस्य परिक्षेपेण, द्वयोरपि हि गन्धमादनमाल्यवद्वक्षस्कारपर्वतयोरायामपरिमाणमेकत्र मीलितमुत्तरकुरूणां धनुःपृष्ठपरिमाणं, "आयामो मेलाणं दोण्ह व मिलिओ कुरूण धणुपट्ठं" इति वचनात्, गन्धमादनस्य माल्यवतश्च वक्षस्कारपर्वतस्य प्रत्येकमायामपरिमाणं त्रिंशद् योजनसहस्राणि द्वे शते नवोत्तरे षट् च कलाः ३०२०९ क० ६, उभयोश्च मिलित आयामो यथोक्तपरिमाणो भवति ६०४१८ क० १२ ॥ **'उत्तरकुराए णं भंते!'** इत्यादि, उत्तरकुरूणां भदन्त! कुरूणां, सूत्रे एकवचनं प्राकृतत्वात्, कीदृश आकारभावस्वरूपस्य प्रत्यवतारः–सम्भवः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! बहुसमरमणीयो भूमिभाग उत्तरकुरूणां प्रज्ञप्तः, 'से जहानामए–आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि जगत्युपरि वनष-

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

ण्डवर्णकवक्तावद्वक्तव्यं यावत्तृणानां च मणीनां च वर्णो गन्धः स्पर्शः शब्दश्च सवर्णकः परिपूर्ण उक्तो भवति, पर्यन्तसूत्रं चेदम्—'दिव्वं नट्टं सज्जं गेयं पगीयाणं भवे एयारूवे ?, हंता सिया' इति ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवे **'खुड्डा खुड्डियाओ वावीओ'** इत्यादि, तथा त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि तोरणानि पर्वतकाः पर्वतकेष्वासनानि गृहकाणि गृहेष्वासनानि मण्डपका मण्डपेषु पृथिवीशिलापट्टकाः पूर्ववद् वक्तव्याः, तदनन्तरं चेदं वक्तव्यम्—'तत्थ णं बहवे उत्तरकुरा मणुस्सा मणुस्सीओ य आसयंति सयंति जाव कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरन्ति' एतद्व्याख्याऽपि प्राग्वत् । **'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु णमिति पूर्ववत् कुरुषु तत्र तत्र देशे **'तहिं तहिं'** इति तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवः सरिकागुल्माः नवमालिकागुल्माः कोरण्टगुल्माः बन्धुजीवकगुल्माः मनोवद्यगुल्माः बीयकगुल्माः बाणगुल्माः (कणवीरगुल्माः) कुब्जकगुल्माः सिन्दुवारगुल्माः जातिगुल्माः मुद्गरगुल्मा यूथिकागुल्माः मल्लिकागुल्माः वासन्तिकगुल्माः वस्तुलगुल्माः कस्तूलगुल्माः सेवालगुल्माः अगस्त्यगुल्माः मगदन्तिगुल्माः चम्पकगुल्माः जातिगुल्माः नवनातिकागुल्माः कुन्दगुल्माः महाकुन्दगुल्माः, सरिकादयो लोकतः प्रत्येतव्याः, गुल्मा नाम ह्रस्वस्कन्धबहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, ततः सर्वत्र विशेषणसमासः, सरिकादीनां चेमास्तिस्रः सङ्ग्रहणिगाथाः—"सेरियए नोमालियकोरंटयबन्धुजीवगमणोज्जा । बीययबाणयकणवीरकुज्ज तह सिंदुवारे य ॥ १ ॥ जाईमोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासंती । वत्थुलकत्थुलसेवालगत्थिमगदंतिया चेव ॥ २ ॥ चंपकजाईनवनाइया य कुंदे तहा महाकुंदे । एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा ॥ ३ ॥" **'ते णं गुम्मा'** इत्यादि, **'ते'** अनन्तरोदिता णमिति वाक्यालङ्कारे गुल्माः **'दशार्द्धवर्ण'** पञ्चवर्ण **'कुसुमं'** जातावेकवचनं कुसुमसमूहं **'कुसुमयन्ति'** उत्पादयन्तीति भावः, येन कुसुमोत्पादनेन कुरूणां बहुसमरम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

णीयो भूमिभागो 'वायविहुयग्गसालेहिं'ति वातेन विधुताः—कम्पिता वातविधुतास्ताश्च ता अग्रशाखाश्च वातविधुताग्रशाखास्ताभिः, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, मुक्तो यः पुष्पपुञ्जः स एवोपचारः—पूजा मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारस्तेन कलितः श्रियाऽतीव उपशोभमानस्तिष्ठति ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य २ देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहूनि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, हरुतालवनानि भेरुतालवनानि भेरुतालवनानि शालवनानि सरलवनानि सप्तपर्णवनानि पूगीफलीवनानि खर्जूरीवनानि नालिकेरीवनानि कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलानि, ते च वृक्षाः मूलमंतो कंदमंतो इत्यादि विशेषणजातं जगत्युपरिवनषण्डकवर्णकवक्तव्यतापरिभावनीयं यावद् 'अणेगसगडरहजाणजोग्गगिल्लिथिल्लिसीयसंदमाणपडिमोयणेसु रम्मा पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा' इति, भेरुतालादयो वृक्षजातिविशेषाः शालादयः प्रतीताः ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहव उद्दालाः कोद्दाला मोद्दालाः कृतमाला नृत्तमाला वृत्तमाला दन्तमालाः शृङ्गमालाः शङ्खमालाः श्वेतमाला नाम **'द्रुमगणाः'** द्रुमजातिविशेषसमूहाः प्रज्ञप्ताः तीर्थकरगणधरैः हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, ते च कथम्भूताः? इत्याह—कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला इत्यादि प्राग्वद् यावत् 'पडिमोयणा सुरम्मा' इति ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवस्तिलका लवकाः छत्रोपगाः शिरीषाः सप्तपर्णाः लुब्धाः धवाः चन्दनाः अर्जुनाः नीपाः कुटजाः कदम्बाः पनसाः शालाः तमालाः प्रियालाः प्रियङ्गवः पारापता राजवृक्षा नन्दिवृक्षाः, तिलकादयो लोकप्रतीताः, एते कथम्भूताः? इत्याह—कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला इत्यादि सर्वं प्राग्वद् यावत् 'पडिमोयणा सुरम्मा' इति ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवः पद्मलता नागलता अशोकलताश्चम्पकलताश्चूतलता वनलता वासन्तिकलता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ २६४ ॥

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

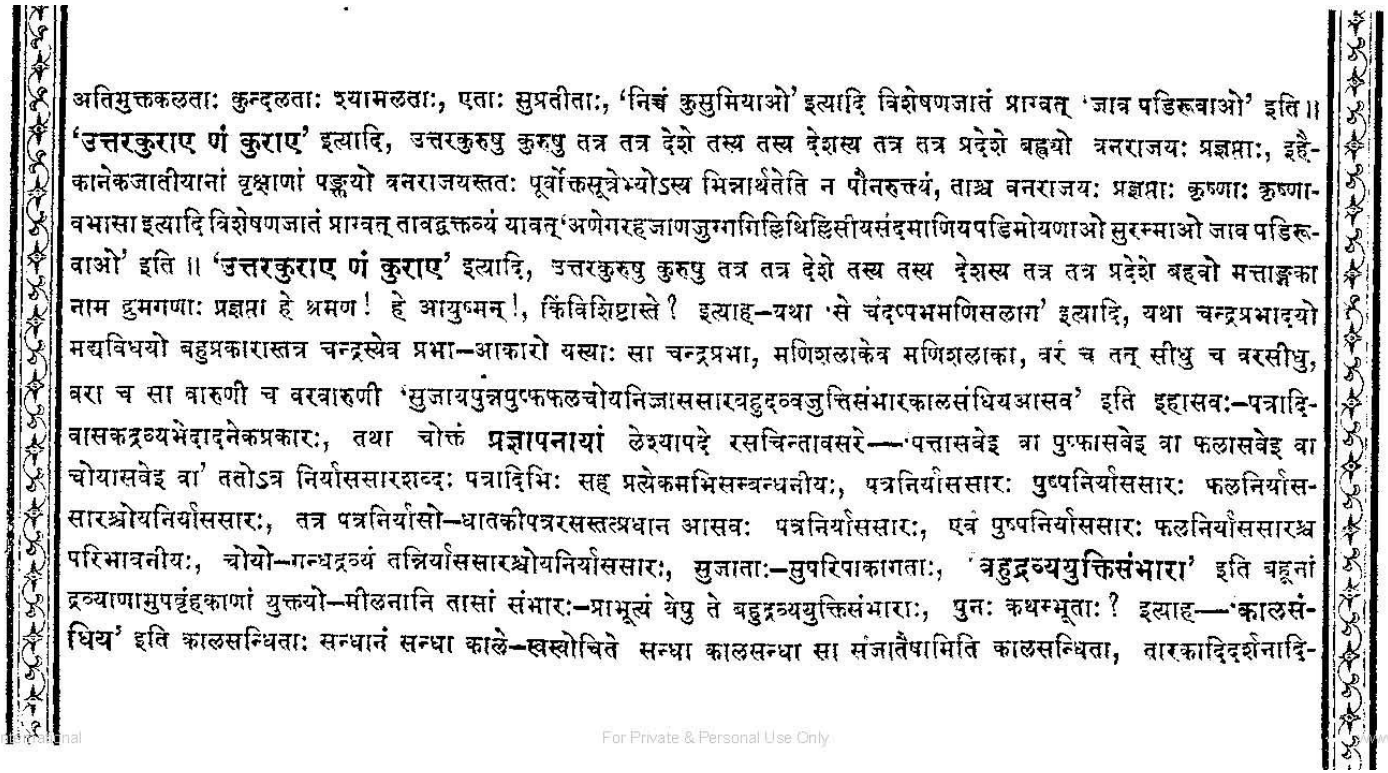

अतिमुक्तकलताः कुन्दलताः श्यामलताः, एताः सुप्रतीताः, 'निच्चं कुसुमियाओ' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् 'जाव पडिरूवाओ' इति ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बह्वयो वनराजयः प्रज्ञप्ताः, इहैकानेकजातीयानां वृक्षाणां पङ्क्तयो वनराजयस्ततः पूर्वोक्तसूत्रेभ्योऽस्य भिन्नार्थतेति न पौनरुक्त्यं, ताश्च वनराजयः प्रज्ञप्ताः कृष्णाः कृष्णावभासा इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् तावद्वक्तव्यं यावत् 'अणेगरहजाणजुग्गगिल्लिथिल्लिसीयसंदमाणियपडिमोयणाओ सुरम्माओ जाव पडिरूवाओ' इति ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो मत्ताङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, किंविशिष्टास्ते? इत्याह—यथा 'से चंदप्पभमणिसलाग' इत्यादि, यथा चन्द्रप्रभादयो मद्यविधयो बहुप्रकारास्तत्र चन्द्रस्येव प्रभा—आकारो यस्याः सा चन्द्रप्रभा, मणिशलाकेव मणिशलाका, वरं च तत् सीधु च वरसीधु, वरा च सा वारुणी च वरवारुणी 'सुजायपुन्नपुप्फफलचोयनिज्जाससारबहुदव्वजुत्तिसंभारकालसंधियआसव' इति इहासवः—पत्रादिवासकद्रव्यभेदादनेकप्रकारः, तथा चोक्तं **प्रज्ञापनायां** लेश्यापदे रसचिन्तावसरे—'पत्तासवेइ वा पुप्फासवेइ वा फलासवेइ वा चोयासवेइ वा' ततोऽत्र निर्याससारशब्दः पत्रादिभिः सह प्रत्येकमभिसम्बन्धनीयः, पत्रनिर्याससारः पुष्पनिर्याससारः फलनिर्यासससारश्चोयनिर्याससारः, तत्र पत्रनिर्यासो—धातकीपत्ररसस्तत्प्रधान आसवः पत्रनिर्याससारः, एवं पुष्पनिर्याससारः फलनिर्याससारश्च परिभावनीयः, चोयो—गन्धद्रव्यं तन्निर्याससारश्चोयनिर्याससारः, सुजाताः—सुपरिपाकागताः, **'बहुदव्वयुत्तिसंभारा'** इति बहूनां द्रव्याणामुपबृंहकाणां युक्तयो—मीलनानि तासां संभारः—प्राभूत्यं येषु ते बहुद्रव्ययुक्तिसंभाराः, पुनः कथम्भूताः? इत्याह—**'कालसंधिय'** इति कालसन्धिताः सन्धानं सन्धा काले—स्वस्योचिते सन्धा कालसन्धा सा संजातैषामिति कालसन्धिता, तारकादिदर्शनादि-

जी०च० ४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

श्रीजीवाजीवाभि० मलयगिरीयावृत्तिः

॥ २६५ ॥

तप्रत्ययस्ततः पदद्वयपदद्वयमीलनेन विशेषणसमासः, सुजातपत्रपुष्पफलचोयनिर्यासससारबहुद्रव्ययुक्तिसम्भारकालसन्धितासवाः, मधुमेरकौ—मद्यविशेषौ, 'रिष्टरत्नवर्णाभा' रिष्टा या शास्त्रान्तरे जम्बूफलकलिकेति प्रसिद्धा, दुग्धजातिः—आस्वादतः क्षीरसदृशी, प्रसन्ना—सुराविशेषः, नेल्लकोऽपि सुराविशेषः, शतायुर्नाम या शतवारान् शोधिताऽपि स्वस्वरूपं न जहाति, **'खजूरमुद्दियासार'** इति अत्रापि सारशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, खर्जूरसारो मृद्वीकासारः, तत्र ण(मू)लदलखर्जूरसारनिष्पन्न आसवविशेषः खर्जूरसारः, मृद्वीका—द्राक्षा तत्सारनिष्पन्न आसवविशेषो मृद्वीकासारः, कापिशायितं—मद्यविशेषः, सुपक्वः—सुपरिपाकागतो यः क्षोदरस—इक्षुरसस्तन्निष्पन्ना वरसुरा सुपक्वक्षोदरसवरसुरा, कथम्भूता एते मद्यविशेषाः? इत्याह—'वन्नगंधरसफासजुत्तबलविरियपरिणामा' वर्णेन सामर्थ्यादतिशायिना एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेन च युक्ताः—सहिता बलवीर्यपरिणामा—बलहेतवो वीर्यपरिणामा येषां ते तथा, किमुक्तं भवति?—परमातिशयसंपन्नैर्वर्णगन्धरसस्पर्शैर्बलहेतुभिर्वीर्यपरिणामैश्चोपेता इति, पुनः किंविशिष्टाः? इत्याह—**'बहुप्पकाराः'** बहवः प्रकारा येषां जातिभेदेन ते बहुप्रकाराः, तथैव मत्ताङ्गका अपि द्रुमगणा मद्यविधिनोपपेता इति योगः, किंविशिष्टेन मद्यविधिना? इत्यत आह—**'अणेगबहुविविहवीससापरिणयाए'** इति न एकः अनेकः, तत्रानेकः अनेकजातीयोऽपि व्यक्तिभेदाद्भवति तत आह—बहु—प्रभूतं विविधो—जातिभेदान्नानाप्रकारो बहुविविधः प्रभूतजातिभेदतो नानाविध इति भावः, स च केनापि निष्पादितोऽपि संभाव्यते तत आह—विश्रसया—स्वभावेन तथाविधक्षेत्रादिसामग्रीविशेषजनितेन परिणतो न पुनरीश्वरादिना निष्पादितो विश्रसापरिणतः, ततः पदत्रयस्य पदद्वयपदद्वयमीलनेन कर्मधारयः, सूत्रे च स्त्रीलनिर्देशः प्राकृतत्वात्, ते च मद्यविधिनोपपेता न ताडादिवृक्षा इवाङ्कुरादिषु किन्तु फलेषु तथा चाह—**'फलेहिं पुण्णा वीसंदंति'** अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया 'व्यत्ययोऽप्यासा'मिति वचनात्, फलेषु मद्यविधिभिरिति गम्यते **'पूर्णाः'**

३ प्रतिपत्तौ उत्तरकुरुवर्णनं उद्देशः २ सू० १४७

॥ २६५ ॥

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...rainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

संभृताः **'विष्यन्दन्ति'** स्रवन्ति, सामर्थ्यात्तानेवानन्तरोदितान् मद्यविधीन्, कचित् **'विसट्टंति'** इति पाठस्तत्र विकसन्तीति व्याख्येयं, किमुक्तं भवति ?–तेषां फलानि परिपाकागतमद्यविधिभिः पूर्णानि स्फुटित्वा तान् मद्यविधीन् मुञ्चन्तीति, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलाः, 'मूलवन्त' इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपका इति १। **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो भृङ्गाङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! **'जहा से'** इत्यादि, यथा ते करकवटकक-लशकर्करीपादकाञ्चनिकाउदङ्कवार्द्धानीसुप्रतिष्ठकविष्टरपारीचषकभृङ्गारककरोटिकासरकपरकपात्रीस्थालमल्लकचषलितदकवारकविचित्र-पट्टकशुक्तिचारुपीनका भाजनविधयः, एते प्रायः प्रतीताः, नवरं पादकाञ्चनिका–पादधावनयोग्या काञ्चनमयी पात्री उदङ्को–येनो-दकमुदच्यते वार्द्धानी–गलन्तिका सरको–वंशमयच्छिक्काः शिक्काकृतिः अप्रतीता लोकतो विशिष्टसंप्रदायाद्वाऽवसातव्याः, कथम्भूताः? इत्याह –काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्राः, पुनः कथम्भूताः ? इत्याह–बहुप्रकाराः, एकैकस्मिन् विधावान्तरानेकभेदभावात्, तथैव ते भृङ्गाङ्गका अपि द्रुमगणाः 'अणेगबहुविविहविस्ससापरिणयाए' इत्यस्य व्याख्या पूर्ववत् भाजनविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूल-वन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपाः २॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवस्तुटिताङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, **'जहा से'** इत्यादि, यथा ते आलिङ्ग्य(मुरव)मृ-दङ्गपणवपटहदर्दरककरटिडिण्डिमभम्भाहोरम्भाकणिताखरमुखीमकुन्दशङ्खिकापिरलीवज्जकपरिवादिनीवंशवेणुवीणासुघोषाविपञ्चीमहती-कच्छभीरिगसिका, तत्रालिङ्ग्य वाद्यत इति आलिङ्ग्यः मुरवः–वाद्यविशेषः, एष यकारान्तशब्दः, मृदङ्गो–लघुमर्दलः, पणवो–भाण्ड-पटहो लघुपटहो वा पटहः–प्रतीतः, दर्दरकोऽपि तथैव, करटी–सुप्रसिद्धा, डिण्डिमः–प्रथमप्रस्तावनासूचकः पणवविशेषः, भम्भा–

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...rainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

ढक्का, होरम्भा–महाढक्का, कणिता–काचिद् वीणा, खरमुखी–काहला, मकुन्दो–मरुजवाद्यविशेषो योऽभिलीनं प्रायो वाद्यते, शङ्खिका–लघुशङ्खरूपा तस्याः स्वरो मनाक् तीक्ष्णो भवति नतु शङ्खस्येवातिगम्भीरः, पिरलीवद्धकौ तृणरूपवाद्यविशेषौ, परिवादिनी–सप्ततन्त्रीवीणा वंशः–प्रतीतो वेणुः–वंशविशेषः सुघोषा–वीणाविशेषः, विपञ्ची–तन्त्री वीणा महती–शततन्त्रिका, कच्छभी रिगसिका च लोकतः प्रत्येतव्या, एताः कथम्भूताः? इत्याह—**'तलतालकंसतालसुसंपउत्ता'** तलं–हस्तपुटं तालाः–प्रतीताः कांस्यतालाः–कंसालिया एतैः 'सुसंप्रयुक्ताः' सुष्ठु–अतिशयेन सम्यग्–यथोक्तनीत्या प्रयुक्ताः–संबद्धा आतोद्यविधयः–आतोद्यभेदाः, पुनः कथम्भूताः? इत्याह—**'निउणगंधव्वसमयकुसलेहिं फंदिया'** इति, निपुणं यथा भवति एवं गन्धर्वसमये–नाट्यसमये कुशलास्तैः स्पन्दिता–व्यापारिता इति भावः, पुनः किंविशिष्टाः? इत्याह—**'तिस्थानकरणशुद्धाः'** आदिमध्यावसानरूपेषु त्रिषु स्थानेषु करणेन–क्रियया यथोक्तवादनक्रियया शुद्धा अवदाता न पुनरवस्थानव्यापारणरूपदोषलेशेनापि कलङ्किताः, तथैव ते तुटिताङ्गका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन, अस्य व्याख्यानं प्राग्वत्, 'ततवितततघनशुषिरेण' ततं–वीणादिकं विततं–पटहादिकं घनं–कांस्यतालादि शुषिरं–वंशादि, एतद्रूपेण चतुर्विधेनातोद्यविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलाः मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपकाः ३। **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो दीपशिखा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा तत् 'सन्ध्याविरागसमये' सन्ध्यारूपो विरुद्धस्तिमिररूपत्वाद्रागः सन्ध्याविरागस्तत्समये–तदवसरे नवनिधिपतेः–चक्रवर्त्तिन इव दीपिकाचक्रवालवृन्दं–ह्रस्वो दीपो दीपिका तासां चक्रवालं–सर्वं परिमण्डलरूपं वृन्दं दीपिकाचक्रवालवृन्दं, कथम्भूतमित्याह—**'प्रभूतवर्त्तिं'** प्रभूता–बहुसङ्ख्याकाः स्थूरा वा वर्त्तयो यत्र तत्तथा, तथा **'पलित्तनेहं'**ति पर्याप्तः–प्रतिपूर्णः स्नेहः–

॥ २६६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

तैलादिरूपो यस्य तत् पर्यायस्नेहं, **'धणिउज्जालिए'** इति धणियं–अत्यर्थमुज्ज्वालितम्, अत एव तिमिरमर्दकं–तिमिरनाशकं, पुनः किंविशिष्टमित्याह—**'कणगनिगरणकुसुमियपारियातगवणप्पगासे'** कनकस्य निगरणं कनकनिगरणं गालितं कनकमिति भावः कुसुमितं च तत्पारिजातकवनं च कुसुमितपारिजातकवनं ततो द्वन्द्वसमासस्तद्वत्प्रकाशः–प्रभा आकारो यस्य तत्कनकनिगरणपारिजातकुसुमवनप्रकाशम्, एतावता समुदायविशेषणमुक्तम्, इदानीं समुदायसमुदायिनोः कथञ्चिद्भेदे(दभे)द इति ख्यापयन् समुदायविशेषणमेव विवक्षुः समुदायिविशेषणान्याह—**'कंचणमणिरयणे'**त्यादि, दीपिकाभिः शोभमानमिति सम्बन्धः, कथम्भूताभिर्दीपिकाभिः? अत आह–काञ्चनमणिरत्नानां काञ्चनमणिरत्नमया विमलाः–स्वाभाविकागन्तुकमलरहिता महार्हा–महोत्सवार्हाः विचित्रा–विचित्रवर्णोपेता दण्डा यासां ताः काञ्चनमणिरत्नविमलमहार्हविचित्रदण्डास्ताभिः, तथा सहसा–एककालं ज्वालिताश्च ता उत्सर्पिताश्च वर्त्युत्सर्पणेन सहसाप्रज्वालितोत्सर्पिताः, स्निग्धं–मनोहरं तेजो यासां ताः स्निग्धतेजसः, तथा दीप्यमानो–रजन्यां भास्वान् विमलोऽत्र धूल्याद्यपगमेन ग्रहगणो–ग्रहसमूहस्तेन समा प्रभा यासां ता दीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभाः, ततः पदद्वयपदद्वयमीलनेन कर्म्मधारयसमासः, सहसाप्रज्वालितोत्सर्पितस्निग्धतेजोदीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभास्ताभिः, तथा वितिमिराः करा यस्यासौ वितिमिरकरः स चासौ सूरश्च वितिमिरकरसूरस्तस्येव यः प्रसरति उद्द्योतः–प्रभासमूहस्तेन **'चिल्लियाहिं'**ति देशीपदमेतद् दीप्यमानाभिरित्यर्थः, ज्वाला एव यदुज्ज्वलं ग्रहसितमिव ग्रहसितं तेनाभिरामा–अभिरमणीया ज्वालोज्ज्वलग्रहसिताभिरामास्ताभिः, अत एव शोभमानाभिः शोभमानाः, तथैव दीपशिखा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविश्रसापरिणतोद्योतविधिनोपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत् प्रतिरूपा इति ४ ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

बहवो ज्योतिषिका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा तद् अचिरोद्गतं शरदि सूर्यमण्डलं यदिवा यथैतद् उल्कासहस्रं यथा वा दीप्यमाना विद्युत् अथवा यथा निर्धूमज्वलित उज्ज्वलः–उद्गता ज्वाला यस्य स तथा हुतवहः, सूत्रे च पदोपन्यासव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, ततः सर्वेषामेषां द्वन्द्वः समासः, कथम्भूता एते? इत्याह—'निद्धंतधोयेत्यादि, निर्ध्मातेन–नितरामग्निसंयोगेन यद् धौतं–शोधितं तप्तं च तपनीयं ये च किंशुकाशोकजपाकुसुमानां विमुकुलितानां–विकसितानां पुञ्जाः ये च मणिरत्नकिरणाः यश्च जात्यहिङ्गुलकनिकरस्तद्रूपेभ्योऽप्यतिरेकेण–अतिशयेन यथायोगं वर्णतः प्रभया च रूपं–स्वरूपं येषां ते निर्ध्मातधौततप्ततपनीयकिंशुकाशोकजपाकुसुमविमुकुलितपुञ्जमणिरत्नकिरणजात्यहिङ्गुलकनिकररूपातिरेकरूपाः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथैव ते ज्योतिषिका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविश्रसापरिणतेनोद्योतविधिनोपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपाः ५ ॥ 'उत्तरकुराए णं कुराए' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवश्चित्राङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा तत् प्रेक्षागृहं विचित्रं–नानाविधचित्रोपेतम्, अत एव रम्यं–रमयति मनांसि द्रष्टृणामिति रम्यं, बाहुलकात् कर्त्तरि यप्रत्ययः, वराश्च ताः कुसुमदाममालाश्च–ग्रथितकुसुममाला वरकुसुमदाममालास्ताभिरुज्ज्वलं देदीप्यमानत्वाद् वरकुसुमदाममालोज्ज्वलं, तथा भास्वान्–विकसिततया मनोहरतया च देदीप्यमानो मुक्तो यः पुष्पपुञ्जोपचारस्तेन कलितं भास्वन्मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितं, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, तथा विरलितानि–विरलीकृतानि विचित्राणि यानि माल्यानि ग्रथितपुष्पमालास्तेषां यः श्रीसमुदयस्तेन प्रगल्भं–अतीव परिपुष्टं विरलितविचित्रमाल्यश्रीसमुदयप्रगल्भं, तथा ग्रन्थिमं–यत् सूत्रेण ग्रथितं वेष्टिमं–यत्पुष्पमुकुट इव उपर्युपरि शिखराकृत्या मालास्थापनं पूरिमं–यल्लघुच्छिद्रेषु पुष्पनिवेशेन पूर्यते सङ्घातिमं–यत्पुष्पं पुष्पेण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

परस्परं नालप्रवेशेन संयोज्यते, ग्रन्थिमं च वेष्टिमं च पूरिमं च सङ्घातिमं चेति समाहारो द्वन्द्वस्तेन माल्येन छेकशिल्पिना–परमदक्षेण शिल्पिना विभागरहितेन यद् यत्र योग्यं ग्रन्थिमं वेष्टिमं पूरिमं सङ्घातिमं च तत्र तेन सर्वतः–सर्वासु दिक्षु समनुबद्धं, तथा ग्रविरलैः –लम्बमानैः, तत्र विरलत्वं मनागप्यसंहतत्वमात्रेण भवति ततो विप्रकृष्टत्वप्रतिपादनार्थमाह–विप्रकृष्टैः–बृहदन्तरालैः पञ्चवर्णैः कुसुमदामभिः शोभमानं **'वणमालाकयग्गए चेवे'**ति वनमाला–चन्दनमाला कृताऽग्रे यस्य तद् वनमालाकृताग्रं तथाभूतं सद् दीप्यमानं, तथैव चित्राङ्गका अपि नाम द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन ग्रन्थिमवेष्टिमपूरिमसङ्घातिमेन चतुर्विधेन माल्यविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि यावत्प्रतिरूपकाः ६ ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे चित्ररसा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, यथा तत्परमान्नं–पायसं भवेदिति सम्बन्धः, किंविशिष्टमित्याह–ये सुगन्धाः–प्रवरगन्धोपेताः, समासान्तविधेरनित्यत्वादत्रैतद्रूपस्य समासान्तस्याभावो यथा सुरभिगन्धेन वारिणा इत्यत्र, वराः–प्रधाना दोषरहितक्षेत्रकालादिसामग्रीसंपादितात्मलाभा इति भावः, कमलशालितन्दुलाः, यच्च विशिष्टं–विशिष्टगवादिसम्बन्धि निरुपहतमिति–पाकादिभिरविनाशितं दुग्धं तै राद्धं–पक्वं परमकलमशालिभिः परमदुग्धेन च यथोचितमात्रापाकेन निष्पादितमित्यर्थः, तथा शारदं घृतं गुडः खण्डं मधु वा शर्करापरपर्यायं मेलितं यत्र तत् शारदघृतगुडखण्डमधुमेलितं, निष्ठान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् सुखादिदर्शनाद्वा, अत एवातिरसमुत्तमवर्णगन्धवत्, यथा वा राज्ञश्चक्रवर्त्तिनो भवेत् कुशलैः सूपपुरुषैः–सूपकारैः पुरुषैः सज्जितो–निष्पादितः चतुष्कल्पसेकसिक्त इवौदनः, चत्वारश्च कल्पाः सेकविषया **रसवतीशास्त्राभिज्ञेभ्यो** भावनीयाः, स चौदनः किंविशिष्टः? इत्याह–कलमशालिनिर्वर्त्तितः–कलमशालिमयो विपक्को–विशिष्टपरिपाकमागतः, **'सवाफ्फमिउविसयसक-**

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...rainelibrary.org

लसित्थे' इति सवाष्पाणि–बाष्पं मुञ्चन्ति मृदूनि–कोमलानि चतुष्कल्पसेकादिना परिकर्मितत्वात् विशदानि सर्वथा तुषादिमलापगमात् सकलानि–परिपूर्णानि सित्थूनि यत्र स सवाष्पमृदुविशदसकलसित्थुः, अनेकानि यानि शालनकानि–पुष्पफलप्रभृतीनि तैः संयुक्तः–समुपेतोऽनेकशालनकसंयुक्तः, तथा चामोदक इति सम्बन्धः, किंविशिष्टः? इत्याह–परिपूर्णानि–समस्तानि द्रव्याणि–एलाप्रभृतीनि उपस्कृतानि–नियुक्तानि यत्र स परिपूर्णद्रव्योपस्कृतः, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, सुसंस्कृतो–यथोक्तमात्राग्निपरितापादिना परमसंस्कारमुपनीतः, वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तबलवीर्यपरिणाम इति वर्णगन्धरसस्पर्शैः सामर्थ्यादतिशायिभिर्युक्ताः–सहिता बलवीर्यहेतवः परिणामा यस्य स तथा, अतिशायिभिर्वर्णादिभिर्बलवीर्यहेतुपरिणामैश्चोपपेता इति भावः, तत्र बलं–शारीरं वीर्यं–आन्तरोत्साहः, **'इंदियबलपुट्ठिवद्धणे'** इति, इन्द्रियाणां–चक्षुरादीनां बलं–स्वस्वविषयग्रहणपाटवमिन्द्रियबलं तस्य पुष्टिः–अतिशायी पोष इन्द्रियबलपुष्टिस्तां वर्द्धयति, नन्द्यादित्वादनः, इन्द्रियबलपुष्टिवर्द्धनः, तथा क्षुच्च पिपासा च क्षुत्पिपासे तयोर्मथनः क्षुत्पिपासामथनः, तथा प्रधानः–कथितो यो गुडो यद्वा कथितं–प्रधानं खण्डं यदिवा कथिता प्रधाना मत्स्यण्डी–खण्डशर्करा यच्च प्रधानं घृतं तानि उपनीतानि–योजितानि यस्मिन् स प्रधानकथितगुडखण्डमत्स्यण्डीघृतोपनीतः, निष्ठान्तस्य परनिपातोऽत्रापि सुखादिदर्शनात्, स इव मोदकः श्लक्ष्णसमितिगर्भः–अतिश्लक्ष्णकणिकामूलदलः प्रज्ञप्तः, तथैव चित्ररसा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन भोजनविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्तो यावत्प्रतिरूपाः ७ ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो मण्यङ्गका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, यथा ते हारोऽर्द्धहारो वेष्टनं मुकुटः कुण्डलं वामोत्तको हेमजालं मणिजालं कनकजालं सूत्रकमुच्चीकटकं खुडकाम(ड्डका ए)कावलिः कण्ठसूत्रं मकरिका उरस्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

न्धग्रैवेयकं श्रोणीसूत्रकं चूडामणिः कनकतिलकं फुल्लकं सिद्धार्थकं कर्णपाली शशी सूर्यो वृषभश्चक्रकं तलभङ्गकं तुडितं हस्तमालकं हर्षकं केयूरं वलयं प्रालम्बमङ्गुलीयकं वलक्षं दीनारमालिका काञ्ची मेखला कलापः प्रतरं प्रातिहार्यकं पादोज्वलं घण्टिका किङ्किणी रत्नोरुजालं वरनूपुरं चरणमालिका कनकनिगरमालिकेति भूषणविधयो बहुप्रकाराः, एते च लोकतः प्रत्येतव्याः, कथम्भूताः? इत्याह—काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्राः, तथैव ते मण्यङ्गका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविश्रसापरिणतेन भूषणविधिनोपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला यावत्प्रतिरूपा इति ८ ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो गेहाकारा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! यथा ते प्राकाराट्टालकचरिकाद्वारगोपुरप्रासादाकाशतलमण्डपैकशालकद्विशालकत्रिशालकचतुःशालकगर्भगृहमोहनगृहवलभीगृहचित्रशालमालिकभक्तिगृहवृत्तत्र्यस्रचतुरस्रनन्द्यावर्त्तसंस्थितानि पाण्डुरतलहर्म्यं मुण्डमालहर्म्यं, अथवा धवलगृहाणि अर्द्धमागधविभ्रमाणि शैलसुस्थितानि अर्द्धशैलसुस्थितानि कूटाकाराद्यानि सुविधिकोष्ठकानि, तथाऽनेकानि गृहाणि शरणानि लयनानि **'अप्पेगे'** इति भवनविकल्पा अत्र बहुविकल्पाः, एतेषां च परस्परं विशेषो **वास्तुविद्यातोऽवसातव्यः**, कथम्भूता एते? इत्याह—**'विडंगे'**त्यादि, विटङ्कः—कपोतपाली जालवृन्दं—गवाक्षसमूहः निर्यूहो—गृहैकदेशविशेषः अपवरकः—प्रतीतः चन्द्रशालिका—शिरोगृहं, एवंरूपाभिर्विभक्तिभिः कलिताः, तथैव गृहाकारा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविश्रसापरिणतेन भवनविधिनेति सम्बन्धः, किंविशिष्टेन? इत्याह—**'सुहारुहणसुहोत्ताराए'** इति सुखेनारोहणं—ऊर्द्ध गमनं सुखेनोत्तारः—अधस्तादवतरणं यस्य दर्दरसोपानपङ्क्त्यादिभिः स सुखारोहसुखोत्तारस्तेन, तथा सुखेन निष्क्रमणं प्रवेशश्च यत्र स सुखनिष्क्रमणप्रवेशस्तेन, कथं सुखारोहसुखोत्तारः? इत्याह—दर्दरसोपानपङ्क्तिकलितेन, हेतौ तृतीया, ततोऽयमर्थः—यतो दर्दरसोपानपङ्क्तिक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

लितस्ततः सुखारोहसुखोत्तारः, **'पतिरिक्कसुहविहाराए'** प्रतिरिक्ते–एकान्ते सुखविहारः–अवस्थानशयनादिरूपो यत्र प्रतिरिक्तसुखविहारस्तेनोपपेता, सर्वत्र स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपकाः ९ ॥ **'उत्तरकुराए णं कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवोऽनग्नका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!, **'जहा से'** इत्यादि, आजिनकं नाम–चर्ममयं वस्त्रं क्षौमं–कर्पासिकं कम्बलः–प्रतीतः दुकूलं–वस्त्रजातिविशेषः कौसेयं–त्रसरितन्तुनिष्पन्नं कालमृगपट्टः–कालमृगचर्म अंशुकचीनांशुकानि–दुकूलविशेषरूपाणि पट्टानि–प्रतीतानि आभरणचित्राणि–आभरणैश्चित्राणि–विचित्राणि आभरणचित्राणि **'सण्ह'** इति श्लक्ष्णानि कल्याणकानि–परमवस्त्रलक्षणोपेतानि गम्भीराणि–निपुणशिल्पिनिष्पादिततयाऽलब्धस्वरूपमध्यानि **'नेहल'**त्ति स्नेहलानि–स्निग्धानि **'गया(ज्ज)लानि'**उद्वेल्यमानानि परिधीयमानानि वा गर्जयन्ति, शेषं सम्प्रदायादवसातव्यं, तदन्तरेण सम्यक् पाठशुद्धेरपि कर्तुमशक्तत्वात्, वस्त्रविधयो बहुप्रकारा भवेयुर्वरपट्टनोद्भूताः–प्रसिद्धतत्तत्पत्तनविनिर्गता 'विविधवर्णरागकलिता' विविधैर्वर्णैर्विविधै रागैः–मञ्जिष्ठारागादिभिः कलिताः, तथैवानग्नका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन वस्त्रविधिनोपपेताः, कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला मूलवन्त इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपाः १० । **'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए मणुयाण'**मित्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु भदन्त! **'मनुजानां'** मनुष्याणां कीदृशः कीदृश आकारभावः, प्रत्यवतारस्वरूपसम्भव इति भावः, प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! **'ते णं'**मिति पूर्ववत् मनुष्या **'अतीव'** अतिशयेन **सोमं**–दृष्टिसुभगं चारु रूपं येषां तेऽतीवसोमचारुरूपाः **'भोगुत्तमगयलक्खणा'** इति उत्तमशब्दस्य विशेषणस्यापि परनिपातः प्राकृतत्वात्, उत्तमाश्च ते भोगाश्च उत्तमभोगास्तद्वतानि–तत्संसूचकानि लक्षणानि येषां ते उत्तमभोगगतलक्षणाः, तथा भोगैः सश्रीकाः–सशोभाका भोगसश्रीकाः, तथा सुजातानि–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

www.jainelibrary.org For Private & Personal Use Only Jain Education International

यथोक्तप्रमाणोपपन्नत्वेन शोभनजन्मानि यानि सर्वाणि उर:शिर:प्रभृतीन्यङ्गानि तै: सुन्दरमङ्गं–समग्रं वपुर्येषां ते सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गा:, **'सुपइट्ठियकुम्मचारुचरणा'** इति सुष्ठु–शोभनं यथा भवति एवं प्रतिष्ठिता: कूर्मवदुन्नतत्वेन चारवश्चरणा:–पादा येषां ते सुप्रतिष्ठितकूर्मचारुचरणा:, **'रत्तुप्पलपत्तमउयसुकुमालकोमलतला'** इति रक्तं–लोहितमुत्पलपत्रवत् मृदु–मार्दवोपेतमकर्कशमिति भाव: तच्चासुकुमारमपि संभवति यथा घृष्टमृष्टपाषाणप्रतिमा तत आह–सुकुमारं–शिरीषकुसुमवदकठिनं कोमलं–मनोज्ञं चरणतलं येषां ते रक्तोत्पलपत्रमृदुसुकुमारकोमलतला:, तथा **'नगनगरमगरसागरचक्कंकहरंकलक्खणंकियचलणा'** नग:–पर्वत: नगरमकरसागरचक्राणि–प्रतीतानि अङ्कधर:–चन्द्रमा अङ्क:–तस्यैव लाञ्छनं मृग: एवंरूपाणि यानि लक्षणानि तैरङ्कितौ चरणौ येषां ते नगनगरमकरसागरचक्राङ्कधराङ्कलक्षणाङ्कितचरणा:, **'अणुपुव्वसुसाहयंगुलीया'** इति पूर्वस्या: पूर्वस्या अनु लघव इति गम्यते अनुपूर्वा:, किमुक्तं भवति?–पूर्वस्या: पूर्वस्या उत्तरोत्तरा नखं नखेन हीना: "नहं नहेण हीणाओ" इति **सामुद्रिकशास्त्रवचनात्** सुसंहता:–सुश्लिष्टा अङ्गुलयो येषां ते अनुपूर्वसुसंहताङ्गुलीका:, **'उन्नयतणुतंबनिद्धनखा'** उन्नता–ऊर्द्ध नतास्तनवस्ताम्रा: **'स्निग्धा:'** स्निग्धच्छाया नखा: पादगता इति सामर्थ्यलभ्यं तद्वर्णनाधिकाराद् येषां ते उन्नततनुताम्रस्निग्धनखा:, **'संठियसुसिलिट्ठगूढगुप्फा'** सम्यक्स्वरूपप्रमाणतया स्थितौ संस्थितौ सुश्लिष्टौ–मांसलौ गुल्फौ–गुलकौ येषां ते संस्थितसुश्लिष्टगूढगुल्फा:, **'एणीकुरुविंदवत्तवट्टाणुपुव्वजंघा'** इति एण्या इव–हरिण्या इव कुरुविन्दस्येव वर्त्त–सूत्रवलनकं तस्येव वृत्ते–वर्तुले आनुपूर्व्येण–क्रमेण ऊर्द्धं स्थूरे स्थूरतरे इति गम्यं जङ्घे येषां ते एणीकुरुविन्दवर्त्तवृत्तानुपूर्वजङ्घा: **'समुग्गनिमग्गगूढजाणू'** समुद्गकस्येव–समुद्गकपक्षिण इव निमग्ने–अन्त:प्रविष्टे गूढे–मांसलत्वादनुद्धते जानुनी–अष्ठीवन्तौ येषां ते समुद्गनिमग्नगूढजानव:, **'गयससणसुजायसन्निभोरू'** गजो–हस्ती श्वसिति–प्राणित्यनेनेति

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

श्वसनः–शुण्डादण्डः गजस्य श्वसनो गजश्वसनस्तस्य सुजातस्य–सुनिष्पन्नस्य सन्निभौ ऊरू येषां ते गजश्वसनसुजातसन्निभोरवः, सुजातशब्दस्य विशेषणस्यापि सतः परनिपातः प्राकृतत्वात्, **'वरवारणमत्ततुल्लविक्कमविलासियगई'** अत्रापि मत्तशब्दस्य विशेष्यात्परनिपातः प्राकृतत्वात्, मत्तो–मदोन्मत्तो यो वरः–प्रधानो भद्रजातीयो वारणो–हस्ती तस्य तुल्यः–सदृशो विक्रमः–पराक्रमो विलासिता–विलासः संजातोऽस्या विलासिता तारकादिदर्शनादितप्रत्ययः विलासवती गतिः–गमनं येषां ते वरवारणमत्ततुल्यविक्रमविलासितगतयः, **'पमुइयवरतुरगसीहवरवट्टियकडी'** प्रमुदितो–रोगशोकाद्युपद्रवाभावात्, क्वचित्पुनरेवं पाठः 'पमुइयवरतुरगसिंहअइरेगवट्टियकडी' तत्र प्रमुदितयो–रोगशोकाद्युपद्रवरहितत्वेनातिपुष्टयोर्वरयोस्तुरगसिंहयोः कट्याः सकाशादतिशयेन वर्त्तिता–वृत्तिः (त्ता) कटिर्येषां ते प्रमुदितवरतुरगसिंहातिरेकवर्त्तितकटयः, **'वरतुरयसुजायगुज्झदेसा'** वरतुरगस्येव सुजातः–संगुप्तत्वेन सुनिष्पन्नो गुह्यदेशो येषां ते वरतुरगसुजातगुह्यदेशाः, पाठान्तरं **'पसत्थवरतुरगगुज्झदेसा'** व्यक्तं, **'आइण्णहयव्व निरुवलेवा'** आकीर्णो–गुणैर्व्याप्तः स चासौ हयश्च आकीर्णहयस्तद्वन्निरुपलेपा–लेपरहितशरीरमलाः, यथा जात्याश्वो मूत्रपुरीषाद्यनुपलिप्तगात्रो भवति तथा तेऽपीति भावः, **'साहयसोणंदमुसलदप्पणनिगरियवरकणगछरुसरिसवरवइरवलियमज्झा'** संहृतसौनन्दं नाम ऊर्द्धीकृतमुदूपलाकृति काष्ठं तच्च मध्ये तनु उभयोः पार्श्वयोर्बृहत्, मुसलं–प्रतीतं, दर्पणशब्देनेहावयवे समुदायोपचाराद्दर्पणगण्डो गृह्यते, तथा यन्निगरितं–सारीकृतं वरकनकं तस्य–तन्मयं त्सरुः–खड्गादिमुष्टिर्निगरितवरकनकत्सरुस्तैः सदृशः तेषामिवेत्यर्थः, तथा वरवज्रस्येव क्षामो वलितो–वलयः संजाता अस्य वलितः–वलित्रयोपेतो मध्यो–मध्यभागो येषां ते संहृतसोनन्दमुसलदर्प्पणनिगरितवरकनकत्सरुसदृशवरवज्रवलितमध्याः **'झसविहगसुजायपीणकुच्छी'** झषो–मत्स्यः पक्षी–प्रतीतस्तयोरिव सुजातौ–सुनिष्पन्नौ जन्मदोषरहिताविति भावः पीनौ–उपचितौ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

कुक्षी येषां ते मत्स्यपक्षिसुजातपीनकुक्षयः, **'झषोदरा'** झषस्येवोदरं येषां ते झषोदराः, **'सुइकरणा'** इति शुचीनि–पवित्राणि निरुपलेपानीति भावः करणानि–चक्षुरादीनीन्द्रियाणि येषां ते शुचिकरणाः, क्वचिदेव 'पम्हवियडनाभा' इति पाठस्तत्र पद्मवद् विकटा–विस्तीर्णा नाभिर्येषां ते पद्मविकटनाभाः, अत एव निर्देशादनाऽपि समासान्तः, एवमुत्तरपदेऽपि, **'गंगावत्तयपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहियअ(आ)कोसायंतपउमगंभीरवियडनाभा'** गङ्गावर्त्तक इव दक्षिणावर्त्तो तरङ्गैरिव तरङ्गैस्त्रिसृभिर्वलिभिर्भङ्गुरा तरङ्गभङ्गुरा रविकिरणैः–सूर्यकरैस्तरुणं–नवं तत्प्रथमं तत्कालमित्यर्थः यद्बोधितं–उन्निद्रीकृतमत एव **'आकोसायंत'** इत्याकोशायमानं विकचीभवदित्यर्थः पद्मं तद्वद् गम्भीरा च विकटा च नाभिर्येषां ते गङ्गावर्त्तकप्रदक्षिणावर्त्ततरङ्गभङ्गुररविकिरणतरुणबोधिताकोशायमानपद्मगम्भीरविकटनाभाः, **'उज्जुयसमसहियसुजायजच्चतणुकसिणनिद्धआइज्जलडहसुकुमालमिउरमणिज्जरोमराई'** ऋजुका–न वक्रा समा–न काप्युदन्तुरा सहिता–सन्तता न क्वचान्तरालव्यवच्छिन्ना सुजाता–सुजन्मा न तु कालादिवैगुण्याद्दुर्जन्मा अत एव जात्या–प्रधाना तन्वी न तु स्थूरा कृष्णा न तु मर्कटवर्णा, कृष्णमपि किञ्चिन्निर्दीप्तिकं भवति तत आह–स्निग्धा आदेया–दर्शनपथमुपगता सती उपादेया सुभगा इति भावः, एतदेव विशेषणद्वारेण समर्थयते—'लडहा' सलवणिमा अत एव आदेया, तथा सुकुमारा–अकठिना, तत्राकठिनमपि किञ्चित्कर्कशस्पर्शं भवति तत आह–मृद्वी अत एव रमणीया–रम्या रोमराजिः–तनूरुहपङ्क्तिर्येषां ते ऋजुकसमसहितसुजातजात्यतनुकृष्णस्निग्धादेयलटहसुकुमारमृदुरमणीयरोमराजयः, **'सन्नयपासा'** सम्यग्–अधोऽधःक्रमेण नतौ पार्श्वौ येषां ते सन्नतपार्श्वाः अधोऽधःक्रमावनतपार्श्वा इत्यर्थः, तथा **'संगयपासा'** इति संगतौ–देहप्रमाणोचितौ पार्श्वौ येषां ते सङ्गतपार्श्वा अत एव सुन्दरपार्श्वाः **'सुजायपासा'** इति सुनिष्पन्नपार्श्वाः **'मियमाइयपीणरइयपासा'** मितं–परिमितं यथा भवति देहानुसारेणेत्यर्थः आयतौ–दीर्घौ पीनौ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपचितौ मांसलाविति भाव: रचितौ–स्वस्वनामकर्मोदयनिर्वर्त्तितौ रतिदौ वा–रम्यौ पार्श्वौ येषां ते तथा, **'अकरंडयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयदेहधारी'** अविद्यमानं–मांसलतयाऽनुपलक्ष्यमाणं करण्डकं–पृष्ठवंशास्थिकं यस्य देहस्य सोऽकरण्डकस्तं कनकस्येव रुचको–रुचिर्यस्य स कनकरुचिस्तं निर्मलं–स्वाभाविकागन्तुकमलरहितं सुजातं–बीजाधानादारभ्य जन्मदोषरहितं निरुपहतं–ज्वरादिदंशाद्युपद्रवरहितं देहं धारयन्तीत्येवंशीला अकरण्डककनकरुचकनिर्म्मलसुजातनिरुपहतदेहधारिण: **'कणगसिलायलुज्जलपसत्थसमतलोवचियविच्छिन्नपिहुलवच्छा'** कनकशिलातलवदुज्ज्वलं च–निर्मलं प्रशस्तं च–अतिप्रशस्यं समतलं–न विषमोन्नतं उपचितं–मांसलं विस्तीर्णम्–ऊर्द्ध्वाधोऽपेक्षया पृथुलं दक्षिणोत्तरतो वक्षो येषां ते कनकशिलातलोज्ज्वलप्रशस्तसमतलोपचितविस्तीर्णपृथुलवक्षस: **'सिरिवच्छंकियवच्छा'** इति श्रीवृक्षेणाङ्कितं–लाञ्छितं वक्षो येषां ते श्रीवृक्षलाञ्छितवक्षस: **'जुगसन्निभपीणरइयपीवरपउट्ठसंठियसुसिलिट्ठविसिट्ठघणथिरसुबद्धसंधी पुरवरफलिहवट्टियभुया'** युगसन्निभौ–वृत्ततया आयततया च यूपतुल्यौ पीनौ–उपचितौ रतिदौ–पश्यतां दृष्टिसुखदौ पीवरप्रकोष्ठौ–अकृशकलाचिकौ संस्थितौ–विशिष्टसंस्थानौ सुश्लिष्टा:–संगता: विशिष्टा:–प्रधाना: घना–निबिडा: स्थिरा–नातिश्लथा: सुबद्धा:–स्नायुभि: सुष्ठु नद्धा: सन्धय:–सन्धानानि ययोस्तौ तथा पुरवरपरिघवत्–महानगरार्गलावद् वर्त्तितौ च बाहू येषां ते युगसन्निभपीनरतिदपीवरप्रकोष्ठसंस्थितसुश्लिष्टविशिष्टघनस्थिरसुबद्धसन्धिपुरवरपरिघवर्त्तितभुजा:, पाठान्तरं 'जुगसन्निभपीणरइयपउट्ठसंठियोवचियघणथिरसुबद्धसुनिगूढपव्वसंधी' युगसन्निभौ वर्त्तुलत्वेन पीनौ रतिदौ प्रकोष्ठौ येषां ते तथा, तथा संस्थिता:–सम्यक्स्थिता उपचिता–मांसला घना–निबिडा: स्थिरा–अचाल्या:, कुत: ? इत्याह–सुबद्धा–दृढबन्धनबद्धा निगूढा–मांसलत्वादनुपलक्ष्या: पर्वसन्धयो हस्तादिगता येषां ते तथा, तत: पूर्वपदेन विशेषणसमास:, **'भुयगीसरविपुलभोगआयाणफलि-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

हउच्छूढदीहबाहू' भुजगेश्वरो–नागराजस्तस्य यो विपुलो–महान् भोगो–देहो भुजगेश्वरविपुलभोगः तथा आदीयते–द्वारस्थगनार्थं गृह्यत इत्यादानः स चासौ परिघश्च आदानपरिघः 'उच्छूढ'त्ति अवक्षिप्तः–अर्गलास्थानान्निष्कासितो द्वारपृष्ठभागे दत्त इत्यर्थः, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, विशेषणस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, भुजगेश्वरविपुलभोगश्च आदानपरिघावक्षिप्तश्च ताविव दीर्घौ बाहू येषां ते तथा, **'रत्ततलोवतियमांसलसुजायअच्छिद्दजालपाणी'** रक्ततलौ–लोहिततलौ अवपतितौ–क्रमेण हीयमानोपचयौ मृदुकौ –कोमलौ मांसलौ सुजातौ–जन्मदोषरहितौ अच्छिद्रजालौ–अङ्गुल्यन्तरालसमूहरहितौ पाणी–हस्तौ येषां ते तथा, पाठान्तरं 'रत्ततलोवइयमंसलसुजायपसत्थलक्खणअच्छिद्दजालपाणी' तत्र प्रशस्तलक्षणौ–शुभचिह्नाविति व्याख्येयं, शेषं तथैव, **'पीवरकोमलवरंगुलीया'** इति पीवराः–स्वशरीरानुक्रमोपचयाः कोमला–मृदवो वराः–प्रशस्तलक्षणोपेता अङ्गुलयो येषां ते पीवरकोमलवराङ्गुलिकाः, पाठान्तरं 'पीवरवट्टियसुजायकोमलवरंगुलीया' व्यक्तम्, **'आयंवतलिणसुइरुइलनिद्धनखा'** आताम्रा–ईषद्रक्ताः तलिनाः–प्रतलाः शुचयः–पवित्रा रुचिरा–दीप्ताः स्निग्धा–अरूक्षा नखाः–कररुहा येषां ते तथा आताम्रतलिनशुचिरुचिरस्निग्धनखाः, **'चंदपाणिलेखा'** चन्द्र इव चन्द्राकारा पाणौ रेखा येषां ते चन्द्रपाणिरेखाः, एवं सूर्यपाणिरेखाः शङ्खपाणिरेखाश्चक्रपाणिरेखा दिक्सौवस्तिको–दिक्प्रोक्षको दक्षिणावर्त्तः स्वस्तिक इत्यन्ये स पाणौ रेखा येषां ते दिक्सौवस्तिकपाणिरेखाः, एतदेवानन्तरोक्तं विशेषणपञ्चकं तत्प्रशस्तताप्रकर्षप्रतिपादनाय सङ्ग्रहवचनेनाह–चन्द्रसूर्यशङ्खचक्रदिक्सौवस्तिकरेखाः, एतदनन्तरं क्वचिदेवं पाठः–'रविससिसंखवरचक्कसोत्थियविभिन्नसुविरइयपाणिरेहा' व्यक्तो नवरं विभक्ता–विभागवत्यः सुविरचिताः–सुष्ठु कृताः स्वकीयकर्म्मणा **'अणेगवरलक्खणुत्तमपसत्थसुइरइयपाणिलेहा'** अनेकैः–अनेकसङ्ख्यैर्वरैः–प्रधानैर्लक्षणैरुत्तमाः प्रशस्ताः–प्रशंसास्पदीभूताः शुचयः–पवित्रा रचिताः–स्वकर्मणा निष्पा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

दिताः पाणिरेखा येषां ते अनेकवरलक्षणोत्तमप्रशस्तशुचिरचितपाणिरेखाः, **'वरमहिसवराहसिंहसद्दूलउसभनागवरपडिपुण्णविउलखंधा'** वरमहिषः–प्रधानसौरभेयः वराहः–शूकरः सिंहः–केशरी शार्दूलो–व्याघ्रः ऋषभो–वृषभः नागवरः–प्रधानो गजः, एषामिव प्रतिपूर्णः–स्वप्रमाणेनाहीनो विपुलो–विस्तीर्णः स्कन्धः–अंशदेशो येषां ते वरमहिषवराहसिंहशार्दूलवृषभनागवरप्रतिपूर्णविपुलस्कन्धाः **'चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा'** चतुरङ्गुलं–स्वाङ्गुलापेक्षया चतुरङ्गुलप्रमितं सुष्ठु–शोभनं प्रमाणं यस्याः सा चतुरङ्गुलसुप्रमाणा कम्बुवरसदृशी–उन्नततया वलियोगेन च प्रधानशङ्खसन्निभा ग्रीवा येषां ते चतुरङ्गुलसुप्रमाणकम्बुवरसदृशग्रीवाः **'मंसलसंठियसद्दूलविपुलहणुया'** मांसलं–उपचितमांसं सम्यक् स्थितं संस्थितं विशिष्टस्थानमित्यर्थः प्रशस्तं प्रशस्यलक्षणोपेतत्वात् शार्दूलस्येव–व्याघ्रस्येव विपुलं–विस्तीर्णं हनुकं येषां ते तथा, **'अवट्ठियसुविभत्तमंसू'** अवस्थितानि–अवर्द्धिष्णूनि सुविभक्तानि–विविक्तानि चित्राणि–अतिरम्यतयाऽद्भुतानि श्मश्रूणि–कूर्चकेशा येषां तेऽवस्थितसुविभक्तचित्रश्मश्रवः **'ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाधरोट्ठा'** ओयवियं–परिकर्मितं यत् शिलारूपं प्रवालं विद्रुममित्यर्थः बिम्बफलं–गोल्हाफलं तयोः सन्निभो रक्ततया उन्नतमध्यतयाऽधरओष्ठः–अधस्तनो दन्तच्छदो येषां ते तथा, **'पंडुरससिसगलविमलनिम्मलसंखगोखीरफेणकुंददगरयमुणालियाधवलदंतसेढी'** पाण्डुरं–अकलङ्कं यत् शशिशकलं–चन्द्रखण्डं विमल–आगन्तुकमलरहितो निर्मलः–स्वभावोत्थमलरहितो यः शङ्खः गोक्षीरफेनः प्रतीतः कुन्दं–कुन्दकुसुमं दकरज–उदककणाः मृणालिका–बिशं, एतद्धवला दन्तश्रेणिर्येषां ते पाण्डुरशशिशकलविमलनिर्मलगोक्षीरफेनकुन्ददकरजोमृणालिकाधवलदन्तश्रेणयः **'अखंडदंता'** इति अखण्डाः–सकला दन्ता येषां ते अखण्डदन्ताः **'अप्फुडियदंता'** अस्फुटिता–अजर्जरा राजिरहिता दन्ता येषां ते अस्फुटितदन्ताः, तथा सुजाता–जन्मदोषरहिता दन्ता येषां ते सुजा-

॥ २७२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तदन्ताः, तथाऽविरला–घना दन्ता येषां ते अविरलदन्ताः, **'एगदंतसेढीविव अणेगदंता'** एकाकारा दन्तश्रेणिर्येषां ते तथा ते इव परस्परानुपलक्ष्यमाणदन्तविभागत्वाद् अनेके दन्ता येषां ते अनेकदन्ताः, एवं नामाविरलदन्ता यथाऽनेकदन्ता अपि सन्त एकाकार-दन्तपङ्क्तय इव लक्ष्यन्त इति भावः, **'हुयवहनिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहा'** हुतवहेन–अग्निना निर्ध्मातं सद् यद् धौतं–शोधितमलं तप्तं तपनीयं–सुवर्णविशेषस्तद्वद् रक्ते तले–हस्ततले तालु–काकुदं जिह्वा च–रसना येषां ते हुतवहनिर्ध्मातधौततप्त-तपनीयरक्ततलतालुजिह्वाः **'गरुलायय उज्जुतुंगनासा'** गरुडस्येवायता–दीर्घा ऋजवी–अवक्रा तुङ्गा–उन्नता नासा–नासिका येषां ते गरुडायतऋजुतुङ्गनासाः **'कोकासियधवलपत्तलच्छा'** कोकासिते–पद्मविकसिते धवले क्वचिद्देशे पत्रले–पक्ष्मवती अक्षिणी–लोचने येषां ते कोकासितधवलपत्राक्षाः, एतदेव स्पष्टयति—**'विप्फालियपुंडरीयनयणा'** विस्फारितं–रविकिरणैर्विकासितं यत्पुण्डरीकं –सितपद्मं तद्वन्नयने येषां ते विस्फारितपुण्डरीकनयनाः, क्वचित् **'अवदालियपुंडरीयनयणा'** इति पाठस्तत्रापि अवदालितं–रविकिरणैर्विकासितमिति व्याख्येयं, **'आणामियचावरुइलतणुकसिणनिद्धभुया'** आनामितं–ईषन्नामितमारोपितमिति भावः यच्चापं–धनुस्तद्वद् रुचिरे–संस्थानविशेषभावतो रमणीये तनू–तनुके अक्ष्णपरिमितबालपङ्क्त्यात्मकत्वात् कृष्णे–परमकालिमोपेते स्निग्धे–स्निग्धच्छाये भ्रुवौ येषां ते आनामितचापरुचिरतनुकृष्णस्निग्धभ्रूकाः, क्वचित्पाठः—**'आणामियचारुरुचिलकिण्हब्भराईसंठियसंगयआययसुजायसुसया'** तत्र आनामितचापवद् रुचिरे कृष्णाभ्रराजीव संस्थिते संगते–यथोक्तप्रमाणोपपन्ने आयते–दीर्घे सुजाते–सुनिष्पन्ने जन्मदोषरहितत्वाद् भ्रुवौ येषां ते तथा, क्वचित्पुनरेवं पाठः—**'आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइतणुकसिणनिद्धभुमया'** तत्रानामितचापवद् रुचिरे–मनोज्ञे कृष्णाभ्रराजीव–कालमेघरेखेव तनू–तनुके कृष्णे–काले स्निग्धे–सच्छाये भ्रुवौ येषां ते तथा, **'आलीणपमा-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

णजुत्तसवणा' आलीनौ न तु दप्परौ प्रमाणयुक्तौ–प्रमाणोपेतौ श्रवणौ–कर्णौ येषां ते आलीनप्रमाणयुक्तश्रवणाः, अत एव **'सुसवणा'** शोभनश्रवणाः **'पीणमंसलकवोलदेसभागा'** पीनौ–अकृशौ यतो मांसलौ–उपचितौ कपोलदेशौ–गण्डभागौ मुखस्य देशभागौ येषां ते पीनमांसलकपोलदेशभागाः, अथवा कपोलयोर्देशभागाः कपोलदेशभागाः कपोलावयवा इत्यर्थः पीना–मांसलाः कपोलदेशभागा येषां ते पीनमांसलकपोलदेशभागाः **'निव्वणसमलट्ठमट्ठचंदद्धसमनिडाला'** निर्व्रणं–विस्फोटकादिक्षतरहितं समं–अविषमं अत एव लष्टं–मनोज्ञं मृष्टं–मसृणं चन्द्रार्द्धसमं–शशधरसमप्रविभागसदृशं ललाटं–अलकं येषां ते निर्व्रणसमलष्टचन्द्रार्द्धसमललाटाः, सूत्रे 'निडाले'ति प्राकृतलक्षणवशात्, **'उडुवइपडिपुण्णसोमवयणा'** प्राकृतत्वात्पदव्यत्ययः, प्रतिपूर्णोडुपतिरिव–सम्पूर्णचन्द्र इव सोमं–सश्रीकं वदनं येषां ते प्रतिपूर्णोडुपतिसोमवदनाः, **'घणनिचियसुबद्धलक्खणुन्नयकूडागारनिहपिंडियसिरा'** घनं–अतिशयेन निचितं घननिचितं सुष्ठु–अतिशयेन बद्धानि–अवस्थितानि लक्षणानि यत्र तत् सुबद्धलक्षणं, उन्नतं–मध्यभागे उच्चं यत्कूटं तस्याकारो–मूर्त्तिस्तन्निभमुन्नतकूटाकारसदृशमिति भावः पिण्डितं–स्वकर्म्मणा संयोजितं शिरो येषां ते घननिचितसुबद्धलक्षणोन्नतकूटाकारनिभपिण्डितशिरसः **'छत्ताकारुत्तमंगदेसा'** छत्राकार उत्तमाङ्गरूपो देशो येषां ते छत्राकारोत्तमाङ्गदेशाः **'दाडिमपुप्फप्पगासतवणिज्जसरिसनिम्मलसुजायकेसंतकेसभूमी'** दाडिमपुष्पप्रकाशा–दाडिमपुष्पप्रतिमास्तपनीयसदृशाश्च निर्म्मला–आगन्तुकस्वाभाविकमलरहिताः केशान्ताः केशभूमिश्च–केशोत्पत्तिस्थानभूता मस्तकत्वग् येषां ते दाडिमपुष्पप्रकाशतपनीयसदृशनिर्मलसुजातकेशान्तकेशभूमयः **'सामलिबोंडघणछोडियमिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणसुगंधसुन्दरभुयमोयगभिंगनीलकज्जलपहट्ठभमरगणनिद्धुरंधकुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरया'** शाल्मली–वृक्षविशेषः स च प्रतीत एव तस्य बोण्डं–फलं तद्वच्छोटिता अपि घनं–अतिशयेन निचिताः शाल्मलीबोण्डघननि-

॥ २७३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

चितच्छोटिताः, स्नेहकेशपाशं न कुर्वन्ति परिज्ञानाभावात्, केवलं छोटिता अपि तथास्वभावतया शाल्मलीबोण्डाकारवद् घननिचिता अवतिष्ठन्ते तत एतद्विशेषणोपादानं, तथा मृदवः–अकर्कशा विशदा–निर्मलाः प्रशस्ताः–प्रशंसास्पदीभूताः सूक्ष्माः–श्लक्ष्णाः लक्षणा–लक्षणवन्तः सुगन्धाः–परमगन्धकलिता अत एव सुन्दराः, तथा भुजमोचको–रत्नविशेषः भृङ्गः–प्रतीतः नीलो–मरकतमणिः कज्जलं–प्रतीतं प्रहृष्टः–प्रमुदितो भ्रमरगणः प्रहृष्टभ्रमरगणः, प्रहृष्टो हि भ्रमरगणस्तारुण्यावस्थायां भवति तदानीं चातिकृष्ण इति प्रहृष्टग्रहणं, तद्वत्स्निग्धा भुजमोचकभृङ्गनीलकज्जलप्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धाः, तथा निकुरम्बा–निकुरम्बीभूताः सन्तो निचिता न तु विस्तृताः सन्तः परस्परसंहता निकुरम्बनिचिता ईषत्कुटिलाः प्रदक्षिणावर्त्ताश्च मूर्द्धनि शिरोजा–बाला येषां ते शाल्मलीबोण्डघननिचितच्छोटितमृदुविशदप्रशस्तसूक्ष्मलक्षणसुगन्धसुन्दरभुजमोचकभृङ्गनीलकज्जलप्रहृष्टभ्रमरगणस्निग्धनिकुरम्बनिचितप्रदक्षिणावर्त्तमूर्द्धशिरोजाः, **'लक्खणवंजणगुणोववेया'** लक्षणानि–स्वस्तिकादीनि व्यञ्जनानि–मषतिलकादीनि गुणाः–क्षान्त्यादयस्तैरुपेता–युक्ता लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः **'सुजायसुविभत्तसुरूवगा'** सुजातं–सुनिष्पन्नं जन्मदोषरहितत्वात् सुविभक्तं–अङ्गप्रत्यङ्गोपाङ्गानां यथोक्तवैचित्र्यभावात् सुरूपं–शोभनं रूपं समुदायगतं येषां ते सुजातसुविभक्तसुरूपकाः **'पासाईया'** इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ **'उत्तरकुराए णं भंते! कुराए'** इत्यादि, उत्तरकुरुषु भदन्त! कुरुषु मनुजीनां कीदृश आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूपसम्भव इति भावः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! ता मनुष्यः सुजातसर्वाङ्गसुन्दर्यः–सुजातानि–यथोक्तप्रमाणोपेततया शोभनजन्मानि यानि सर्वाण्यङ्गानि–उदरप्रभृतीनि तैः सुन्दर्यः–सुन्दराकाराः सुजातसर्वाङ्गसुन्दर्यः **'पहाणमहेलागुणजुत्ताओ'** प्रधाना–अतिशायिनो ये महेलागुणाः–प्रियंवदत्वभर्तृचित्तानुवर्त्तकत्वप्रभृतयस्तैर्युक्ता–उपपेताः प्रधानमहेलागुणयुक्ताः **'कंतविसयमिउसुकुमालकुम्मसंठिवियसि-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

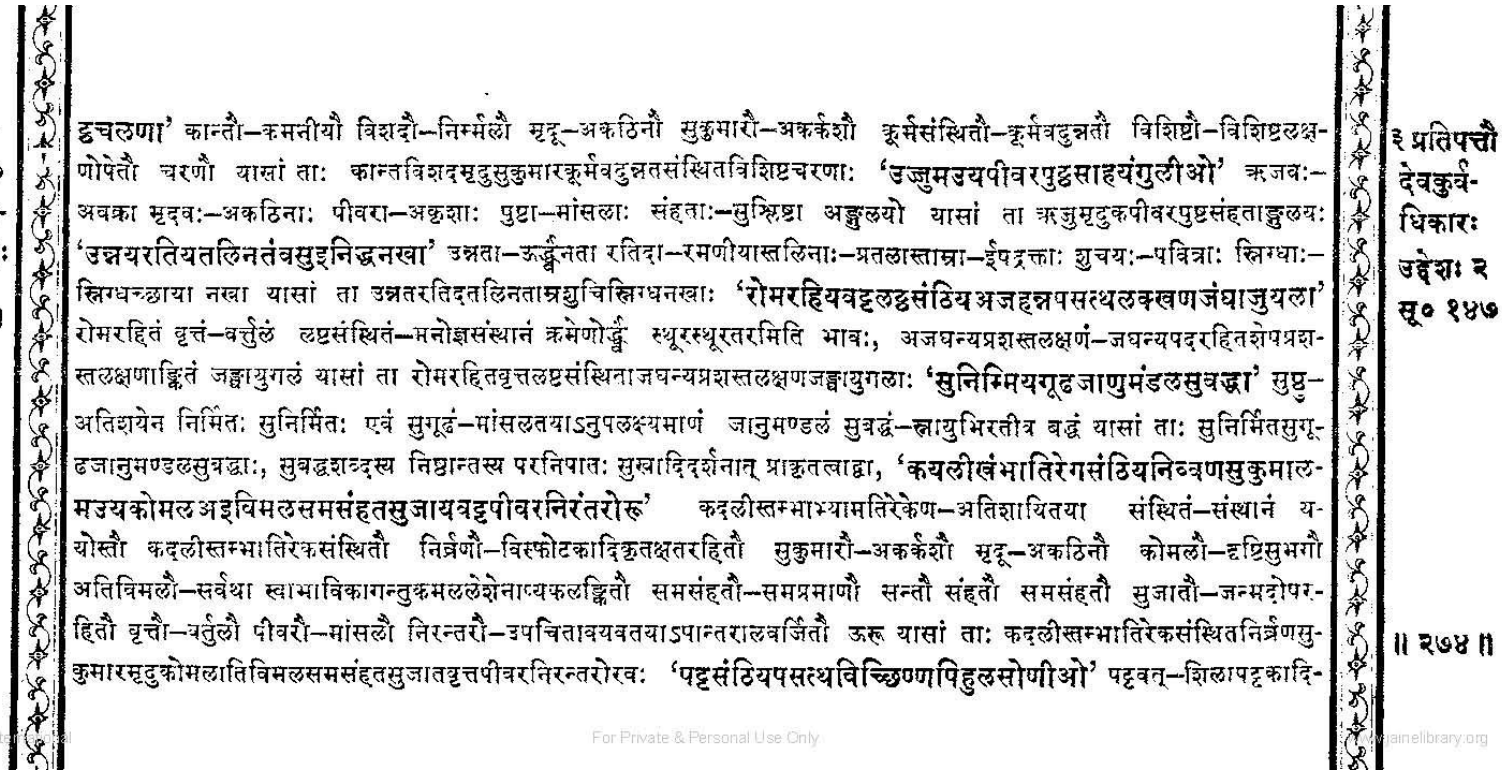

श्रीजीवा-जीवाभि० मलयगि-रीयावृत्तिः ॥ २७४ ॥

ट्ठचलणा' कान्तौ–कमनीयौ विशदौ–निर्मलौ मृदू–अकठिनौ सुकुमारौ–अकर्कशौ कूर्मसंस्थितौ–कूर्मवदुन्नतौ विशिष्टौ–विशिष्टलक्षणोपेतौ चरणौ यासां ताः कान्तविशदमृदुसुकुमारकूर्मवदुन्नतसंस्थितविशिष्टचरणाः **'उज्जुमउयपीवरपुट्ठसाहयंगुलीओ'** ऋजवः–अवक्रा मृदवः–अकठिनाः पीवरा–अकृशाः पुष्टा–मांसलाः संहताः–सुश्लिष्टा अङ्गुलयो यासां ता ऋजुमृदुकपीवरपुष्टसंहताङ्गुलयः **'उन्नयरतियतलिनतंबसुइनिद्धनखा'** उन्नता–ऊर्द्धनता रतिदा–रमणीयास्तलिनाः–प्रतलास्ताम्राः–ईषद्रक्ताः शुचयः–पवित्राः स्निग्धाः–स्निग्धच्छाया नखा यासां ता उन्नतरतिदतलिनताम्रशुचिस्निग्धनखाः **'रोमरहियवट्टलट्ठसंठियअजहन्नपसत्थलक्खणजंघाजुयला'** रोमरहितं वृत्तं–वर्तुलं लष्टसंस्थितं–मनोज्ञसंस्थानं क्रमेणोर्द्धं स्थूरस्थूरतरमिति भावः, अजघन्यप्रशस्तलक्षणं–जघन्यपदरहितशेषप्रशस्तलक्षणाङ्कितं जङ्घायुगलं यासां ता रोमरहितवृत्तलष्टसंस्थिताजघन्यप्रशस्तलक्षणजङ्घायुगलाः **'सुनिम्मियगूढजाणुमंडलसुबद्धा'** सुष्ठु–अतिशयेन निर्मितः सुनिर्मितः एवं सुगूढं–मांसलतयाऽनुपलक्ष्यमाणं जानुमण्डलं सुबद्धं–स्नायुभिरतीव बद्धं यासां ताः सुनिर्मितसुगूढजानुमण्डलसुबद्धाः, सुबद्धशब्दस्य निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात् प्राकृतत्वाद्वा, **'कयलीखंभातिरेगसंठियनिव्वणसुकुमालमउयकोमलअइविमलसमसंहतसुजायवट्टपीवरनिरंतरोरू'** कदलीस्तम्भाभ्यामतिरेकेण–अतिशायितया संस्थितं–संस्थानं ययोस्तौ कदलीस्तम्भातिरेकसंस्थितौ निर्व्रणौ–विस्फोटकादिकृतक्षतरहितौ सुकुमारौ–अकर्कशौ मृदू–अकठिनौ कोमलौ–दृष्टिसुभगौ अतिविमलौ–सर्वथा स्वाभाविकागन्तुकमललेशेनाप्यकलङ्कितौ समसंहतौ–समप्रमाणौ सन्तौ संहतौ समसंहतौ सुजातौ–जन्मदोषरहितौ वृत्तौ–वर्तुलौ पीवरौ–मांसलौ निरन्तरौ–उपचितावयवतयाऽपान्तरालवर्जितौ ऊरू यासां ताः कदलीस्तम्भातिरेकसंस्थितनिर्व्रणसुकुमारमृदुकोमलातिविमलसमसंहतसुजातवृत्तपीवरनिरन्तरोरवः **'पट्टसंठियपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणीओ'** पट्टवत्–शिलापट्टकादि-

३ प्रतिपत्तौ देवकुर्वधिकारः उद्देशः २ सू० १४७

॥ २७४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

वत् संस्थिता पट्टसंस्थिता प्रशस्ता प्रशस्तलक्षणोपेतत्वाद् विस्तीर्णा ऊर्द्ध्वोध: पृथुला दक्षिणोत्तरत: श्रोणि:–कटेरग्रभागो यासां ता: पट्टसंस्थितविस्तीर्णपृथुलश्रोणय: **'वयणायामप्पमाणदुगुणियविसालमंसलसुबद्धजहणवरधारणीओ'** वदनस्य–मुखस्यायामप्रमाणं–द्वादशाङ्गुलानि तस्माद् द्विगुणितं–द्विगुणप्रमाणं सद् विशालं वदनायामप्रमाणद्विगुणितविशालं मांसलमप्युपचितं सुबद्धं–अतीव सुबद्धावयवं न तु श्लथमिति भाव: जघनवरं–वरजघनं, वरशब्दस्य विशेषणस्यापि सत: परनिपात: प्राकृतत्वात्, धारयन्तीत्येवंशीला वदनायामप्रमाणद्विगुणितविशालमांसलसुबद्धजघनवरधारिण्य: **'वज्जविराइयपसत्थलक्खणनिरोदरतिवलीविणीयतणुनमियमज्झियाओ'** वज्रस्येव विराजितं वज्रविराजितं प्रशस्तानि लक्षणानि यत्र तत् प्रशस्तलक्षणं निरुदरं–विकृतोदररहितं त्रिवलीविनीतं–तिस्रो वलयो विनीता–विशेषत: प्रापिता यत्र तत् त्रिवलीविनीतं तनु–कृशं नतं तनुनतमीषन्नतमित्यर्थ: मध्यं यासां ता वज्रविराजितप्रशस्तलक्षणनिरुदरत्रिवलीविनीततनुनतमध्यका: **'उज्जुयसमसंहियजच्चतणुकसिणनिद्धआएज्जलडहसुविभत्तसुजायसोभंतरुइलरमणिज्जरोमराई'** ऋजुका–न वक्रा समा–न काप्युद्वन्तुरा संहिता–सन्तता न त्वपान्तरालव्यवच्छिन्ना जात्या–प्रधाना तन्वी न तु स्थूरा कृष्णा न मर्कटवर्णा स्निग्धा–स्निग्धच्छाया आदेया–दर्शनपथप्राप्ता सन्ती उपादेया सुभगेति भाव:, एतदेव समर्थयति–लटहा–सलवणिमाऽत एव आदेया सुविभक्ता–सुविभागा सुजाता–जन्मदोषरहिता अत एव शोभमाना रुचिरा–दीप्रा रमणीया–द्रष्टृमनोरमणशीला रोमराजिर्यासां ता ऋजुकसमसहितजात्यतनुकृष्णस्निग्धादेयलटहसुविभक्तसुजातशोभमानरुचिररमणीयरोमराजय: 'गंगावत्तपयाहिणावत्ततरंगभंगुररविकिरणतरुणबोहियआकोसायंतपउमगंभीरवियडनाभा' इति पूर्ववत्, **'अणुब्भडपसत्थपीणकुच्छीओ'** अनुद्भटा–अनुल्बणा प्रशस्ता–प्रशस्तलक्षणा पीना कुक्षिर्यासां ता अनुद्भटप्रशस्तपीनकुक्ष्य: 'सन्नयपासा संगतपासा सुंदरपासा सुजायपासा मिय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

माइयपीणरइयपासा अकरंडयकणगरुयगनिम्मलसुजायनिरुवहयगायलट्ठीओ' इति पूर्ववत्, **'कंचणकलससुप्पमाणसमसंहितसुजा-यलट्ठचूचुयआमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुन्नयरइयसंठियपओहराओ'** काञ्चनकलशाविव काञ्चनकलशौ सुप्रमाणौ–स्वशरी-रानुसारिप्रमाणोपेतौ समौ–नैको हीनो नैकोऽधिक इति भाव: संहितौ–संततौ अपान्तरालरहिताविति भाव: सुजातौ–जन्मदोषर-हितौ लष्टौ–मनोज्ञौ चूचुक आमेलक:–आपीडक: शेखरो ययोस्तौ चूचुकापीडकौ 'जमलजुगले'ति यमलयुगलं–समश्रेणीकयुगलरूपौ वर्त्तिताविव वर्त्तितौ कठिनाविति भाव: अभ्युन्नतौ–पत्युरभिमुखमुन्नतौ रतिदं–रतिकारि संस्थितं–संस्थानं ययोस्तौ रतिदसंस्थितौ पयो-धरौ यासां ता: काञ्चनकलशसुप्रमाणसमसंहितसुजातलष्टचूचुकापीडयमलयुगलवर्त्तिताभ्युन्नतरतिदसंस्थितपयोधरा: **'अणुपुव्वतणुय-गोपुच्छवट्टसमसहितनमियआएज्जललियवाहाओ'** आनुपूर्व्येण–क्रमेण तनुकौ आनुपूर्व्यतनुकौ अत एव गोपुच्छवद् वृत्तौ–वर्तुलौ समौ–समप्रमाणौ संहितौ–स्वशरीरसंश्लिष्टौ नतौ स्कन्धदेशस्य नतत्वात् आदेयौ–अतिसुभगतयोपादेयौ ललितौ–मनोज्ञचेष्टाकलितौ बाहू यासां ता आनुपूर्व्यतनुगोपुच्छवृत्तसंहितनतादेयललितबाहव: **'तंबनहा'** ताम्रा–ईषद्रक्ता नखा:–कररुहा यासां तास्ताम्रनखा: **'मंसलग्गहत्था'** मांसलौ अग्रहस्तौ बाह्वग्रभागवर्त्तिनौ हस्तौ यासां ता मांसलाग्रहस्ता: **'पीवरकोमलवरंगुलीया'** पीवरा–उपचिता: कोमला:–सुकुमारा वरा:–प्रमाणलक्षणोपेततया प्रधाना अङ्गुलयो यासां ता: पीवरकोमलवराङ्गुलिका: **'निद्धपाणिरेहा'** स्निग्धा: पाणौ रेखा यासां ता: तथा, 'रविससिसंखचक्कसोत्थियविभत्तसुविरइयपाणिलेहा' इति पूर्ववत् **'पीणुन्नयकक्खवक्खवत्थिप्पएसा'** पीना–उपचितावयवा उन्नता–अभ्युन्नता: कक्षावक्षोवस्तिरूपा: प्रदेशा यासां ता: पीनोन्नतकक्षावक्षोवस्तिप्रदेशा: **'पडिपुण्णगलक-वोला'** प्रतिपूर्णौ गलकपोलौ च यासां तास्तथा 'चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवा' पूर्ववत् **'मंसलसंठियपसत्थहणुया'** मांसलम्

॥ २७५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

–उपचितमांसं संस्थितं–विशिष्टसंस्थानं प्रशस्तं–प्रशस्तलक्षणोपेतं हनुकं यासां ता सांवलसंस्थितप्रशस्तहनुकाः **'दाडिमपुप्फप्पगास-पीवरप्पवराहरा'** दाडिमपुष्पप्रकाशः पीवरः प्रवरः–सुभगोऽधरो यासां ता दाडिमपुष्पप्रकाशपीवरप्रवराधराः **'सुंदरोत्तरोट्ठा'** व्यक्तं **'दहिदगरयचंदकुंदवासंतियमउलधवलअच्छिद्दविमलदसणा'** दधि–प्रतीतं दकरज–उदककणाः चन्द्रः–प्रतीतः कुन्दः–कुसुमं वासन्तिकामुकुलं–वासन्तिकाकलिका तद्वद्धवला अच्छिद्राः–छिद्ररहिता विमला–मलरहिता दशना–दन्ता यासां ता दधिदकरजश्चन्द्र-कुन्दवासन्तिकामुकुलधवलाच्छिद्रविमलदशनाः **'रत्तुप्पलपत्तमउयसूमालतालुजीहा'** रक्तोत्पलवद् रक्तं मृदु–अकठिनं सुकुमारं–अकर्कशं तालु जिह्वा च यासां ता रक्तोत्पलमृदुसुकुमारतालुजिह्वाः **'कणइरमुकुलअकुडियअब्भुग्गयउज्जुतुंगनासा'** कणयरा–अतिस्निग्धतया श्लक्ष्णश्लक्ष्णस्वेदकणाकीर्णा मुकुला–नासापुटद्वयस्यापि यथोक्तप्रमाणतया संवृत्ताकारतया च मुकुलाकारा अभ्युद्गता–अभ्युन्नता ऋजुका–सरला तुङ्गा–उच्चा नासा यासां तास्तथा, **'सारयनवकमलकुमुयकुवलयविमुक्कदलनिगरसरिसलक्खणंकिय-कंतनयणाओ'** शारदं–शरन्मासभावि यन्नवं–प्रत्यग्रं कमलं–पद्मं कुमुदं–कैरवं कुवलयं–नीलोत्पलं तैर्विमुक्तो यो दलनिकरस्तत्सदृशे, किमुक्तं भवति?–एवं नामायतदीर्घे मनोहारिणी नयने यत् शारदान्नवात् कमलाद्वा कुमुदाद्वा कुवलयाद्वा उत्पद्य पत्रद्वयमिवावस्थितमाभातीति, लक्षणाङ्किते–प्रशस्तलक्षणोपेते नयने यासां ताः शारदनवकमलकुमुदकुवलयविमुक्तदलनिकरसदृशलक्षणाङ्कितनयनाः, एतदेव किञ्चिद्विशेषार्थमाह–**'पत्तलचपलायंततंबलोयणाओ'** पत्रले–पक्ष्मवती चपलायमाने ताम्रे–क्वचित्प्रदेशे ईषद्रक्ते लोचने यासां ताः पत्रलचपलायमानताम्रलोचनाः 'आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइसंठियसंगयआगयसुजायभुमया अल्लीणपमायजुत्तसवणा' इति पूर्ववत्, **'पीणमट्ठरमणिज्जगंडलेहा'** पीना–उपचिता मृष्टा–मसृणा रमणीया–रम्या गण्डरेखा–कपोलपाली यासां ताः पीनमृष्टरमणीयगण्ड-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखाः **'चउरंसपसत्थसमनिडाला'** चतुरस्रं–चतुष्कोणं प्रशस्तं–प्रशस्तलक्षणोपेतं समं–ऊर्द्ध्वाधस्तया दक्षिणोत्तरतया च तुल्यप्रमाणं ललाटं यासां ताश्चतुरस्रप्रशस्तसमललाटाः **'कोमुईरयणिकरविमलपडिपुण्णसोमवयणा'** कौमुदी–कार्त्तिकी पौर्णमासी तस्यां रजनिकर इव विमलं प्रतिपूर्णं सोमं च वदनं यासां ताः कौमुदीरजनिकरविमलप्रतिपूर्णसोमवदनाः, सोमशब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, **'छत्तुन्नयउत्तमंगाओ'** छत्रवन्मध्ये उन्नतमुत्तमाङ्गं यासां ताश्छत्रोन्नतोत्तमाङ्गाः **'कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरयाओ'** कुटिलाः सुस्निग्धा दीर्घाः शिरोजा यासां ताः कुटिलसुस्निग्धदीर्घशिरोजाः, छत्रध्वजयूपस्तूपदामनीकमण्डलुकलशवापीसौवस्तिकपताकायवमत्स्यकूर्मरथवरमकरशुकस्थालाङ्कुशाष्टापदसुप्रतिष्ठकमयूरश्रीदामाभिषेकतोरणमेदिन्युदधिवरभवनगिरिवरादर्शललितगजवृषभसिंहचामररूपाणि उत्तमानि–प्रधानानि प्रशस्तानि–सामुद्रिकशास्त्रेषु प्रशंसास्पदीभूतानि द्वात्रिंशतं लक्षणानि धारयन्तीति छत्रचामरयावदुत्तमप्रशस्तद्वात्रिंशल्लक्षणधराः **'हंससरिसगतीओ'** हंसस्य सदृशी गतिर्यासां ता हंससदृशगतयः, कोकिलाया इव या मधुरा गीस्तया सुस्वराः कोकिलामधुरगीःसुस्वराः, तथा कान्ताः–कमनीयाः, तथा सर्वस्य–तत्प्रत्यासन्नवर्त्तिनो लोकस्यानुमताः–संमता न मनागपि द्वेष्या इति भावः, व्यपगतवलिपलिताः, तथा व्यङ्गदुर्वर्णव्याधिदौर्भाग्यशोकमुक्ताः, स्वप्नेऽपि तेषामसम्भवात्, स्वभावत एव शृंगारः–शृङ्गाररूपश्चारुः–प्रधानो वेषो यासां ताः स्वभावशृङ्गारचारुवेषाः, तथा **'संगयगयहसियभणियचेट्ठियविलाससंलावणिउणजुत्तोवयारकुसला'** सङ्गतं–सुश्लिष्टं यद् गतं–गमनं हंसीगमनवत् हसितं–हसनं कपोलविकासि प्रेमसंदर्शि च भणितं–भणनं गम्भीरं–मन्मथोद्दीपि च चेष्टितं–चेष्टनं सकाममङ्गप्रत्यङ्गोपदर्शनादि विलासो–नेत्रविकारः संलापः–पत्या सहासकामस्वहृदयप्रत्यर्पणक्षमं परस्परसंभाषणं निपुणः–परमनैपुण्योपेतो युक्तश्च यः शेष उपचारस्तत्र कुशलाः संगतगतहसितभणितचेष्टितविलाससंलापनिपुणयुक्तोपचार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

कलिताः, एवंविधविशेषणाश्च स्वपतिं प्रति द्रष्टव्या न परपुरुषं प्रति, तथा क्षेत्रस्वाभाव्यतः प्रतनुकामतया परपुरुषं प्रति तासामभिलाषासम्भवात्, पूर्वोक्तमेवार्थं संपिण्ड्याह–वरस्तनजघनवदनकरचरणनयनलावण्यवर्णयौवनविलासकलिता नन्दनवनचारिण्य इवाप्सरसः, **'अच्छेरपेच्छणिज्जा'** इति आश्चर्यप्रेक्षणीयाः **'पासाईयाओ'** इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ सम्प्रति स्त्रीपुंसविशेषमन्तरेण सामान्यतस्तत्रत्यमनुष्याणां स्वरूपं प्रतिपिपादयिषुरिदमाह—**'ते णं मणुया ओहस्सरा'** इत्यादि, ते उत्तरकुरुनिवासिनो मनुष्या ओघः–प्रवाही स्वरो येषां ते ओघस्वराः, हंसस्येव मधुरः स्वरो येषां ते हंसस्वराः, क्रौञ्चस्येवाप्रयासविनिर्गतोऽपि दीर्घदेशव्यापी स्वरो येषां ते क्रौञ्चस्वराः, एवं सिंहस्वरा दुन्दुभिस्वरा नन्दिस्वराः, नन्द्या इव घोषः–अनुनादो येषां ते नन्दीघोषाः, मञ्जुः–प्रियः स्वरो येषां ते मञ्जुस्वराः, मञ्जुर्घोषो येषां ते मञ्जुघोषाः, एतदेव पदद्वयेन व्याचष्टे–सुस्वराः सुस्वरनिर्घोषाः **'पउमुप्पलगंधसरिसनीसाससुरभिवयणा'** पद्मं–कमलमुत्पलं–नीलोत्पलं अथवा पद्मं–पद्मकाभिधानं गन्धद्रव्यं उत्पलम्–उत्पलकुष्ठं तयोर्गन्ध्येन–सौरभ्येण सदृशः–समो यो निःश्वासस्तेन सुरभिगन्धि वदनं–मुखं येषां ते पद्मोत्पलगन्धसदृशनिःश्वाससुरभिवदनाः, तथा छवी–छविमन्त उदात्तवर्णया सुकुमारया च त्वचा युक्ता इति भावः **'निरायंकउत्तमपसत्थअइसेसनिरुवमतणू'** निरातङ्का–नीरोगा उत्तमा–उत्तमलक्षणोपेता अतिशेषा–कर्म्मभूमकमनुष्यापेक्षयाऽतिशायिनी अत एव निरुपमा–उपमारहिता तनुः–शरीरं येषां ते निरातङ्कोत्तमप्रशस्तातिशेषनिरुपमतनवः, एतदेव सविशेषमाह—**'जल्लमलकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरनिरुवलेवा'** याति च लगति चेति जल्लः–प्रस्वेदरादित्वान्निष्पत्तिः स्वल्पप्रयत्नापनेयः स चासौ मलश्च जल्लमलः स च कलङ्कं च–दुष्टतिलकादिकं चित्रादिकं वा स्वेदश्च–प्रस्वेदः रजश्च–रेणुर्दोषो–मालिन्यकारिणी चेष्टा तेन वर्जितं निरुपलेपं च–मूत्रविष्ठाद्युपलेपरहितं शरीरं येषां ते जल्लमलकलङ्कस्वेदरजोदोषवर्जित-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

निरुपलेपशरीराः, सूत्रे च निरुपलेपशब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात्, **'छायाउज्जोवियंगमंगा'** छायया–शरीरप्रभया उद्द्योतितमङ्गमङ्गम्–अङ्गप्रत्यङ्गं येषां ते तथा, **'अनुलोमवाउवेगा'** अनुलोमः–अनुकूलो वायुवेगः–शरीरान्तर्वर्तिवातजवो येषां ते अनुलोमवायुवेगाः, वायुगुल्मरहितोदरमध्यप्रदेशा इति भावः, आह च मूलटीकाकारः—"उदरमध्यप्रदेशे वायुगुल्मो येषां तेषामनुलोमो वायुवेगो न भवति, तदभावाच्च तेषामनुलोमो भवति वायुवेगो मिथुनाना"मिति, 'कङ्कग्रहणी' इति कङ्कः–पक्षिविशेषस्तस्येव ग्रहणिः–गुदाशयो नीरोगवर्चस्कतया येषां ते कङ्कग्रहणयः, **'कवोयपरिणामा'** कपोतस्येव–पक्षिविशेषस्य परिणाम–आहारपाको येषां ते कपोतपरिणामाः, कपोतस्य हि जाठराग्निः पाषाणलवानपि जरयतीति श्रुतिः, एवं तेषामप्यत्यर्गलाहारग्रहणेऽपि न जातुचिदप्यजीर्णदोषा भवन्तीति, **'सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणया'** इति शकुनेरिव–पक्षिण इव पुरीषोत्सर्गे निर्लेपतया **'पोस'**ति पोसः–अपानदेशः 'पुसउत्सर्गे' पुरीषमुत्सृजन्त्यनेनेति व्युत्पत्तेः, तथा लघुपरिणामतया पृष्ठं च प्रतीतं अन्तरे च–पृष्ठोदरयोरन्तराले पार्श्वावित्यर्थः ऊरू चेति द्वन्द्वः ते परिणता येषां ते शकुनिपोसपृष्ठान्तरोरुपरिणताः, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, **'विग्गहियउन्नयकुच्छी'** विग्रहिता–मुष्टिग्राह्या उन्नता च कुक्षियेंषां ते विग्रहितोन्नतकुक्षयः, वज्रर्षभनाराचं संहननं येषां ते वज्रर्षभनाराचसंहनना:, तथा समचतुरस्रं च तत् संस्थानं च समचतुरस्रसंस्थानं तेन संस्थिताः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः, षड्धनुःसहस्रोच्छ्रिताः–त्रिगव्यूतप्रमाणोच्छ्रयाः, तथा तेषामुत्तरकुरुवास्तव्यानां मनुष्याणां द्वे पृष्ठकरण्डकशते षट्पञ्चाशे–षट्पञ्चाशदधिके प्रज्ञप्ते तीर्थकरगणधरैः ॥ **'ते णं मणुया'** इत्यादि, ते उत्तरकुरुवास्तव्या मनुजाः प्रकृत्या–स्वभावेन भद्रकाः–अपरानुपतापहेतुकायवाङ्मनश्चेष्टाः, तथा प्रकृत्या–स्वभावेन न तु परोपदेशतः परेभ्यो भयतो वोपशान्ताः, तथा प्रकृत्या–स्वभावेन प्रतनवः–अतिमन्दीभूताः क्रोधमानमायालोभा येषां ते प्रक-

॥ २७७ ॥

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः, अत एव मृदु–मनोज्ञं परिणामसुखावहमिति भावः यन्मार्दवं तेन संपन्ना मृदुमार्दवसंपन्ना न कपटमार्दवोपेताः **'अल्लीणा'** इति आ–समन्तात्सर्वासु क्रियासु लीना–गुप्ता आलीना नोल्बणचेष्टाकारिण इत्यर्थः, भद्रकाः–सकलतत्क्षेत्रोचितकल्याणभागिनः विनीता–बृहत्पुरुषविनयकरणशीलाः अल्पेच्छा–मणिकनकादिविषयप्रतिबन्धरहिता अत एवासन्निधिसञ्चया–न विद्यते सन्निधिरूपः सञ्चयो येषां ते तथा, **'विडिमंतरपरिवसणा'** विडिमान्तरेषु–शाखान्तरेषु प्रासादाद्याकृतिषु परिवसनं–आकालमावासो येषां ते विडिमान्तरपरिवसनाः **'जहिच्छियकामकामिणो'** यथेप्सितान् मनोवाञ्छितान् कामान्–शब्दादीन् कामयन्त इत्येवंशीला यथेप्सितकामकामिनः, ते उत्तरकुरुवास्तव्या णमिति पूर्ववत् मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसि णं भंते!'** इत्यादि, तेषां भदन्त! उत्तरकुरुवास्तव्यानां मनुष्याणां **'केवइकालस्स'**त्ति सप्तम्यर्थे षष्ठी कियति काले गते भूय आहारार्थः समुत्पद्यते?–आहारलक्षणं प्रयोजनमुपतिष्ठते?, भगवानाह–गौतम! **'अट्ठमभत्तस्य'** अत्रापि सप्तम्यर्थे षष्ठी अष्टमभक्तेऽतिक्रान्ते आहारार्थः समुत्पद्यते ॥ **'ते णं भंते!'** इत्यादि, ते उत्तरकुरुवास्तव्या भदन्त! मनुष्याः किमाहारमाहारयन्ति?, भगवानाह–गौतम! पृथिवीपुष्पफलाहाराः–पृथिवीपुष्पफलानि च कल्पद्रुमाणामाहारो येषां ते तथा ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसि णं भंते'** इत्यादि, तस्या भदन्त! पृथिव्याः कीदृश आस्वादः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! **'से जहा नामए'** इत्यादि, तत्–लोके प्रसिद्धं यथा नाम 'ए' इति वाक्यालङ्कारेऽखण्डमिति वा, इतिशब्द उपमाभूतवस्तुनामपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्दो विकल्पने, एवं सर्वत्र, गुड इति वा शर्करा इति वा, इयं शर्करा काशादिप्रभवा द्रष्टव्या, मत्स्यण्डिका इति वा, मत्स्यण्डी–खण्डशर्करा, पर्पटमोदक इति वा बिसकन्द इति वा पुष्पोत्तरेति वा पद्मोत्तरेति वा विजया इति वा महाविजया इति वा उपमा इति वा अनुपमा इति वा, पर्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

टमोदकादयः खाद्यविशेषा लोकतः प्रत्येतव्याः, 'चाउरक्के वा गोखीरे' इत्यादि वा, चातुरक्यं–चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, तच्चैवं–गवां पुण्ड्रेक्षूद्भवेक्षुचारिणीनामनातङ्कानां कृष्णानां यत्क्षीरं तदन्यान्याभ्यः कृष्णगोभ्य एव यथोक्तगुणाभ्यः पानं दीयते, तत्क्षीरमप्येवंभूताभ्योऽन्याभ्यस्तत्क्षीरमप्यन्याभ्य इति चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं, एवंभूतं यच्चातुरक्यं गोक्षीरं खण्डगुडमत्स्यण्डिकोपनीतं–खण्डगुडमत्स्यण्डिका उपनीता यत्र तत्तथा, सुखादिदर्शनान्निष्ठान्तस्य परनिपातः, खण्डादिभिः सुरसतां प्रापितमिति भावः, **'मंदग्गिकढिए'** मन्दमग्निना कथितं मन्दाग्निकथितम्, अत्यग्निकथितं हि विरसं विगन्धादि च भवतीति मन्दग्रहणं, वर्णाद्यतिशयप्रतिपादनार्थमेवाह –वर्णेन–सामर्थ्यादतिशायिना अन्यथा वर्णोपादाननैरर्थक्यापत्तेः उपपेतं–युक्तं, एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेन चातिशायिनोपपेतं, एवमुक्ते गौतम आह–भगवन्! भवेदेतद्रूपः पृथिव्या आस्वादः?, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थः, तस्याः पृथिव्या इतो–गुडखण्डशर्करादेरिष्टतर एव, यावत्करणात् 'कंततराए चेव पियतराए चेव मणामतराए चेवे'ति परिग्रहः, आस्वादः प्रज्ञप्तः ॥ पुष्पफलादीनामास्वादनं प्रच्छन्नाह—**'तेसि णं भंते! पुप्फफलाण'** मित्यादि, तेषां कल्पपादपसत्कानां पुष्पफलानां कीदृश आस्वादः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! **'से जहा नामए'** इत्यादि तद्यथा नाम राज्ञः, स च राजा लोके कतिपयदेशाधिपतिरपि प्राप्यते तत आह–चतुरन्तचक्रवर्त्तिनः–चतुर्षु अन्तेषु त्रिसमुद्रहिमवत्परिच्छिन्नेषु चक्रेण वर्त्तितुं शीलं यस्यासौ चक्रवर्त्ती तस्य कल्याणं–एकान्तसुखावहं भोजनं शतसहस्रनिष्पन्नं–लक्षनिष्पन्नं वर्णेनातिशायिनेति गम्यते, एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेनोपपेतं, आस्वादनीयं सामान्येन विस्वादनीयं विशेषतस्तद्रसप्रकर्षमधिकृत्य दीपनीयमग्निवृद्धिकरं, दीपयति हि जाठराग्निमिति दीपनीयं, बाहुलकात्कर्त्तर्यनीयप्रत्ययः, एवं दर्प्पणीयमुत्साहवृद्धिहेतुत्वात्, मदनीयं मन्मथजननात्, बृंहणीयं धातूपचयकारित्वात्, सर्वेन्द्रियाणि गात्रं च प्रह्लादयतीति स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

वेंन्द्रियगात्रप्रह्लादनीयं, वैशद्येन तत्प्रह्लादहेतुत्वात्, एवमुक्ते गौतम आह–भगवन्! भवेदेतद्रूपः पुष्पफलानामास्वादः?, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थः, तेषां पुष्पफलानामितश्चक्रवर्त्तिभोजनादिष्टतरादिरेवास्वादः प्रज्ञप्तः ॥ **'ते णं भंते!'** इत्यादि, ते भदन्त! मनुजास्तं–अनन्तरोदितस्वरूपमाहारमाहार्य **'क्व वसतौ'** कस्मिन्नुपाश्रये 'उपयान्ति?' उपगच्छन्ति, भगवानाह–गौतम! **'वृक्षगृहालयाः'** वृक्षरूपाणि गृहाणि आलया–आश्रया येषां ते वृक्षगृहालयास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'ते णं भंते'** इत्यादि, ते भदन्त! वृक्षाः **'किंसंस्थिताः'** किमवसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! अप्येकका: कूटाकारसंस्थिताः शिखराकारसंस्थिता इत्यर्थः अप्येकका: प्रेक्षागृहसंस्थिताः अप्येकका छत्रसंस्थिताः अप्येकका ध्वजसंस्थिताः अप्येकका: स्तूपसंस्थिताः अप्येककास्तोरणसंस्थिताः अप्येकका गोपुरसंस्थिताः, गोभिः पूर्यत इति गोपुरं–पुरद्वारं, अप्येकका वेदिकासंस्थानसंस्थिताः, वेदिका–उपवेशनयोग्या भूमिः, अप्येककाश्चोप्पालसंस्थिता इत्यर्थः, चोप्पालं नाम मत्तवारणं, अप्येकका अट्टालकसंस्थिताः अट्टालकः–प्राकारस्योपर्याश्रयविशेषः, अप्येकका वीथीसंस्थिताः वीथी–मार्गः, अप्येकका: प्रासादसंस्थिताः, राज्ञां देवतानां च भवनानि प्रासादाः उत्सेधबहुला वा प्रासादास्ते चोभयेऽपि पर्यन्तशिखराः, हर्म्यं–शिखररहितं धनवतां भवनं, अप्येकका गवाक्षसंस्थिताः, गवाक्षो–वातायनं, अप्येकका वालाग्रपोतिकासंस्थिताः, वालाग्रपोतिका नाम तडागादिषु जलस्योपरि प्रासादः, अप्येकका वलभीसंस्थिताः, वलभी–गृहाणामाच्छादनं, अप्येकका वरभवनविशिष्टसंस्थानसंस्थिताः, वरभवनं सामान्यतो विशिष्टं गृहं तस्येव यद् विशिष्टं संस्थानं तेन संस्थिताः, शुभा शीतला च छाया येषां ते शुभशीतलच्छायास्ते द्रुमगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु गृहाणि वाऽस्मद्गृहकल्पानि गृहायतनानि–तेषु गृहेषु तेषां मनुष्याणामायतनानि–गमनानि गृहायतनानि?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थो, वृक्षगृहालयास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु ग्रामा इति वा यावत्सन्निवेशा इति वा, यावत्करणान्नगरादिपरिग्रहः, तत्र ग्रसन्ति बुद्ध्यादीन् गुणानिति यदिवा गम्याः–शास्त्रप्रसिद्धानामष्टादशानां कराणामिति ग्रामाः, न विद्यते करो येषु तानि नकराणि, नखादय इति निपातनान्नञोऽनादेशाभावः, निगमाः–प्रभूतवणिग्वर्गावासाः, पांशुप्राकारनिबद्धानि खेटानि, श्लक्ष्णप्राकारवेष्टितानि कर्वटानि, अर्द्धतृतीययोजनान्तर्ग्रामरहितानि मडम्बानि, 'पट्टणाइ वेंति पट्टनानि पत्तनानि वा, उभयत्रापि प्राकृतत्वेन निर्देशस्य समानत्वात्, तत्र यन्नौभिरेव गम्यं तत्पट्टनं, यत्पुनः शकटैर्घोटकैर्नौभिश्च गम्यं तत्पत्तनं यथा भरुकच्छं, उक्तं च–"पत्तनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च। नौभिरेव तु यद्गम्यं, पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥ १ ॥" द्रोणमुखानि–बाहुल्येन जलनिर्गमप्रवेशानि, आकरा–हिरण्याकरादयः, आश्रमाः–तापसावसथोपलक्षिता आश्रयाः, संबाधा–यात्रासमागतप्रभूतजननिवेशाः, राजधान्यो यत्र नकरे पत्तनेऽन्यत्र वा स्वयं राजा वसति, सन्निवेशा इति–सन्निवेशो यत्र सार्थादिरावासितः, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थो, यद्–यस्मान्नेच्छितकामगामिनः–न इच्छितं–इच्छाविषयीकृतं नेच्छितं, नायं नञ् किन्तु नशब्द इत्यत्रा(ना)देशाभावो यथा 'नैके द्वेषस्य पर्यायाः' इत्यत्र, नेच्छितं–इच्छाया अविषयीकृतं कामं–स्वेच्छया गच्छन्तीत्येवंशीला नेच्छितकामगामिनस्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु 'असयः' अस्युपलक्षिताः सेवकाः पुरुषाः, मष्युपलक्षिता लेखनजीविनः, कृषिरिति कृषिकर्मोपजीविनः, 'पणी'ति पणितं पण्यमिति वा क्रयविक्रयोपजीविनः, वाणिज्यमिति वाणिज्यकलोपजीविनः?, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थो, व्यपगतासिमषीकृषिपण्यवाणिज्यास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते–द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु हिरण्यमिति वा–हिरण्यं–अघटितं सुवर्णं कांस्यं–कांस्यभाजनजातिः 'दूस'मिति वा दूष्यं वस्त्रजातिः, मणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालसत्सारस्वापतेयानि वा, तत्र मणिमौक्तिकशङ्खशिलाप्रवालानि प्रतीतानि सद्–विद्यमानं सारं –प्रधानं स्वापतेयं–धनं सत्सारस्वापतेयं, भगवानाह–हन्त! अस्ति, 'नो चेव ण'मित्यादि, न पुनस्तेषां मनुजानां तद्विषयस्तीव्रो ममत्वभावः समुत्पद्यते, मन्दरागादितया विशुद्धाशयत्वात् ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु राजेति वा राजा–चक्रवर्त्ती बलदेववासुदेवो महामाण्डलिको वा युवराज इति वा–उत्थिताशनः ईश्वरो–भोगिकादि, अणिमाद्यष्टविधैश्वर्ययुक्त ईश्वर इत्येके, तलवर इति वा, तलवरो नाम परितुष्टनरपतिप्रदत्तरत्नालङ्कृतसौवर्णपट्टविभूषितशिराः, कौटुम्बिक इति वा, कतिपयकुटुम्बप्रभुः कौटुम्बिकः, माडम्बिक इति वा, यस्य प्रत्यासन्नं ग्रामनगरादिकमपरं नास्ति तत्सर्वतश्छिन्नं जनाश्रयविशेषरूपं मडम्बं तस्याधिपतिर्माडम्बिकः, इभ्य इति वा, इभो–हस्ती तत्प्रमाणं द्रव्यमर्हतीतीभ्यः, यत्सत्कपुञ्जीकृतहिरण्यरत्नादिद्रव्येणान्तरितो हस्त्यपि न दृश्यते सोऽधिकतरद्रव्यो वा इभ्य इत्यर्थः, श्रेष्ठीति वा श्रीदेवताऽध्यासितसौवर्णपट्टविभूषितोत्तमाङ्गः पुरज्येष्ठो वणिग्विशेषः श्रेष्ठी, सेनापतिरिति वा हस्त्यश्वरथपदातिसमुदायलक्षणायाः सेनायाः प्रभुः सेनापतिः, सार्थवाह इति वा, "गणिमं धरिमं मेज्जं पारिच्छं चेव दव्वजायं तु । घेत्तूणं लाभत्थं वच्चइ जो अन्नदेसं तु ॥ १ ॥ निव्वहुमओ पसिद्धो दीणाणाहाण वच्छलो पंथे । सो सत्थवाहनामं धणो व्व लोए समुव्वहइ ॥ २ ॥" एतल्लक्षणयुक्तः सार्थवाहः, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थो, व्यपगतर्द्धिसत्कारा–

१ गणिमं धरिमं मेयं परिच्छेयं चैव द्रव्यजातं तु । गृहीत्वा लाभार्थं व्रजति योऽन्यदेशं तु ॥ १ ॥ निर्वहुमतः प्रसिद्धो दीनानाथानां वत्सलः पथि । स सार्थवाहनामा धन इव लोके समुद्वहति ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

व्यपगता ऋद्धिः–विभवैश्वर्यं सत्कारश्च–सेव्यतालक्षणो येभ्यस्ते तथा उत्तरकुरुवास्तव्या मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!। 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु दास इति वा, दासः–आमरणं क्रयक्रीतः, प्रेष्य इति वा, प्रेष्यः–प्रेषणयोग्यः, शिष्य इति वा, शिष्यः–उपाध्यायस्योपासकः, भृतक इति वा, भृतको–नियतकालमधिकृत्य वेतनेन कर्म्मकरणाय धृतः, 'भागिल्लए'ति वा भागिक इति वा, भागिको नाम द्वितीयांशस्य चतुर्थांशस्य वा ग्राहकः, कर्मकारपुरुष इति वा, कर्म्मकारो लोहारादिः कर्म्मकारः?, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थो, व्यपगताभियोग्यास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः, अभिमुखं कर्म्मसु युज्यते व्यापार्यत इति वाऽभियोग्यस्तस्य भावः कर्म्म वा आभियोग्यं, 'व्यञ्जनाद् यपंचमस्य सरूपे वा' इत्येकस्य यकारस्य लोपः, व्यपगतमाभियोग्यं येभ्यस्ते तथा हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु मातेति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा सुत इति वा दुहितेति वा स्नुषेति वा?, तत्र माता–जननी पिता–जनकः सहोदरो–भ्राता सहोदरी–भगिनी वधूः–भार्या सुतः–पुत्रः सुता–दुहिता पुत्रवधूः–स्नुषा, भगवानाह–हन्त! अस्ति, तथाहि–या प्रसूते सा जननी, यो बीजं निषिक्तवान् स पिता विवक्षितः पुरुषः, सहजातो यो भ्राता एकमातृपितृकत्वात्, इतरा तस्य भगिनी, भोग्यत्वाद् भार्या, स्वमातापित्रोः स पुत्र इतरा दुहिता, स्वपुत्रभोग्यत्वात्स्नुषेति, 'नो चेव ण'मित्यादि, न पुनस्तेषां मनुजानां तीव्रं प्रेमरूपं बन्धनं समुत्पद्यते, तथा क्षेत्रस्वाभाव्यात् प्रतनुप्रेमबन्धनास्ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु अरिरिति वा–शत्रुः वैरीति वा–जातिनिबद्धवैरोपेतः, घातक इति वा, घातको योऽन्येन घातयति, वधक इति वा, वधकः–स्वयं हन्ता, प्रत्यनीक इति वा, प्रत्यनीकः–छिद्रान्वेषी, प्रत्यमित्र इति वा, प्रत्यमित्रो यः पूर्वं मित्रं भूत्वा पश्चाद्-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

मित्रो जात:?, भगवानाह–नायमर्थ: समर्थो, व्यपगतवैरानुबन्धास्ते मनुजगणा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु मित्रमिति वा मित्रं–स्नेहविषय:, वयस्य इति वा–समानवया गाढतरस्नेहविषय:, सखा इति वा–समानखादनपानो गाढतमस्नेहस्थानं, सुहृदिति वा, सुहृत्–मित्रमेव सकलकालमव्यभिचारि हितोपदेशदायि च, साङ्गतिक इति वा, साङ्गतिक:–सङ्गतिमात्रघटित:?, भगवानाह–नायमर्थ: समर्थो, व्यपगतस्नेहानुरागास्ते मनुजगणा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु 'आवाहा इति वा' आहूयन्ते स्वजनास्ताम्बूलदानाय यत्र स आवाह:–विवाहात्पूर्वस्ताम्बूलदानोत्सव:, वीवाहा इति वा, वीवाह:–परिणयनं, यज्ञा इति वा, यज्ञा:–प्रतिदिवसं स्वस्वेष्टदेवता-पूजा:, श्राद्धानीति वा, श्राद्धं–पितृक्रिया, स्थालीपाका इति वा, स्थालीपाक:–प्रतीत:, मृतपिण्डनिवेदनानीति वा–मृतेभ्य: श्मशाने तृतीयनवमादिषु दिनेषु पिण्डनिवेदनानि मृतपिण्डनिवेदनानि, चूडोपनयनानीति वा, चूडोपनयनं–शिरोमुण्डनं, सीमन्तोन्नयनानीति वा, सीमन्तोन्नयनं–गर्भस्थापनं?, भगवानाह–नायमर्थ: समर्थो, व्यपगतावाहवीवाहयज्ञश्राद्धस्थालीपाकमृतपिण्डनिवेदनास्ते मनुजा: प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु नटप्रेक्षेति वा नटा–नाटकानां नाट-यितारस्तेषां प्रेक्षा नटप्रेक्षा, नृत्यप्रेक्षेति वा, नृत्यन्ति स्म नृत्या–नृत्यविधायिनस्तेषां प्रेक्षा नृत्यप्रेक्षा इति वा, जल्लप्रेक्षेति वा, जल्ला–वरत्राखेलका राजस्तोत्रपाठका इत्यपरे तेषां प्रेक्षा जल्लप्रेक्षा, मल्लप्रेक्षेति वा, मल्ला:–प्रतीता:, मौष्टिकप्रेक्षेति वा, मौष्टिका: मल्लविशेषा एव ये मु-ष्टिभि: प्रहरन्ति, विडम्बकप्रेक्षेति वा, विडम्बका–विदूषका नानावेषकारिण इत्यर्थ:, कथकप्रेक्षेति वा, कथका: प्रतीता:, प्लवकप्रेक्षेति वा, प्लवका ये उत्प्लुत्य गर्त्तादिकं झम्पाभिर्लङ्घयन्ति नद्यादिकं वा तरन्ति तेषां प्रेक्षा प्लवकप्रेक्षा, लासकप्रेक्षेति वा, लासका ये रास-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

कान् गायन्ति जयशब्दप्रयोक्तारो वा भाण्डास्तेषां प्रेक्षा लासकप्रेक्षा, आख्यायकप्रेक्षेति वा ये शुभाशुभमाख्यान्ति ते आख्यायकास्तेषां प्रेक्षा आख्यायकप्रेक्षा, लङ्घप्रेक्षेति वा, लङ्घा ये महावंशाग्रमारुह्य नृत्यन्ति तेषां प्रेक्षा लङ्घप्रेक्षा, मङ्खप्रेक्षेति वा, ये चित्रपट्टिकादिहस्ता भिक्षां चरन्ति ते मङ्खास्तेषां प्रेक्षा मङ्खप्रेक्षा, 'तूणइल्लपेच्छाइ वा' इति तूणइल्ला–तूणाभिधानवाद्यविशेषवन्तस्तेषां प्रेक्षा तूणइल्लप्रेक्षा, तुम्बवीणाप्रेक्षेति वा, तुम्बयुक्ता वीणा येषां ते तुम्बवीणाः–तुम्बवीणावादकास्तेषां प्रेक्षा, 'कावपिच्छाइ वे'ति कावाः–कावडिवाहका तेषां प्रेक्षा, मागधप्रेक्षेति वा, मागधा–बन्दिभूतास्तेषां प्रेक्षा मागधप्रेक्षेति वा?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थो, व्यपगतकौतुकास्ते मनुजगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु इन्द्रमह इति वा, इन्द्रः–शक्रस्तस्य महः–प्रतिनियतदिवसभावी उत्सवः, स्कन्दमह इति वा, स्कन्दः–कार्त्तिकेयः, रुद्रमह इति वा, रुद्रः प्रतीतः, शिवमह इति वा, शिवो–देवताविशेषः, वैश्रमणमह इति वा, वैश्रमणः–उत्तरदिग्लोकपालः, नागमह इति वा, नागो–भवनपतिविशेषः, यक्षमह इति वा भूतमह इति वा, यक्षभूतौ–व्यन्तरविशेषौ, मकुन्दमह इति वा, मकुन्दो–बलदेवः, कूपमह इति वा तडागमह इति वा नदीमह इति वा ह्रदमह इति वा पर्वतमह इति वा वृक्षमह इति वा चैत्यमह इति वा स्तूपमह इति वा?, कूपादयः प्रतीताः, भगवानाह–नायमर्थः समर्थो, व्यपगतमहमहिमास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु शकटानीति वा, शकटानि–प्रतीतानि, रथा वा, रथा द्विविधा–यानरथाः सङ्ग्रामरथाश्च, तत्र सङ्ग्रामरथस्य प्राकारानुकारिणी फलकमयी वेदिकाऽपरस्य तु न भवतीति विशेषः, यानानीति वा, यानं–गव्यादि, युग्यानीति वा, युग्यं–गोल्लविषयप्रसिद्धं द्विहस्तप्रमाणं चतुरस्रवेदिकोपशोभितं जम्पानं, गिल्लय इति वा, गिल्लिर्हस्तिन उपरि कोल्लररूपा या मानुषं गिलतीव, थिल्लय इति वा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

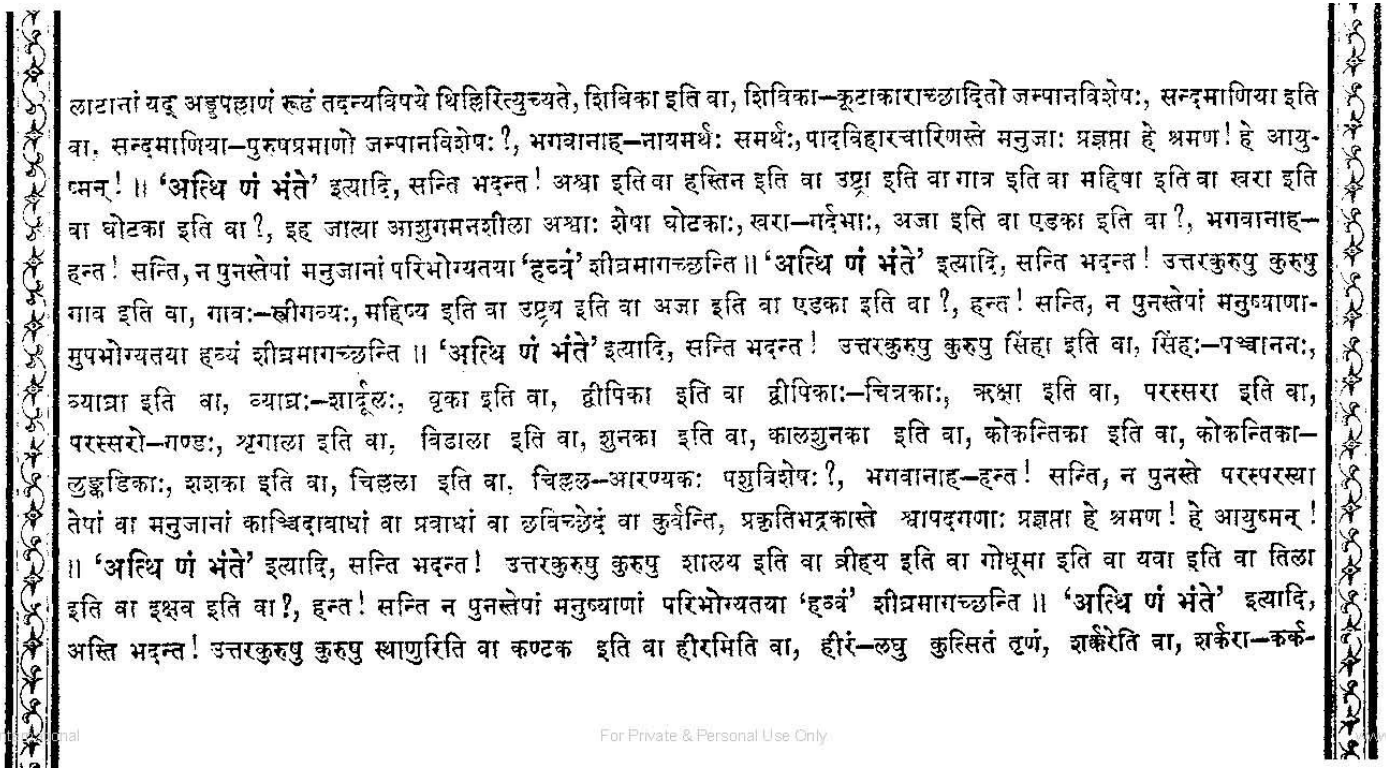

लाटानां यद् अङ्गुपलाणं रूढं तदन्यविषये थिल्लिरित्युच्यते, शिविका इति वा, शिविका–कूटाकाराच्छादितो जम्पानविशेषः, सन्दमाणिया इति वा, सन्दमाणिया–पुरुषप्रमाणो जम्पानविशेषः?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थः, पादविहारचारिणस्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! अश्वा इति वा हस्तिन इति वा उष्ट्रा इति वा गावः इति वा महिषा इति वा खरा इति वा घोटका इति वा?, इह जात्या आशुगमनशीला अश्वाः शेषा घोटकाः, खरा–गर्दभाः, अजा इति वा एडका इति वा?, भगवानाह–हन्त! सन्ति, न पुनस्तेषां मनुजानां परिभोग्यतया **'हव्वं'** शीघ्रमागच्छन्ति ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु गाव इति वा, गावः–स्त्रीगव्यः, महिष्य इति वा उष्ट्र्य इति वा अजा इति वा एडका इति वा?, हन्त! सन्ति, न पुनस्तेषां मनुष्याणामुपभोग्यतया हव्यं शीघ्रमागच्छन्ति ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु सिंहा इति वा, सिंहः–पञ्चाननः, व्याघ्रा इति वा, व्याघ्रः–शार्दूलः, वृका इति वा, द्वीपिका इति वा द्वीपिकाः–चित्रकाः, ऋक्षा इति वा, परस्सरा इति वा, परस्सरो–गण्डः, शृगाला इति वा, विडाला इति वा, शुनका इति वा, कालशुनका इति वा, कोकन्तिका इति वा, कोकन्तिका–लुङ्कडिकाः, शशका इति वा, चिल्लला इति वा, चिल्लल–आरण्यकः पशुविशेषः?, भगवानाह–हन्त! सन्ति, न पुनस्ते परस्परस्यातेषां वा मनुजानां काञ्चिदाबाधां वा प्रबाधां वा छविच्छेदं वा कुर्वन्ति, प्रकृतिभद्रकास्ते श्वापदगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु शालय इति वा व्रीहय इति वा गोधूमा इति वा यवा इति वा तिला इति वा इक्षव इति वा?, हन्त! सन्ति न पुनस्तेषां मनुष्याणां परिभोग्यतया 'हव्वं' शीघ्रमागच्छन्ति ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु स्थाणुरिति वा कण्टक इति वा हीरमिति वा, हीरं–लघु कुत्सितं तृणं, शर्करेति वा, शर्करा–कर्क-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

रकः, तृणकचवर इति वा पत्रकचवर इति वा अशुचीति वा, अशुचि–विगन्धं शरीरमलादि, पूतीति वा, पूति–कुथितं स्वस्वभावच-लितं त्रिवासरवटकादिवत्, दुरभिगन्धमिति वा, दुरभिगन्धं मृतकलेवरादिवत्, अचोक्षं–अपवित्रमस्थ्यादिवत्?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थो, व्यपगतस्थाणुकण्टकहीरशर्करातृणकचवरपत्रकचवराशुचिपूतिदुरभिगन्धाचोक्षपरिवर्जिता उत्तरकुरवः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, अस्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु, गर्त्तेति वा, गर्त्ता–महती खड्डा, दरीति वा, दरी–भूमि-कादिकृता लघ्वी खड्डा, घसीति वा, घसी–भूराजिः, भृगुरिति वा, भृगुः–प्रपातस्थानं, विषममिति वा, विषमं–दुरारोहावरोहस्थानं, धूलिरिति वा पङ्क इति वा, धूलीपङ्कौ प्रतीतौ, चलणीति वा, चलनी–चरणमात्रस्पर्शी कर्दमः?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थः, उत्त-रकुरुषु कुरुषु बहुसमरमणीयो भूभागः प्रज्ञप्तो हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! दंसा इति वा मसका इति वा ढङ्कुणा इति वा, क्वचित् पिशुगा इति वा इति पाठस्तत्र पिशुकाः–चंचटादयः, यूका इति वा लिक्षा इति वा?, भग-वानाह–नायमर्थः समर्थो, व्यपगतोपद्रवाः खलु उत्तरकुरवः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु अहय इति वा अजगरा इति वा महोरगा इति वा?, हन्त! सन्ति न पुनस्तेऽन्योऽन्यस्य तेषां वा मनुजानां काञ्चिदाबाधां व्याबाधां वा छविच्छेदं वा कुर्वन्ति, प्रकृतिभद्रकास्ते व्यालकगणाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्!॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति (भदन्त)! उत्तरकुरुषु कुरुषु ग्रहदण्डा इति वा, दण्डाकारव्यवस्थिता ग्रहा ग्रहदण्डाः ते चानर्थोपनिपातहेतुतया प्रतिषेध्या न स्वरूपतः, एवं ग्रहमुशलानीति वा, ग्रहगर्जितानि–ग्रहचारहेतुकानि गर्जितानि, इमानि स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्यानि, ग्रहयुद्धानीति वा, ग्रहयुद्धं नाम यदेको ग्रहोऽन्यस्य ग्रहस्य मध्येन याति, ग्रहसङ्घाटका इति वा, ग्रहसङ्घाटको नाम ग्रहयुग्मं, ग्रहापसव्यानीति वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४७]

दीप अनुक्रम [१८५]

जी० ४८

अभ्राणीति वा, अभ्राणि–सामान्याकारेण प्रतीतानि, अभ्रवृक्षा इति वा, अभ्रवृक्षा–वृक्षाकारपरिणतान्यभ्राणि, सन्ध्या इति वा सन्ध्या-काले नीलाद्यभ्रपरिणतिरूपा प्रतीतैव, गन्धर्वनगराणि–सुरसदनप्रासादोपशोभितनगराकारतया तथाविधनभःपरिणतपुद्गलराशिरूपाणि, एतान्यपि तत्र स्वरूपतोऽपि न भवन्ति, गर्जितानीति वा विद्युत इति वा, गर्जितानि विद्युतश्च प्रतीताः, उल्कापाता इति वा, उल्का-पाता–ज्योन्नि संमूर्च्छितज्वलननिपतनरूपाः, दिग्दाह इति वा, दिग्दाहा–अन्यतरस्यां दिशि छिन्नमूलज्वलनज्वालाकरालिताम्बरप्रति-भासरूपाः, निर्घाता इति वा, निर्घातो–विद्युत्प्रपातः, पांशुवृष्टय इति वा, पांशुवृष्टयो–धूलिवर्षाणि, यूपका इति वा, यूपकाः 'संझाछेया-वरणो य' इत्यादिनाऽऽवश्यकग्रन्थेन प्रतिपत्तव्याः, यक्षदीप्तकानीति वा, यक्षदीप्तकानि नाम नभसि दृश्यमानाग्निसहितः पिशाचः, धूमिकेति वा रूक्षा प्रविरला धूमाभा धूमिका, महिकेति वा, स्निग्धा घना घनत्वादेव भूमौ पतिता सार्द्रतृणादिदर्शनद्वारेणोपलक्ष्य-माणा महिका, रजउद्घाता–रजस्वला दिशः, चन्द्रोपरागा इति वा सूर्योपरागा इति वा, चन्द्रोपरागः–चन्द्रग्रहणं सूर्योपरागः–सूर्य-ग्रहणं, इह गर्जितविद्युदुल्कादिग्दाहनिर्घातपांशुवृष्टियूपकयक्षदीप्तकधूमिकामहिकारजउद्घाताः स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्याः, चन्द्रसूर्यग्रहणे त्वनर्थोपनिपातहेतुतया, स्वरूपतस्तयोः प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात्, जम्बूद्वीपगतौ हि चन्द्रौ सूर्यौ वा तत्प्रकाशयतः, एकस्य चन्द्रस्य ग्रहणे सकलमनुष्यलोकवर्त्तिनां चन्द्राणामेकस्य सूर्यस्य ग्रहणे सकलमनुष्यलोकवर्त्तिनां सूर्याणां ग्रहणमत इह क्षेत्र इव तत्रापि स्वरूपतश्चन्द्र-सूर्योपरागप्रतिषेधासम्भवः, चन्द्रपरिवेषा इति वा सूर्यपरिवेषा इति वा, चन्द्रसूर्यपरिवेषाश्चन्द्रादित्ययोः परितो वलयाकारपरिणति-रूपाः प्रतीता एव, प्रतिचन्द्रा इति वा प्रतिसूर्या इति वा, प्रतिचन्द्र–उत्पातादिसूचको द्वितीयश्चन्द्रः, एवं द्वितीयः सूर्यः प्रतिसूर्यः, इन्द्रधनुरिति वा उदकमत्स्य इति वा, इन्द्रधनुः–प्रतीतं, तस्यैव खण्डमुदकमत्स्यः, कपिहसितानीति वा, कपिहसितानि–अकस्मान्न-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भसि ज्वलद्भीमशब्दरूपाणि, अमोघा इति वा, अमोघाः—सूर्यबिम्बस्याधः कदाचिदुपलभ्यमानशकटोद्धिसंस्थिता श्यामादिरेखा, एते चन्द्रपरिवेषादयः स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्याः, प्राचीनवाता इति वा अपाचीनवाता इति वा यावत् शुद्धवाता इति वा, यावत्करणाद्-क्षिणवातादिपरिग्रहः, एतेऽसुखहेतवो विकृतरूपाः प्रतिषेध्याः नतु सामान्येन, पूर्वादिवातस्य तत्रापि सम्भवात्, ग्रामदाहा इति वा नकरदाहा इति यावत्संनिवेशदाहा इति, यावत्करणान्निगमदाहखेटदाहादिपरिग्रहः, दाहकृतश्च प्राणक्षय इति वा भूतक्षय इति वा कुलक्षय इति वा, एते स्वरूपतोऽपि प्रतिषेध्याः, तथा चाह भगवान्—गौतम! नायमर्थः समर्थः, केषाञ्चिदनर्थहेतुतया केषाञ्चित्स्व-रूपतश्च तत्र तेषामसम्भवात् ॥ 'अत्थि णं भंते' इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु डिम्बानीति वा, डिम्बानि—स्वदेशोत्था विप्लवाः, डमराणीति वा, डमराणि—परराजकृता उपद्रवाः, कलहा इति वा, कलहा—वाग्युद्धानि, बोला इति वा, बोलः—आर्त्तानां बहूनां कलकलपूर्वको मेलापकः, क्षार इति वा, क्षारः—परस्परं मात्सर्यं, वैराणीति वा, वैरं—परस्परमसहनतया हिंस्याहिंसकभावा-ध्यवसायः, महायुद्धानीति वा, महायुद्धं—परस्परं मार्यमाणमारकतया युद्धं, महासङ्ग्रामा इति वा, महासन्नाहा इति वा, महासङ्ग्राम-श्चेटिककोणिकवत्, महासन्नाहो—बृहत्पुरुषाणामपि बहूनां यः सन्नाहः, महापुरुषनिपतनानीति वा, प्रतीतं, महाशस्त्रनिपतनानीति वा, महाशस्त्रनिपतनं—यन्नागबाणादीनां दिव्यास्त्राणां प्रक्षेपणं, नागबाणादयो हि बाणा महाशस्त्राणि, तेषामद्भुतविचित्रशक्तिकत्वात्, तथाहि नागबाणा धनुष्यारोपिता बाणाकारा मुक्ताश्च सन्तो जाज्वल्यमानासह्योल्कादण्डरूपास्ततः परशरीरे सङ्क्रान्ता नागमूर्त्तीभूय पाशत्वमुपगच्छन्ति, तामसबाणाश्च पर्यन्ते सकलसङ्ग्रामभूमिव्यापिमहान्धतमसरूपतया परिणमन्ते, उक्तञ्च—"चित्रं श्रेणिक! ते बाणा, भवन्ति धनुराश्रिताः। उल्कारूपाश्च गच्छन्तः, शरीरे नागमूर्त्तयः ॥ १ ॥ क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः, क्षणं पाशत्वमागताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

आकरा ह्रस्वभेदास्ते, यथाचिन्तितमूर्त्तयः ॥ २ ॥" इत्यादि, भगवानाह–नायमर्थः समर्थो, व्यपगतडिम्बडमरकलहबोलक्षारवैरास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'अत्थि णं भंते'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु दुर्भूतानीति वा, दुर्भूतं–अशिवं, कुलरोगा इति वा मण्डलरोगा इति वा शिरोवेदनेति वा अक्षिवेदनेति वा कर्णवेदनेति वा नखवेदनेति वा दन्तवेदनेति वा काश इति वा श्वास इति वा शोष इति वा ज्वर इति वा दाह इति वा कच्छूरिति वा खसर इति वा कुष्ठमिति वा अर्श इति वा अजीर्णमिति वा भगन्दर इति वा इन्द्रग्रह इति वा स्कन्धग्रह इति वा कुमारग्रह इति वा नागग्रह इति वा यक्षग्रह इति वा भूतग्रह इति वा धनुर्ग्रह इति वा उद्वेग इति वा एकाहिका इति वा द्व्याहिका इति वा त्र्याहिका इति वा चतुर्थका इति वा हृदयशूलानीति वा मस्तकशूलानीति वा पार्श्वशूलानीति वा कुक्षिशूलानीति वा योनिशूलानीति वा ग्राममारिरिति वा नकरमारिरिति वा निगममारिरिति वा यावत्सन्निवेशमारिरिति वा, यावत्करणात् खेडकर्बटादिपरिग्रहः, मारिकृतप्राणिक्षय इति वा जनक्षय इति वा धनक्षय इति वा कुलक्षय इति वा व्यसनभूतमनार्यमिति वा?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थो, व्यपगतरोगातङ्कास्ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ **'तेसि णं'** मित्यादि, तेषामुत्तरकुरुवास्तव्यानां भदन्त! मनुष्याणां कियन्तं कालं स्थितिः–अवस्थानं प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! जघन्येन देशोनानि त्रीणि पल्योपमानि, तत्र न ज्ञायते कियता देशेनोनानि? तत आह–पल्योपमस्यासङ्ख्येयभागेनोनानि, उत्कर्षतः परिपूर्णानि त्रीणि पल्योपमानि ॥ **'ते णं भंते'** इत्यादि, ते उत्तरकुरुवास्तव्या भदन्त! मनुजाः कालमासे **'कालं'** मरणं कृत्वा क्व गच्छन्ति?, एतदेव व्याचष्टे–क्वोत्पद्यन्ते? इति, भगवानाह–गौतम! ते मनुजाः षण्मासावशेषायुषः कृतपरभवायुर्बन्धाः स्वकाले युगलं प्रसूयते, प्रसूय एकोनपञ्चाशतं रात्रिन्दिवानि तद् युगलमनुपालयन्ति, अनुपाल्य कासित्वा क्षुत्वा जृम्भयित्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अक्लिष्टाः' स्वशरीरोत्थक्लेशरहिताः 'अव्यथिताः' परेणानापादितदुःखाः 'अपरितापिताः' स्वतः परतो वाऽनुपजातकायमनःपरितापाः कालमासे कालं कृत्वा 'देवलोकेषु' भवनपत्याद्याश्रयेषूत्पद्यन्ते, 'देवलोगपरिग्गहिया ण'मिति देवलोको–भवनपत्याद्याश्रयरूपस्तथाक्षेत्रस्वाभाव्यतस्तद्योग्यायुर्बन्धनेन परिगृहीतो यैस्ते देवलोकपरिगृहीताः, निष्ठान्तस्य परनिपातः सुखादिदर्शनात्, णमिति वाक्यालङ्कारे, ते मनुजाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ 'उत्तरकुराए णं भंते' इत्यादि, उत्तरकुरुषु कुरुषु भदन्त! 'कतिविधाः' जातिभेदेन कतिप्रकारा मनुष्याः 'अनुसजन्ति?' सन्तानेनानुवर्त्तन्ते, भगवानाह–गौतम! षड्विधा मनुजा अनुसजन्ति. तद्यथा–पद्मगन्धा इत्यादि, जातिवाचका इमे शब्दाः। अत्र विनेयजनानुग्रहायोत्तरकुरुविषयसूत्रसङ्कलनार्थं सङ्ग्रहणिगाथात्रयमाह– "उसुजीवाधणुपट्ठं भूमी गुम्मा य हेरुउद्दाला। तिलगलयावणराई रुक्खा मणुया य आहारे ॥ १ ॥ गेहा गामा य असी हिरण्ण राया य दास माया य। अरिवेरिए य मित्ते विवाहमहनट्टसगडा य ॥ २ ॥ आसा गावो सीहा साली खाणू य गड्डदंसाही। गहजुद्धरोगठिइ उवट्टणा य अणुसज्जणा चेव ॥ ३ ॥" अस्य व्याख्या–प्रथममुत्तरकुरुविषयमिषुजीवाधनुःपृष्ठप्रतिपादकं सूत्रं, तदनन्तरं भूमिरिति भूमिविषयं सूत्रं, ततो 'गुम्मा' इति गुल्मविषयं, तदनन्तरं हेरुतालवनविषयं, ततः 'उद्दाला' इति उद्दालादिविषयं, तदनन्तरं 'तिलग' इति तिलकपदोपलक्षितं, ततो लताविषयं, तदनन्तरं वनराजीविषयं, ततः 'रुक्खा' इति दशविधकल्पपादपविषया दश सूत्रदण्डकाः, 'मणुया य' इति त्रयो मनुष्यविषयाः सूत्रदण्डकास्तद्यथा–आद्यः पुरुषविषयो द्वितीयः स्त्रीविषयस्तृतीयः सामान्यत उभयविषय इति, ततः 'आहारे' इति आहारविषयः, तदनन्तरं 'गेहा' इति गृहविषयौ द्वौ दण्डकौ, आद्यो गृहाकारवृक्षाभिधायी अपरो गेहाद्यभावविषय इति, ततः 'गामा' इति ग्रामाद्यभावः, तदनन्तरमसीति अस्याद्यभावविषयः, ततो हिरण्यादिविषयः, तद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

नन्तरं राजाद्यभावविषयः, ततो दासाद्यभावविषयः, ततो मात्रादिविषयः, तदनन्तरमरिवैरिप्रभृतिप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं मित्राद्यभावविषयः, तदनन्तरं विवाहपदोपलक्षितस्तत्प्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं महप्रतिषेधविषयः, ततो नृत्यपदोपलक्षितः प्रेक्षाप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं शकटादिप्रतिषेधविषयः, ततोऽश्वादिपरिभोगप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं स्त्रीगव्यादिपरिभोगप्रतिषेधविषयः, ततः सिंहादिश्वापदविषयः, तदनन्तरं शाल्याद्युपभोगप्रतिषेधविषयः, ततः स्थाण्वादिप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं गर्त्तादिप्रतिषेधविषयः, ततो दंशाद्यभावविषयः, ततोऽह्यादिविषयः, तदनन्तरं 'गह' इति ग्रहदण्डादिविषयः, ततः 'जुद्ध' इति युद्धपदोपलक्षितो डिम्बादिप्रतिषेधविषयः सूत्रदण्डकः, ततो रोग इति रोगपदोपलक्षितो दुर्भूतादिप्रतिषेधविषयः, तदनन्तरं स्थितिसूत्रं, ततोऽनुषजनसूत्रमिति ॥ सम्प्रत्युत्तरकुरुभावियमकपर्वतवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! उत्तरकुराए कुराए जमगा नामं दुवे पव्वता पन्नत्ता?, गोयमा! नीलवंतस्स वासधरपव्वयस्स दाहिणेणं अट्ठचोत्तीसे जोयणसते चत्तारि य सत्तभागे जोयणस्स अबाधाए सीताए महाणईए (पुव्वपच्छिमेणं) उभओ कूले, इत्थ णं उत्तर कुराए जमगा णामं दुवे पव्वता पण्णत्ता एगमेगं जोयणसहस्सं उद्धं उच्चत्तेणं अद्धाइज्जाइं जोयणसताणि उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसहस्सं आयामविक्खंभेणं मज्झे अद्धट्ठमाइं जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं उवरिं पंचजोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठिं जोयणसतं किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं मज्झे दो जोयणसहस्साइं तिन्नि य बावत्तरे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पन्नत्ते उवरिं पन्नरसं एक्कासीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते, मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वकणगमया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा पत्तेयं २ पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ता, वण्णओ दोण्हवि, तेसि णं जमगपव्वयाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते वण्णओ जाव आसयंति० ॥ तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं २ पासायवडेंसगा पण्णत्ता, ते णं पासायवडेंसगा बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एकत्तीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अब्भुग्गतमूसिता वण्णओ भूमिभागा उल्लोता दो जोयणाइं मणिपेढियाओ वरसीहासणा सपरिवारा जाव जमगा चिट्ठंति ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति जमगा पव्वता? २, गोयमा! जमगेसु णं पव्वतेसु तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहुइओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ जाव बिलपंतिताओ, तासु णं खुड्डाखुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहूइं उप्पलाइं २ जाव सतसहस्सपत्ताइं जमगप्पभाइं जमगवण्णाइं, जमगा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव जमगाण पव्वयाणं जमगाण य रायधाणीणं अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव पालेमाणा विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं० जमगपव्वया २, अदुत्तरं च णं गोयमा! जाव णिच्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [१८६]

॥ कहि णं भंते! जमगाणं देवाणं जमगाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! जमगाणं पव्वयाणं उत्तरेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवतित्ता अण्णंमि जंबूदीवे २ बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाणं देवाणं जमगाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ बारसजोयणसहस्स जहा विजयस्स जाव महिड्ढिया जमगा देवा जमगा देवा ॥ (सू० १४८)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ?, भगवानाह–गौतम! नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तात्–चरमरूपात्पर्यन्तादष्टौ योजनशतानि चतुस्त्रिंशदधिकानि चतुरश्च योजनस्य सप्तभागान् अवाधया कृत्वा–अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, अत्रान्तरे शीताया महानद्याः 'पूर्वपश्चिमेन' पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरुभयोः कूलयोः 'अत्र' एतस्मिन् प्रदेशे यमकौ नाम द्वौ पर्वतौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा–एकः पूर्वकूले एकः पश्चिमकूले, प्रत्येकं चैकं योजनसहस्रमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धतृतीयानि योजनशतान्युद्वेधेन–अवगाहेन, मेरुव्यतिरेकेण शेषशाश्वतपर्वतानां सर्वेषामविशेषेणोच्चैस्त्वापेक्षया चतुर्भागस्यावगाहनाभावात्, मूले एकयोजनसहस्रं विष्कम्भतः १०००, मध्येऽर्द्धाष्टमानि योजनशतानि ७५०, उपरि पञ्च योजनशतानि ५००, मूले त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वापष्टं–द्वापष्ट्यधिकं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तौ ३१६२, मध्ये द्वे योजनसहस्रे त्रीणि योजनशतानि द्वासप्ततानि–द्वासप्तत्यधिकानि ३३७२ किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तौ, उपरि एकं योजनसहस्रं पञ्च चैकाशीतानि–एकाशीत्यधिकानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि १५८१ परिक्षेपेण, एवं च तौ मूले विस्तीर्णौ मध्ये सङ्क्षिप्तौ उपरि च तनुकावत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थितौ, 'सव्वकणगमया' इति सर्वात्मना कनकमयौ 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत्, तौ च प्रत्येकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्तौ प्रत्येकं २ वनखण्डपरिक्षिप्तौ, पद्मवरवेदिकावर्णको वनखण्डवर्णकश्च जगत्युपरिपद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णकवद् वक्तव्यः ॥ **'तेसि णं जमगपव्वयाण'**मित्यादि, यमकपर्वतयोरुपरि प्रत्येकं बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, भूमिभागवर्णनं 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावद् 'वाणमंतरा देवाय देवीओ य आसयंति सयंति जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति' ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तयोर्बहुसमरमणीययोर्भूमिभागयोर्बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, तौ च प्रासादावतंसकौ द्वापष्टियोजनान्यर्द्धयोजनं चोर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, एकत्रिंशद् योजनानि क्रोशं चैकं विष्कम्भेन, 'अब्भुग्गयमूसियपहसिया इवेत्यादि यावत् पडिरूवा' इति प्रासादावतंसकवर्णनमुल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं मणिपीठिकावर्णनं सिंहासनवर्णनं विजयदूष्यवर्णनमङ्कुशवर्णनं दामवर्णनं च निरवशेषं प्राग्वद्वक्तव्यं, नवरमत्र मणिपीठिकायाः प्रमाणमायामविष्कम्भाभ्यां द्वे योजने, बाहल्येनैकं योजनं, शेषं तथैव । **'तेसि णं सिंहासणाण'**मित्यादि, तयोः सिंहासनयोः प्रत्येकम् **'अवरुत्तरेणं'**ति अपरोत्तरस्यां वायव्यामित्यर्थः उत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां च दिशि, अत एतासु तिसृषु दिक्षु **'यमकयोः'** यमकनाम्नोर्यमकपर्वतस्वामिनोर्देवयोः प्रत्येकं प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां योग्यानि चत्वारि भद्रासनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, एवमनेन क्रमेण सिंहासनपरिवारो वक्तव्यो यथा प्राग्विजयदेवस्य ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तयोः प्रासादावतंसकयोः प्रत्येकमुपर्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि प्रज्ञप्तानि इत्याद्यपि प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'सयसहस्सपत्तगा' इति पदम् ॥ सम्प्रति नामनिबन्धनं पिपृच्छिषुरिदमाह–अथ **'केनार्थेन'** केन कारणेन एवमुच्यते–यमकपर्वतौ यमकपर्वतौ ? इति, भगवानाह–गौतम ! यमकपर्वतयोः णमिति वाक्यालङ्कारे क्षुल्लकक्षुल्लिकासु वापीपुष्करिणीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहूनि यावत्सहस्रपत्राणि **'यमकप्रभाणि'** यमका नाम–शकुनिविशेषास्तत्प्रभाणि–तदाकाराणि, एतदेव व्याचष्टे–यमकवर्णाभानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१४८]

दीप अनुक्रम [१८६]

—यमकवर्णसदृशवर्णानीत्यर्थः, 'यमकौ च' यमकनामानौ च तत्र—तयोर्यमकपर्वतयोः स्वामित्वेन द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावन्महाभागौ पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तौ च तत्र प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणामभ्यन्तर-मध्यमबाह्यरूपाणां यथासङ्ख्यमष्टदशद्वादशदेवसहस्रसङ्ख्याकानां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्ष-देवसहस्राणां **'जमगपव्वयाणं जमगाण य रायहाणीण'**मिति स्वस्य स्वस्य यमकपर्वतस्य स्वस्य स्वस्य यमिकाभिधाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां वाणमन्तराणां देवानां देवीनां च स्वस्वयमिकाभिधराजधानीवास्तव्यानामाधिपत्यं यावद्विहरतः, यावत्करणात् 'पो-रेवच्चं सामित्तं भट्टित्त'मित्यादिपरिग्रहः, ततो यमकाकारयमकवर्णोत्पलादियोगाद्यमकाभिधदेवस्वामिकत्वाच्च तौ यमकपर्वतावित्युच्येते, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि ॥ सम्प्रति यमिकाभिधराजधानीस्थानं पृच्छति—**कहि णं भंते'** इत्यादि, क भदन्त! यमकयो-र्देवयोः सम्बन्धिन्यौ यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते?, भगवानाह—गौतम! यमकपर्वतयोरुत्तरतोऽन्यस्मिन्नसङ्ख्येयतमे जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राणि अवगाह्यात्रान्तरे यमकयोर्देवयोः सम्बन्धिन्यौ यमिके नाम राजधान्यौ प्रज्ञप्ते, ते चाविशेषेण विजयराजधा-नीसदृशे वक्तव्ये । सम्प्रति हृदवक्तव्यतामभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ नीलवंतद्दहेणामं दहे पण्णत्ते?, गोयमा! जमगपव्वयाणं दाहिणेणं अ-ट्ठचोत्तीसे जोयणसते चत्तारि सत्तभागा जोयणस्स अबाहाए सीताए महाणईए बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं उत्तरकुराए २ नीलवंतद्दहे नामं दहे पन्नत्ते, उत्तरदक्खिणायए पाईणपडीणविच्छिन्ने एगं जोयणसहस्सं आयामेणं पंच जोयणसताइं विक्खंभेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छे सण्हे रयतामत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [१८७]

कूले चउक्कोणे समतीरे जाव पडिरूवे उभओ पासिं दोहि य पउमवरवेइयाहिं वणसंडेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ ॥ नीलवंतद्दहस्स णं द्दहस्स तत्थ २ जाव बहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति ॥ तस्स णं नीलवंतद्दहस्स णं द्दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पउमे पण्णत्ते, जोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं दो कोसे ऊसिते जलंतातो सातिरेगाइं दसद्धजोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ॥ तस्स णं पउमस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामता मूला रिट्ठामते कंदे वेरुलियामए नाले वेरुलियामता बाहिरपत्ता जंबूणयमया अब्भिंतरपत्ता तवणिज्जमया केसरा कणगामई कण्णिया नाणामणिमया पुक्खरत्थिभुता ॥ सा णं कण्णिया अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं सव्वप्पणा कणगमई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं कण्णियाए उवरिं बहुसमरमणिज्जे देसभाए पण्णत्ते जाव मणीहिं ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं अणेगखंभसतसंनिविट्ठं जाव वण्णओ, तस्स णं भवणस्स तिदिसिं ततो दारा पण्णत्ता पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं, ते णं दारा पंचधणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

अट्ठाइज्जाइं धणुसताइं विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाउत्ति ॥ तस्स णं भवणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा नामए—आलिंगपुक्खरेति वा जाव मणीणं वण्णओ ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं मणिपेढिया पण्णत्ता, पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसताइं बाहल्लेणं सव्वमणिमई ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, देवसयणिज्जस्स वण्णओ ॥ से णं पउमे अण्णेणं अट्ठसतेणं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्ताणं पउमाणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते ॥ ते णं पउमा अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं कोसं बाहल्लेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं कोसं ऊसिया जलंताओ साइरेगाइं ते दस जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ताइं ॥ तेसि णं पउमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया मूला जाव णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा ॥ ताओ णं कण्णियाओ कोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं स० परि० अद्धकोसं बाहल्लेणं सव्वकणगामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ॥ तासि णं कण्णियाणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा जाव मणीणं वण्णो गंधो फासो ॥ तस्स णं पउमस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेणं नीलवंतदहस्स कुमारस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवं (एतेणं) सव्वो परिवारो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [१८७]

नवरि पउमाणं भाणितव्वो ॥ से णं पउमे अण्णेहिं तिहिं पउमवरपरिक्खेवेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, तंजहा—अब्भिंतरेणं मज्झिमेणं बाहिरएणं, अब्भिंतरएणं पउमपरिक्खेवे बत्तीसं पउमसयसाहस्सीओ प०, मज्झिमए णं पउमपरिक्खेवे चत्तालीसं पउमसयसाहस्सीओ पं० बाहिरए णं पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं एगा पउमकोडी वीसं च पउमसतसहस्सा भवंतीति मक्खाया ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुचति—णीलवंतद्दहे दहे?, गोयमा! णीलवंतद्दहे णं तत्थ तत्थ जाइं उप्पलाइं जाव सतसहस्सपत्ताइं नीलवंतप्पभातिं नीलवंतद्दहकुमारे य० सो चेव गमो जाव नीलवंतद्दहे २ ॥ (सू० १४९)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! उत्तरकुरुषु कुरुषु नीलवद्ह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! यमकपर्वतयोर्दक्षिणाचरमान्तादर्वाग् दक्षिणाभिमुखमष्टौ 'चतुस्त्रिंशानि' चतुस्त्रिंशदधिकानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्याबाधया कृत्वेति गम्यते अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, अत्रान्तरे शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'एत्थ णं'ति एतस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु नीलवद्ह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः, स च किंविशिष्टः? इत्याह—उत्तरदक्षिणायतः प्राचीनापाचीनविस्तीर्णः, उत्तरदक्षिणाभ्यामवयवाभ्यामायत उत्तरदक्षिणायतः, प्राचीनापाचीनाभ्यामवयवाभ्यां विस्तीर्णः प्राचीनापाचीनविस्तीर्णः, एकं योजनसहस्रमायामेन, पञ्च योजनशतानि विष्कम्भतः, दश योजनान्युद्वेधेन—उण्डत्वेन, 'अच्छः' स्फटिकवद्बहिर्निर्मलप्रदेशः 'श्लक्ष्णः' श्लक्ष्णपुद्गलनिर्मापितबहिःप्रदेशः, तथा रजतमयं—रूप्यमयं कूलं यस्यासौ रजतमयकूलः, इत्यादि विशेषणकदम्बकं जगत्युपरिवाप्यादिवत्तावद्वक्तव्यं यावदिदं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९]

दीप अनुक्रम [१८७]

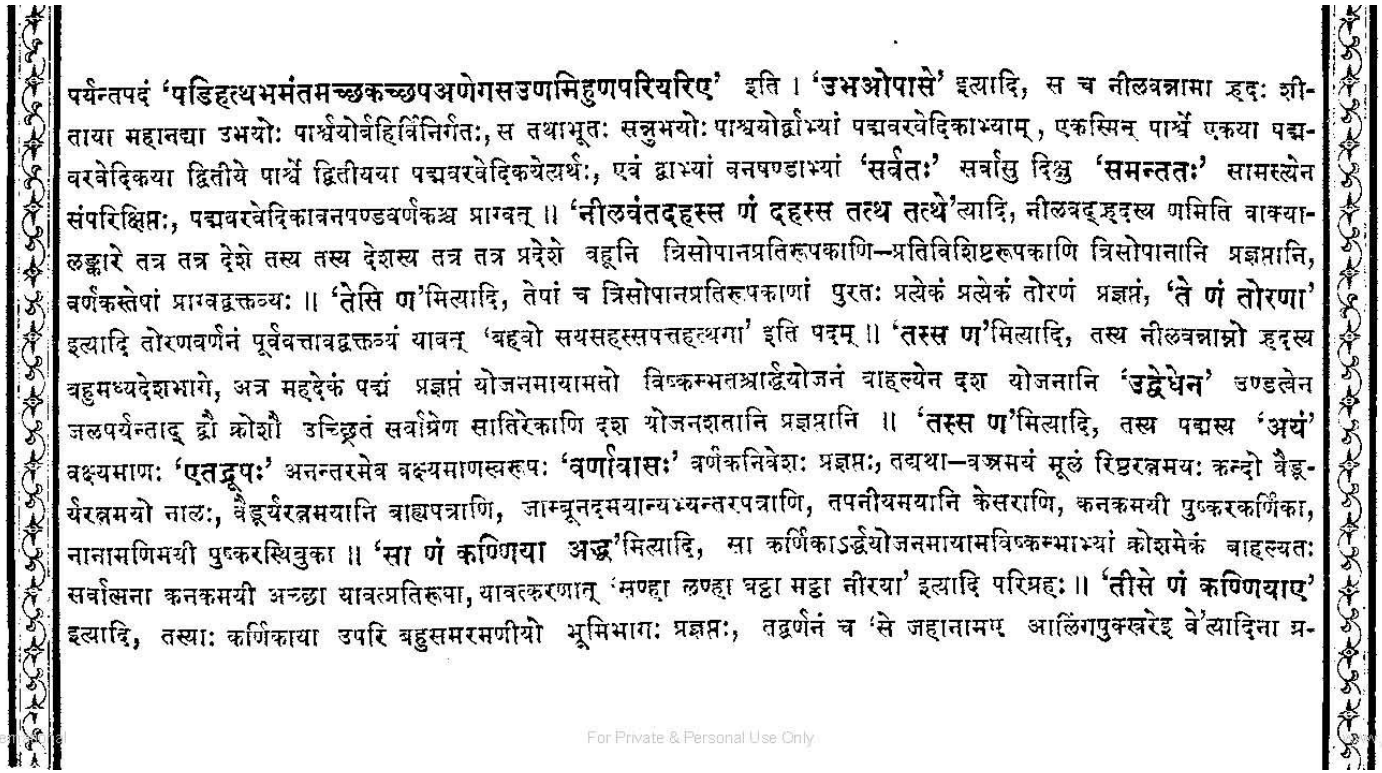

पर्यन्तपदं **'पडिहत्थभमंतमच्छकच्छपअणेगसउणमिहुणपरियरिए'** इति । **'उभओपासे'** इत्यादि, स च नीलवन्नामा ह्रदः शीतायाः महानद्या उभयोः पार्श्वयोर्वहिर्विनिर्गतः, स तथाभूतः सन्नुभयोः पार्श्वयोर्द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्याम्, एकस्मिन् पार्श्वे एकया पद्मवरवेदिकया द्वितीये पार्श्वे द्वितीयया पद्मवरवेदिकयेत्यर्थः, एवं द्वाभ्यां वनषण्डाभ्यां **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्तः, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णकश्च प्राग्वत् ॥ **'नीलवंतदहस्स णं दहस्स तत्थ तत्थे'**त्यादि, नीलवद्ह्रदस्य णमिति वाक्यालङ्कारे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहूनि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि–प्रतिविशिष्टरूपकाणि त्रिसोपानानि प्रज्ञप्तानि, वर्णकस्तेषां प्राग्वदुक्तव्यः ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं तोरणं प्रज्ञप्तं, **'ते णं तोरणा'** इत्यादि तोरणवर्णनं पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'बहवो सयसहस्सपत्तहत्थगा' इति पदम् ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य नीलवन्नाम्नो ह्रदस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महदेकं पद्मं प्रज्ञप्तं योजनमायामतो विष्कम्भतश्चार्द्धयोजनं बाहल्येन दश योजनानि **'उद्वेधेन'** उण्डत्वेन जलपर्यन्ताद् द्वौ क्रोशौ उच्छ्रितं सर्वाग्रेण सातिरेकाणि दश योजनशतानि प्रज्ञप्तानि ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य पद्मस्य **'अयं'** वक्ष्यमाणः **'एतद्रूपः'** अनन्तरमेव वक्ष्यमाणस्वरूपः **'वर्णावासः'** वर्णकनिवेशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–वज्रमयं मूलं रिष्टरत्नमयः कन्दो वैडूर्यरत्नमयो नालः, वैडूर्यरत्नमयानि बाह्यपत्राणि, जाम्बूनदमयान्यभ्यन्तरपत्राणि, तपनीयमयानि केसराणि, कनकमयी पुष्करकर्णिका, नानामणिमयी पुष्करस्तिबुका ॥ **'सा णं कण्णिया अद्ध'**मित्यादि, सा कर्णिकाऽर्द्धयोजनमायामविष्कम्भाभ्यां कोशमेकं बाहल्यतः सर्वात्मना कनकमयी अच्छा यावत्प्रतिरूपा, यावत्करणात् 'सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया' इत्यादि परिग्रहः ॥ **'तीसे णं कण्णियाए'** इत्यादि, तस्याः कर्णिकाया उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तद्वर्णनं च 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वे'त्यादिना ग्र-

जी० ४९

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

न्थेन विजयराजधान्या उपकारिकालयनस्येव तावद्वक्तव्यं यावन्मणीनां स्पर्शवक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं क्रोशमायामतोऽर्द्धक्रोशं विष्कम्भतो देशोनं क्रोशमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टमित्यादि तद्वर्णनं विजयराजधानीगतसुधर्म्मसभाया इव तावद्वक्तव्यं यावदिदं सूत्रं 'दिव्वतुडियसद्दसंपणदिते' इति, तदनन्तरं सूत्रमाह—**'सव्वरयणामए'** इत्यादि सर्वात्मना रत्नमयम् अच्छं यावत्प्रतिरूपं, यावत्करणात् 'सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे' इत्यादिपरिग्रहः। तस्स णमित्यादि तस्य भवनस्य **'तिदिशि'** तिसृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकद्वारभावेन त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा –पूर्वस्यामुत्तरस्यां दक्षिणस्याम् ॥ **'ते णं दारा'** इत्यादि, तानि द्वाराणि पञ्चधनुःशतानि ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि विष्कम्भेन, तावदेव–अर्द्धतृतीयान्येव धनुःशतानीति भावः प्रवेशेन। **'सेयावरकणगथूभिया'** इत्यादि द्वारवर्णनं विजयद्वारस्येव तावदविशेषेणावसातव्यं यावत् **'वणमालाओ'** इति वनमालावक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य भवनस्य उल्लोचोऽन्तर्बहुसमरमणीयो भूमिभागो मणीनां वर्णगन्धरसस्पर्शवर्णनं प्राग्वत् ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी अच्छा यावत्प्रतिरूपा इति प्राग्वत् ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपर्यत्र महदेकं देवशयनीयं प्रज्ञप्तं, शयनीयवर्णकः प्राग्वत्। **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य भवनस्य उपर्यष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानीत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तका इति ॥ **'से ण'**मित्यादि, तत्पद्ममन्येनाष्टशतेन पद्मानां तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्राणां–तस्य मूलपद्मप्रमाणस्यार्द्धं तदर्द्धं तच्च तद् उच्चत्वप्रमाणं च तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणं तत् मात्रा येषां ते तानि तथा तेषां, **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्तं। तद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

द्वौक्रोशत्वप्रमाणमेव तेषां भावयति—**'ते णं पउमा'** इत्यादि, तानि पद्मानि प्रत्येकमर्द्धयोजनमायामविष्कम्भाभ्यां क्रोशमेकं बाहल्येन दश योजनशतानि उद्वेधेन क्रोशमेकं जलपर्यन्तादुच्छ्रितं सातिरेकाणि दश योजनशतानि सर्वाग्रेण ॥ **'तेसि णं'**मित्यादि, तेषां पद्मानामयमेतद्रूपो वर्णावास: प्रज्ञप्त:, वज्रमयानि मूलानि रिष्टरत्नमया: कन्दा: वैडूर्यरत्नमया नाला: तपनीयमयानि बाह्यपत्राणि जाम्बूनदमयानि अभ्यन्तरपत्राणि तपनीयमयानि केशराणि कनकमय्य: कर्णिका: नानामणिमया: पुष्करस्थिभुगा: ॥ **'ताओ णं कण्णियाओ'** इत्यादि, ता: कर्णिका: क्रोशमायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धक्रोशं बाहल्येन सर्वात्मना कनकमय्य: 'अच्छाओ जाव पडिरूवाओ' इति प्राग्वत् ॥ **'तासि णं कण्णियाण'**मित्यादि, तासां कर्णिकानामुपरि बहुसमरमणीयो भूमिभाग: प्रज्ञप्त:, तस्य वर्णक: पूर्ववत्तावद्वक्तव्यो यावन्मणीनां स्पर्श: ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य मूलभूतपद्मस्य **'अपरोत्तरेण'** अपरोत्तरस्यां, एवमुत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां, सर्वसङ्कलनया तिसृषु दिक्षु अत्र नीलवतो नागकुमारेन्द्रस्य नागकुमारराजस्य चतुर्णां सामानिकसहस्राणां योग्यानि चत्वारि पद्मसहस्राणि प्रज्ञप्तानि । **'एतेण'**मित्यादि, एतेनानन्तरोदितेनाभिलापेन यथा विजयस्य सिंहासनपरिवारोऽभिहितस्तथेहापि पद्मपरिवारो वक्तव्य:, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि चतसृणामग्रमहिषीणां योग्यानि चत्वारि महापद्मानि, दक्षिणपूर्वस्यामभ्यन्तरपर्षदोऽष्टानां देवसहस्राणां योग्यान्यष्टौ पद्मसहस्राणि, दक्षिणस्यां मध्यमपर्षदो दशानां देवसहस्राणां योग्यानि दश पद्मसहस्राणि, दक्षिणापरस्यां बाह्यपर्षदो द्वादशानां देवसहस्राणां द्वादश पद्मसहस्राणि, पश्चिमायां सप्तानामनीकाधिपतीनां योग्यानि सप्त महापद्मानि प्रज्ञप्तानि, तदनन्तरं तस्य द्वितीयस्य पद्मपरिक्षेपस्य पृष्ठतश्चतसृषु दिक्षु षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां योग्यानि षोडश पद्मसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–चत्वारि पद्मसहस्राणि पूर्वस्यां दिशि चत्वारि पद्मसहस्राणि दक्षिणस्यां चत्वारि पद्मसहस्राणि पश्चिमायां चत्वारि पद्मसह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

स्राण्युत्तरस्यामिति । तदेवं मूलपद्मस्य त्रयः पद्मपरिवेषा अभूवन्, अन्येऽपि च त्रयो विद्यन्त इति तत्प्रतिपादनार्थमाह—'से णं पउमे' इत्यादि, तत् पद्ममन्यैरनन्तरोक्तपरिक्षेपत्रिकव्यतिरिक्तैस्त्रिभिः पद्मपरिवेषैः **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्तं, तद्यथा—अभ्यन्तरेण मध्यमेन बाह्येन च, तत्राभ्यन्तरे पद्मपरिक्षेपे सर्वसङ्ख्यया द्वात्रिंशत्पद्मशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ३२०००००, मध्ये पद्मपरिक्षेपे चत्वारिंशत् शतसहस्राणि ४०००००, बाह्ये पद्मपरिक्षेपेऽष्टाचत्वारिंशत्पद्मशतसहस्राणि ४८००००० प्रज्ञप्तानि । **'एवमेव'** अनेनैव प्रकारेण **'सपुव्वावरेणं'**ति सह पूर्वं यस्य येन वा सपूर्वं सपूर्वं च तद् अपरं च सपूर्वापरं तेन, पूर्वापरसमुदायेनेत्यर्थः, एका पद्मकोटी विंशतिश्च पद्मशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, एतेन सर्वतीर्थकृतामविसंवादिवचनतामाह, कोट्यादिका च सङ्ख्या स्वयं मीलनीया, द्वात्रिंशदादिशतसहस्राणामेकत्र मीलने यथोक्तसङ्ख्याया अवश्यं भावात् ॥ सम्प्रति नामान्वर्थं पिपृच्छिषुराह—**'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि, अथ केनार्थेनैवमुच्यते नीलवद्ह्रदो नीलवद्ह्रदः ? इति, भगवानाह—गौतम ! नीलवद्ह्रदे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहूनि **'उत्पलानि'** पद्मानि यावत्सहस्रपत्राणि नीलवद्ह्रदप्रभाणि—नीलवन्नाम ह्रदाकाराणि **'नीलवद्वर्णानि'** नीलवन्नामवर्षधरपर्वतस्तद्वर्णानि नीलानीति भावः, नीलवन्नामा च नागकुमारेन्द्रो नागकुमारराजो महर्द्धिक इत्यादि यमकदेववन्निरवशेषं वक्तव्यं यावद्विहरति, ततो यस्मात्तद्रूपाणि पद्मानि नीलवद्वर्णानि नीलवन्नामा च तदधिपतिर्देवस्ततस्तद्योगादसौ नीलवन्नामा ह्रदः, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि॥ **'कहि णं भंते ! नीलवंतदहस्से'**त्यादि राजधानीविषयं सूत्रं समस्तमपि प्राग्वत् ॥ ★★

नीलवंतद्दहस्स णं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं दस जोयणाइं अबाधाए एत्थ णं दस दस कंचणगप-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

★[मूल-१८८] कहि णं भंते! नीलवंतस्स नागकुमारिंदस्स नागकुमारराज्ञो नीलवन्ता नाम रायहाणी?

...रायहाणी नीलवंतद्दहस्सुत्तरेणं अन्नंमि जंबुद्दीवे दिवे बारस जोयण सहस्साईं जहा विजयस्स

प्रत सूत्रांक [१५०]

दीप अनुक्रम [१८९]

व्वता पण्णत्ता, ते णं कंचणगपव्वता एगमेगं जोयणसतं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं २ जोयणाइं उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं मज्झे पण्णत्तरिं जोयणाइं [आयाम]विक्खंभेणं उवरिं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं मूले तिण्णि सोले जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मज्झे दोन्नि सत्ततीसे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरिं एगं अट्ठावण्णं जोयणसतं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वकंचणमया० अच्छा, पत्तेयं २ पउमवरवेतिया० पत्तेयं २ वणसंडपरिक्खित्ता ॥ तेसि णं कंचणगपव्वताणं उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव आसयंति० तेसि णं० पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा सट्ठबावट्ठिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं मणिपेढिया दोजोयणिया सीहासणं सपरिवारा ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—कंचणगपव्वता कंचणगपव्वता?, गोयमा! कंचणगेसु णं पव्वतेसु तत्थ तत्थ वावीसु उप्पलाइं जाव कंचणगवण्णाभाइं कंचणगा जाव देवा महिड्ढीया जाव विहरंति, उत्तरेणं कंचणगाणं कंचणियाओ रायहाणीओ अण्णंमि जंबू० तहेव सव्वं भाणितव्वं ॥ कहि णं भंते! उत्तराए कुराए उत्तरकुरुद्दहे पण्णत्ते?, गोयमा! नीलवंतद्दहस्स दाहिणेणं अद्धचोत्तीसे जोयणसते, एवं सो चेव गमो णेतव्वो जो णीलवंतद्दहस्स सव्वेसिं सरिसको दहसरिनामा य देवा, सव्वेसिं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

कंचणगपव्वता दस २ एकप्पमाणा उत्तरेणं रायहाणीओ अण्णंमि जंबुदीवे। कहि णं भंते! चंददहे एरावणदहे मालवंतदहे एवं एक्केक्को णेयव्वो ॥ (सू० १५०)

'नीलवंतदहस्स ण'मित्यादि, नीलवतो ह्रदस्य **'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं'**ति पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि प्रत्येकं दश दश योजनान्यवाधया कृत्वेति गम्यते, अपान्तराले मुक्त्वेति भावः, दश दश काञ्चनपर्वता दक्षिणोत्तरश्रेण्या प्रज्ञप्ताः, ते च काञ्चनकाः पर्वताः प्रत्येकमेकं योजनशतमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन पञ्चविंशतियोजनान्युद्वेधेन मूले एकं योजनशतं विष्कम्भेन मध्ये पञ्चसप्ततियोजनानि विष्कम्भेन उपरि पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भेन, मूले त्रीणि षोडशोत्तराणि योजनशतानि ३१६ किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण मध्ये द्वे सप्तविंशे योजनशते २२७ किञ्चिद्विशेषोने परिक्षेपेण उपर्येकमष्टापञ्चाशं योजनशतं १५८ किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण, अत एव मूले विस्तीर्णा मध्ये सङ्क्षिप्ता उपरि तनुकाः अत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थिताः सर्वात्मना कनकमयाः **'अच्छा जाव पडिरूवा'** इति प्राग्वत्। तथा प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं प्रत्येकं वनषण्डपरिक्षिप्ताश्च, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां काञ्चनपर्वतानामुपरि बहुसमरमणीया भूमिभागाः प्रज्ञप्ताः, तेषां च वर्णनं प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावत्तृणानां मणीनां च शब्दवर्णनमिति ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं प्रासादावतंसकाः प्रज्ञप्ताः, प्रासादवक्तव्यता यमकपर्वतोपरि प्रासादावतंसकयोरिव निरवशेषा वक्तव्या यावत्सपरिवारसिंहासनवक्तव्यतापरिसमाप्तिः ॥ सम्प्रति नामान्वर्थं पिपृच्छिषुरिदमाह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि प्राग्वन्नवरं यस्मादुत्पलादीनि काञ्चनप्रभानि काञ्चननामानश्च देवास्तत्र परिवसन्ति ततः काञ्चनप्रभोत्पलादियोगात् काञ्चनकाभिधदेवस्वामिकत्वाच्च ते काञ्चनका इति, तथा चाह—**'से एएणट्ठे-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

ण'मित्यादि । काञ्चनिकाश्च राजधान्यो यमिकाराजधानीवद् वक्तव्याः ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु कुरुषु उत्तरकुरुह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! नीलवतो ह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमपर्यन्तादष्टौ **'चतुस्त्रिंशानि'** चतुस्त्रिंशदधिकानि योजनशतानि चतुरश्च योजनस्य सप्तभागान् अबाधया कृत्वेति गम्यते शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे अत्रोत्तरकुरुनामा ह्रदः प्रज्ञप्तः, यथैव प्राग् नीलवतो ह्रदस्यायामविष्कम्भोद्वेधपद्मवरवेदिकावनषण्डत्रिसोपानप्रतिरूपकतोरणमूलभूतमहापद्माष्टशतपद्मपरिवारपद्मशेषपद्मपरिक्षेपत्रयवक्तव्यतोक्ता तथैवेहाप्यन्यूनातिरिक्ता वक्तव्या ॥ नामकरणं पिपृच्छिषुरिदमाह— **'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि प्राग्वन्नवरमुत्पलादीनि यस्माद् **'उत्तरकुरुह्रदप्रभाणि'** उत्तरकुरुह्रदाकाराणि तेन तानि तदाकारयोगात् उत्तरकुरुनामा च तत्र देवः परिवसति तेन तद्योगाद् ह्रदोऽप्युत्तरकुरुः, न चैवमितरेतराश्रयदोषप्रसङ्गः, उभयेषामपि नाम्नामनादिकालं तथा प्रवृत्तेः, एवमन्यत्रापि निर्दोषता भावनीया, उत्तरकुरुनामा च तत्र देवः परिवसति, तद्वक्तव्यता च नीलवन्नागकुमारवद्वक्तव्या, ततोऽप्यसावुत्तरकुरुरिति, राजधानीवक्तव्यता काञ्चनकपर्वतवक्तव्यता च राजधानीपर्यवसाना प्राग्वत् ॥ चन्द्रह्रदवक्तव्यतामाह—**'कहि णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! उत्तरकुरुह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तादर्वाग् दक्षिणस्यां दिशि अष्टौ चतुस्त्रिंशानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्याबाधया कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे **'अत्र'** अस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु चन्द्रह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः, अस्यापि नीलवद्ह्रदस्येवायामविष्कम्भोद्वेधपद्मवरवेदिकावनषण्डत्रिसोपानप्रतिरूपकतोरणमूलभूतमहापद्माष्टशतपद्मपरिवारपद्मशेषपद्मपरिक्षेपत्रयवक्तव्यता वक्तव्या, नामान्वर्थसूत्रमपि तथैव, नवरं यस्मादुत्पलादीनि **'चन्द्रह्रदप्रभाणि'** चन्द्रह्रदाकाराणि चन्द्रवर्णानि चन्द्रनामा च देवस्तत्र परिवसति तस्माच्चन्द्रह्रदाभोत्पलादियो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५०]

दीप अनुक्रम [१८९]

गाचन्द्रदेवस्वामिकत्वाच्च चन्द्रह्रद इति, चन्द्रराजधानीवक्तव्यता काञ्चनपर्वतवक्तव्यता च राजधानीपर्यवसाना प्राग्वत् ॥ साम्प्रतमैरावतह्रदवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, निर्वचनमाह—गौतम! चन्द्रह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तादर्वाग् दक्षिणस्यां दिशि अष्टौ चतुस्त्रिंशानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्यावाधया कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे ऐरावतह्रदो नाम ह्रदः प्रज्ञप्तः, अस्यापि नीलवन्नाम्नो ह्रदस्येवायामविष्कम्भादिवक्तव्यता परिक्षेपपर्यवसाना वक्तव्या, अन्वर्थसूत्रमपि तथैव, नवरं यस्मादुत्पलादीनि ऐरावतह्रदप्रभाणि, ऐरावतो नाम हस्ती तद्वर्णानि च ऐरावतश्च नामा तत्र देवः परिवसति तेन ऐरावतह्रद इति, ऐरावताराजधानी विजयराजधानीवत् काञ्चनकपर्वतवक्तव्यतापर्यवसाना तथैव ॥ अधुना माल्यवन्नामह्रदवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते' इत्यादि सुगमं, भगवानाह—गौतम! ऐरावतह्रदस्य दाक्षिणात्याच्चरमान्तादर्वाग् दक्षिणस्यां दिशि अष्टौ चतुस्त्रिंशानि योजनशतानि चतुरश्च सप्तभागान् योजनस्य अबाधया कृत्वेति शेषः शीताया महानद्या बहुमध्यदेशभागे 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु माल्यवन्नामा ह्रदः प्रज्ञप्तः, स च नीलवद्ह्रदवदायामविष्कम्भादिना तावद्वक्तव्यो यावत्पद्मवक्तव्यतापरिसमाप्तिः, नामान्वर्थसूत्रमपि तथैव यस्मादुत्पलादीनि **'माल्यवद्ह्रदप्रभाणि'** माल्यवद्ह्रदाकाराणि, माल्यवन्नामा वक्षस्कारपर्वतस्तद्वर्णानि—तद्वर्णाभानि माल्यवन्नामा च तत्र देवः परिवसति तेन माल्यवद्ह्रद इति, माल्यवतीराजधानी विजयाराजधानीवद् वक्तव्या काञ्चनकपर्वतवक्तव्यताऽवसाना प्राग्वत् ॥ सम्प्रति जम्बूवृक्षवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! उत्तरकुराए २ जंबुसुदंसणाए जंबुपेढे नामं पेढे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं नीलवंतस्स वासधरपव्वतस्स दाहिणेणं मालवंतस्स वक्खा-

॥ २९२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [१९०]

रपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं गंधमादणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुरुकुराए जंबूपेढे नाम पेढे पंचजोयणसताइं आयामविक्खंभेणं पण्णरस एक्कासीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं बहुमज्झदेसभाए बारस जोयणाइं बाहल्लेणं तदाणंतरं च णं माताए २ पदेसे परिहाणीए सव्वेसु चरमंतेसु दो कोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते सव्वजंबूणतामए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खेत्ते वण्णओ दोण्हवि । तस्स णं जंबुपेढस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता तं चेव जाव तोरणा जाव चत्तारि छत्ता ॥ तस्स णं जंबूपेढस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंगपुक्खरेतिवा जाव मणि० ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं मणिमती अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महं जंबूसुदंसणा पण्णत्ता अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाति खंधे अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं छ जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं सातिरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता, वइरामयमूला रयतसुपतिट्ठियविडिमा, एवं चेतियरुक्खवण्णओ जाव सव्वो रिट्ठामयविउलकंदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेरुलियरुइरक्खंधा सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला नाणामणिरयणविविहसाहप्पसाह-वेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा विचित्तमणिरयणसुर-हिकुसुमा फलभारनमियसाला सच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया अहियं मणोनिव्वुइ-करा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ (सू० १५१.)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु जम्ब्वाः सुदर्शनायाः, जम्ब्वा हि द्वितीयं नाम सुदर्शनेति तत उक्तं सुदर्शनाया इति, जम्ब्वाः सम्बन्धि पीठं जम्बूपीठं नाम पीठं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह–गौतम! मन्दरस्य पर्वतस्य **'उत्तरपूर्वेण'** उत्तरपूर्वस्यां नीलवतो वर्षधरपर्वतस्य **'दक्षिणेन'** दक्षिणतो गन्धमादनस्य वक्षस्कारपर्वतस्य **'पूर्वेण'** पूर्वस्यां दिशि माल्यवतो वक्षस्कारपर्वतस्य पश्चिमायां शीताया महानद्याः पूर्वस्यामुत्तरकुरुपूर्वार्द्धस्य बहुमध्यदेशभागे **'अत्र'** एतस्मिन्नवकाशे उत्तरकुरुषु कुरुषु जम्ब्वाः सुदर्शनापरनामिकाया जम्बूपीठं प्रज्ञप्तं, पञ्च योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यामेकं योजनसहस्रं पञ्चैकाशीतानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि १५८१ परिक्षेपेण, बहुमध्यदेशभागे द्वादश योजनानि बाहल्येन, तदनन्तरं च मात्रया २ परिहीयमानं चरमपर्यन्तेषु द्वौ क्रोशौ बाहल्येन सर्वात्मना जाम्बूनदमयम्, **'अच्छे'** इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत्, उक्तञ्च—"जंबूनयामयं जंबूपीढमुत्तरकुराएँ पुव्वद्धे । सीयाए पुव्वद्धे पंचसयायामविक्खंभं ॥ १ ॥ पन्नरसेक्कासीए साहीए परिहिमज्झबाहल्लं । जोयणदुछक्कमसो हायंतेसु दो कोसा ॥ २ ॥" **'से णं'**मित्यादि 'तत्' जम्बूपीठमेकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनखण्डेन **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन परिक्षिप्तं, वेदिकावनषण्डयोर्वर्णकः प्राग्वद्वक्तव्यः । तस्य च जम्बूपीठस्य चतुर्दिशि एकैकस्यां दिशि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

एकैकत्रिसोपानप्रतिरूपकभावेन चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि–प्रतिविशिष्टरूपाणि त्रिसोपानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–एकं पूर्वस्यामेकं दक्षिणस्यामेकं पश्चिमायामेकमुत्तरस्याम्॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां च त्रिसोपानप्रतिरूपकाणामयमेतद्रूपो वर्णावास: प्रज्ञप्त:, तद्यथा–वज्रमया नेमा भूमेरूर्द्धमुद्गच्छन्त: प्रदेशा इत्यादि जगत्युपरिवाप्यादित्रिसोपानवत्तावद्वक्तव्यं यावन्नानामणिमयान्यवलम्बनानि अवलम्बनबाहाश्च, तोरणान्यपि प्राग्वद्वाच्यानि ॥ **'तस्स णं जंबूपेढस्स ण'**मित्यादि, जम्बूपीठस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभाग: प्रज्ञप्त:, स च 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि विजयाराजधान्युपकारिकालयनवत्तावद्वक्तव्यो यावन्मणीनां स्पर्शवक्तव्यतापरिसमाप्ति:, यावच्च बहवो वानमन्तरा देवा देव्यश्चासते शेरते यावद् विहरन्तीति ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां चत्वारि योजनानि बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि बहुमध्यदेशभागे, अत्र महती जम्बू: सुदर्शना प्रज्ञप्ता, अष्टौ योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धयोजनमुद्वेधेन, द्वे योजने स्कन्ध: षड् योजनानि विडिमा–ऊर्द्धं विनिर्गता शाखा बहुमध्यदेशभागे अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, सातिरेकान्यष्टौ योजनानि 'सर्वाग्रेण' उद्वेधोच्चैस्त्वपरिमाणमीलनेन, तस्याश्च जम्ब्वा वज्रमयानि मूलानि यस्या: सा वज्रमयमूला **'रययसुपइट्ठियविडिमा'** इति रजता–रजतमयी सुप्रतिष्ठिता विडिमा–बहुमध्यदेशभागे ऊर्द्धं विनिर्गता यस्या: सा रजतसुप्रतिष्ठितविडिमा, तत: पूर्वपदेन विशेषणसमास:, **'रिट्ठामयविउलकंदा वेरुलियरुइलखंधा'** रिष्टमयो–रिष्टरत्नमय: (विपुल:) कन्दो यस्या: सा रिष्टरत्नमयकन्दा, तथा वैडूर्यरत्नमयो रुचिरो–दीप्यमान: स्कन्धो यस्या: सा वैडूर्यरुचिरस्कन्धा, तत: पूर्वपदेन कर्मधारयसमास:, **'सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला'** सुजातं–मूल-

Jain Education Intern... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

द्रव्यशुद्धं वरं–प्रधानं यत् जातरूपं तदात्मकाः प्रथमका–मूलभूता विशालाः शालाः–शाखा यस्याः सा सुजातवरजातरूपप्रथमकविशालशालाः **'नाणामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा'** नानामणिरत्नानां–नानामणिरत्नात्मिका विविधा शाखाप्रशाखा यस्याः सा तथा तथा वैडूर्याणि–वैडूर्यरत्नमयानि पत्राणि यस्याः सा तथा तपनीयानि–तपनीयमयानि पत्रवृन्तानि यस्याः सा तथा, ततः पदद्वय २ मीलनेन कर्म्मधारयः नानामणिरत्नविविधशाखाप्रशाखावैडूर्यपत्रतपनीयपत्रवृन्ताः, अपरे सौवर्णिकयो मूलशाखाः प्रशाखा रजतमय्य इत्युचुः, **'जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवंकुरधरा'** जाम्बूनदनामकसुवर्णविशेषमया रक्ता–रक्तवर्णा मृदवो–मनोज्ञाः सुकुमाराः–सुकुमारस्पर्शा ये प्रवाला–ईषदुन्मीलितपत्रभावाः पल्लवाः संजातपरिपूर्णप्रथमपत्रभावरूपा वराङ्कुराः-प्रथममुद्भिद्यमाना अङ्कुरास्तान् धरन्तीति जाम्बूनदरक्तमृदुकसुकुमारप्रवालपल्लवाङ्कुरधराः, कचित्पाठः—'जंबूनयरत्तमउयसुकुमालकोमलपल्लवंकुरग्गसिहरा' तत्र जाम्बूनदानि रक्तानि मृदूनि–अकठिनानि सुकुमाराणि–अकर्कशस्पर्शानि कोमलानि–मनोज्ञानि प्रवालपल्लवाङ्कुरा–यथोदितस्वरूपा अग्रशिखराणि च यस्याः सा तथा, अन्ये तु जम्बूनदमया अग्रप्रवाला अङ्कुरापरपर्याया राजता इत्याहुः, **'विचित्तमणिरयणसुरभिकुसुमफलभारनमियसाला'** विचित्रमणिरत्नानि–विचित्रमणिरत्नमयानि सुरभीणि कुसुमानि फलानि च तेषां भरेण नमिता–नामं ग्राहिताः शालाः–शाखा यस्याः सा तथा, उक्तञ्च—"मूला वइरमया से कंदो खंधो य रिट्ठवेरुलिओ । सोवण्णियसाहप्पसाह तह जायरूवा य ॥ १ ॥ विडिमा रययवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा य । पल्लव अग्गपवाला जंबूणयरायया तीसे ॥ २ ॥" **'रयणमयापुप्फफला'** इति 'सच्छाया' इति सती–शोभना छाया यस्याः सा सच्छाया, तथा सती–शोभना प्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५१]

दीप अनुक्रम [१९०]

यस्या: सा सत्प्रभा, अत एव सश्रीका सह उद्द्योतो यया मणिरत्नानामुद्द्योतभावात् सोद्द्योता अधिकं–अतिशयेन मनोनिर्वृत्तिकरी 'पासाईया' इत्यादि पदचतुष्टयं प्राग्वत् ॥

जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता, तंजहा—पुरत्थिमेणं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं, तत्थणं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते एगं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभ० वण्णओ जाव भवणस्स दारं तं चेव पमाणं पंचधणुसताति उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं विक्खंभेणं जाव वणमालाओ भूमिभागा उल्लोया मणिपेढिया पंचधणुसतिया देवसयणिज्जं भाणियव्वं ॥ तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते, कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय० अंतो बहुसम० उल्लोता। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं । तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले साले एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं । तत्थ णं जे से उवरिमविडिमे एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसतसन्निविट्ठे वण्णओ तिदिसिं तओ दारा पंचधणुसता अड्ढाइज्जधणुसयवि-

जी० ७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खंभा मणिपेढिया पंचधणुसतिया देवच्छंदओ पंचधणुसतविक्खंभो सातिरेगपंचधणुसउच्चत्ते। तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेधप्पमाणाणं, एवं सव्वा सिद्धायतणवत्तव्वया भाणियव्वा जाव धूवकडुच्छुया उत्तिमागारा सोलसविधेहिं रयणेहिं उवेए चेव जंबू णं सुदंसणा मूले बारसहिं पउमवरवेदियाहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता, ताओ णं पउमवरवेदियाओ अद्धजोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पंचधणुसताइं विक्खंभेणं वण्णओ ॥ जंबू सुदंसणा अण्णेणं अट्ठसतेणं जंबूणं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता ॥ ताओ णं जंबूओ चत्तारि जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं कोसं चोव्वेधेणं जोयणं खंधो कोसं विक्खंभेणं तिण्णि जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं सातिरेगाइं चत्तारि जोयणाइं सव्वग्गेणं वइरामयमूला सो चेव चेतियरुक्खवण्णओ ॥ जंबूए णं सुदंसणाए अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं अणाढियस्स चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि जंबूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, जंबूए सुदंसणाए पुरत्थिमेणं एत्थ णं अणाढियस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं चत्तारि जंबूओ पण्णत्ताओ, एवं परिवारो सव्वो णायव्वो जंबूए जाव आयरक्खाणं ॥ जंबू णं सुदंसणा तिहिं जोयणसतेहिं वणसंडेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता, तंजहा—पढमेणं दोच्चेणं तच्चेणं। जंबूए सुदंसणाए पुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं एगे महं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

www.jainelibrary.org For Private & Personal Use Only Jain Education International

भवणे पण्णत्ते, पुरत्थिमिल्ले भवणसरिसे भाणियव्वे जाव सयणिज्जं, एवं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं ॥ जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमेणं पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ता, तंजहा—पउमा पउमप्पभा चेव कुमुदा कुमुयप्पभा । ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं पंचधणुसयाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पंकाओ णीरयाओ जाव पडिरूवाओ वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति ॥ तासि णं णंदापुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते कोसप्पमाणे अद्धकोसं विक्खंभो सो चेव सो वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं । एवं दक्खिणपुरत्थिमेणवि पण्णासं जोयणा० चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ उप्पलगुम्मा नलिणा उप्पला उप्पलुज्जला तं चेव पमाणं तहेव पासायवडेंसगो तप्पमाणो । एवं दक्खिणपच्चत्थिमेणवि पण्णासं जोयणाणं परं—भिंगा भिंगणिभा चेव अंजणा कज्जलप्पभा, सेसं तं चेव । जंबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमे पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ तं०—सिरिकंता सिरिमहिया सिरिचंदा चेव तहय सिरिणिलया। तं चेव पमाणं तहेव पासायवडिंसओ ॥ जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९०--१९४]

मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं उवरिं चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खंभेणं मूले सातिरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं मज्झे सातिरेगाइं पणुवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं उवरिं सातिरेगाइं बारस जोयणाइं परिक्खेवेणं मूले विच्छिन्ने मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वजंबूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ ॥ तस्स णं कूडस्स उवरि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति० ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एगं सिद्धायतणं कोसप्पमाणं सव्वा सिद्धायतणवत्तव्वया । जंबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च । जंबूए णं सुदंसणाए दाहिणिल्लस्स भवण० पुरत्थिमेणं दाहिणपुरत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, दाहिणस्स भवणस्स परतो दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडिंसगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे जंबूतो पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेणं एत्थ णं एगे महं कूडे प० तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च, जंबूए पच्चत्थिमभवणउत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९०--१९४]

कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च। जंबूए उत्तरस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमस्स पासायवडेंगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे कूडे पण्णत्ते, तं चेव, जंबूए उत्तरभवणस्स पुरत्थिमेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते, तं चेव पमाणं तहेव सिद्धायतणं। जंबू णं सुदंसणा अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं जाव रायरुक्खेहिं हिंगुरुक्खेहिं जाव सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता। जंबूते णं सुदंसणाए उवरिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, तंजहा—सोत्थियसिरिवच्छ० किण्हा चामरज्झया जाव छत्तातिच्छत्ता॥ जंबूए णं सुदंसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा—सुदंसणा अमोहा य, सुप्पबुद्धा जसोधरा। विदेहजंबू सोमणसा, णियया णिच्चमंडिया॥ १॥ सुभद्दा य विसाला य, सुजाया सुमणीतिया। सुदंसणाए जंबूए, नामधेज्जा दुवालस॥ २॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जंबूसुदंसणा?, गोयमा! जंबूते णं सुदंसणाते जंबूदीवाहिवती अणाढिते णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठितीए परिवसति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव जंबूदीवस्स जंबूए सुदंसणाए अणाढियाते य रायधाणीए जाव विहरंति। कहि णं भंते! अणाढियस्स जाव समत्ता वत्तव्वया रायधाणीए महिड्ढीए। अदुत्तरं च णं गोयमा! जंबुदीवे २ तत्थ तत्थ देसे तहिं २ बहवे जंबूरुक्खा जंबूवणा जंबूवणसंडा णिचं कुसुमिया जाव सिरीए अतीव उवसोभे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९०--१९४]

माणा २ चिट्ठंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—जंबुद्दीवे २, अदुत्तरं च णं गोयमा! जंबुद्दीवस्स सासते णामधेज्जे पण्णत्ते, जन्न कयावि णासि जाव णिच्चे ॥ (सू० १५२)

'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाश्चतुर्दिशि एकैकस्यां दिशि एकैकशाखाभावतश्चतस्रः शाखाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—एका पूर्वस्यामेका दक्षिणस्यामेका पश्चिमायामेकोत्तरस्यां, तत्र या सा पूर्वशाखा, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, 'तस्स ण'मित्यादि, तस्या बहुमध्यदेशभागे अत्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, क्रोशमायामतोऽर्द्धक्रोशं विष्कम्भतो देशोनं क्रोशमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, तस्य वर्णको द्वारादिवक्तव्यता च प्राग्वत्, तथा चाह—'पमाणाइया महापउमवत्तव्वया भाणियव्वा अहीणमइरित्ता जाव उप्पलहत्थगा' इति ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र या सा दक्षिणाद्या शाखा तस्या बहुमध्यदेशभागे अत्र महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, क्रोशमेकमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन, 'अब्भुग्गयमूसियपहसिया इवे'त्यादि तद्वर्णनमुपर्युल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं मणिपीठिकावर्णनं सिंहासनवर्णनं च प्राग्वत्, नवरमत्र मणिपीठिका पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यामर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि बाहल्येन सिंहासनं च सपरिवारं वाच्यमिति, तस्य च प्रासादावतंसकस्योपरि बहून्यष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानीत्यादि तावद्वक्तव्यं यावद्गृहवः सहस्रपत्रहस्तका इति, यथा च दक्षिणस्यां शाखायां प्रासादावतंसक उक्तस्तथा पश्चिमायामुत्तरस्यामपि च प्रत्येकं वक्तव्यः, जम्ब्वाः सुदर्शनाया उपरि विडिमाया बहुमध्यदेशभागे सिद्धायतनं, तच्च पूर्वस्यां भवनमिव तावद्वक्तव्यं यावन्मणिपीठिकावर्णनं, तत ऊर्द्ध्वमेवं वक्तव्यं—'तीसे ण'मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि अत्र महानेको देवच्छन्दकः प्रज्ञप्तः, एवं पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां पञ्चधनुःशतानि सातिरेकाणि ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन सर्वात्मना रत्नमयः, अच्छ इत्यादि पूर्ववद् यावत्प्रतिरूप इति । 'तत्थ णं अट्ठसयं जिणपडिमाणं

॥ २९७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा:

दीप अनुक्रम [१९०--१९४]

जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं सन्निक्खित्ताणं चिट्ठइ' इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'अट्ठसयं धूवकडुच्छुयाणं सन्निक्खित्ताणं चिट्ठइ' इति पदं, 'सिद्धाययणस्स उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा' इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावत् 'सहस्सपत्तहत्थगा' इति, सर्वत्रापि च व्याख्याऽपि पूर्ववत् ॥ **'जंबू णं सुदंसणा'** इत्यादि, जम्बूः सुदर्शना द्वादशभिः पद्मवरवेदिकाभिः **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता । वेदिकावर्णनं प्राग्वत् । **'जंबू ण'**मित्यादि, जम्बूः सुदर्शना अन्येन जम्बूनामवृक्षशतेन तदर्द्धोच्चत्वप्रमाणमात्रेण **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता । तदर्द्धोच्चप्रमाणमेव भावयति—**'ताओ ण'**मित्यादि, 'ताः' अष्टोत्तरशतसङ्ख्या जम्ब्वाः प्रत्येकं चत्वारि योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन क्रोशमुद्वेधेन योजनमेकं स्कन्धः क्रोशं बाहल्येन स्कन्धः, त्रीणि योजनानि विडिमा—ऊर्द्ध्वं विनिर्गता शाखा बहुमध्यदेशभागे चत्वारि योजनान्यायामविष्कम्भाभ्याम्, ऊर्द्ध्वाधोरूपेण सातिरेकाणि चत्वारि योजनानि सर्वाग्रेण उद्वेधपरिमाणमीलनेनेति भावः । 'वइरामयमूलरययसुपइट्ठिया विडिमा' इत्यादिवर्णनं पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावदधिकं नयन-मनोनिर्वृत्तिकार्यः, प्रासादीया यावत्प्रतिरूपाः ॥ **'जंबूए ण'**मित्यादि, 'जंबूए णं सुदंसणाए' इत्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनाया अवरोत्तरस्यामुत्तरस्यामुत्तरपूर्वस्यां, अत एवासु तिसृषु दिक्ष्वनाहतस्य देवस्य जम्बूद्वीपाधिपतेश्चतुर्णां सामानिकसहस्राणां योग्यानि चत्वारि जम्बूसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, पूर्वस्यां चतसृणामग्रमहिषीणां योग्यानि चतस्रो, महाजम्ब्वा दक्षिणपूर्वस्यामभ्यन्तरपर्षदोऽष्टानां देवसहस्राणां योग्यान्यष्टौ जम्बूसहस्राणि, दक्षिणस्यां मध्यमपर्षदो दशानां देवसहस्राणां योग्यानि दश जम्बूसहस्राणि, दक्षिणापरस्यां बाह्यपर्षदो द्वादश देवसहस्राणां योग्यानि द्वादश जम्बूसहस्राणि, अपरस्यां सप्तानामनीकाधिपतीनां योग्यानि सप्त महाजम्ब्वः, ततः सर्वासु दिक्षु षोडशानामारक्षदेवसहस्राणां योग्यानि षोडश जम्बूसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ॥ **'जंबू णं सुदंसणा'** इत्यादि, सा जम्बूः सुद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५२] + गाथा: दीप अनुक्रम [१९०--१९४]

शेना त्रिभिः शतकैः—योजनशतप्रमाणैर्वनषण्डैः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्ता, तद्यथा—अभ्यन्तरकेन मध्येन बाह्येन च । जम्ब्वाः सुदर्शनायाः पूर्वस्यां दिशि प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्यात्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, तच्च पूर्वदिग्वर्त्तिभवनवद् वक्तव्यं यावत् शयनीयम् । जम्ब्वाः सुदर्शनाया दक्षिणतः प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्यात्र महदेकं भवनं प्रज्ञप्तं, एतदपि तथैव यावत् शयनीयं, एवं पश्चिमायामुत्तरस्यां च प्रत्येकं च प्रत्येकं च प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्य भवनं वक्तव्यं यावत् शयनीयम् ॥ 'जंबूए ण'मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनाया उत्तरपूर्वस्यां—ईशानकोण इत्यर्थः प्रथमं वनषण्डं पञ्चाशतं योजनान्यवगाह्यात्र महत्यश्चतस्रो नन्दापुष्करिण्यः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पूर्वस्यां पद्मा—पद्माभिधाना, दक्षिणस्यां पद्मप्रभा, पश्चिमायां कुमुदा, उत्तरस्यां कुमुदप्रभा, ताश्च नन्दापुष्करिण्यः प्रत्येकं क्रोशमायामेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेन पञ्चधनुःशतान्युद्वेधेन, 'अच्छाओ सण्हाओ' इत्यादि पुष्करिणीवर्णनं प्राग्वत्समस्तं यावत्प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं २ वनषण्डपरिक्षिप्ताः, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् ॥ 'तासि ण'मित्यादि, तासां पुष्करिणीनां प्रत्येकं चतुर्दिशि एकैकस्यां दिशि एकैकभावेन चत्वारि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि, तेषां वर्णकः प्राग्वत्, तोरणान्यपि तथैव, तासां पुष्करिणीनां बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, स च जम्बूवृक्षदक्षिणपश्चिमशाखाभाविप्रासादवत् प्रमाणादिना वक्तव्यो यावत् 'सहस्सपत्तहत्थगा' इति पदं, सर्वत्रापि च सिंहासनमनादृतदेवस्य सपरिवारम् । एवं दक्षिणपूर्वस्यां दक्षिणापरस्यामुत्तरापरस्यां च प्रत्येकं वक्तव्यं, नवरं नन्दापुष्करिणीनामनानात्वं, तच्चेदं—दक्षिणपूर्वस्यां पूर्वादिक्रमेण उत्पलगुल्मा नलिना उत्पला उत्पलोज्ज्वला, दक्षिणपूर्वस्यां भृङ्गा भृङ्गनिभा अञ्जना कज्जलप्रभा, अपरोत्तरस्यां श्रीकान्ता श्रीचन्द्रा श्रीनिलया श्रीमहिता, उक्तञ्च—"पउमा पउमप्पभा चेव, कुमुया कुमुयप्पभा । उप्पलगुम्मा न-

॥ २९८ ॥

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

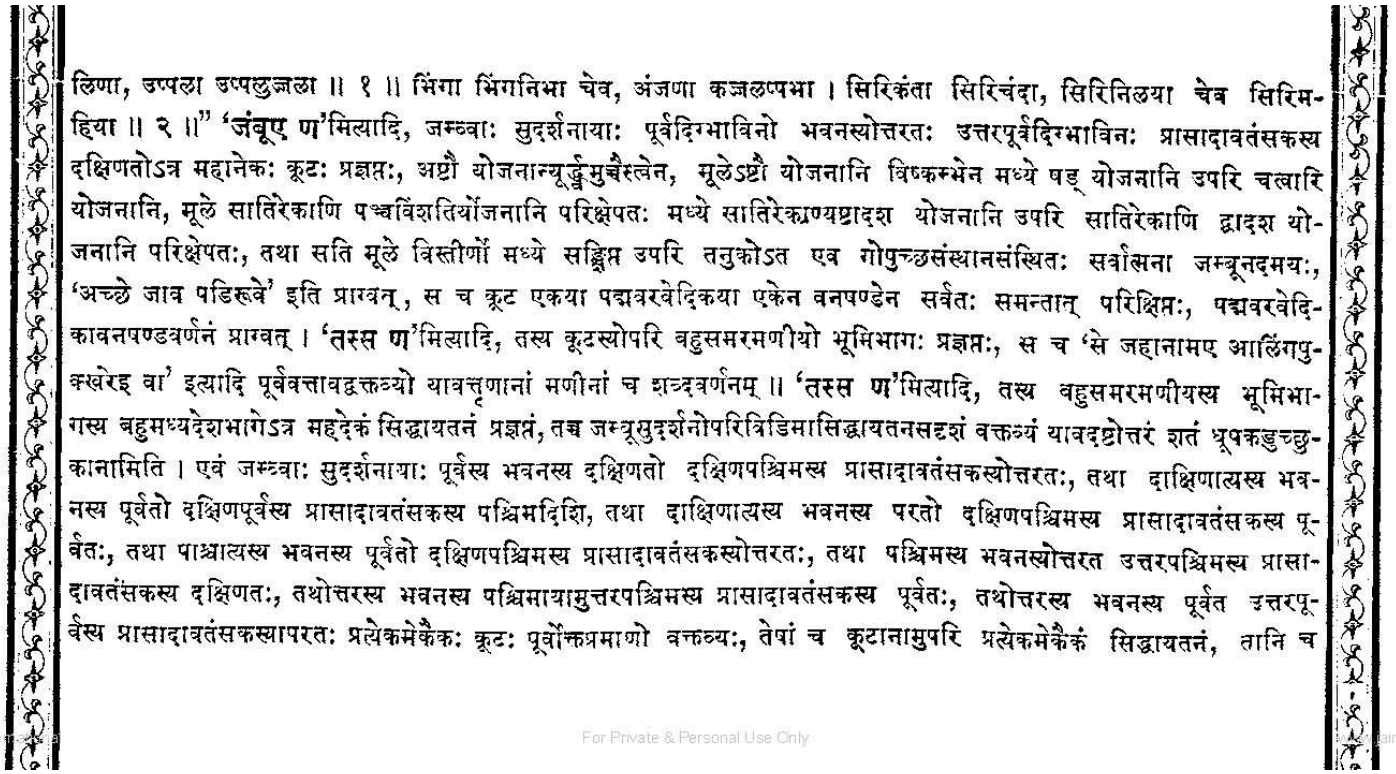

लिणा, उप्पला उप्पलुज्जला ॥ १ ॥ भिंगा भिंगनिभा चेव, अंजणा कज्जलप्पभा । सिरिकंता सिरिचंदा, सिरिनिलया चेव सिरिमहिया ॥ २ ॥" **'जंबूए ण'**मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनायाः पूर्वदिग्भाविनो भवनस्योत्तरतः उत्तरपूर्वदिग्भाविनः प्रासादावतंसकस्य दक्षिणतोऽत्र महानेकः कूटः प्रज्ञप्तः, अष्टौ योजनान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, मूलेऽष्टौ योजनानि विष्कम्भेन मध्ये षड् योजनानि उपरि चत्वारि योजनानि, मूले सातिरेकाणि पञ्चविंशतियोंजनानि परिक्षेपतः मध्ये सातिरेकाण्यष्टादश योजनानि परिक्षेपतः, तथा सति मूले विस्तीर्णो मध्ये सङ्क्षिप्त उपरि तनुकोऽत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थितः सर्वात्मना जम्बूनदमयः, 'अच्छे जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत्, स च कूट एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात् परिक्षिप्तः, पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् । **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य कूटस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, स च 'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यो यावत्तृणानां मणीनां च शब्दवर्णनम् ॥ **'तस्स ण'**मित्यादि, तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महदेकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तं, तच्च जम्बूसुदर्शनोपरिविडिमासिद्धायतनसदृशं वक्तव्यं यावदष्टोत्तरं शतं धूपकडुच्छुकानामिति । एवं जम्ब्वाः सुदर्शनायाः पूर्वस्य भवनस्य दक्षिणतो दक्षिणपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्योत्तरतः, तथा दाक्षिणात्यस्य भवनस्य पूर्वतो दक्षिणपूर्वस्य प्रासादावतंसकस्य पश्चिमदिशि, तथा दाक्षिणात्यस्य भवनस्य परतो दक्षिणपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्य पूर्वतः, तथा पाश्चात्यस्य भवनस्य पूर्वतो दक्षिणपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्योत्तरतः, तथा पश्चिमस्य भवनस्योत्तरत उत्तरपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्य दक्षिणतः, तथोत्तरस्य भवनस्य पश्चिमायामुत्तरपश्चिमस्य प्रासादावतंसकस्य पूर्वतः, तथोत्तरस्य भवनस्य पूर्वत उत्तरपूर्वस्य प्रासादावतंसकस्यापरतः प्रत्येकमेकैकः कूटः पूर्वोक्तप्रमाणो वक्तव्यः, तेषां च कूटानामुपरि प्रत्येकमेकैकं सिद्धायतनं, तानि च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धायतनानि पूर्ववद्वाच्यानि, उक्तञ्च—"अट्ठुसहकूडसरिसा सव्वे जंबूनयामया भणिया। तेसुवरिं जिणभवणा कोसपमाणा परमरम्मा ॥ १ ॥" **'जंबूए ण'**मित्यादि, जम्ब्वाः सुदर्शनाया द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—**'सुदंसणे'**त्यादि, शोभनं दर्शनं—दृश्यमानता यस्या नयनमनोहारित्वात् सा सुदर्शना १, यथा च तस्याः शोभनदर्शनं तथाऽग्रे स्वयमेव सूत्रकृद् भावयिष्यति, **'अमोहा य'** इति मोघं—निष्फलं न मोघा अमोघा अनिष्फला इत्यर्थः, तथाहि—सा स्वस्वामिभावेन प्रतिपन्ना सती जम्बूद्वीपाधिपत्यमुपजनयति, तदन्तरेण तद्विषयस्य स्वामिभावस्यैवायोगात्, ततोऽनिष्फलेति २, **'सुप्पबुद्धा'** इति सुष्ठु—अतिशयेन प्रबुद्धेव प्रबुद्धा मणिकनकरत्नानां निरन्तरं सर्वतश्चाकचिक्येन सर्वकालमुन्निद्रेति भावः ३, **'जसोहरा'** इति यशः सकलभुवनव्यापि धरतीति यशोधरा लिहादित्वादच्, जम्बूद्वीपो हि विदितमहिमा भुवनत्रयेऽप्यनया जम्ब्वोपलक्षितस्ततो भवति यथोक्तं यशोधारित्वमस्याः ४, **'सुभद्दा य'** इति शोभनं भद्रं—कल्याणं यस्याः सा सुभद्रा, सकलकालं कल्याणभागिनीत्यर्थः, न हि तस्याः कदाचिदप्युपद्रवाः संभवन्ति, महर्द्धिकेनाधिष्ठितत्वात् ५, **'विसाला य'** इति विशाला—विस्तीर्णा आयामविष्कम्भाभ्यामुच्चैस्त्वेन चाष्टयोजनप्रमाणत्वात् ६, **'सुजाया'** इति शोभनं जातं—जन्म यस्याः सा सुजाता, विशुद्धमणिकनकरत्नमूलद्रव्यतया जन्मदोषरहितेति भावः ७, **'सुमणा इय'** इति शोभनं मनो यस्याः सकाशाद् भवति सा सुमनाः, भवति हि तां पश्यतां महर्द्धिकानां मनः शोभनमतिरमणीयत्वात् ८, **'विदेहजंबू'** इति, विदेहेषु जम्बूर्विदेहजम्बूर्विदेहान्तर्गतोत्तरकुरुकृतनिवासत्वात् ९, **'सोमणसा'** इति सौमनस्यहेतुत्वात् सौमनस्या, नहि तां पश्यतः कस्यापि मनो दुष्टं भवति, केवलं तां दृष्ट्वा प्रीतमनास्तां तदधिष्ठातारं च प्रशंसतीति १०, **'नियता'** इति नियता

१ अष्टौ कूपकूटसदृशाः सर्वे जम्बूनदमया भणिताः। तेषामुपरि जिनभवनानि कोशप्रमाणानि परमरम्याणि ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

सर्वकालमवस्थिता शाश्वतत्वात् ११, **'नित्यमंडिता'** सदा भूषणभूषितत्वात् १२। **'सुदंसणाए'** इत्यादि तान्येतानि सुदर्शनाया जम्ब्वा द्वादश नामधेयानि ॥ सम्प्रति सुदर्शनाशब्दप्रवृत्तिनिमित्तं पिपृच्छिषुरिदमाह—**'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि प्रतीतं, निर्वचनमाह—**'गोयमे'**त्यादि सुगमं, नवरम् **'अणाढिए नामं देवे'** इति, अनाहता:—अनादरक्रियाविषयीकृता: शेषा जम्बूद्वीपगता देवा येनासनोऽत्यद्भुतं महर्द्धिकत्वमीक्षमाणेन सोऽनाहत:, सकलनिर्वचनभावार्थश्चायं—यस्मादेवं महर्द्धिकोऽनाहतनामा देवस्तत्र परिवसति ततस्तस्य समस्ताऽपि स्फाति: तत्र कृतावासेति सा सुदर्शनाऽनाहता, राजधानीवक्तव्यताऽपि प्राग्वदुक्तव्या, तदेवं यस्मादेवंरूपया जम्ब्वोपलक्षित एष द्वीपस्तस्माज्जम्बूद्वीप इत्युच्यते, अथवेदं जम्बूद्वीपशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमिति दर्शयति—**'अदुत्तरं च ण'**मित्यादि, अथान्यत् जम्बूद्वीपशब्दप्रवृत्तिकारणमिति गम्यते, गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरकुरुषु कुरुषु तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो जम्बूवृक्षा जम्बूवनानि जम्बूषण्डा:, इहैकजातीयवृक्षसमुदायो वनं, अनेकजातीयवृक्षसमूहो वनषण्ड:, केवलं प्रधानेन व्यपदेश इति जम्बूवनं जम्बूषण्ड इति भेदेनोपात्तं, 'निच्चंकुसुमिया' इत्यादि विशेषणकदम्बकं प्राग्वत्, तत एष द्वीपो जम्बूद्वीप:, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीपगतचन्द्रादिसङ्ख्यापरिज्ञानार्थमाह—

जंबूदीवे णं भंते! दीवे कति चंदा पभासिंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा? कति सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा? कति नक्खत्ता जोयं जोयंसु वा जोयंति वा जोएस्संति वा? कति महग्गहा चारं चरिंसु वा चरिंति वा चरिस्संति वा? केवतिताओ तारागणकोडाकोडीओ सोहंसु वा सोहेंति वा सोहेस्संतिवा?, गोयमा! जंबूदीवे णं दीवे दो चंदा पभासिंसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

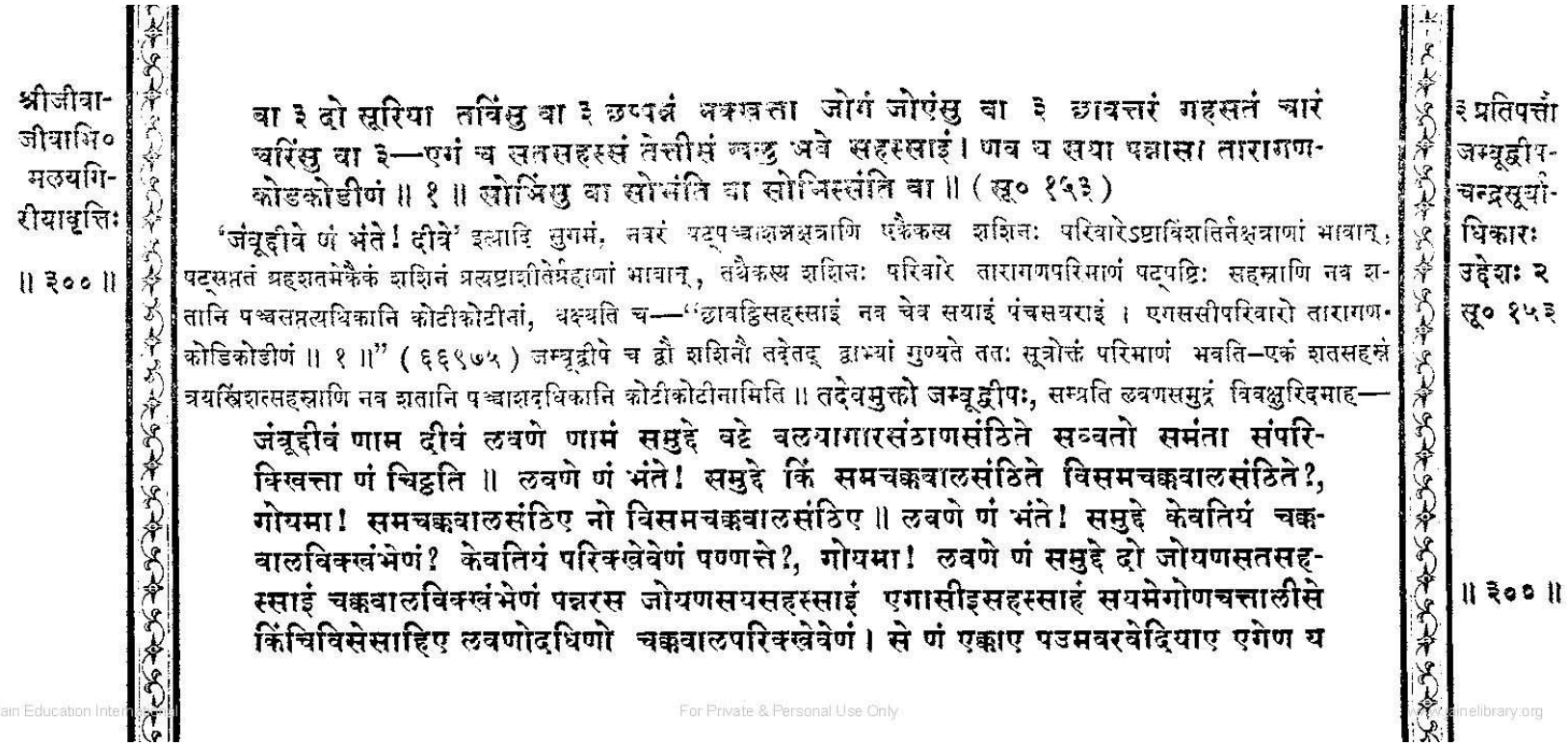

श्रीजीवा-जीवाभि० मलयगि-रीयावृत्तिः ॥ ३०० ॥

वा ३ दो सूरिया तविंसु वा ३ छप्पन्नं नक्खत्ता जोगं जोएंसु वा ३ छावत्तरं गहसतं चारं चरिंसु वा ३—एगं च सतसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं। णव य सया पन्नासा तारागण-कोडकोडीणं ॥ १ ॥ सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा ॥ (सू० १५३)

'जंबूदीवे णं भंते! दीवे' इत्यादि सुगमं, नवरं षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणां भावात्, षट्सप्तत ग्रहशतमेकैकं शशिनं प्रत्यष्टाशीतेर्ग्रहाणां भावात्, तथैकस्य शशिनः परिवारे तारागणपरिमाणं षट्पष्टिः सहस्राणि नव श-तानि पञ्चसप्तत्यधिकानि कोटीकोटीनां, वक्ष्यति च—"छावट्ठिसहस्साइं नव चेव सयाइं पंचसयराइं। एगससीपरिवारो तारागण-कोडिकोडीणं ॥ १ ॥" (६६९७५) जम्बूद्वीपे च द्वौ शशिनौ तदेतद् द्वाभ्यां गुण्यते ततः सूत्रोक्तं परिमाणं भवति—एकं शतसहस्रं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि पञ्चाशदधिकानि कोटीकोटीनामिति ॥ तदेवमुक्तो जम्बूद्वीपः, सम्प्रति लवणसमुद्रं विवक्षुरिदमाह—

जंबूदीवं णाम दीवं लवणे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरि-क्खित्ता णं चिट्ठति ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिते?, गोयमा! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्क-वालविक्खंभेणं? केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसतसह-स्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पन्नरस जोयणसयसहस्साइं एगासीइसहस्साइं सयमेगोणचत्तालीसे किंचिविसेसाहिए लवणोदधिणो चक्कवालपरिक्खेवेणं। से णं एक्काए पउमवरवेदियाए एगेण य

३ प्रतिपत्तौ जम्बूद्वीप-चन्द्रसूर्यो-धिकारः उद्देशः २ सू० १५३

॥ ३०० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

अथ लवणसमुद्राधिकार: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा

दीप अनुक्रम [१९८--२००]

वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते चिट्ठइ, दोण्हवि वण्णओ। सा णं पउमवर० अद्धजोयणं उड्ढं० पंचधणुसयविक्खंभेणं लवणसमुद्दसमियपरिक्खेवेणं, सेसं तहेव। से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं जाव विहरइ ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—विजये वेजयंते जयंते अपराजिते ॥ कहि णं भंते! लवणसमुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमपेरंते धायइखंडस्स दीवस्स पुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीओदाए महानदीए उप्पिं एत्थ णं लवणस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, एवं तं चेव सव्वं जहा जंबुद्दीवस्स विजयस्सरिसेवि (दारसरिसमेयंपि) रायहाणी पुरत्थिमेणं अण्णंमि [1]लवणसमुद्दे ॥ कहि णं भंते! लवणसमुद्दे वेजयंते नामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! लवणसमुद्दे दाहिणपेरंते धातइसंडदीवस्स दाहिणद्धस्स उत्तरेणं सेसं तं चेव सव्वं। एवं जयंतेवि, णवरि सीयाए महाणदीए उप्पिं भाणियव्वे। एवं अपराजितेवि, णवरं दिसीभागो भाणियव्वो ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा!—'तिण्णेव सतसहस्सा पंचाणउतिं भवे सहस्साइं। दो जोयणसत असिता कोसं दारंतरे लवणे ॥ १ ॥' जाव

१ यथा अनेकेषु स्थानेष्वत्र मूलटीकापाठयोर्वैषम्यं तथाऽत्र क्वचित् आदर्शे चतुर्णामपि द्वाराणां सामान्येन वर्णनं दृश्यते मूले, न च टीकानुसारी प्रायुक्तं च तदित्युपेक्षितं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबाधाए अंतरे पण्णत्ते। लवणस्स णं पएसा धायइसंडं दीवं पुट्ठा, तहेव जहा जंबूदीवे धायइसंडेवि सो चेव गमो। लवणे णं भंते! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता सो चेव विही, एवं धायइसंडेवि ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुचइ—लवणसमुद्दे २?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे उदगे आविले रइले लोणे लिंदे खारए कडुए अप्पेज्जे बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खिसिरीसवाणं नण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं, सोत्थिए एत्थ लवणाहिवई देवे महिड्ढीए पलिओवमट्ठिईए, से णं तत्थ सामाणिय जाव लवणसमुद्दस्स सुत्थियाए रायहाणीए अण्णेसिं जाव विहरइ, से एएणट्ठेणं गो०! एवं वुचइ लवणे णं समुद्दे २, अदुत्तरं च णं गो०! लवणसमुद्दे सासए जाव णिच्चे ॥ (सू० १५४)

'जंबूदीवं दीव'मित्यादि जम्बूद्वीपं द्वीपं लवणो नाम समुद्रो **'वृत्तः'** वर्त्तुलः, स च चन्द्रमण्डलवन्मध्यपरिपूर्णोऽपि शङ्क्येत तत आह—**'वलयाकारसंस्थानसंस्थितः'** वलयाकारं—मध्यशुषिरं यत्संस्थानं तेन संस्थितो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः **'सर्वतः'** सर्वासु दिक्षु **'समन्ततः'** सामस्त्येन **'परिक्षिप्य'** वेष्टयित्वा तिष्ठति ॥ **'लवणे णं भंते!'** इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः किं समचक्रवालसंस्थितो यद्वा विषमचक्रवालसंस्थितः?, चक्रवालसंस्थानस्योभयथाऽपि दर्शनात्, भगवानाह—गौतम! समचक्रवालसंस्थितः सर्वत्र द्विलक्षयोजनप्रमाणतया चक्रवालस्य भावात्, नो विषमचक्रवालसंस्थितः ॥ सम्प्रति चक्रवालविष्कम्भादिपरिमाणमेव पृच्छति— **'लवणे णं भंते! समुद्दे'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन, जम्बूद्वीपविष्कम्भादे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तद्विष्कम्भस्य द्विगुणत्वात्, पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतमेकोनचत्वारिंशं च किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण, परिक्षेपप्रमाणं चैतत् परिधिगणितभावनया स्वयं भावनीयं **क्षेत्रसमासटीकातो** वा परिभावनीयम् ॥ **'से ण'**मित्यादि, 'सः' लवणनामा समुद्र एकया पद्मवरवेदिकया, अष्टयोजनोच्छ्रितजगत्युपरिभाविन्येति गम्यते, एकेन वनखण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तः, सा च पद्मवरवेदिकाऽर्द्धयोजनमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन पञ्चधनुःशतानि विष्कम्भतः परिक्षेपतो लवणसमुद्रपरिक्षेपप्रमाणा, वनखण्डो देशोने द्वे योजने, अभ्यन्तरोऽपि पद्मवरवेदिकाया वनषण्ड एवंप्रमाण एव, उभयोरपि वर्णनं जम्बूद्वीपपद्मवरवेदिकावनषण्डवत् ॥ सम्प्रति द्वारवक्तव्यतामभिधित्सुरिदमाह—**'लवणस्स णं भंते!'** इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयवैजयन्तजयन्तापराजिताख्यानि ॥ **'कहि ण'**मित्यादि, क्व भदन्त! लवणसमुद्रस्य विजयनाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम!, लवणसमुद्रस्य पूर्वपर्यन्ते धातकीखण्डद्वीपपूर्वार्द्धस्य 'पच्चत्थिमेण'न्ति पश्चिमभागे शीतोदाया महानद्या उपर्यत्रान्तरे लवणसमुद्रस्य विजयनाम द्वारं प्रज्ञप्तं, अष्टौ योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन। एवं जम्बूद्वीपगतविजयद्वारसदृशमेतदपि वक्तव्यं यावद्बहून्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि यावद्बहवः सहस्रपत्रहस्तका इति ॥ सम्प्रति विजयद्वारनामनिबन्धनं प्रतिपिपादयिषुरिदमाह—**'से केणट्ठेणं भंते'** इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—विजयद्वारं विजयद्वारम्? इति, भगवानाह—गौतम! विजये द्वारे विजयो नाम देवो महर्द्धिको यावद् विजयाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां विजयाराजधानीवास्तव्यानां वानमन्तराणां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावत्परिवसति, ततो विजयदेवस्वामिकत्वाद् विजयमिति, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि सुगमं ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! विजयद्वारस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५४] + गाथा

दीप अनुक्रम [१९८--२००]

पूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा च जम्बूद्वीपविजयद्वाराधिपतिविजयाराजधानीवद्वक्तव्या ॥ सम्प्रति वैजयन्तद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! लवणस्य समुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रस्य दक्षिणपर्यन्ते धातकीखण्डद्वीपदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र लवणसमुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एतद्वक्तव्यता सर्वाऽपि विजयद्वारवदवसेया, नवरं राजधानी वैजयन्तद्वारस्य दक्षिणतो वेदितव्या ॥ जयन्तद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! लवणसमुद्रस्य जयन्तं द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रस्य पश्चिमपर्यन्ते धातकीखण्डपश्चिमार्द्धस्य पूर्वतः शीताया महानद्या उपरि लवणस्य समुद्रस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तद्वक्तव्यताऽपि विजयद्वारवद् वक्तव्या, नवरं राजधानी जयन्तद्वारस्य पश्चिमभागे वक्तव्या ॥ अपराजितद्वारप्रतिपादनार्थमाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि, क भदन्त! लवणस्य समुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रस्योत्तरपर्यन्ते धातकीखण्डद्वीपोत्तरार्द्धस्य दक्षिणतोऽत्र लवणस्य समुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं। एतद्वक्तव्यताऽपि विजयद्वारवन्निरवशेषा वक्तव्या, नवरं राजधानी अपराजितद्वारस्योत्तरतोऽवसातव्या ॥ सम्प्रति द्वारस्य द्वारस्यान्तरं प्रतिपादयितुकाम आह—'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य द्वारस्य २ 'एस ण'मिति एतद् अन्तरं कियत्या 'अबाधया' अन्तरालव्याघातरूपया प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चनवतिः सहस्राणि अशीते द्वे योजनशते क्रोशश्चैको द्वारस्य द्वारस्याबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि—एकैकस्य द्वारस्य पृथुत्वं चत्वारि योजनानि, एकैकस्मिंश्च द्वारे एकैका द्वारशाखा क्रोशबाहल्या, द्वारे च द्वे द्वे शाखे, तत एकैकस्मिन् द्वारे पृथुत्वं सामस्त्येन चिन्त्यमानं सार्द्धयो-

॥ ३०२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जनचतुष्टयप्रमाणं प्राप्यते, चतुर्णामपि द्वाराणामेकत्र पृथुत्वमीलने जातान्यष्टादश योजनानि, तानि लवणसमुद्रपरिरयपरिमाणात् पञ्चदश शतसहस्राणि एकाशीतिःसहस्राणि एकोनचत्वारिंशं योजनशतं इत्येवंपरिमाणादपनीयन्ते, अपनीय च यच्छेषं तस्य चतुर्भिर्भागेऽपहृते यदागच्छति तत् द्वाराणां परस्परमन्तरपरिमाणं, तच्च यथोक्तमेव, उक्तं च—"आसीया दोन्नि सया पणनउइसहस्स तिन्नि लक्खा य । कोसो य अंतरं सागरस्स दाराण विन्नेयं ॥१॥" **'लवणस्स णं भंते ! समुद्दस्स पदेसा'** इत्यादि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वद्भावनीयम् ॥ सम्प्रति लवणसमुद्रनामान्वर्थं पृच्छति—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—लवणः समुद्रो लवणः समुद्रः ? इति, भगवानाह—गौतम ! लवणस्य समुद्रस्य उदकः **'आविलम्'** अविमलमस्वच्छं प्रकृत्या **'रइलं'** रजोवत्, जलवृद्धिहानिभ्यां पङ्कबहुलमिति भावः, लवणं सान्निपातिकरसोपेतत्वाद्विन्द्रं गोवराक्ष(ख्य)रसविशेषकलितत्वात्, **'क्षारं'** तीक्ष्णं लवणरसविशेषवत्त्वात्, **'कटुकं'** कटुकरसोपेतत्वात्, अत एवोपद्रवत्रातादपेयं, केषामपेयम् ?—चतुष्पदमृगपक्षसरीसृपाणां, नान्यत्र **'तद्योनिकेभ्यः'** लवणसमुद्रयोनिकेभ्यः सत्त्वेभ्यस्तेषां पेयमिति भावः, तद्योनिकतया तेषां तदाहारकत्वात्, तदेवं यस्मात्तस्योदकं लवणमतोऽसौ लवणः समुद्र इति, अन्यच्च **'सुट्ठिए लवणाहिवई'** इत्यादि सुगमं, नवरमेष भावार्थः—यस्मात् सुस्थितनामा तदधिपतिः—लवणाधिपतिरिति स्वकल्पपुस्तके प्रसिद्धम्, आधिपत्यं च तस्याधिकृतसमुद्रस्य विषये नान्यस्य ततोऽप्यसौ लवणसमुद्र इति, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि ॥ सम्प्रति लवणसमुद्रगतचन्द्रादिसङ्ख्यापरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—

लवणे णं भंते! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा पभासिंति वा पभासिस्संति वा?, एवं पंचण्हवि पुच्छा, गोयमा! लवणसमुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा ३ चत्तारि सूरिया तविंसु वा ३ बार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५५]

दीप अनुक्रम [२०१]

सुत्तरं नक्खत्तसयं जोगं जोएंसु वा ३ तिण्णि बावण्णा महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३ दुण्णि सयसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा नव य सया तारागणकोडाकोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३ ॥ (सू० १५५)

'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! चत्वारश्चन्द्राः प्रभासितवन्तः प्रभासन्ते प्रभासिष्यन्ते, चत्वारः सूर्यास्तापितवन्तस्तापयन्ति तापयिष्यन्ति, ते च जम्बूद्वीपगतचन्द्रसूर्यैः सह समश्रेण्या प्रतिबद्धा वेदितव्याः, तद्यथा–द्वौ सूर्यौ एकस्य जम्बूद्वीपगतस्य सूर्यस्य श्रेण्या प्रतिबद्धौ, द्वौ सूर्यौ द्वितीयस्य जम्बूद्वीपगतस्य सूर्यस्य, तथा द्वौ चन्द्रमसावेकस्य जम्बूद्वीपगतस्य चन्द्रस्य समश्रेण्या प्रतिबद्धौ, द्वौ द्वितीयचन्द्रस्य, तौ चैवम्–यदा जम्बूद्वीपगत एकः सूर्यो मेरोर्दक्षिणतश्चारं चरति तदा लवणसमुद्रेऽपि तेन सह समश्रेण्या प्रतिबद्ध एकः शिखाया अभ्यन्तरं चारं चरति द्वितीयस्तेनैव सह श्रेण्या प्रतिबद्धः शिखायाः परतः, तदैव च यो जम्बूद्वीपे मेरोरुत्तरतश्चारं चरति तेन सह समश्रेण्या प्रतिबद्धो लवणसमुद्रे उत्तरत एकः शिखाया अभ्यन्तरं चारं चरति, द्वितीयस्तु तेनैव सह समश्रेण्या प्रतिबद्धः शिखायाः परतः, एवं चन्द्रमसोऽपि जम्बूद्वीपगतचन्द्राभ्यां सह समश्रेणिप्रतिबद्धा भावनीयाः, अत एव जम्बूद्वीप इव लवणसमुद्रेऽपि यदा मेरोर्दक्षिणतो दिवसः संभवति तदा मेरोरुत्तरतोऽपि लवणसमुद्रे दिवसः, यदा च मेरोरुत्तरतो लवणसमुद्रे दिवसस्तथा दक्षिणतोऽपि दिवसस्तदा च पूर्वस्यां पश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रे रात्रिः, यदा च मेरोः पूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रे दिवसस्तदा पश्चिमायामपि दिवसः, यदा च पश्चिमायां दिवसस्तदा पूर्वदिश्यपि, तदा च मेरोर्दक्षिणत उत्तरतश्च नियमतो रात्रिः, एवं धातकीखण्डादिष्वपि भावनीयं, तद्गतानामपि चन्द्रसूर्याणां जम्बूद्वीपगतचन्द्रसूर्यैः सह समश्रेण्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

व्यवस्थितत्वात्, उक्तं च **सूर्यप्रज्ञप्तौ**—"जया णं लवणसमुद्दे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि दिवसे हवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ तया णं लवणसमुद्दे पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई भवइ, एवं जहा जंबूदीवे दीवे तहेव" तथा "जया णं धायईसंडे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढेवि, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ तया णं धायइसंडे दीवे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई हवइ, एवं जहा जंबूदीवे दीवे तहेव, कालोए जहा लवणे तहेव" तथा "जया णं अब्भिंतरपुक्खरद्धे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे हवइ तया णं अब्भिंतरड्ढे मंदराणं पव्वयाणं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं राई हवइ, सेसं जहा जंबूदीवे तहेव" आह–लवणसमुद्रे षोडश योजनसहस्रप्रमाणा शिखा ततः कथं चन्द्रसूर्याणां तत्र तत्र देशे चारं चरतां न गतिव्याघातः?, उच्यते, इह लवणसमुद्रवर्जेषु शेषेषु द्वीपसमुद्रेषु यानि ज्योतिष्कविमानानि तानि सर्वाण्यपि सामान्यरूपस्फटिकमयानि, यानि पुनर्लवणसमुद्रे ज्योतिष्कविमानानि तानि तथाजगत्स्वाभाव्यादुदकस्फाटनस्वभावस्फटिकमयानि, तथा चोक्तं **सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्तौ**—"जोइसियविमाणाइं सव्वाइं हवंति फलिहमइयाइं। दगफालियामया पुण लवणे जे जोइसविमाणा ॥१॥" ततो न तेषामुदकमध्ये चारं चरतामुदकेन व्याघातः, अन्यच्च शेषद्वीपसमुद्रेषु चन्द्रसूर्यविमानान्यधोलेश्याकानि यानि पुनर्लवणसमुद्रे तानि तथाजगत्स्वाभाव्यादूर्ध्वलेश्याकानि तेन शिखायामपि सर्वत्र लवणसमुद्रे प्रकाशो भवति, अयं चार्थः प्रायो बहूनामप्रतीत इति संवादार्थमेतदर्थप्रतिपादको जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणविरचितो **विशेषणवतीग्रन्थ** उपदर्श्यते—"सोलससाहस्सियाए सिहाए कहं जोइसियविघातो न भवति?, तत्थ भन्नइ–जेण सूरपन्नत्तीए भणियं—"जोइसियविमाणाइं सव्वाइं हवंति फलिहमइयाइं । दगफालियामया पुण लवणे जे जोइसविमाणा ॥ २ ॥" जं सव्वदीवसमुद्देसु फालियामयाइं लवणसमुद्दे चेव केवलं दगफालियामयाइं तत्थ इद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेव कारणं मा उद्वेगेण विघातो भवउ इति, जंबूसूरपन्नत्तीए चेव भणियं—"लवणंमि उ जोइसिया उड्ढलेसा हवंति नायव्वा । तेण परं जोइसिया अहलेसागा मुणेयव्वा ॥ १ ॥" तंपि उदगमालावभासणत्थमेव लोगठिई एसा" इति । तथा द्वादश नक्षत्रशतं एवं-चत्वारो हि लवणसमुद्रे शशिनः, एकैकस्य च शशिनः परिवारेऽष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि, ततोऽष्टाविंशतेश्चतुर्भिर्गुणने भवति द्वादशोत्तरं शतमिति । त्रीणि द्विपञ्चाशदधिकानि महाग्रहशतानि, एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाशीतेर्ग्रहाणां भावात्, द्वे शतसहस्रे सप्तषष्टिः सहस्राणि नव शतानि तारागणकोटीकोटीनाम् २६७९०००००००००००००००, उक्तञ्च—"चत्तारि चेव चंदा चत्तारि य सू-रिया लवणतोए । बारं नक्खत्तसयं गहाण तिन्नेव बावन्ना ॥ १ ॥ दो चेव सयसहस्सा सत्तट्ठी खलु भवे सहस्सा य । नव य सया लवणजले तारागणकोडिकोडीणं ॥ २ ॥" इह लवणसमुद्रे चतुर्दश्यादिषु तिथिषु नदीमुखानामापूरणतो जलमतिरेकेण प्रवर्द्धमानमु-पलक्ष्यते तत्र कारणं पिपृच्छिषुरिदमाह—

कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णिमासिणीसु अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा?, गोयमा! जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चउद्दिसिं बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ लवणसमुद्दं पंचाण-उतिं २ जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि महालिंजरसंठाणसंठिया महइमहालया महापायाला पण्णत्ता, तंजहा—वलयामुहे केतूए जूवे ईसरे, ते णं महापाताला एगमेगं जोयणसयसहस्सं उव्वेहेणं मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं मज्झे एगपदेसियाए सेढीए एगमेगं जोयणसतसहस्सं विक्खंभेणं उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं॥ तेसि णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

महापायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दसजोयणसतबाहल्ला पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति सासया णं ते कुड्डा दव्वट्ठयाए वण्णपज्जवेहिं० असासया ॥ तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तंजहा—काले महाकाले वेलंबे पभंजणे ॥ तेसि णं महापायालाणं तओ तिभागा पण्णत्ता, तंजहा—हेट्ठिल्ले तिभागे मज्झिल्ले तिभागे उवरिमे तिभागे ॥ ते णं तिभागा तेत्तीसं जोयणसहस्सा तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसतं जोयणतिभागं च बाहल्लेणं । तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ संचिट्ठति, तत्थ णं जे से मज्झिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाए य आउकाए य संचिट्ठति, तत्थ णं जे से उवरिल्ले तिभागे एत्थ णं आउकाए संचिट्ठति, अदुत्तरं च णं गोयमा! लवणसमुद्दे तत्थ २ देसे बहवे खुड्डालिंजरसंठाणसंठिया खुड्डपायालकलसा पण्णत्ता, ते णं खुड्डा पाताला एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं मज्झे एगपदेसियाए सेढिए एगमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं उप्पिं मुहमूले एगमेगं जोयणसतं विक्खंभेणं ॥ तेसि णं खुड्डागपायालाणं कुड्डा सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा। तत्थ णं बहवे जीवा पोग्गला य जाव असासयावि, पत्तेयं २ अद्धपलिओवमट्ठितीताहिं देवताहिं परिग्गहिया ॥ तेसि णं खुड्डगपाता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाणं ततो तिभागा प०, तंजहा—हेट्ठिल्ले तिभागे मज्झिल्ले तिभागे उवरिल्ले तिभागे, ते णं तिभागा तिण्णि तेत्तीसे जोयणसते जोयणतिभागं च बाहल्लेणं पण्णत्ते। तत्थ णं जे से हेट्ठिल्ले तिभागे एत्थ णं वाउकाओ मज्झिल्ले तिभागे वाउआए आउयाते य उवरिल्ले आउकाए, एवामेव सपुव्वावरेणं लवणसमुद्दे सत्त पायालसहस्सा अट्ठ य चुलसीता पातालसता भवंतीति मक्खाया ॥ तेसि णं महापायालाणं खुड्डगपायालाण य हेट्ठिममज्झिमिल्लेसु तिभागेसु बहवे ओराला वाया संसेयंति संमुच्छिमंति एयंति चलंति कंपंति खुब्भंति घट्टंति फंदंति तं तं भावं परिणमंति तया णं से उदए उण्णामिज्जति, जया णं तेसिं महापायालाणं खुड्डागपायालाण य हेट्ठिल्लमज्झिल्लेसु तिभागेसु नो बहवे ओराला जाव तं तं भावं न परिणमंति तया णं से उदए नो उन्नामिज्जइ अंतरावि य णं ते वायं उदीरेंति अंतरावि य णं से उदगे उण्णामिज्जइ अंतरावि य ते वाया नो उदीरंति अंतरावि य णं से उदगे णो उण्णामिज्जइ, एवं खलु गोयमा! लवणसमुद्दे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु अइरेगं २ वड्ढति वा हायति वा ॥ (सू० १५६)

'कम्हा णं भंते!' इत्यादि, कस्माद्भदन्त! लवणसमुद्रे चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टपौर्णमासीषु तिथिषु, अत्रोद्दिष्टा—अमावास्या पौर्णमासी प्रतीता, पूर्णो मासो यस्यां सा पौर्णमासी, 'प्रज्ञादित्वात्स्वार्थेऽण्' अन्ये तु व्याचक्षते—पूर्णो मा:—चन्द्रमा अस्यामिति पौर्णमासी, अण् तथैव, प्राकृतत्वाच्च सूत्रे 'पुण्णमासिणी'ति पाठः, 'अइरेगं अइरेगं' अतिशयेन अतिशयेन वर्द्धते हीयते वा?, भगवानाह—गौतम!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जम्बूद्वीपे द्वीपे यो मन्दरपर्वतस्तस्य चतसृषु पूर्वादिषु दिक्षु लवणसमुद्रं पञ्चनवतिं पञ्चनवतिं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे चत्वारो **'महइमहालया'** अतिशयेन महान्तो महालिञ्जरं–महापिडहं तत्संस्थानसंस्थिता:, क्वचित् **'महारंजरसंठाणसंठिया'** इति पाठस्तत्रा-रञ्जर:–अलिञ्जर इति, महापातालकलशा: प्रज्ञप्ता:, उक्तं च–"पणनउइसहस्साइं ओगाहित्ता चउदिसिं लवणं । चउरोऽलिंजरसं-ठाणसंठिया होंति पायाला ॥ १ ॥" तानेव नामत: कथयति, तद्यथा–मेरो: पूर्वस्यां दिशि वडवामुख: दक्षिणस्यां केयूप: अपरस्यां यूप: उत्तरस्यामीश्वर:, ते चत्वारोऽपि महापातालकलशा एकैकं योजनशतसहस्रं–लक्षं उद्वेधेन मूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन तत ऊर्द्ध्वं एकप्रादेशिक्या श्रेण्या विष्कम्भत: प्रवर्द्धमाना २ मध्ये एकैकं योजनशतसहस्रं विष्कम्भेन तत ऊर्द्ध्वं भूयोऽप्येकप्रादेशिक्या श्रेण्या विष्कम्भतो हीयमाना हीयमाना उपरि मुखमूले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भत:, उक्तञ्च–"जोयणसहस्सदसगं मूले उवरिं च होंति विच्छिण्णा । मज्झे य सयसहस्सं तेत्तियमेत्तं च ओगाढा ॥ १ ॥" **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां महापातालकलशानां कुड्या: सर्वत्र समा दश योजनशतबाहल्या योजनसहस्रबाहल्या इत्यर्थ:, सर्वात्मना वज्रमया: 'अच्छा जाव पडिरूवा' इति प्राग्वत् ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, तेषु वज्रमयेषु कुड्येषु बहवो जीवा: पृथिवीकायिका: पुद्गलाश्च **'अपक्कामन्ति'** गच्छन्ति **'व्युत्क्रामन्ति'** उत्पद्यन्ते जीवा इति सामर्थ्यादवसेयं, जीवानामेवोत्पत्तिधर्मकतया प्रसिद्धत्वात्, **'चीयन्ते'** चयमुपगच्छन्ति **'उपचीयन्ते'** उपचयमायान्ति, एतच्च पदद्वयं पुद्गलापेक्षं, पुद्गलानामेव चयापचयधर्मकतया व्यवहारात्, तत एवं सकलकालं तदाकारस्य सदाऽवस्थानात् शाश्वतास्ते कुड्या द्रव्यार्थतया प्रज्ञप्ता:, वर्णपर्यायै: रसपर्यायै: गन्धपर्यायै: स्पर्शपर्यायै: पुनरशाश्वता:, वर्णादीनां प्रतिक्षणं कियत्कालादूर्द्ध्वं वाऽ-न्यथाऽन्यथा भवनात् ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, तत्र तेषु चतुर्षु पातालकलशेषु चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत्करणान्महाद्युतिका इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रहः, पल्योपमस्थितिकाः परिवसन्ति, तद्यथा—'काले' इत्यादि, वडवामुखे कालः केयूपे महाकालः यूपे वेलम्बः ईश्वरे प्रभञ्जनः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां महापातालकलशानां प्रत्येकं प्रत्येकं त्रयस्त्रिभागाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तनस्त्रिभागो मध्यमस्त्रिभाग उपरितनस्त्रिभागः ॥ 'ते ण'मित्यादि, ते त्रयोऽपि त्रिभागास्त्रयस्त्रिंशद् योजनसहस्राणि त्रीणि योजनशतानि त्रयस्त्रिंशानि योजनत्रिभागं च बाहल्येन प्रज्ञप्ताः । तत्र चतुर्ष्वपि पातालकलशेषु अधस्तनेषु त्रिभागेषु वातकायः संतिष्ठति, मध्यमेषु त्रिभागेषु वायुकायोऽप्कायश्च, उपरितनेषु त्रिभागेष्वप्काय एव । 'अदुत्तरं च ण'मित्यादि, अथान्यद् गौतम! लवणसमुद्रे 'तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं' इति तेषां पातालकलशानामन्तरेषु तत्र २ देशे तस्य २ देशस्य तत्र २ प्रदेशे क्षुल्लारञ्जरसंस्थानसंस्थिताः क्षुल्लाः पातालकलशाः प्रज्ञप्ताः, ते क्षुल्लाः पातालकलशा एकमेकं योजनसहस्रमुद्वेधेन मूले एकैकं योजनशतं विष्कम्भेन मध्ये एकैकं योजनसहस्रं विष्कम्भेन उपरि मुखमूले एकैकं योजनशतं विष्कम्भेन ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां क्षुल्लकपातालकलशानां कुड्याः सर्वत्र समा दश दश योजनानि बाहल्यतः, उक्तञ्च—"जोयणसयविच्छिण्णा मूले उवरि दस सयाणि मज्झंमि । ओगाढा य सहस्सं दसजोयणिया य से कुड्डा ॥ १ ॥" 'सव्ववइरामया' इत्यादि प्राग्वद् यावत् 'फासपज्जवेहिं असासया' इति, प्रत्येकं २ तेऽर्द्धपल्योपमस्थितिकाभिर्देवताभिः परिगृहीताः ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां क्षुल्लकपातालकलशानां प्रत्येकं २ त्रयस्त्रिभागाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अधस्तनस्त्रिभागो मध्यमस्त्रिभाग उपरितनस्त्रिभागः । 'ते ण'मित्यादि, ते त्रिभागाः प्रत्येकं त्रीणि योजनशतानि 'त्रयस्त्रिंशानि' त्रयस्त्रिंशदधिकानि योजनत्रिभागं च बाहल्येन प्रज्ञप्ताः, तत्र सर्वेषामपि क्षुल्लकपातालकलशानामधस्तनेषु त्रिभागेषु वायुकायः संतिष्ठति, मध्येषु त्रिभागेषु वायुकायोऽप्कायश्च, उपरितनेषु त्रिभागेष्वप्कायः संतिष्ठति, एवमेव 'सपूर्वापरेण' पूर्वापरसमुदायसङ्ख्यया सप्त पातालकलशसहस्राणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५६]

दीप अनुक्रम [२०२]

क्षुल्लकपातालकलशसहस्राणि, अष्टौ च पातालकलशशतानि–क्षुल्लकपातालकलशशतानि **'चतुरशीतानि'** चतुरशीत्यधिकानि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः, उक्तञ्च—"[1]अन्नेवि य पायाला खुड्डालंजरगसंठिया लवणे । अट्ठसया चुलसीया सत्त सहस्सा य सव्वेवि ॥ १ ॥ पायालाण विभागा सव्वाणवि तिन्नि तिन्नि विन्नेया । हेट्ठिमभागे वाऊ मज्झे वाऊ य उदगं च ॥ २ ॥ उवरिं उदगं भणियं पढमगवीएसु वाउ संखुभिओ । उड्ढं वामइ उदगं परिवड्ढइ जलनिही खुभिओ ॥ ३ ॥" **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां **'क्षुल्लकपातालानां'** क्षुल्लकपातालकलशानां महापातालानां चाधस्तनमध्येषु त्रिभागेषु तथाजगत्स्थितिस्वाभाव्यात् प्रतिदिवसं द्विकुलस्त्रापि चतुर्दश्यादिषु तिथिष्वतिरेकेण **'बहवः'** अतिप्रभूताः **'उदाराः'** ऊर्द्ध्वगमनस्वभावाः प्रबलशक्तयश्च, उत्—प्राबल्येन आरो येषां ते उदारा इति व्युत्पत्तेः, **'वाताः'** वायवः **'संस्विद्यन्ते'** उत्पत्त्यभिमुखीभवन्ति ततः क्षणानन्तरं **'संमूर्च्छन्ति'** संमूर्च्छजन्मना लब्धात्मलाभा भवन्ति ततः **'चलन्ति'** कम्पन्ते वातानां चलनस्वभावत्वात्, ततः **'घट्टन्ते'** परस्परं सङ्घट्टमाप्नुवन्ति, तदनन्तरं **'क्षुभ्यन्ते'** जातमहाद्भुतशक्तिकाः सन्त ऊर्द्ध्वमितस्ततो विप्रसरन्ति, ततः **'उदीरयन्ति'** अन्यान् वातान् जलमपि चोत्—प्राबल्येन प्रेरयन्ति, तं तं देशकालोचितं मन्दं तीव्रं मध्यमं वा भावं परिणामं **'परिणमन्ति'** धातूनामनेकार्थत्वात् प्रपद्यन्ते । **'जया णं तेसिं खुड्डापायालाण'**मित्यादि सुगमं भावितत्वात् । **'तया ण'**मित्यादि, तदा णमिति वाक्यालङ्कारे **'तद्'** उदकम् **'उन्नामिज्जंते'** उन्नाम्यते

१ अन्येऽपि च पातालकलशाः क्षुद्रारञ्जरसंस्थिता लवणे । अष्ट शतानि चतुरशीतीनि सप्त सहस्राणि च सर्वेऽपि ॥ १ ॥ पातालानां विभागाः सर्वेषामपि त्रयस्त्रयो विज्ञेयाः । अधस्तनभागे वायुः, मध्ये वायुश्च उदकं च ॥ २ ॥ उपरितनभागे उदकं भणितं, प्रथमद्वितीययोः वायुः संक्षुभित । ऊर्द्ध्वं। वामयति (निष्काशयति) उदकं परिवर्द्धते जलनिधिः क्षुभितः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५६]

दीप अनुक्रम [२०२]

ऊर्द्धमुत्क्षिप्यत इति भावः। 'जया ण'मित्यादि, यदा पुनः 'ण'मिति पुनरर्थे निपातानामनेकार्थत्वात्, तेषां क्षुल्लकपातालानां महापातालानां चाधस्तनमध्यमेषु त्रिभागेषु नो बहव उदारा वाताः संस्विद्यन्ते इत्यादि प्राग्वत् 'तया ण'मित्यादि तदा तदुदकं 'नोन्नाम्यते' नोर्द्धमुत्क्षिप्यते उत्क्षेपकाभावात्, एतदेव स्पष्टतरमाह—'अंतराविय ण'मित्यादि, 'अन्तरा' अहोरात्रमध्ये द्विकृत्वः प्रतिनियते कालविभागे पक्षमध्ये चतुर्दश्यादिषु तिथिष्वतिरेकेण ते वाताः तथाजगत्स्वाभाव्याद्दुदीर्यन्ते धातूनामनेकार्थत्वादुत्पद्यन्ते, ततोऽन्तरा—अहोरात्रमध्ये द्विकृत्वः प्रतिनियते कालविभागे पक्षमध्ये चतुर्दश्यादिषु तिथिषु अतिरेकेण तत उदकमुन्नाम्यते। 'अंतराविय ण'मित्यादि, 'अन्तरा' प्रतिनियतकालविभागादन्यत्र ते वाताः 'नोदीर्यन्ते' नोत्पद्यन्ते, तदभावात् 'अन्तरा' प्रतिनियतकालविभागादन्यत्र कालविभागे उदकं नोन्नाम्यते उन्नामकाभावात्, तत एवं खलु गौतम! लवणसमुद्रे चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टपूर्णमासीषु तिथिषु 'अतिरेकमतिरेकम्' अतिशयेनातिशयेन वर्द्धते हीयते वेति ॥ तदेवं चतुर्दश्यादिषु तिथिष्वतिरेकेण जलवृद्धौ कारणमुक्तमिदानीमहोरात्रमध्ये द्विकृत्वोऽतिरेकेण जलवृद्धौ कारणमभिधित्सुराह—

लवणे णं भंते! समुद्दाए तीसाए मुहुत्ताणं कतिखुत्तो अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अतिरेगं २ वड्ढति वा हायति वा ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं २ वड्ढइ वा हायइ वा?, गोयमा! उड्ढमंतेसु पायालेसु वड्ढइ आपूरितेसु पायालेसु हायइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! लवणे णं समुद्दे तीसाए मुहुत्ताणं दुक्खुत्तो अइरेगं अइरेगं वड्ढइ वा हायइ वा ॥ (सू० १५७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रस्त्रिंशतो मुहूर्त्तानां मध्येऽहोरात्रमध्ये इति भावः 'कतिकृत्वः' कतिवारान् अतिरेकमतिरेकं वर्द्धते हीयते वा? इति, तदेवं (प्रश्ने) भगवानाह–गौतम! द्विकृत्वोऽतिरेकमतिरेकं वर्द्धते हीयते वा ॥ 'से केणट्ठेण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! 'उड्ढमत्सु' अधस्तनमध्यमत्रिभागगतवातसङ्क्षोभवशाज्जलमूर्द्ध्वमुत्क्षिप्यमाणेषु 'पातालेषु' पातालकलशेषु महत्सु लघुषु च वर्द्धते 'आपूर्यमाणेषु' परिसंस्थिते पवने भूयो जलेन ध्रियमाणेषु 'पातालेषु' पातालकलशेषु महत्सु लघुषु च हीयते 'से एएणट्ठे ण'मित्यादि उपसंहारवाक्यम् ॥ अधुना लवणशिखावक्तव्यतामाह—

लवणसिहा णं भंते! केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं अइरेगं २ वड्ढति वा हायति वा?, गोयमा! लवणसीहाए णं दस जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं देसूणं अद्धजोयणं अतिरेगं वड्ढति वा हायति वा ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स कति णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारंति?, कइ नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारंति?, कइ नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धरेंति?, गोयमा! लवणसमुद्दस्स बायालीसं णागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारेंति, बावत्तरिं णागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारेंति, सट्ठिं णागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति, एवमेव सपुव्वावरेणं एगा णागसतसाहस्सी चोवत्तारिं च णागसहस्सा भवंतीति मक्खाया ॥ (सू० १५८)

'लवणसिहा णं भंते!' इत्यादि, लवणशिखा भदन्त! कियच्चक्रवालविष्कम्भेन? कियच्च 'अतिरेकमतिरेकम्' अतिशयेन २ वर्द्धते हीयते वा?, भगवानाह–गौतम! लवणशिखा सर्वतश्चक्रवालविष्कम्भतया 'समा' समप्रमाणा दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन चक्रवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लरूपतया विस्तारेण **'देशोनमर्द्धयोजनं'** गव्यूतद्वयप्रमाणम् **'अतिरेकमतिरेकम्'** अतिशयेनातिशयेन वर्द्धते हीयते वा, इयमत्र भावना—लवणसमुद्रे जम्बूद्वीपाद् धातकीखण्डद्वीपाच्च प्रत्येकं पञ्चनवतिपञ्चनवतियोजनसहस्राणि गोतीर्थं, गोतीर्थं नाम तडागादिष्विव प्रवेशमार्गरूपो नीचो नीचतरो भूदेशो, गोतीर्थमिव गोतीर्थमिति व्युत्पत्तेः, मध्यभागावगाहस्तु दश योजनसहस्रप्रमाणविस्तारः, गोतीर्थं च जम्बूद्वीपवेदिकान्तसमीपे धातकीखण्डवेदिकान्तसमीपे चाङ्गुलासङ्ख्येयभागः, ततः परं समतलाद् भूभागादारभ्य क्रमेण प्रदेशहान्या तावन्नीचत्वं नीचतरत्वं परिभावनीयं यावत्पञ्चनवतियोजनसहस्राणि, पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्तेषु समतलं भूभागमपेक्ष्योण्डत्वं योजनसहस्रमेकं, तथा जम्बूद्वीपवेदिकातो धातकीखण्डद्वीपवेदिकातश्च[1] तत्र समतले भूभागे प्रथमतो जलवृद्धिरङ्गुलसङ्ख्येयभागः, ततः समतलभूभागमेवाधिकृत्य प्रदेशवृद्ध्या जलवृद्धिः क्रमेण परिवर्द्धमाना तावत्परिभावनीया यावदुभयतोऽपि पञ्चनवतियोजनसहस्राणि, पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्ते चोभयतोऽपि समतलभूभागमपेक्ष्य जलवृद्धिः सप्तयोजनशतानि, किमुक्तं भवति?—तत्र प्रदेशे समतलभूभागमपेक्ष्यावगाहो योजनसहस्रं, तदुपरि जलवृद्धिः सप्त योजनशतानीति, ततः परं मध्ये भागे दशयोजनसहस्रविस्तारेऽवगाहो योजनसहस्रं जलवृद्धिः षोडश योजनसहस्राणि, पातालकलशगतवायुक्षोभे च तेषामुपर्यहोरात्रमध्ये द्वौ वारौ किञ्चिदूनौ द्वे गव्यूते उदकमतिरेकेण वर्द्धते पातालकलशगतवायूपशान्तौ च हीयते, उक्तञ्च—"पंचाणउयसहस्से गोतित्थं उभयतोवि लवणस्स। जोयणसयाणि सत्त उ दगपरिवुड्ढीवि उभयोवि ॥ १ ॥ दस जोयणसाहस्सा लवणसिहा चक्कवालतो रुंदा।

१ लवणस्य उभयतोऽपि पञ्चनवतिः सहस्राणि गोतीर्थं तु। उदकपरिवृद्धिरपि उभयतोऽपि सप्त योजनशतानि ॥ १ ॥ लवणशिखा चक्रवालतो दश योजनसहस्राणि रुन्द्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५८]

दीप अनुक्रम [२०४]

सोलससहस्स उच्चा सहस्समेगं च ओगाढा ॥ २ ॥ देसूणमद्धजोयणलवणसिहोवरि दुगं दुवे कालो । अइरेगं २ परिवड्ढइ हायए वावि ॥ ३ ॥" सम्प्रति वेलन्धरवक्तव्यतामाह—'**लवणस्स णं भंते!**' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य कियन्तो नागसहस्रा नागकुमाराणां भवनपतिनिकायान्तर्वर्त्तिनां सहस्रा आभ्यन्तरिकीं—जम्बूद्वीपाभिमुखां वेलां—शिखोपरिजलं शिखां च—अर्वाक् पतन्तीं '**धरन्ति**' धारयन्ति? कियन्तो नागसहस्रा बाह्यां—धातकीखण्डाभिमुखां वेलां धातकीखण्डद्वीपमध्ये प्रविशन्तीं वारयन्ति?, कियन्तो वा नागसहस्राः '**अग्गोदकं**' देशोनयोजनार्द्धजलादुपरि वर्द्धमानं जलं '**धरन्ति**' वारयन्ति?, भगवानाह—गौतम! द्विचत्वारिंशन्नागसहस्राण्याभ्यन्तरिकीं वेलां धरन्ति द्वासप्ततिर्नागसहस्राणि बाह्यां वेलां धरन्ति, षष्टिर्नागसहस्राण्यग्रोदकं धरन्ति, उक्तञ्च—"अद्धिभतरियं वेलं धरंति लवणोदहिस्स नागाणं । बायालीससहस्सा दुसत्तरिसहस्सा बाहिरियं ॥ १ ॥ सट्ठिं नागसहस्सा धरंति अग्गोदयं समुद्दस्स" इति । एवमेव '**सपूर्वापरेण**' पूर्वापरसमुदायेन एकं नागशतसहस्रं चतुःसप्ततिश्च नागशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातानि मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः ॥

कति णं भंते! वेलंधरा णागराया पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि वेलंधरा णागराया पण्णत्ता, तंजहा—गोथूभे सिवए संखे मणोसिलए ॥ एतेसि णं भंते! चउण्हं वेलंधरणागरायाणं कति

१ षोडश योजनसहस्राणि उच्चा सहस्रमेकं चावगाढा ॥ २ ॥ देशोनमर्द्धयोजनं लवणशिखोपरि द्विवारं द्वयोः कालयोः । अतिरेकमतिरेकं परिवर्द्धते हीयते वाऽपि ॥ ३ ॥ २ आभ्यन्तरिकीं वेलां धारयन्ति लवणोदधेर्नागानां । द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विसप्ततिसहस्राणि बाह्यां ॥ १ ॥ षष्टिर्नागसहस्राणि धारयन्ति अग्रोदकं समुद्रस्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०५--२०६]

श्रीजीवा-जीवाभि० मलयगि-रीयावृत्तिः ॥ ३०९ ॥

आवासपव्वता पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तंजहा—गोथूभे उदगभासे संखे दगसीमाए ॥ कहि णं भंते! गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पुरत्थिमेणं लवणं समुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं गोथूभस्स वेलंधरणागरायस्स गोथूभे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसताइं उद्धं उच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसते कोसं च उव्वेधेणं मूले दसबावीसे जोयणसते आयामविक्खंभेणं मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते उवरिं चत्तारि चउवीसे जोयणसए आयामविक्खंभेणं मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं दोण्णि य बत्तीसुत्तरे जोयणसए किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मज्झे दो जोयणसहस्साइं दोण्णि य छलसीते जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं उवरि एगं जोयणसहस्सं तिण्णि य ईयाले जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे ॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ ॥ गोथूभस्स णं आवासपव्वतस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति ॥ तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए बावट्ठं जोयणद्धं च उद्धं उच्चत्तेणं तं चेव पमाणं अद्धं आयाम-

३ प्रतिपत्तौ वेलन्धरावासादिः उद्देशः २ सू० १५९

॥ ३०९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०५--२०६]

विक्खंभेणं वण्णओ जाव सीहासणं सपरिवारं ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ गोथूभे आवासपव्वए २?, गोयमा! गोथूभे णं आवासपव्वते तत्थ २ देसे तहिं २ बहुओ खुड्डाखुड्डियाओ जाव गोथूभवण्णाइं बहूइं उप्पलाइं तहेव जाव गोथूभे तत्थ देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमट्ठितीए परिवसति, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव गोथूभयस्स आवासपव्वतस्स गोथूभाए रायहाणीए जाव विहरति, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे ॥ रायहाणि पुच्छा गोयमा! गोथूभस्स आवासपव्वतस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीतिवइत्ता अण्णंमि लवणसमुद्दे तं चेव पमाणं तहेव सव्वं ॥ कहि णं भंते! सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासणामे आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सिवगस्स वेलंधरणागरायस्स दओभासे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते, तं चेव पमाणं जं गोथुभस्स, णवरि सव्वअंकामए अच्छे जाव पडिरूवे जाव अट्ठो भाणियव्वो, गोयमा! दओभासे णं आवासपव्वते लवणसमुद्दे अट्ठजोयणियखेत्ते दगं सव्वतो समंता ओभासेति उज्जोवेति तवति पभासेति सिवए इत्थ देवे महिड्ढीए जाव रायहाणी से दक्खिणेणं सिविगा दओभासस्स सेसं तं चेव ॥ कहि णं भंते! संखस्स वेलंधरणागरायस्स संखे णामं आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं बाया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०५--२०६]

लीसं जोयणसहस्साइं एत्थ णं संखस्स० वेलंधर० संखे णामं आवासपव्वते तं चेव पमाणं णवरं सव्वरयणामए अच्छे। से णं एगाए पउमवरवेदिवाए एगेण य वणसंडेणं जाव अट्ठो बहूओ खुड्डाखुड्डिआओ जाव बहूइं उप्पलाइं संखाभाइं संखवण्णाइं संखवण्णाभाइं संखे एत्थ देवे महिड्ढीए जाव रायहाणीए पच्चत्थिमेणं संखस्स आवासपव्वयस्स संखा नाम रायहाणी तं चेव पमाणं ॥ कहि णं भंते! मणोसिलकस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स उत्तरेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स उदगसीमाए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते तं चेव पमाणं णवरि सव्वफलिहामए अच्छे जाव अट्ठो, गोयमा! दगसीमंते णं आवासपव्वते सीतासीतोदगाणं महाणदीणं तत्थ गतो सोए पडिहम्मति से तेणट्ठेणं जाव णिचे मणोसिलए एत्थ देवे महिड्ढीए जाव से णं तत्थ चउण्हं सामाणिय० जाव विहरति ॥ कहि णं भंते! मणोसिलगस्स वेलंधरणागरायस्स मणोसिला णाम रायहाणी?, गोयमा! दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरेणं तिरि० अण्णंमि लवणे एत्थ णं मलोसिलिया णाम रायहाणी पण्णत्ता तं चेव पमाणं जाव मणोसिलाए देवे—कणगंकरयणफालियमया य वेलंधराणमावासा। अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया ॥ १ ॥ (सू० १५९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

'कति णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! वेलन्धरनागराजाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–चत्वारो वेलन्धरनागराजाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–गोस्तूपः शिवकः शङ्खो मनःशिलाकः ॥ 'एएसि णं'मित्यादि, एतेषां भदन्त! चतुर्णां वेलन्धरनागराजानां कति आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! एकैकस्य एकैकभावेन चत्वार आवासपर्वताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–गोस्तूप उदकभासः शङ्खो दकसीमः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अस्मिन् जम्बूद्वीपे यो मन्दरपर्वतस्तस्य पूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र गोस्तूपस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य गोस्तूपो नाम आवासपर्वतः प्रज्ञप्तः, सप्तदश योजनशतानि एकविंशान्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन, चत्वारि योजनशतानि त्रिंशदधिकानि क्रोशं चैकमुद्वेधेन, उच्छ्रयापेक्षयाऽवगाहस्य चतुर्भागभावात्, मूले दश योजनशतानि द्वाविंशत्युत्तराणि विष्कम्भतः, मध्ये सप्त योजनशतानि त्रयोविंशत्युत्तराणि, उपरि चत्वारि योजनशतानि चतुर्विंशत्युत्तराणि, मूले त्रीणि योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्वात्रिंशदुत्तरे किञ्चिद्विशेषोने परिक्षेपेण, मध्ये द्वे योजनसहस्रे द्वे च योजनशते चतुरशीते किञ्चिद्विशेषाधिके परिक्षेपेण, उपर्येकं योजनसहस्रं त्रीणि योजनशतानि एकचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण, ततो मूले विस्तीर्णो मध्ये सङ्क्षिप्त उपरि तनुकः, अत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थितो गोपुच्छस्याप्येवमाकारत्वात्, सर्वात्मना जाम्बूनदमयः, 'अच्छे जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत् ॥ 'से ण'मित्यादि, 'सः' गोस्तूपनामा आवासपर्वत एकया पद्मवरवेदिकया एकेन च वनषण्डेन 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि चानयोर्वेदिकावनषण्डयोर्वर्णकः प्राग्वत् ॥ 'गोथूभस्स ण'मित्यादि, गोस्तूपस्य णमिति पूर्ववद् आवासपर्वतस्योपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहा नामए आलिंगपुक्खरेइ वा' इत्यादि प्राग्वद् यावत्तत्र बहवो नागकुमारा देवा आसते शेरते यावद्विहरन्तीति ॥ 'तस्स ण'मित्यादि, तस्य बहुसमर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५९] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०५--२०६]

॥ ३११ ॥

मणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र महानेकः प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, स च विजयदेवस्य प्रासादावतंसकसदृशो वक्तव्यः, स चैवं–सार्द्धानि द्वाषष्टिर्योजनानि उच्चैस्त्वेन, सक्रोशान्येकत्रिंशद् योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां, प्रासादवर्णनमुल्लोचवर्णनं च प्राग्वत्। तस्य च प्रासादावतंसकस्यान्तर्बहुमध्यदेशभागे महत्येका सर्वरत्नमयी मणिपीठिका, सा च योजनायामविष्कम्भप्रमाणा गव्यूतद्वयबाहल्या, तस्याश्च मणिपीठिकाया उपरि महदेकं सिंहासनं, तच्चेन्द्रसामानिकादिदेवयोग्यैर्भद्रासनैः परिवृतमिति ॥ **'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते गोस्तूप आवासपर्वतो गोस्तूप आवासपर्वतः? इति, भगवानाह–गौतम! गोस्तूपे आवासपर्वते क्षुल्लासु क्षुल्लिकासु वापीषु यावद्बिलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि गोस्तूपप्रभाणि गोस्तूपाकाराणि गोस्तूपवर्णानि गोस्तूपवर्णस्येवाभा–प्रतिभासो येषां तानि गोस्तूपवर्णाभानि, ततस्तानि तदाकारत्वात् तद्वर्णत्वात्तद्वर्णसादृश्याच्च गोस्तूपानीति प्रसिद्धानि, तद्योगादावासपर्वतोऽपि गोस्तूपः, अनादिकालप्रवृत्तोऽयं व्यवहार इति तेन नेतरेतराश्रयदोषः, एवमुत्तरत्रापि भावनीयं, तथा गोस्तूपश्चात्र भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्करणात् महाद्युतिक इत्यादि परिग्रहः, स च चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षदेवसहस्राणां गोस्तूपस्यावासपर्वतस्य गोस्तूपायाश्च राजधान्या अन्येषां च बहूनां गोस्तूपराजधानीवास्तव्यानां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावद्विहरति, ततो गोस्तूपदेवस्वामिकत्वाच्च गोस्तूपः, **'से एएणट्ठेण'**मित्यायुपसंहारवाक्यं प्रतीतम्॥ सम्प्रति गोस्तूपां राजधानीं पृच्छति—**'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! गोस्तूपस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य गोस्तूपा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! गोस्तूपस्यावासपर्वतस्य पूर्वया दिशा तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे गोस्तूपस्य भुज-

॥ ३११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

गेन्द्रस्य भुजगराजस्य गोस्तूपा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा च विजयराजधानीसदृशी वक्तव्या ॥ तदेवमुक्तो गोस्तूपोऽधुना दकाभासवक्तव्यतामाह—'कहिं णं भंते! सिवगस्से'त्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणतो लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे शिवकस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य दकाभासो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः, स च गोस्तूपवद्विशेषेण वक्तव्यो यावत्सपरिवारं सिंहासनम् ॥ अधुना नामनिमित्तं पिपृच्छिषुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! दकाभास आवासपर्वतो लवणसमुद्रे सर्वासु दिक्षु स्वसीमातोऽष्टयोजनिके—अष्टयोजनप्रमाणे क्षेत्रे यदुदकं तत् **'समन्ततः'** सामस्त्येनातिविशुद्धाङ्कनामरत्नमयत्वेन स्वप्रभयाऽवभासयति, एतदेव पर्यायत्रयेण व्याचष्टे—उद्द्योतयति चन्द्र इव तापयति सूर्य इव प्रभासयति ग्रहादिरिव ततो दकं पानीयमाभासयति—समन्ततः सर्वासु दिक्षु अवभासयतीति दकाभासः, अन्यच्च शिवको नामात्र पर्वतेषु भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति । **'से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीण'**मित्यादि प्राग्वत् नवरमत्र शिवका राजधानी वक्तव्या, तस्मिंश्च परिवसति स आवासपर्वतो दकमध्येऽतीवाऽऽभासते—शोभते इति दकाभासः, **'से एएणट्ठेण'**मित्याद्युपसंहारवाक्यं गतार्थं, शिवकाराजधानी दकाभासस्यावासपर्वतस्य दक्षिणतोऽन्यस्मिन् लवणसमुद्रे विजयाराजधानीव भावनीया ॥ अधुना शङ्खनामकावासपर्वतवक्तव्यतामाह—**'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! शङ्खस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य शङ्खो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे शङ्खस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य शङ्खो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः, स च गोस्तूपवद्विशेषेण तावद्वक्तव्यो यावत्सपरिवारं सिंहासनम् ॥ इदानीं नामनिबन्धनमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–शङ्खे आवासपर्वते शुक्तासु शुक्तिकासु वापीषु यावद्विलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि शङ्खाभानि–शङ्काकाराणि शङ्खवर्णानि–श्वेतानीति भावः शङ्खवर्णाभानि–प्रायः शङ्खवर्णसदृशवर्णानि, शङ्खश्चात्र भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति । 'से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सी ण'मित्यादि प्राग्वत्, नवरमत्र शङ्खा राजधानी वक्तव्या, तदेवं यतस्तद्वतान्युत्पलादीनि शङ्खाकाराणि शङ्खदेवस्वामिकश्चायमतः शङ्ख इति, 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं गतार्थं, शङ्खा राजधानी शङ्खस्यावासपर्वतस्य पश्चिमायां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे विजयाराजधानीसदृशी वक्तव्या ॥ सम्प्रति दकसीमापर्वतवक्तव्यतामाह—'कहि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्रतीतं, भगवानाह–गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरतो लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्य 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे मनःशिलकस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य दकसीमो नामावासपर्वतः प्रज्ञप्तः, सोऽपि गोस्तूपपर्वतवदविशेषेण तावद्वक्तव्यो यावत्सपरिवारं सिंहासनम् ॥ इदानीं नामनिमित्तं विभणिषुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि प्रतीतं, भगवानाह–गौतम! दकसीमे आवासपर्वते शीताशीतोदयोर्महानद्योः श्रोतांसि–जलप्रवाहास्तत्र गतानि तस्माच्च तेन प्रतिहतानि प्रतिनिवर्त्तन्ते ततो दकसीमाकारित्वाद् दकसीमः, दकस्य सीमा–शीताशीतोदापानीयस्य सीमा यत्रासौ दकसीम इति व्युत्पत्तेः, अन्यच्च मनःशिलको भुजगेन्द्रो भुजगराजो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति । 'से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीण'मित्यादि प्राग्वत् नवरं मनःशिलाऽत्र राजधानी वक्तव्या, ततो मनःशिलस्य देवस्य दके–लवणजलमध्ये सीमा, आवासचिन्तायां मर्यादा, 'अत्रे'ति दकसीमे, मनःशिला च राजधानी दकसीमस्यावासपर्वतस्योत्तरतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे विजयाराजधानीव वक्तव्या । तदेवमुक्ताश्चत्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

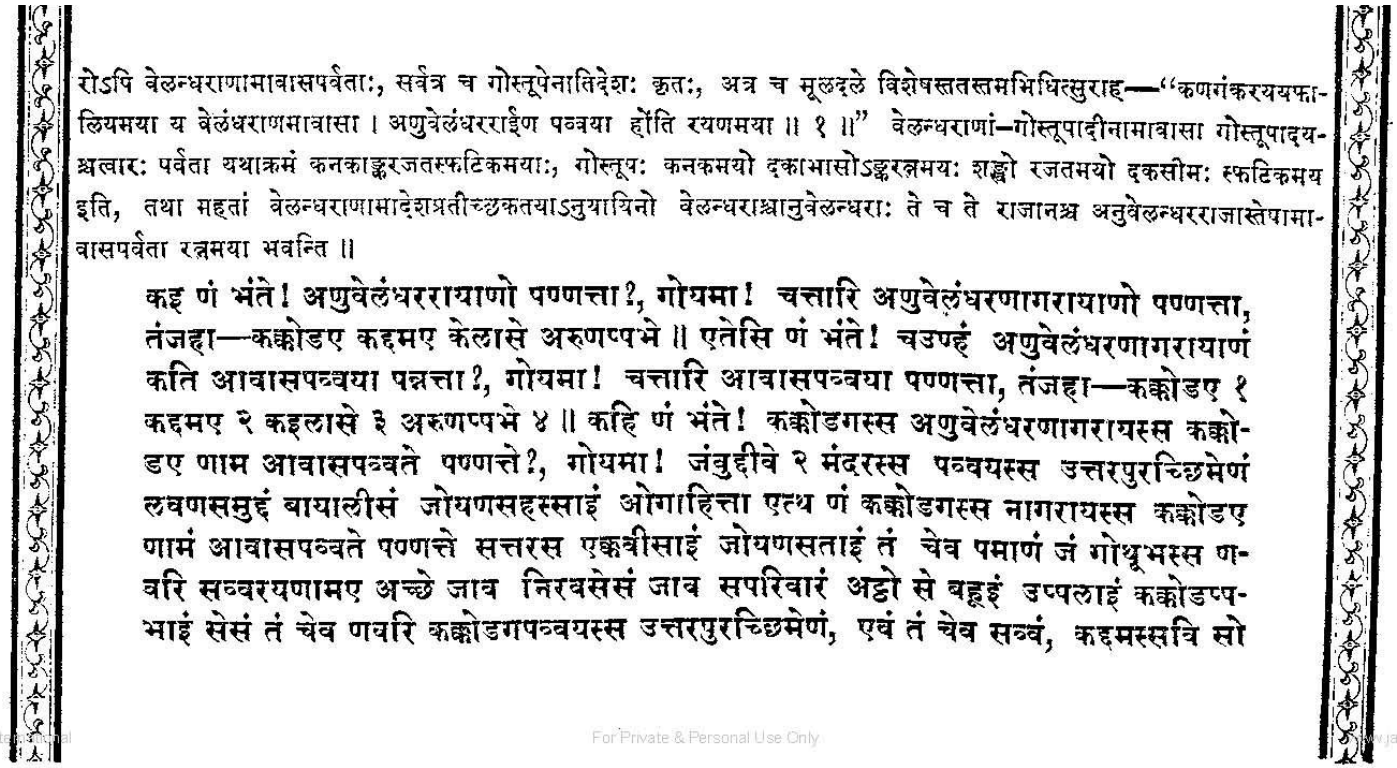

रोऽपि वेलन्धराणामावासपर्वताः, सर्वत्र च गोस्तूपेनातिदेशः कृतः, अत्र च मूलदले विशेषस्ततस्तमभिधित्सुराह—"कणगंकरयथफालियमया य वेलंधराणमावासा । अणुवेलंधरराईण पव्वया होंति रयणमया ॥ १ ॥" वेलन्धराणां—गोस्तूपादीनामावासा गोस्तूपादयश्चत्वारः पर्वता यथाक्रमं कनकाङ्करजतस्फटिकमयाः, गोस्तूपः कनकमयो दकाभासोऽङ्करत्नमयः शङ्खो रजतमयो दकसीमः स्फटिकमय इति, तथा महतां वेलन्धराणामादेशप्रतीच्छकतयाऽनुयायिनो वेलन्धराश्चानुवेलन्धराः ते च ते राजानश्च अनुवेलन्धरराजास्तेषामावासपर्वता रत्नमया भवन्ति ॥

कइ णं भंते! अणुवेलंधररायाणो पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि अणुवेलंधरणागरायाणो पण्णत्ता, तंजहा—कक्कोडए कद्दमए केलासे अरुणप्पभे ॥ एतेसि णं भंते! चउण्हं अणुवेलंधरणागरायाणं कति आवासपव्वया पन्नत्ता?, गोयमा! चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तंजहा—कक्कोडए १ कद्दमए २ कइलासे ३ अरुणप्पभे ४ ॥ कहि णं भंते! कक्कोडगस्स अणुवेलंधरणागरायस्स कक्कोडए णाम आवासपव्वते पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुद्दीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कक्कोडगस्स नागरायस्स कक्कोडए णामं आवासपव्वते पण्णत्ते सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसताइं तं चेव पमाणं जं गोथूभस्स णवरि सव्वरयणामए अच्छे जाव निरवसेसं जाव सपरिवारं अट्ठो से बहूइं उप्पलाइं कक्कोडप्पभाइं सेसं तं चेव णवरि कक्कोडगपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेणं, एवं तं चेव सव्वं, कद्दमस्सवि सो

जी० ५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१६०]

दीप अनुक्रम [२०७]

श्रीजीवाजीवाभि० मलयगिरीयावृत्तिः ॥ २१३ ॥

चेव गमओ अपरिसेसिओ, णवरि दाहिणपुरच्छिमेणं आवासो विज्जुप्पभा रायहाणी दाहिणपुरत्थिमेणं, कइलासेवि एवं चेव, णवरि दाहिणपच्चत्थिमेणं कयलासावि रायहाणी ताए चेव दिसाए, अरुणप्पभेवि उत्तरपच्चत्थिमेणं रायहाणीवि ताए चेव दिसाए, चत्तारि विगप्पमाणा सव्वरयणामया य ॥ (सू० १६०)

'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! अनुवेलन्धरराजाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! चत्वारोऽनुवेलन्धरराजाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–कर्कोटकः १ कर्दमः २ कैलासः ३ अरुणप्रभश्च ॥ 'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त! चतुर्णामनुवेलन्धरराजानां कति आवासपर्वताः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! एकैकस्य एकैकभावेन चत्वारोऽनुवेलन्धरराजानामावासपर्वताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–कर्कोटको विद्युत्प्रभः कैलासः अरुणप्रभश्च, कर्कोटकस्य कर्कोटकः कर्दमस्य विद्युत्प्रभः कैलाशस्य कैलाशः अरुणप्रभस्यारुणप्रभ इत्यर्थः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्योत्तरपूर्वस्यां दिशि लवणसमुद्रं द्वाचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यवगाह्य 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे कर्कोटकस्य भुजगेन्द्रस्य भुजगराजस्य कर्कोटको नामावासपर्वतकः प्रज्ञप्तः, 'सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसयाइं' इत्यादिका गोस्तूपस्यावासपर्वतस्य या वक्तव्यतोक्ता सैवेहापि अहीनातिरिक्ता भणितव्या, नवरं सर्वरत्नमय इति वक्तव्यं, नामनिमित्तचिन्तायामपि यस्माच्च क्षुल्लाक्षुल्लिकासु वापीषु यावद्विलपङ्क्तिषु बहून्युत्पलानि यावत् शतसहस्रपत्राणि कर्कोटकप्रभाणि कर्कोटकाकाराणि ततस्तानि कर्कोटकादीनि व्यवह्रियन्ते तद्योगात्पर्वतोऽपि कर्कोटकः, तथा कर्कोटकनामा देवस्तत्र पल्योपमस्थितिकः परिवसति ततः कर्कोटकस्वामित्वात्कर्कोटकः, राजधान्यपि कर्कोटस्यावासपर्वतस्योत्तरपूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान्

३ प्रतिपत्तौ अनुवेलन्धरराजावासादिः उद्देशः २ सू० १६० ॥ २१३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य कर्कोटकाभिधाना विजयाराजधानीव प्रतिपत्तव्या । एवं कर्दमकैलाशारुणप्रभवक्तव्यताऽपि भावनीया, नवरं जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य लवणसमुद्रे दक्षिणपूर्वस्यां कर्दमको दक्षिणापरस्यां कैलाशः अपरोत्तरस्यामरुणप्रभः, नामनिमित्तचिन्तायामपि यस्मात्कर्दमके आवासपर्वते उत्पलादीनि कर्दमकप्रभाणि ततः कर्दमकभावना प्रागिव, अन्यच्च कर्दमके विद्युत्प्रभो नाम देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति, स च स्वभावाद् यक्षकर्दमप्रियः, यक्षकर्दमो नाम कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तूरिकाचन्दनमेलापकः, उक्तञ्च—"कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनानि च । महासुगन्धमित्युक्तं, नामतो यक्षकर्दमम् ॥ १ ॥" ततः प्राचुर्येण यक्षकर्दमसम्भवाच्चासौ पूर्वपदलोपे सत्यभामा भामेतिवत् कर्दम इत्युच्यते, कैलाशे कैलाशप्रभाण्युत्पलादीनि कैलाशनामा च तत्र देवः पल्योपमस्थितिकः परिवसति ततः कैलाशः, एवमरुणप्रभेऽपि वक्तव्यं, कर्दमकाराजधानी कर्दमस्यावासपर्वतस्य दक्षिणपूर्वया कैलाशा कैलाशस्यावासपर्वतस्य दक्षिणापरयाऽरुणप्रभा अरुणप्रभस्यावासपर्वतस्यापरोत्तरया तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रेऽरुणप्रभाराजधानी विजयाराजधानीव वाच्या ॥

कहि णं भंते! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?, गोयमा! जंबुदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स गोयमदीवे २ पण्णत्ते, बारसजोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं सत्तीसं जोयणसहस्साइं नव य अडयाले जोयणसए किंचिविसेसोणे परिक्खेवेणं, जंबूदीवंतेणं अद्धेकोणणउते जोयणाइं चत्तालीसं पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिए जलंताओ लवणसमुद्दं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१६१]

दीप अनुक्रम [२०८]

तेणं दो कोसे ऊसिते जलंताओ ॥ से णं एगाए य पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता तहेव वण्णओ दोण्हवि । गोयमदीवस्स णं दीवस्स अंतो जाव बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए—आलिंग० जाव आसयंति । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स एगे महं अइक्कीलावासे नामं भोमेज्जविहारे पण्णत्ते बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं अणेगखंभसतसन्निविट्ठे भवणवण्णओ भाणियव्वो । अइक्कीलावासस्स णं भोमेज्जविहारस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं भासो । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ एगा मणिपेढिया पण्णत्ता । सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणबाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छा जाव पडिरूवा ॥ तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं देवसयणिज्जे पण्णत्ते वण्णओ ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—गोयमदीवे णं दीवे?, तत्थ २ तहिं २ बहूइं उप्पलाइं जाव गोयमप्पभाइं से एएणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चे । कहि णं भंते! सुट्ठियस्स लवणाहिवइस्स सुट्ठिया णामं रायहाणी पण्णत्ता?, गोयमदीवस्स पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे जाव अण्णंमि लवणसमुद्दे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एवं तहेव सव्वं णेयव्वं जाव सुत्थिए देवे ॥ (सू० १६१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! सुस्थितस्य लवणाधिपस्य गौतमद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपस्य पश्चिमायां दिशि लवणसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे सुस्थितस्य लवणाधिपस्य गौतमद्वीपो नाम द्वीपः प्रज्ञप्तः, द्वादश योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भाभ्यां, सप्तत्रिंशद् योजनसहस्राणि नव चाष्टाचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण, **'जंबूदीवंतेण'**मिति जम्बूद्वीपदिशि 'अर्द्धैकोननवतीनि' अर्द्धमेकोननवतेर्येषां तानि अर्द्धैकोननवतीनि सार्द्धाष्टाशीतिसङ्ख्यानीति भावः, योजनानि चत्वारिंशतं च पञ्चनवतिभागान् योजनस्य **'जलान्तात्'** जलपर्यन्तादूर्द्ध्वमुच्छ्रितः, एतावान् जलस्योपरि प्रकट इत्यर्थः, 'लवणसमुद्रान्ते' लवणसमुद्रदिशि द्वौ क्रोशौ जलान्तादुच्छ्रितौ, द्वावेव क्रोशौ जलस्योपरि प्रकट इत्यर्थः ॥ **'से ण'**मित्यादि, स एकया पद्मवरवेदिकया एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि वर्णनं प्राग्वत् । तस्य च गौतमद्वीपस्योपरि बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनं प्राग्वद् यावत्तृणानां मणीनां च शब्दवर्णनं वाप्यादिवर्णनं यावद्बहवो वानमन्तरा देवा आसते शेरते यावद्विहरन्तीति । तस्य बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागेऽत्र सुस्थितस्य लवणाधिपस्य योग्यो महानेकः **'अतिकीलावासः'** अत्यर्थं क्रीडावासो नाम भौमेयविहारः प्रज्ञप्तः, सार्द्धानि द्वापष्टियोजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन एकत्रिंशतं च योजनानि क्रोशमेकं च विष्कम्भेन **'अणेगखंभसयसन्निविट्ठे'** इत्यादि भवनवर्णनमुल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं च प्राग्वत् । तस्य च बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र महत्येका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता, सा योजनमायामविष्कम्भाभ्यां अर्द्धयोजनं बाहल्येन सर्वात्मना मणिमयी अच्छा यावत्प्रतिरूपा ॥ **'तीसे ण'**मित्यादि, तस्या मणिपीठिकाया उपरि देवशयनीयं, तस्य वर्णक उपर्यष्टाष्टमङ्गलकादिकं च प्राग्वत् ॥ नामनिमित्तं पिपृच्छिषुराह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ **'केनार्थेन'** केन कारणेन एवमुच्यते—गौतमद्वीपो नाम द्वीपः?, भगवा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

नाह–गौतमद्वीपस्य शाश्वतमिदं नामधेयं न कदाचिन्नासीदित्यादि प्राग्वत् । पुस्तकान्तरेषु पुनरेवं पाठः—'गोयमदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ तहिं तहिं बहूइं उप्पलाइं जाव सहस्सपत्ताइं गोयमप्पभाइं गोयमवन्नाइं गोयमवण्णाभाइं' इति, एवं प्राग्वद् भावनीयः । सुस्थितश्चात्र लवणाधिपो महर्द्धिको यावत्पल्योपमस्थितिकः परिवसति, स च तत्र चतुर्णां सामानिकसहस्राणां यावत्षोडशानामात्मरक्षक-देवसहस्राणां गौतमद्वीपस्य सुस्थिताया श्च राजधान्या अन्येषां च बहूनां वानमन्तराणां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावद्विहरति, तत एवमेव शाश्वतनामत्वात्, पाठान्तरे तद्गतानि उत्पलादीनि गौतमप्रभाणीति गौतमानीति प्रसिद्धानि ततस्तद्योगात्तथा, तदधिपति-र्गौतमाधिपतिरिति प्रसिद्धं इति सामर्थ्यादेष गौतमद्वीप इति । उपसंहारमाह—'से तेणट्ठेण'मित्यादि गतार्थम् ॥ सम्प्रति जम्बूद्वी-पगतचन्द्रसत्कद्वीपप्रतिपादनार्थमाह—

कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! जंबूद्दीवे २ मंद-रस्स पव्वयस्स पुरच्छिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जंबूदीव-गाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जंबुद्दीवंतेणं अद्धेकोणणउइ जोयणाइं चत्तालीसं पंचाणउतिं भागे जोयणस्स ऊसिया जलंताओ लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिता जलंताओ, बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, सेसं तं चेव जहा गोतमद्दीवस्स परिक्खेवो पउमवर-वेइया पत्तेयं २ वणसंडपरि० दोण्हवि वण्णओ बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा जाव जोइसिया देवा आसयंति । तेसि णं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पासायवडेंसगा बावट्ठि जोयणाइं बहुम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

उज्झ० मणिपेढियाओ दो जोयणाइं जाव सीहासणा सपरिवारा भाणियव्वा तहेव अट्ठो, गोयमा! बहुसु खुड्डासु खुड्डियासु बहूइं उप्पलाइं चंदवण्णाभाइं चंदा एत्थ देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, ते णं तत्थ पत्तेयं पत्तेयं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव चंददीवाणं चंदाण य रायहाणीणं अन्नेसिं च बहूणं जोतिसियाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव विहरंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! चंददीवा जाव णिच्चा । कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं चंदाणं चंदाओ नाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! चंददीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियं जाव अण्णंमि जंबूदीवे २ बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव पमाणं जाव एमहिड्ढीया चंदा देवा २ ॥ कहि णं भंते! जंबुद्दीवगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तं चेव उच्चत्तं आयामविक्खंभेणं परिक्खेवो वेदिया वणसंडा भूमिभागा जाव आसयंति पासायवडेंसगाणं तं चेव पमाणं मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो उप्पलाइं सूरप्पभाइं सूरा एत्थ देवा जाव रायहाणीओ सक्काणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि जंबूदीवे दीवे सेसं तं चेव जाव सूरा देवा ॥ (सू० १६२) कहि णं भंते! अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! जंबूदीवे २ मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दं बारस जोयण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६२--१६६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२१६]

सहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं अब्भिंतरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, जहा जंबुद्दीवगा चंदा तहा भाणियव्वा णवरि रायहाणीओ अण्णंमि लवणे सेसं तं चेव। एवं अब्भिंतरलावणगाणं सूराणवि लवणसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ ॥ कहि णं भंते! बाहिरलावणगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता?, गोयमा! लवणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ लवणसमुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं बाहिरलावणगाणं चंददीवा नामं दीवा पण्णत्ता धायतिसंडदीवंतेणं अद्धेकोणणवतिजोयणाइं चत्तालीसं च पंचणउतिभागे जोयणस्स ऊसिता जलंतातो लवणसमुद्दंतेणं दो कोसे ऊसिता बारस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पउमवरवेइया वणसंडा बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा सो चेव अट्ठो रायहाणीओ सगाण दीवाणं पुरत्थिमेणं तिरियमसं० अण्णंमि लवणसमुद्दे तहेव सव्वं। कहि णं भंते! बाहिरलावणगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता? गोयमा! लवणसमुद्दपच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ लवणसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं धायतिसंडदीवंतेणं अद्धेकूणणउतिं जोयणाइं चत्तालीसं च पंचनउतिभागे जोयणस्स दो कोसे ऊसिया सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं तिरियमसंखेज्जे लवणे चेव बारस जोयणा तहेव सव्वं भाणियव्वं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१६२--१६६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२१६]

(सू० १६३) कहि णं भंते! धायतिसंडदीवगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता?, गोयमा! धायतिसंडस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं धायतिसंडदीवाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता, सव्वतो समंता दो कोसा ऊसिता जलंताओ बारस जोयणसहस्साइं तहेव विक्खंभपरिक्खेवो भूमिभागो पासायवडिंसया मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा अट्ठो तहेव रायहाणीओ, सकाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं अण्णंमि धायतिसंडे दीवे सेसं तं चेव, एवं सूरदीवावि, नवरं धायइसंडस्स दीवस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ कालोयं णं समुद्दं बारस जोयण० तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ सूराणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि धायइसंडे दीवे सव्वं तहेव ॥ (सू० १६४) कहि णं भंते! कालोयगाणं चंदाणं चंददीवा पण्णत्ता?, गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेदियंताओ कालोयण्णं समुद्दं पच्चत्थिमेण बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं कालोयगचंदाणं चंददीवा सव्वतो समंता दो कोसा ऊसिता जलंतातो सेसं तहेव जाव रायहाणीओ सगाणं दीव० पुरच्छिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे बारस जोयणा तं चेव सव्वं जाव चंदा देवा २। एवं सूराणवि, णवरं कालोयगपच्चत्थिमिल्लातो वेदियंतातो कालोयसमुद्दपुरच्छिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णंमि कालोयगसमुद्दे त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६२--१६६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२१६]

हेव सव्वं। एवं पुक्खरवरगाणं चंदाणं पुक्खरवरस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरवरसमुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चंददीवा अण्णंमि पुक्खरवरे दीवे रायहाणीओ तहेव। एवं सूराणवि दीवा पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पुक्खरोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तहेव सव्वं जाव रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवे समुद्दगाणं समुद्दे चेव एगाए अभिंतरपासे एगाणं बाहिरपासे रायहाणीओ दीविल्लगाणं दीवेसु समुद्दगाणं समुद्देसु सरिणामतेसु (सू० १६५) इमे णामा अणुगंतव्वा, जंबुदीवे लवणे धायइ कालोद पुक्खरे वरुणे। खीर घय इक्खु[वरो य]णंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥ १ ॥ आभरणवत्थगंधे उप्पलतिलते य पुढवि णिहिरयणे। वासहरदहनईओ विजया वक्खारकप्पिंदा ॥ २ ॥ पुरमंदरमावासा कूडा णक्खत्तचंदसूरा य। एवं भाणियव्वं ॥ (सू० १६६)

'कहि णं भंते!' इत्यादि ॥ क्व भदन्त! जम्बूद्वीपगतयोर्जम्बूद्वीपसत्कयोश्चन्द्रयोश्चन्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ प्रज्ञप्तौ?, भगवानाह—'गोयमे'त्यादि सर्वं गौतमद्वीपवत्परिभावनीयं, नवरमत्र जम्बूद्वीपस्य पूर्वस्यां दिशीति वक्तव्यं, तथा प्रासादावतंसको वक्तव्यः, तस्य चायामादिप्रमाणं तथैव, नामनिमित्तचिन्तायामपि यस्माक्षुल्लिकावाप्यादिषु बहूनि उत्पलादीनि यावत्सहस्रपत्राणि चन्द्रप्रभाणि—चन्द्रवर्णानि, चन्द्रौ च ज्योतिषेन्द्रौ ज्योतिषराजौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तौ चन्द्रौ प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशानामात्मरक्षकदेवसहस्राणां स्वस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

स्वस्य चन्द्रद्वीपस्य स्वस्याश्चन्द्राभिधानाया राजधान्या अन्येषां च बहूनां ज्योतिषाणां देवानां देवीनां चाधिपत्यं यावद्विहरत: । तत-स्तद्वतोत्पलादीनां चन्द्राकारत्वाच्चन्द्रवर्णत्वाच्चन्द्रदेवस्वामिकत्वाच्च तौ चन्द्रद्वीपौ इति, चन्द्राभिधे च राजधान्यौ तयोश्चन्द्रद्वीपयो: पू-र्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य विजयाराजधानीसदृश्यौ वक्तव्ये । एवं जम्बूद्वीपगतसूरसत्कसूर्यद्वीपावपि वक्तव्यौ, नवरं जम्बूद्वीपस्य पश्चिमायां दिशि एनमेव लवणसमुद्रमवगाह्य वक्तव्यं, राजधान्यावपि स्वकद्वीपयो: पश्चिमायां दिशि अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे वक्तव्ये, शेषं सर्वं चन्द्रद्वीपवद्भावनीयं नवरं चन्द्रस्थाने सूर्यग्रह-णमिति ॥ सम्प्रति लवणसमुद्रगतचन्द्रादित्यद्वीपवक्तव्यतामाह—**'कहि णं भंते!'** इत्यादि, लवणे भवौ लावणिकौ अभ्यन्तरौ च तौ लावणिकौ च अभ्यन्तरलावणिकौ शिखाया अर्वाक्चारिणावित्यर्थ: तयो:, सूत्रे द्विस्वेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात्, शेषं सुगमं, भगवा-नाह–गौतम! जम्बूद्वीपस्य पूर्वस्यां दिशि एनमेव लवणसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य **'अत्र'** एतस्मिन्नवकाशे अभ्यन्तरलावणि-कयोश्चन्द्रयोश्चन्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ वक्तव्यौ, इत्यादि जम्बूद्वीपगतचन्द्रसत्कचन्द्रद्वीपवन्निरवशेषं वक्तव्यं, नवरमत्र राजधान्यौ स्वकी-ययोर्द्वीपयो: पूर्वस्यां दिशि अन्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वेदितव्ये । एवमभ्यन्तरलावणिकसूर्यसत्कसूर्यद्वीपा-वपि वक्तव्यौ, नवरं तौ जम्बूद्वीपस्य पश्चिमायां दिशि एनमेव लवणसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वक्तव्यौ, राजधान्यावपि स्वकीययो: द्वीपयो: पश्चिमायां दिशि अन्यस्मिन् लवणसमुद्रे द्वादश: योजनसहस्राण्यवगाह्येति ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क भदन्त! बाह्यलावणिकयोश्चन्द्रयोश्चन्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ प्रज्ञप्तौ?, बाह्यलावणिकौ नाम लवणसमुद्रे शिखाया बहिश्चारिणौ चन्द्रौ, भगवानाह–गौतम! लवणसमुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तादर्वाग् लवणसमुद्रं पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र बाह्यलावणिकयोश्चन्द्रयोश्च-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१६२--१६६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२१६]

न्द्रद्वीपौ नाम द्वीपौ प्रज्ञप्तौ, तौ च धातकीषण्डद्वीपान्तेन–धातकीषण्डद्वीपदिशि अर्द्धैकोननवतियोजनानि चत्वारिंशतं च पञ्चनवतिभागान् योजनस्योदकादूर्द्ध्वमुच्छ्रितो लवणसमुद्रदिशि द्वौ क्रोशौ, शेषवक्तव्यताऽभ्यन्तरलावणिकचन्द्रद्वीपवद्वक्तव्या, अत्रापि च राजधान्यौ स्वकीययोर्द्वीपयोः पूर्वस्यां तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् लवणसमुद्रे वक्तव्ये, एवं बाह्यलावणिकसूर्यसत्कसूर्यद्वीपावपि वक्तव्यौ, नवरमत्र लवणसमुद्रस्य पश्चिमाद् वेदिकान्तालवणसमुद्रं पूर्वस्यां दिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्येति वक्तव्यं, राजधान्यावपि स्वकयोर्द्वीपयोः पश्चिमायां दिशि अन्यस्मिन् लवणसमुद्रे इति ॥ सम्प्रति धातकीषण्डगतचन्द्रादित्यद्वीपवक्तव्यतामभिधित्सुराह—**'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! धातकीषण्डद्वीपगतानां चन्द्राणां, तत्र द्वादश चन्द्रा इति बहुवचनं, चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डस्य द्वीपस्य पूर्वस्यां दिशि कालोदं समुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र धातकीषण्डगतानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, ते च जम्बूद्वीपगतचन्द्रसत्कचन्द्रद्वीपवद्वक्तव्याः, नवरं ते सर्वासु दिक्षु जलादूर्द्ध्वं द्वौ क्रोशौ उच्छ्रितौ इति वक्तव्यं, तत्र पानीयस्य सर्वत्रापि समत्वाद्, राजधान्योऽपि तेषां स्वकीयानां द्वीपानां पूर्वतस्तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य विजयाराजधानीवद्वक्तव्याः, एवं धातकीषण्डगतसूर्यसत्कसूर्यद्वीपा अपि वक्तव्याः, नवरं धातकीषण्डस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्कालोदसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वक्तव्याः, राजधान्योऽपि स्वकीयानां सूरद्वीपानां पश्चिमदिशि अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे शेषं तथैव ॥ सम्प्रति कालोदसमुद्रगतचन्द्रादित्यसत्कद्वीपवक्तव्यतां प्रतिपिपादयिषुराह—**'कहि णं भंते!'** इत्यादि, **'कालोयगाण'**मित्यादि, क्व भदन्त! **'कालोदगानां'** कालोदसमुद्रसत्कानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! कालोदसमुद्रस्य पूर्वस्माद् वेदिकान्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

त्कालोदसमुद्रं पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्र कालोदसमुद्रगतचन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः प्रज्ञप्ताः, ते च सर्वासु दिक्षु जलादूर्द्धं द्वौ द्वौ क्रोशावुच्छ्रितौ, शेषं तथैव । राजधान्योऽपि स्वकीयानां द्वीपानां पूर्वस्यां दिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् कालोदसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य विजयाराजधानीवद्वक्तव्याः । एवं कालोदगतसूर्यसत्कसूर्यद्वीपा अपि वक्तव्याः, नवरं कालोदसमुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्कालोदसमुद्रं पूर्वदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्येति वक्तव्यं, राजधान्योऽपि स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि अन्यस्मिन् कालोदसमुद्रे, शेषं तथैव । एवं पुष्करवरद्वीपगतानां चन्द्राणां पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पुष्करोदसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य द्वीपा वक्तव्याः, राजधान्यः स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, पुष्करवरद्वीपगतसूर्याणां द्वीपाः पुष्करवरद्वीपस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्पुष्करवरसमुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य प्रतिपत्तव्याः, राजधान्यः पुनः स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, पुष्करवरसमुद्रगतचन्द्रसत्कचन्द्रद्वीपाः पुष्करवरसमुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य प्रतिपत्तव्याः, राजधान्यः स्वकीयानां द्वीपानां पूर्वदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करवरसमुद्रे द्वादश योजनसहस्रेभ्यः परतः, पुष्करवरसमुद्रगतसूर्यसत्कसूर्यद्वीपाः पुष्करवरसमुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिकान्तात्पूर्वतो द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, राजधान्यः पुनः स्वकीयानां द्वीपानां पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्यान्यस्मिन् पुष्करोदसमुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य प्रतिपत्तव्याः । एवं शेषद्वीपगतानामपि चन्द्राणां चन्द्रद्वीपगतात्पूर्वस्माद्वेदिकान्तादनन्तरे समुद्रे द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य वक्तव्याः, सूर्याणां सूर्यद्वीपाः स्वस्वद्वीपगतात्प-

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१६२--१६६] + गाथा

दीप अनुक्रम [२०९--२१६]

श्रिमान्ताद्वेदिकान्तादनन्तरे समुद्रे, राजधान्यश्चन्द्राणामाल्लीयचन्द्रद्वीपेभ्यः पूर्वदिशि अन्यस्मिन् सदृशनामके २ द्वीपे, सूर्याणामप्या-ल्लीयसूर्यद्वीपेभ्यः पश्चिमदिशि तस्मिन्नेव सदृशनामकेऽन्यस्मिन् द्वीपे द्वादश योजनसहस्रेभ्यः परतः, शेषसमुद्रगतानां तु चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः स्वस्वसमुद्रस्य पूर्वस्माद्वेदिकान्तात्पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, सूर्याणां तु स्वस्वसमुद्रस्य पश्चिमान्ताद्वेदिका-न्तात्पूर्वदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य, चन्द्राणां राजधान्यः स्वस्वद्वीपानां पूर्वदिशि अन्यस्मिन् सदृशनामके समुद्रे, सूर्याणां राजधान्यः स्वस्वद्वीपानां पश्चिमदिशि, केवलमप्रेतनशेषद्वीपसमुद्रगतानां चन्द्रसूर्याणां राजधान्योऽन्यस्मिन् सदृशनामके द्वीपे समुद्रे वाऽग्रेतने वा पश्चात्तने वा प्रतिपत्तव्या नाग्रेतन एवान्यथाऽनवस्थाप्रसक्तेः ॥ एतच्च देवद्वीपादर्वाक् सूर्यवराभासं यावद्, देवद्वीपादिषु तु राजधानीः प्रति विशेषस्तमभिधित्सुराह—

कहि णं भंते! देवद्दीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! देवदीवस्स देवोदं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता तेणेव कमेण पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ जाव राय-हाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं देवदीवं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवदीवगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ, सेसं तं चेव, देवदीवचंदा दीवा, एवं सूराणवि, णवरं पच्चत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ पच्चत्थिमेणं च भाणितव्वा, तंमि चेव समुद्दे ॥ कहि णं भंते! देवसमुद्दगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, गोयमा! देवोदगस्स समु-द्दगस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेदियंताओ देवोदगं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं तेणेव

॥ ३१९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

कमेणं जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं देवोदगाणं चंदाणं चंदाओ णामं रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं चेव सव्वं, एवं सूराणवि, णवरि देवोदगस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेतियंतातो देवोदगसमुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं २ दीवाणं पुरत्थिमेणं देवोदगं समुद्दं असंखेजाइं जोयणसहस्साइं। एवं णागे जक्खे भूतेवि चउण्हं दीवसमुद्दाणं। कहि णं भंते! सयंभूरमणदीवगाणं चंदाणं चंददीवा णामं दीवा पण्णत्ता?, सयंभुरमणस्स दीवस्स पुरत्थिमिल्लातो वेतियंतातो सयंभुरमणोदगं समुद्दं बारस जोयणसहस्साइं तहेव रायहाणीओ सगाणं २ दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभुरमणोदगं समुद्दं पुरत्थिमेणं असंखेज्जाइं जोयण० तं चेव, एवं सूराणवि, सयंभूरमणस्स पच्चत्थिमिल्लातो वेदियंताओ रायहाणीओ सकाणं २ दीवाणं पच्चत्थिमिल्लाणं सयंभुरमणोदं समुद्दं असंखेज्जा० सेसं तं चेव। कहि णं भंते! सयंभूरमणसमुद्दकाणं चंदाणं०, सयंभुरमणस्स समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेतियंतातो सयंभुरमणं समुद्दं पच्चत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, सेसं तं चेव। एवं सूराणवि, सयंभुरमणस्स पच्चत्थिमिल्लाओ सयंभुरमणोदं समुद्दं पुरत्थिमेणं बारस जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पुरत्थिमेणं सयंभुरमणं समुद्दं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं सयंभुरमण जाव सूरादेवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

॥(सूत्रं १६७) अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे वेलंधराति वा णागराया खन्नाति वा अग्घाति वा सिंहाति वा विजाती वा हासवट्टीति?, हंता अत्थि। जहा णं भंते! लवणसमुद्दे अत्थि वेलंधराति वा णागराया अग्घा सिंहा विजाती वा हासवट्टीति वा तहा णं बाहिरतेसुवि समुद्देसु अत्थि वेलंधराइ वा णागरायाति वा अग्घाति वा सीहाति वा विजातीति वा हासवट्टीति वा?, णो तिणट्ठे समट्ठे॥ (सूत्रं १६८) लवणे णं भंते! समुद्दे किं ऊसितोदगे किं पत्थडोदगे किं खुभियजले किं अखुभियजले?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे ऊसिओदगे नो पत्थडोदगे खुभियजले नो अक्खुभियजले। जहा णं भंते! लवणे समुद्दे ओसितोदगे नो पत्थडोदगे खुभियजले नो अक्खुभियजले तहा णं बाहिरगा समुद्दा किं ऊसिओदगा पत्थडोदगा खुभियजला अक्खुभियजला?, गोयमा! बाहिरगा समुद्दा नो उस्सितोदगा पत्थडोदगा नो खुभियजला अक्खुभियजला पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठंति॥ अत्थि णं भंते! लवणसमुद्दे बहवो ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वा वासं वासंति वा?, हंता अत्थि। जहा णं भंते! लवणसमुद्दे बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति वा तहा णं बाहिरएसुवि समुद्देसु बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति?, णो तिणट्ठे समट्ठे, से केणट्ठे णं भंते! एवं वुच्चति बाहिरगा णं समुद्दा पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडियाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

चिट्ठंति?, गोयमा! बाहिरएसु णं समुद्देसु बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, से तेणट्ठेणं एवं वुच्चति–बाहिरगा समुद्दा पुण्णा पुण्ण० जाव समभरघडत्ताए चिट्ठंति ॥(सू० १६९)

'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! देवद्वीपगानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! देवद्वीपस्य पूर्वस्माद्देदिकान्ताद् देवोदं समुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य अत्रान्तरे देवद्वीपगानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः प्रज्ञप्ता इत्यादि प्राग्वत्, राजधान्यः स्वकीयानां चन्द्रद्वीपानां पश्चिमदिशि तमेव देवद्वीपमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे देवद्वीपगानां चन्द्राणां चन्द्रा नाम राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, ता अपि विजयाराजधानीवद्वक्तव्याः ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! देवद्वीपगानां सूर्याणां सूर्यद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! देवद्वीपस्य पश्चिमान्ताद्देदिकान्ताद् देवोदं समुद्रं द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्येत्यादि। राजधान्यः स्वकीयानां सूर्यद्वीपानां पूर्वस्यां दिशि तमेव देवद्वीपमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्येत्यादि ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! देवसमुद्राणां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपा नाम द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, गौतम! देवोदस्य समुद्रस्य पूर्वस्माद्देदिकान्ताद्देवोदकं समुद्रं पश्चिमदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे देवोदसमुद्रगानां चन्द्राणां चन्द्रद्वीपाः प्रज्ञप्तास्ते च प्राग्वत्। राजधान्यः स्वकीयानां चन्द्रद्वीपानां पश्चिमदिशि देवोदकं समुद्रमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे वक्तव्याः, देवोदकसमुद्रगानां सूर्याणां सूर्यद्वीपा देवोदकस्य समुद्रस्य पश्चिमान्ताद्देदिकान्ताद् देवोदकं समुद्रं पूर्वदिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे वक्तव्याः, राजधान्योऽपि स्वकीयानां सूर्यद्वीपानां पूर्वदिशि देवोदकं समुद्रमसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्य, एवं नागयक्षभूतस्वयम्भूरमण-

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

द्वीपसमुद्रचन्द्रादित्यानामपि वक्तव्यं, द्वीपगतानां चन्द्रादित्यानां चन्द्रादित्यद्वीपा अनन्तरसमुद्रे, समुद्रगतानां तु स्वस्वसमुद्र एव, राजधान्यो द्वीपगतानां चन्द्रादित्यानां स्वस्वद्वीपे, समुद्रगतानां स्वस्वसमुद्रे, आह च मूलटीकाकारोऽपि—"एवं शेषद्वीपगतचन्द्रादित्यानामपि द्वीपा अनन्तरसमुद्रेष्ववगन्तव्याः, राजधान्यश्च तेषां पूर्वापरतोऽसङ्ख्येयान् द्वीपसमुद्रान् गत्वा ततोऽन्यस्मिन् सदृशनाम्नि द्वीपे भवन्ति, अन्त्यानिमान् पञ्च द्वीपान् मुक्त्वा देवनागयक्षभूतस्वयम्भूरमणाख्यान्, न तेषु चन्द्रादित्यानां राजधान्योऽन्यस्मिन् द्वीपे, अपि तु स्वस्मिन्नेव पूर्वापरतो वेदिकान्तादसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यवगाह्य भवन्तीति," इह बहुधा सूत्रेषु पाठभेदाः परमेतावानेव सर्वत्राप्यर्थोऽनर्थभेदान्तरमित्येतद्ख्याख्यानुसारेण सर्वेऽप्यनुगन्तव्या न मोग्धव्यमिति ॥ **'अत्थि णं भंते!'** इत्यादि, सन्ति भदन्त! लवणसमुद्रे वेलन्धरा इति वा नागराजाः, अग्घा इति वा खन्ना इति वा सीहा इति वा जाइ इति वा ?, अग्घादयो मत्स्यकच्छपविशेषाः, आह च चूर्णिकृत्—"अग्घा खन्ना सीहा विजाइं इति मच्छकच्छभा" इति, ह्रस्वबृद्धी जलस्येति गम्यते इति, भगवानाह—गौतम सन्ति। 'जहा णं भंते! लवणसमुद्दे वेलंधरा इति वा' इत्यादि पाठसिद्धम् ॥ **'लवणे णं भंते!'** इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः किमुच्छ्रितोदकः प्रस्तटोदकः—प्रस्तटाकारतया स्थितमुदकं यस्य स तथा, सर्वतः समोदक इति भावः, क्षुभितं जलं यस्य स क्षुभितजलस्तत्प्रतिषेधादक्षुभितजलः ?, भगवानाह—गौतम! उच्छ्रितोदको न प्रस्तटोदकः क्षुभितजलो नाक्षुभितजलः ॥ **'जहा णं भंते!'** इत्यादि, यथा भदन्त! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक इत्यादि तथा बाह्या अपि समुद्राः किमुच्छ्रितोदकाः प्रस्तटोदकाः क्षुभितजला अक्षुभितजलाः?, भगवानाह—गौतम! बाह्याः समुद्रा न उच्छ्रितोदकाः किन्तु प्रस्तटोदकाः सर्वत्र समोदकत्वात्, तथा न क्षुभितजलाः किन्त्वक्षुभितजलाः क्षोभहेतुपातालकलशाद्यभावात्, किन्तु ते पूर्णाः, तत्र किञ्चिद्धीनमपि व्यवहारतः पूर्णं भवति तत आह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

पूर्णप्रमाणाः स्वप्रमाणं यावज्जलेन पूर्णा इति भावः, 'वोसट्टमाणा' परिपूर्णभूततया उद्धुठन्त इवेति भावः, 'वोलट्टमाणा' इति विशेषेण उद्धुठन्त इवेत्यर्थः 'समभरघडत्ताए चिट्ठंति' इति समं–परिपूर्णो भरो–भरणं यस्य स समभरः परिपूर्णभृत इत्यर्थः स चासौ घटश्च समभरघटस्तद्भावस्तत्ता तया समभृतघट इव तिष्ठन्तीति भावः ॥ 'अत्थि णं भंते!' इत्यादि, अस्त्येतद् भदन्त! लवणसमुद्रे 'ओराला बलाहका' उदारा मेघाः 'संस्विद्यन्ते' संमूर्च्छनाभिमुखीभवन्ति, तदनन्तरं संमूर्छन्ति, ततो 'वर्षं' पानीयं वर्षन्ति?, भगवानाह–हन्त! अस्ति ॥ 'जहा णं भंते! लवणसमुद्दे' इत्यादि प्रतीतम् ॥ 'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते बाह्याः समुद्राः पूर्णाः पूर्णप्रमाणाः? इत्यादि प्राग्वत्, भगवानाह–गौतम! बाह्येषु समुद्रेषु बहव उदकयोनिका जीवाः पुद्गलाश्चोदकतया 'अपक्रामन्ति' गच्छन्ति 'व्युत्क्रामन्ति' उत्पद्यन्ते, एके गच्छन्त्यन्ये उत्पद्यन्त इति भावः, तथा 'चीयन्ते' चयमुपगच्छन्ति 'उपचीयन्ते' उपचयमायान्ति, एतच्च पुद्गलान् प्रति द्रष्टव्यं, पुद्गलानामेव चयोपचयार्थप्रसिद्धेः, 'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं प्रतीतं ॥ सम्प्रत्युद्वेधपरिवृद्धिं चिचिन्तयिषुरिदमाह—

लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं उव्वेहपरिवुड्ढीते पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओपासिं पंचाणउति २ पदेसे गंता पदेसं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते, पंचाणउति २ वालग्गाइं गंता वालग्गं उव्वेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते, प० लिक्खाओ गंता लिक्खा उव्वेहपरि० पंचाणउइ जवाओ जवमज्झे अंगुलविहत्थिरयणीकुच्छी धणु [उव्वेहपरिवुड्ढीए] गाउयजोयणजोयणसतजोयणसहस्साइं गंता जोयणसहस्सं उव्वेहपरिवुड्ढीए ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७०]

दीप अनुक्रम [२२०]

श्रीजीवा-जीवाभि० मलयगि-रीयावृत्तिः

॥ ३२२ ॥

गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओपासिं पंचाणउतिं पदेसे गंता सोलसपएसे उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स एएणेव कमेणं जाव पंचाणउतिं २ जोयणसहस्साइं गंता सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेधपरिवुड्ढिए पण्णत्ते ॥ (सू० १७०)

'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः 'कियत्' कियन्ति योजनानि यावद् उद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तः?, किमुक्तं भवति?—जम्बूद्वीपवेदिकान्तालवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्योभयतोऽपि लवणसमुद्रस्य कियन्ति योजनानि यावन् मात्रया मात्रया उद्वेध-परिवृद्धिरिति, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रे उभयोः पार्श्वयोर्जम्बूद्वीपवेदिकान्तालवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्येत्यर्थः पञ्चनवतिप्रदेशान् गत्वा प्रदेश उद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तः, इह प्रदेशश्चसरेण्वादिरूपो द्रष्टव्यः, पञ्चनवतिं बालाग्राणि गत्वैकं बालाग्रमुद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तं, एवं लिक्षायवमध्याङ्गुलवितस्तिरत्निकुक्षिधनुर्गव्यूतयोजनयोजनशतसूत्राण्यपि भावनीयानि, पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि गत्वा योजनसहस्रमुद्वेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्तं, त्रैराशिकभावना चैवं योजनादिषु द्रष्टव्या, इहोभयतोऽपि पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्ते योजन-सहस्रमवगाहेन दृष्टं ततस्त्रैराशिककर्म्मावतारः, यदि पञ्चनवतिसहस्रपर्यन्ते योजनसहस्रमवगाहस्ततः पञ्चनवतियोजनपर्यन्ते कोऽवगाहः?, राशित्रयस्थापना—९५०००।१०००।९५। अत्रादिमध्ययोो राश्योः शून्यत्रयस्यापवर्त्तना ९५।१।९५, ततो मध्यस्य राशेरेकरूपस्य अन्त्येन पञ्चनवतिलक्षणेन राशिना गुणनात् जाता पञ्चनवतिः, तत्राद्येन राशिना पञ्चनवतिलक्षणेन विभज्यते लब्धमेकं योजनं, उक्तञ्च—"पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओवि । जोयणसहस्समेगं लवणे ओगाहओ होइ ॥ १ ॥ पंचाणउईण वगे (लवणे) गंतूणं जोयणाणि उभओवि । जोयणमेगं लवणे ओगाहेणं मुणेयव्वा ॥ १ ॥" पञ्चनवतियोजनपर्यन्ते च यद्येकं यो-

३ प्रतिपत्तौ लवणे उ-द्वेधोत्सेधौ उद्देशः २ सू० १७०

॥ ३२२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जनमवगाहस्ततोऽर्धात्पञ्चनवतिगव्यूतपर्यन्ते एकं गव्यूतं पञ्चनवतिधनु:पर्यन्ते एकं धनुरित्यादि लब्धम् ॥ सम्प्रत्युत्सेधमधिकृत्याह— 'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्र: 'कियत्' कियन्ति योजनानि उत्सेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्त:?, एतदुक्तं भवति—जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्योभयतोऽपि लवणसमुद्रस्य कियत्या कियत्या मात्रया कियन्ति योजनानि यावदुत्सेधपरिवृद्धि:?, भगवानाह—गौतम! 'लवणस्स णं समुद्दस्से'त्यादि, इह निश्चयतो लवणसमुद्रस्य जम्बूद्वीपवेदिकातो लवणसमुद्रवेदिकातश्च समतले भूभागे प्रथमतो जलवृद्धिरङ्गुलसङ्ख्येयभाग:, समतलमेव भूभागमधिकृत्य प्रदेशवृद्ध्या जलवृद्धि: क्रमेण परिवर्द्धमाना तावद्वक्तव्या यावदुभयतोऽपि पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्ते सप्त शतानि, तत: परं मध्यदेशभागे दश-योजनसहस्रविस्तारे षोडश योजनसहस्राणि, इह तु षोडशयोजनसहस्रप्रमाणाया: शिखाया: शिरसि उभयोश्च वेदिकान्तयोर्मूले दवरिकायां दत्तायां यदपान्तराले किमपि जलरहितमाकाशं तदपि करणगत्या तदाभाव्यमिति स जलं विवक्षित्वाऽधिकृतमुच्यते— लवणस्य समुद्रस्योभयतो जम्बूद्वीपवेदिकान्ताल्लवणसमुद्रवेदिकान्ताच्च पञ्चनवतिं प्रदेशान् गत्वा षोडश प्रदेशा उत्सेधपरिवृद्धि: प्रज्ञप्ता, पञ्चनवतिं बालाग्राणि गत्वा षोडश बालाग्राणि, एवं यावत् पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि गत्वा षोडश योजनसहस्राणि, अत्रे-यं त्रैराशिकभावना—पञ्चनवतियोजनसहस्रातिक्रमे षोडश योजनसहस्राणि जलोत्सेधस्तत: पञ्चनवतियोजनातिक्रमे क उत्सेध:?, राशित्रयस्थापना—९५०००।१६०००।९५। अत्रादिमध्ययो राश्यो: शून्यत्रिकस्यापवर्त्तना ९५।१६।९५, ततो मध्यमराशे: षोडशल-क्षणस्यान्त्येन पञ्चनवतिलक्षणेन गुणने जातानि पञ्चदश शतानि विंशत्यधिकानि १५२०, एतामादिराशिना पञ्चनवतिलक्षणेन भागे हृते लब्धानि षोडश योजनानि, उक्तञ्च—"पंचाणउइसहस्से गंतूणं जोयणाणि उभओवि । उस्सेहेणं लवणो सोलससाहस्सिओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७०]

दीप अनुक्रम [२२०]

भणिओ ॥ १ ॥ पंचाणउई लवणे गंतूणं जोयणाणि उभओवि । उस्सेहेणं लवणो सोलस किल जोयणे होइ ॥ २ ॥" तत्र यदि पञ्चनवतियोजनपर्यन्ते षोडशयोजनावगाहस्ततोऽर्वाङ्भ्यते पञ्चनवतिगव्यूतपर्यन्ते षोडश गव्यूतानि पञ्चनवतिधनुःपर्यन्ते षोडश धनूंषीत्यादि ॥ सम्प्रति गोतीर्थप्रतिपादनार्थमाह—

लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थे पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स उभओपासिं पंचाणउतिं २ जोयणसहस्साइं गोतित्थं पण्णत्तं ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ॥ लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स केमहालए उदगमाले पण्णत्ते?, गोयमा! दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते ॥ (सू० १७१)

'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य 'किंमहत्' किंप्रमाणमहत्त्वं गोतीर्थं प्रज्ञप्तं?, गोतीर्थमिव गोतीर्थं—क्रमेण नीचो नीचतरः प्रवेशमार्गः, भगवानाह—गौतम! लवणस्य समुद्रस्योभयोः पार्श्वयोर्जम्बूद्वीपवेदिकान्तालवणसमुद्रवेदिकान्ताच्चारभ्येत्यर्थः पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि यावद् गोतीर्थं प्रज्ञप्तम्, उक्तञ्च—"पंचाणउइसहस्से गोतित्थं उभयतोवि लवणस्सा" इति ॥ 'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त! समुद्रस्य 'किंमहत्' किंप्रमाणमहत्त्वं गोतीर्थविरहितं क्षेत्रं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! लवणस्य समुद्रस्य दश योजनसहस्राणि गोतीर्थविरहितं क्षेत्रं प्रज्ञप्तम् ॥ 'लवणस्स णं भंते!' इत्यादि, लवणस्य भदन्त!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

समुद्रस्य 'किंमहती' विस्तारमधिकृत्य किंप्रमाणमहत्त्वा उदकमाला—समपानीयोपरिभूता षोडशयोजनसहस्रोच्छ्रया प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! दश योजनसहस्राणि उदकमाला प्रज्ञप्ता ॥

लवणे णं भंते! समुद्दे किंसंठिए पण्णत्ते?, गोयमा! गोतित्थसंठिते नावासंठाणसंठिते सिप्पिसंपुडसंठिए आसखंधसंठिते वलभिसंठिते वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते पण्णत्ते ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं? केवतियं परिक्खेवेणं? केवतियं उव्वेहेणं? केवतियं उस्सेहेणं? केवतियं सव्वग्गेणं पण्णत्ते?, गोयमा! लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसतसहस्साइं एक्कासीतिं च सहस्साइं सतं च इगुयालं किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्तं ॥ (सूत्रं १७२) जइ णं भंते! लवणसमुद्दे दो जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णरस जोयणसतसहस्साइं एक्कासीतिं च सहस्साइं सतं इगुयालं किंचि विसेसूणा परिक्खेवेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहेणं सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते। कम्हा णं भंते! लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं २ नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एक्कोदगं करेंति?, गोयमा! जंबुद्दीवे णं दीवे भरहेरवएसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टिबलदेवा वासुदेवा चारणा विज्जाधरा समणा समणीओ सावया सावियाओ मणुया एगध-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च पगतिभद्दगा पगतिविणीया पगतिउवसंता पगतिपयणुकोहमाणमायालोभा मिउमद्दवसंपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीता, तेसि णं पणिहाणे लवणे णमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उब्बीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एगोदगं करेंति, गंगासिंधुरत्तारत्तवईसु सलिलासु देवया महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तेसिं पणिहाणे लवणसमुद्दे जाव नो चेव णं एगोदगं करेंति, चुल्लहिमवंतसिहरेसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया तेसि णं पणिहाए०, हेमवतेरण्णवतेसु वासेसु मणुया पगतिभद्दगा०, रोहितंसासुवण्णकूलरुप्पकूलासु सलिलासु देवयाओ महिड्ढियाओ तासिं पणि०, सद्दावतिवियडावति वट्टवेयड्ढपव्वतेसु देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिव०, महाहिमवंतरुप्पिसु वासहरपव्वतेसु देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया, हरिवासरम्मयवासेसु मणुया पगतिभद्दगा गंधावतिमालवंतपरियाएसु वट्टवेयड्ढपव्वतेसु देवा महिड्ढीया, णिसढनीलवंतेसु वासधरपव्वतेसु देवा महिड्ढीया०, सव्वाओ दहदेवयाओ भाणियव्वा, पउमद्दहतिगिच्छिकेसरिदहावसाणेसु देवा महिड्ढीयाओ तासिं पणिहाए०, पुव्वविदेहावरविदेहेसु वासेसु अरहंतचक्कवट्टिबलदेववासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावगा साविगाओ मणुया पगति० तेसिं पणिहाए लवण०, सीयासीतोदगासु सलिलासु देवता महिड्ढीया०, देवकुरुउत्तरकुरुसु मणुया पगतिभद्दगा०, मंदरे पव्वते देवता महिड्ढीया०, जंबूए य सुदंसणाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जंबूदीवाहिवती अणाढिए णामं देवे महिड्ढीए जाव पलिओवमठितीए परिवसति तस्स पणिहाए लवणसमुद्दे नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णं एकोदगं करेति, अट्ठुत्तरं च णं गोयमा! लोगट्ठिती लोगाणुभावे जण्णं लवणसमुद्दे जंबुद्दीवं दीवं नो उवीलेति नो उप्पीलेति नो चेव णमेगोदगं करेति ॥ (सू० १७३)

'लवणे णं भंते!' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः किंसंस्थितः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! गोतीर्थसंस्थानसंस्थितः क्रमेण नीचैर्नीचैस्तरामुद्वेधस्य भावात्, नावासंस्थितः वृध्नादूर्द्धं नाव इव उभयोरपि पार्श्वयोः समतलं भूभागमपेक्ष्य क्रमेण जलवृद्धिसम्भवेन उन्नताकारत्वात्, 'सिप्पसंपुडसंठिते' इति शुक्तिकासंपुटसंस्थानसंस्थितः, उद्वेधजलस्य जलवृद्धिजलस्य चैकत्रमीलनचिन्तायां शुक्तिकासंपुटाकारसादृश्यसम्भवात्, 'अश्वस्कन्धसंस्थितः' उभयोरपि पार्श्वयोः पञ्चनवतियोजनसहस्रपर्यन्तेऽश्वस्कन्धस्येवोन्नततया षोडशयोजनसहस्रप्रमाणोच्चैस्त्वयोः शिखायाः भावात्, 'वलभीसंस्थितः' वलभीगृहसंस्थानसंस्थितः दशयोजनसहस्रप्रमाणविस्तारायाः शिखायाः वलभीगृहाकाररूपतया प्रतिभासनात्, तथा वृत्तो लवणसमुद्रो वलयाकारसंस्थितः, चक्रवालतया तस्यावस्थानात् ॥ सम्प्रति विष्कम्भादिपरिमाणमेककालं पिपृच्छिषुराह—'लवणे णं भंते! समुद्दे' इत्यादि, लवणो भदन्त! समुद्रः कियच्चक्रवालविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण कियदुद्वेधेन—उण्डत्वेन कियदुत्सेधेन कियत्सर्वाग्रेण—उत्सेधोद्वेधपरिमाणसामस्त्येन प्रज्ञप्तः?, भगवानाह—गौतम! लवणसमुद्रो द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन प्रज्ञप्तः, पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतं चैकोनचत्वारिंशं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन, षोडश योजनसहस्राण्युत्सेधेन, सप्तदश योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण—उत्सेधो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

द्वेधमीलनचिन्तायां । इह लवणसमुद्रस्य पूर्वाचार्यैर्घनप्रतरगणितभावनाऽपि कृता सा विनेयजनानुग्रहाय दर्श्यते, तत्र प्रतरभावना क्रियते, प्रतरानयनार्थं चेदं करणं–लवणसमुद्रसत्कविस्तारपरिमाणाद् द्विलक्षयोजनरूपाद् दश योजनसहस्राणि शोध्यन्ते, तेषु च शोधितेषु यच्छेषं तस्यार्द्धं क्रियते, जातानि पञ्चनवतिः सहस्राणि, यानि च प्राक् शोधितानि दश सहस्राणि तानि च तत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातं पञ्चोत्तरं लक्षं १०५०००, एतच्च कोटीति व्यवह्रियते, अनया च कोट्या लवणसमुद्रस्य मध्यभागवर्त्ती परिरयो नव लक्षा अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि षट् शतानि व्यशीत्यधिकानि ९४८६८३ इत्येवंपरिमाणो गुण्यते, ततः प्रतरपरिमाणं भवति, तच्चेदं–नवनवतिः कोटिशतानि एकषष्टिः कोटयः सप्तदश लक्षाः पञ्चदश सहस्राणि ९९६११७१५०००, उक्तञ्च—"वित्थाराओ सोहिय दससहस्साइं सेसअद्धंमि । तं चेव पक्खिवित्ता लवणसमुद्दस्स सा कोडी ॥ १ ॥ लक्खं पंचसहस्सा कोडीए तीऍ संगुणेऊणं । लवणस्स मज्झपरिही ताहे पयरं इमं होइ ॥ २ ॥ नवनउई कोडिसया एगट्ठी कोडि लक्ख सत्तरसा । पन्नरस सहस्साणि य पयरं लवणस्स निद्दिट्ठं ॥ ३ ॥" घनगणितभावना त्वेवं–इह लवणसमुद्रस्य शिखा षोडश सहस्राणि योजनसहस्रमुद्वेधः सर्वसङ्ख्यया सप्तदश सहस्राणि, तैः प्राक्तनं प्रतरपरिमाणं गुण्यते, ततो घनगुणितं भवति, तच्चेदं–षोडश कोटीकोटयस्त्रिनवतिः कोटिशतसहस्राणि एकोनचत्वारिंशत् कोटिसहस्राणि नव कोटिशतानि पञ्चदशकोट्यधिकानि पञ्चाशल्लक्षाणि योजनानामिति १६९३३९९१५५०००००००, उक्तञ्च—"जोयणसहस्ससोलस लवणसिहा अहोगया सहस्समेगं । पयरं सत्तरसहस्ससंगुणं लवणघणगणियं ॥ १ ॥ सोलस कोडाकोडी तेणउई कोडिसयसहस्साओ । उणयालीससहस्सा नवकोडिसया य पन्नरसा ॥ २ ॥ पन्नास सयसहस्सा जोयणाणं भवे अणूणाइं । लवणसमुद्दस्सेयं जोयणसंखाऍ घणगणियं ॥ ३ ॥" आह–कथमेतावत्प्रमाणं लवणसमुद्रस्य घनगणितं भवति ?, न हि सर्वत्र तस्य सप्तदशयो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जनसहस्रप्रमाण उच्छ्रयः, किन्तु मध्यभाग एव दशसहस्रप्रमाणविस्तारस्ततः कथं यथोक्तं घनगणितमुपपद्यते? इति, सत्यमेतत्, केवलं लवणशिखायाः शिरसि उभयोश्च वेदिकान्तयोरुपरि दवरिकायामेकान्तऋजुरूपायां दीयमानायां २ यदपान्तराले जलशून्यं क्षेत्रं तदपि करणगत्या तदाभाव्यमिति सजलं विवक्ष्यते, अत्रार्थे च दृष्टान्तो मन्दरपर्वतः, तथाहि—मन्दरपर्वतस्य सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिरुपवर्ण्यते, अथ च न सर्वत्रैकादशभागपरिहाणिः, किन्तु कापि कियती, केवलं मूलादारभ्य शिखरं यावद्दवरिकायां दत्तायां यदपान्तराले कापि कियदाकाशं तत्सर्वं करणगत्या मेरोराभाव्यमिति मेरुतया परिकल्प्य गणितज्ञाः सर्वत्रैकादशपरिभागहानिं परिवर्णयन्ति, तद्वदिदमपि यथोक्तं घनपरिमाणमिति, न चैतत्स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत आह **जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणो विशेषणवत्यामेतद्विचारप्रक्रमे**—"एवं उभयवेइयंताओ सोलसहस्सुस्सेहस्स कन्नगईए जं लवणसमुद्दाभव्वं जलमुन्नंपि खेत्तं तस्स गणियं, जहा मंदरपव्वयस्स एक्कारसभागपरिहाणी कन्नगईए आगासस्सवि तदाभव्वंतिकाउं भणिया तहा लवणसमुद्दस्सवि ॥" इति ॥ **'जइ णं भंते!'** इत्यादि, यदि भदन्त! लवणसमुद्रो द्वे योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेन पञ्चदश योजनशतसहस्राणि एकाशीतिः सहस्राणि शतं चैकोनचत्वारिंशं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन षोडश योजनसहस्राण्युत्सेधेन सप्तदश योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तः॥ तर्हि **'कम्हा णं भंते!'** इत्यादि, कस्माद् भदन्त! लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं न **'अवपीडयति'** जलेन प्लावयति, न **'उत्पीडयति'** प्राबल्येन बाधते, नापि णमिति वाक्यालङ्कृतौ **'एकोदकं'** सर्वात्मनोदकप्लावितं करोति?, भगवानाह—गौतम! जम्बूद्वीपे भरतैरावतयोः क्षेत्रयोरर्हन्तश्चक्रवर्त्तिनो बलदेवा वासुदेवाः **'चारणाः'** जङ्घाचारणमुनयो विद्याधराः **'श्रमणाः'** साधवः **'श्रमण्यः'** संयत्यः श्रावकाः श्राविकाः, एतत् सुषमदुष्षमादिकमरकत्रयमपेक्ष्योक्तं वेदितव्यं, तत्रैवार्हदादीनां यथायोगं सम्भ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

वान्, सुषमसुषमादिकमधिकृत्याह—मनुष्याः प्रकृतिभद्रकाः प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः मृदुमार्दवसंपन्ना आलीना भद्रका विनीताः, एतेषां व्याख्यानं प्राग्वत्, तेषां **'प्रणिधया'** प्रणिधानं प्रणिधा. 'उपसर्गादात' इत्यङ्प्रत्ययः, तान् 'प्रणिधाय' अपेक्ष्य तेषां प्रभावत इत्यर्थः, लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं नावपीडयतीत्यादि, दुष्षमदुष्षमादावपि नावपीडयति, भरतवैताढ्याद्यधिपतिदेवताप्रभावात्, तथा क्षुल्लहिमवच्छिखरिणोर्वर्षधरपर्वतयोर्देवता महर्द्धिका यावत्करणान्महाद्युतिका इत्यादिपरिग्रहः परिवसन्ति तेषां **'प्रणिधया'** प्रभावेन लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं नावपीडयतीत्यादि । तथा हैमवतहैरण्यवतोर्वर्षयोर्मनुजाः प्रकृतिभद्रका यावद् विनीतास्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत्, तथा तयोरेव वर्षयोर्यौ यथाक्रमं शब्दापातिविकटापाती वृत्तवैताढ्यौ पर्वतौ तयोर्देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतस्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत् । तथा महाहिमवद्रुक्मिवर्षधरपर्वतयोर्देवता महर्द्धिका इत्यादि तथैव । तथा हरिवर्षरम्यकवर्षयोर्मनुजाः प्रकृतिभद्रका इत्यादि सर्वं हैमवतवत्, तथा तयोः क्षेत्रयोर्यथाक्रमं गन्धापातिमाल्यवत्पर्यायौ यौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ तयोर्देवौ महर्द्धिकावित्यादि पूर्ववत् । तथा पूर्वविदेहापरविदेहवर्षयोरर्हन्तश्चक्रवर्त्तिनो यावन्मनुजाः प्रकृतिभद्रका यावद् विनीतास्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत् । तथा देवकुरूत्तरकुरुषु मनुजाः प्रकृतिभद्रका यावद्विनीतास्तेषां प्रणिधयेत्यादि पूर्ववत् । तथा उत्तरकुरुषु कुरुषु जम्ब्वां सुदर्शनायामनादृतो नाम देवो जम्बूद्वीपाधिपतिः परिवसति तस्य **'प्रणिधया'** प्रभावेनेत्यादि तथैव । अथान्यद् गौतम! कारणं, तदेवाह—लोकस्थितिरेषा—लोकानुभाव एष यल्लवणसमुद्रो जम्बूद्वीपं द्वीपं जलेन नावपीडयतीत्यादि ॥ तृतीयप्रतिपत्तावेष मन्दरोद्देशकः समाप्तः ॥ तदेवमुक्ता लवणसमुद्रवक्तव्यता, सम्प्रति धातकीषण्डवक्तव्यतामाह—

लवणसमुद्दं धायइसंडे नाम दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

धातकीखण्डस्य अधिकार: आरभ्यते

णं चिट्ठंति, धायतिसंडे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिते?, गोयमा! समचक्कवालसंठिते नो विसमचक्कवालसंठिते ॥ धायइसंडे णं भंते! दीवे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! चत्तारि जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एगयालीसं जोयणसतसहस्साइं दससजोयणसहस्साइं णवएगट्ठे जोयणसते किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं वणसंडेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते दोण्हवि वण्णओ दीवसमिया परिक्खेवेणं ॥ धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, विजए वेजयंते जयंते अपराजिए ॥ कहि णं भंते! धायइसंडस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! धायइसंडपुरत्थिमपेरंते कालोयसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीताए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं धायइ० विजए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव पमाणं, रायहाणीओ अण्णंमि धायइसंडे दीवे, दीवस्स वत्तव्वया भाणियव्वा, एवं चत्तारिवि दारा भाणियव्वा ॥ धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य २ एस णं केवइयं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! दस जोयणसयसहस्साइं सत्तावीसं च जोयणसहस्साइं सत्तपणतीसे जोयणसए तिन्नि य कोसे दारस्स य २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥ धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स पदेसा कालोयगं समुद्दं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा ॥ ते णं भंते! किं धायइसंडे दीवे कालोए स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्दे?, ते धायइसंडे नो खलु ते कालोयसमुद्दे। एवं कालोयस्सवि। धायइसंडदीवे जीवा उद्दाइत्ता २ कालोए समुद्दे पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगतिया पच्चायंति अत्थेगतिया नो पच्चायंति। एवं कालोएवि अत्थे० प० अत्थेगतिया णो पच्चायंति ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—धायइसंडे दीवे २?, गोयमा! धायइसंडे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं २ पएसे धायइरुक्खा धायइवणा धायइसंडा णिच्चं कुसुमिया जाव उवसोभेमाणा २ चिट्ठंति, धायइमहाधायइरुक्खेसु सुदंसणपियदंसणा दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति से एएणट्ठेणं०, अदुत्तरं च णं गोयमा! जाव णिच्चे ॥ धायइसंडे णं भंते! दीवे कति चंदा पभासिंसु वा ३? कति सूरिया तविंसु वा ३? कइ महग्गहा चारं चरिंसु वा ३? कइ णक्खत्ता जोगं जोइंसु ३? कइ तारागणकोडाकोडीओ सोभेंसु वा ३?, गोयमा! बारस चंदा पभासिंसु वा ३, एवं—चउवीसं ससिरविणो णक्खत्त सता य तिन्नि छत्तीसा। एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे ॥ १ ॥ अट्ठेव सयसहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं। धायइसंडे दीवे तारागण कोडिकोडीणं ॥ २ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १७४)

'लवणसमुद्द'मित्यादि, लवणसमुद्रं धातकीषण्डो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्य तिष्ठति ॥ 'धायइसंडे णं दीवे किं समचक्कवालसंठिए' इति सूत्रं लवणसमुद्रवद्भावनीयम् ॥ 'धायइसंडे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

ण' मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! चत्वारि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन, एकचत्वारिंशत् योजनशतसहस्राणि दश सहस्राणि नव च एकषष्टानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण, उक्तञ्च—"एयालीसं लक्खा दस य सहस्साणि जोयणाणं तु। नव य सया एगट्ठा किंचूणा परिरओ तस्स ॥ ३ ॥" **'से ण'**मित्यादि, स धातकीखण्डो द्वीप एकया पद्मवरवेदिकया अष्टयोजनोच्छ्रयजगत्युपरिभाविन्येति सामर्थ्याद्गम्यते, एकेन वनषण्डेन पद्मवरवेदिकाबहिर्भूतेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः। द्वयोरपि वर्णकः प्राग्वत् ॥ **'धायइसंडस्स ण'**मित्यादि, धातकीषण्डस्य भदन्त! द्वीपस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! धातकीषण्डस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डस्य द्वीपस्य पूर्वपर्यन्ते कालोदसमुद्रपूर्वार्द्धस्य पश्चिमदिशि शीताया महानद्या उपरि **'अत्र'** एतस्मिन्नन्तरे धातकीषण्डस्य द्वीपस्य विजयनाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तच्च जम्बूद्वीपविजयद्वारवद्विशेषेण वेदितव्यं, नवरमत्र राजधानी अन्यस्मिन धातकीषण्डे द्वीपे वक्तव्या। **'कहि णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डद्वीपदक्षिणपर्यन्ते कालोदसमुद्रदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र धातकीषण्डस्य द्वीपस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपवैजयन्तद्वारवद्विशेषेण वक्तव्यं, नवरमत्रापि राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डद्वीपे॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं गतार्थं, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डद्वीपपश्चिमपर्यन्ते कालोदसमुद्रपश्चिमार्द्धस्य पूर्वतः शीतोदाया महानद्या उपर्यत्र धातकीषण्डस्य द्वीपस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपजयन्तद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! धातकीषण्डद्वीपोत्तरार्द्धपर्यन्ते कालोदसमुद्रदक्षिणार्द्धस्य दक्षिणतोऽत्र धातकीषण्डस्य द्वीपस्यापरा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७४] + गाथा: दीप अनुक्रम [२२४--२२७]

जितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपगतापराजितद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् धातकीषण्डे द्वीपे ॥ **'धायइसंडस्स णं भंते!'** इत्यादि, धातकीषण्डस्य भदन्त! द्वीपस्य द्वारस्य २ च परस्परमेतदन्तरं **'कियत्'** किंप्रमाणम् **'अबाधया'** अन्तरित्वा व्याघातेन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! दश योजनशतसहस्राणि सप्तविंशतियोंजनसहस्राणि सप्त शतानि पञ्चत्रिंशानि द्वारस्य २ परस्परमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि–एकैकस्य द्वारस्य सद्वारशाखस्य जम्बूद्वीपद्वारस्येव पृथुत्वं सार्द्धानि चत्वारि योजनानि, ततश्चतुर्णां द्वाराणामेकत्र पृथुत्वपरिमाणमीलने जातान्यष्टादश योजनानि, तान्यनन्तरोक्तात्परिरयमानात् ४११०५६१ शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु जातं शेषमिदम्–एकचत्वारिंशल्लक्षा दश सहस्राणि नव शतानि त्रिचत्वारिंशदधिकानि ४११०९४३, एतेषां चतुर्भिर्भागे हृते लब्धं यथोक्तं द्वाराणां परस्परमन्तरम्, उक्तञ्च–"पणतीसा सत्त सया सत्तावीसा सहस्स दस लक्खा। धायइसंडे दारंतरं तु अवरं च कोसतियं ॥ १ ॥" **'धायइसंडस्स णं भंते! दीवस्स पएसा'** इत्यादीनि चत्वारि सूत्राणि प्राग्वद्भावनीयानि ॥ **'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–धातकीषण्डो द्वीपो धातकीखण्डो द्वीपः? इति, भगवानाह–धातकीषण्डे द्वीपे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवो धातकीवृक्षा बहवो धातकीवनषण्डा बहूनि धातकीवनानि, वनषण्डयोः प्रतिविशेषः प्रागेवोक्तः, 'निचंकुसुमिया' इत्यादि प्राग्वत्, **'धायइमहाधायइरुक्खेसु एत्थ'**मित्यादि पूर्वार्द्धे उत्तरकुरुषु नीलवद्गिरिसमीपे धातकीनामवृक्षोऽवतिष्ठते, पश्चिमार्द्धे उत्तरकुरुषु नीलवद्गिरिसमीपे महाधातकीनामवृक्षोऽवतिष्ठते, तौ च प्रमाणादिना जम्बूवृक्षवद्वेदितव्यौ, तयोरत्र धातकीषण्डे द्वीपे यथाक्रमं सुदर्शनप्रियदर्शनौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, ततो धातकीषण्डोपलक्षितो द्वीपो धातकीषण्डद्वीपः, तथा चाह –**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि गतार्थं ॥ सम्प्रति चन्द्रादिवक्तव्यतामाह–**'धायइसंडे णं भंते! दीवे कति चंदा पभासिंसु'** इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते–द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! धातकीषण्डे द्वादश चन्द्राः प्रभासितवन्तः प्रभासन्ते प्रभासिष्यन्ते, द्वादश सूर्यास्तापितवन्तस्तापयन्ति तापयिष्यन्ति, त्रीणि नक्षत्रशतानि षट्त्रिंशानि योगं चन्द्रमसा सूर्येण च सार्द्धं युक्तवन्तो युञ्जन्ति योक्ष्यन्ति, तत्र त्रीणि षट्त्रिंशानि नक्षत्राणां शतानि, एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां भावात्, तथा एकं षट्पञ्चाशदधिकं महाग्रहसहस्रं चारं चरितवन्तश्चरन्ति चरिष्यन्ति, एकैकस्य शशिनः परिवारेऽष्राशीतेर्महाग्रहाणां भावात्, अष्टौ शतसहस्राणि त्रीणि सहस्राणि सप्त शतानि तारागणकोटीकोटीनां शोभितवन्तः शोभन्ते शोभयिष्यन्ते, एतदपि एकशशिनः तारापरिमाणं द्वादशभिर्गुणयित्वा भावनीयं, उक्तं च—"बारस चंदा सूरा नक्खत्तसया य तिन्नि छत्तीसा। एगं च गहसहस्सं छप्पन्नं धायईसंडे ॥ १ ॥ अट्ठेव सयसहस्सा तिन्नि सहस्सा य सत्त य सया उ। धायइसंडे दीवे तारागणकोडिकोडीओ ॥ २ ॥" सम्प्रति कालोदसमुद्रवक्तव्यतामाह—

धायइसंडं णं दीवं कालोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ, कालोदे णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिते विसम०?, गोयमा! समचक्कवाल० णो विसमचक्कवालसंठिते॥ कालोदे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं एक्काणउति जोयणसयसहस्साइं सत्तरि सहस्साइं छच्च पंचुत्तरे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेणं वणसंडेणं दोण्हवि वण्णओ॥ कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—विजए वेजयंते जयंते अपराजिए॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालोदसमुद्राधिकारः आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७५] + गाथा:

दीप अनुक्रम [२२८--२३४]

कहि णं भंते! कालोदस्स समुद्दस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! कालोदे समुद्दे पुरत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीतोदाए महाणदीए उप्पिं एत्थ णं कालोदस्स समुद्दस्स विजये णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठेव जोयणाइं तं चेव पमाणं जाव रायहाणीओ। कहि णं भंते! कालोयस्स समुद्दस्स वेजयंते णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! कालोयसमुद्दस्स दक्खिणपेरंते पुक्खरवरदीवस्स दक्खिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स वेजयंते नामं दारे पन्नत्ते। कहि णं भंते! कालोयसमुद्दस्स जयंते नामं दारे पन्नत्ते?, गोयमा! कालोयसमुद्दस्स पच्चत्थिमपेरंते पुक्खरवरदीवस्स पच्चत्थिमद्धस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणदीए उप्पिं जयंते नामं दारे पण्णत्ते। कहि णं भंते! अपराजिए नामं दारे पण्णत्ते? गोयमा! कालोयसमुद्दस्स उत्तरद्धपेरंते पुक्खरवरदीवोत्तरद्धस्स दाहिणओ एत्थ णं कालोयसमुद्दस्स अपराजिए णामं दारे०, सेसं तं चेव॥ कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं २ अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा!—बावीस सयसहस्सा बाणउति खलु भवे सहस्साइं। छच्च सया बायाला दारंतर तिन्नि कोसा य॥ १॥ दारस्स य २ आबाहाए अंतरे पण्णत्ते। कालोदस्स णं भंते! समुद्दस्स एएसा पुक्खरवरदीव० तहेव, एवं पुक्खरवरदीवस्सवि जीवा उद्दाइत्ता २ तहेव भाणियव्वं॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति कालोए समुद्दे २?, गोयमा! कालोयस्स णं समुद्दस्स उदके आसले मासले पेसले कालए मासरा-

॥ ३२९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

सिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते, कालमहाकाला एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चे ॥ कालोए णं भंते! समुद्दे कति चंदा पभासिंसु वा ३? पुच्छा, गोयमा! कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा पभासेंसु वा ३— बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता। कालोदधिम्मि एते चरंति संबद्धलेसागा ॥ १ ॥ णक्खत्ताण सहस्सं एगं बावत्तरं च सतमण्णं। छच्च सता छण्णउया महागहा तिण्णि य सहस्सा ॥ २ ॥ अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सयसहस्साइं। नव य सया पन्नासा तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १७५)

'धायइसंडे णं दीव'मित्यादि, धातकीषण्डं णमिति पूर्ववत् द्वीपं कालोदसमुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थितः सर्वतः समन्तात् 'संपरिक्षिप्य' वेष्टयित्वा तिष्ठति ॥ 'कालोए णं समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए' इत्यादि प्राग्वत् ॥ 'कालोए णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अष्टौ योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन एकनवतिः योजनशतसहस्राणि सप्ततिः सहस्राणि षट् शतानि पञ्चोत्तराणि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण, एकं च योजनसहस्रमुद्वेधेनेति गम्यते, उक्तञ्च—"अट्ठेव सयसहस्सा कालोओ चक्कवालओ रुंदो। जोयणसहस्समेगं ओगाहेणं मुणेयव्वो ॥ १ ॥ इगनउइ सयसहस्सा हवंति तह सत्तरी सहस्सा य। छच्च सया पंचहिया कालोयहिपरिरओ एसो ॥ २ ॥" 'से णं एगाए' इत्यादि, स कालोदसमुद्र एकया पद्मवरवेदिकयाऽष्टयोजनोच्छ्रयया जगत्युपरिभाविन्येति गम्यते, एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि वर्णकः प्रा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वत् ॥ 'कालोयस्स णं भंते!' इत्यादि, कालोदस्य समुद्रस्य भदन्त! कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ क भदन्त! कालोदसमुद्रस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, गौतम! कालोदसमुद्रस्य पूर्वपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वार्द्धस्य पश्चिमदिशि शीतोदाया महानद्या उपर्यत्र कालोदस्य समुद्रस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एवं विजयद्वारवक्तव्यता पूर्वानुसारेण वक्तव्या, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदे समुद्रे । वैजयन्तद्वारप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! कालोदसमुद्रदक्षिणपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र कालोदसमुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एवं जम्बूद्वीपगतवैजयन्तद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदे समुद्रे । जयन्तद्वारप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! कालोदसमुद्रपश्चिमपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपपश्चिमार्द्धस्य पूर्वतः शीताया महानद्या उपर्यत्र कालोदसमुद्रस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, एतदपि जम्बूद्वीपगतजयन्तद्वारवत्, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदे समुद्रे । अपराजितद्वारप्रश्नसूत्रमपि सुगमं, भगवानाह–गौतम! कालोदसमुद्रोत्तरार्द्धपर्यन्ते पुष्करवरद्वीपोत्तरार्द्धस्य दक्षिणतोऽत्र कालोदसमुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपगतापराजितद्वारवत् नवरं राजधानी अन्यस्मिन् कालोदसमुद्रे ॥ सम्प्रति द्वाराणां परस्परमन्तरं प्रतिपिपादयिषुराह—'कालोयस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! द्वाविंशतियोंजनशतसहस्राणि द्विनवतिः सहस्राणि षड् योजनशतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि त्रयश्च क्रोशा द्वारस्य द्वारस्य परस्परमबाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तं, तथाहि–चतुर्णामपि द्वाराणामेकत्र पृथुत्वमीलनेऽष्टादश योजनानि कालोदसमुद्रपरिरयपरिमाणाद् ९१७०६०५ इत्येवंरूपात् शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु जातमिदम्–एकनवतिर्लक्षाः सप्ततिः सहस्राणि पञ्च शतानि सप्ताशीत्यधिकानि ९१७०५८७ च, तेषां चतुर्भिर्भागे हृते लब्धं यथोक्तं द्वाराणां परस्परमन्तरपरिमाणं २२९२६४६ क्रोशः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

३, उक्तञ्च—"छायाला छच्च सया बाणउय सहस्स लक्ख बावीसं । कोसा य तिन्नि दारंतरं तु कालोयहिस्स भवे ॥ १ ॥" 'कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स पएसा' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं पूर्ववद्भावनीयम् ॥ नामान्वर्थमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते कालोदः समुद्रः कालोदः समुद्रः? इति, भगवानाह—गौतम! कालोदस्य समुद्रस्योदकं 'आसलम्' आस्वाद्यम् उदकरसत्वात् मांसलं गुरुधर्मकत्वात् पेशलं आस्वादमनोज्ञत्वात् 'कालं' कृष्णम्, एतदेवोपमया प्रतिपादयति—माषराशिवर्णाभं, उक्तञ्च—"पगईए उदगरसं कालोए उदग मासरासिनिभं" इति, ततः कालमुदकं यस्यासौ कालोदः, तथा कालमहाकालौ च तत्र द्वौ देवौ पूर्वार्द्धपश्चिमार्द्धाधिपती महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तत्र कालयोरुदकं यस्मिन् स कालोदः, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि सूत्रं पाठसिद्धं । एवंरूपं च चन्द्रादीनां परिमाणमन्यत्राप्युक्तम्—"बायालीसं चंदा बायालीसं च दिणयरा दित्ता । कालोयहिम्मि एए चरंति संबद्धलेसागा ॥ १ ॥ नक्खत्ताण सहस्सा सयं च बावत्तरं मुणेयव्वं । छच्च सया छन्नउया गहाण तिन्नेव य सहस्सा ॥ २ ॥ अट्ठावीसं कालोयहिम्मि बारस य सयसहस्साइं । नव य सया पन्नासा तारागणकोडीकोडीणं ॥[1] ३ ॥" सम्प्रति पुष्करवरद्वीपवक्तव्यतामाह—

कालोयं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते सव्वतो समंता संपरि० तहेव जाव समचक्कवालसंठाणसंठिते नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए । पुक्खरवरे णं भंते! दीवे

१ अत्र यद्यपि सूत्रादर्शेषु गाथात्रिकं दृश्यते इदमेव, परं वृत्तिकारादर्शेषु न संमान्यते सूत्ररूपतया सत्ताऽस्य परिमाणस्येत्युदितं 'अन्यत्राप्युक्त'मिति, अग्रेऽप्यनेकत्रैवं.

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

पुष्करवरद्वीप-अधिकार: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७६] + गाथा: दीप अनुक्रम [२३५--२४९]

केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! सोलस जोयणसतसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं—'एगा जोयणकोडी बाणउतिं खलु भवे सयसहस्सा। अउणाणउतिं अट्ठ सया चउणउया य [परिरओ] पुक्खरवरस्स ॥ १ ॥ से णं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण य वणसंडेण संपरि० दोण्हवि वण्णओ ॥ पुक्खरवरस्स णं भंते! कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, तंजहा—विजए वेजयंते जयंते अपराजिते ॥ कहि णं भंते! पुक्खरवरस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते?, गोयमा! पुक्खरवरदीवपुरच्छिमपेरंते पुक्खरोदसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खरवरदीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते तं चेव सव्वं, एवं चत्तारिवि दारा, सीयासीओदा णत्थि भाणितव्वाओ ॥ पुक्खरवरस्स णं भंते! दीवस्स दारस्स य २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा!—'अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं। अगुणुत्तरा य चउरो दारंतर पुक्खरवरस्स ॥ १ ॥ पदेसा दोण्हवि पुट्ठा, जीवा दोसु भाणियव्वा ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति पुक्खरवरदीवे २?, गो०! पुक्खरवरे णं दीवे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे पउमरुक्खा पउमवणसंडा णिच्चं कुसुमिता जाव चिट्ठंति, पउममहापउमरुक्खे एत्थ णं पउमपुंडरीया णामं दुवे देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति पुक्खरवरदीवे २ जाव निच्चे ॥ पुक्खरवरे णं

॥ ३३१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

भंते! दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३?, एवं पुच्छा,—चोयालं चंदसयं चउयालं चेव सूरियाण सयं। पुक्खरवरदीवंमि चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥ चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं चेव होंति णक्खत्ता। छच्च सया बावत्तर महग्गहा बारह सहस्सा ॥ २ ॥ छण्णउइ सयसहस्सा चत्तालीसं भवे सहस्साइं। चत्तारि सया पुक्खर [वर] तारागणकोडकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ पुक्खरवरदीवस्स णं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं माणुसुत्तरे नामं पव्वते पण्णत्ते वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जे णं पुक्खरवरं दीवं दुहा विभयमाणे २ चिट्ठंति, तंजहा—अब्भिंतरपुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च ॥ अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवतियं चक्कवालेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं—कोडी बायालीसा तीसं दोण्णि य सया अगुणवण्णा। पुक्खरअद्धपरिरओ एवं च मणुस्सखेत्तस्स ॥ १ ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति अब्भिंतरपुक्खरद्धे य २?, गोयमा! अब्भिंतरपुक्खरद्धेणं माणुसुत्तरेणं पव्वतेणं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते, से एएणट्ठेणं गोयमा! अब्भिंतरपुक्खरद्धे य २, अदुत्तरं च णं जाव णिच्चे ॥ अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! केवतिया चंदा पभासिंसु वा ३ साचेव पुच्छा जाव तारागणकोडकोडीओ?, गोयमा!—बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणकरा दित्ता। पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥ तिन्नि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु। णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइ दुवे सह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्साइं ॥ २ ॥ अडयाल सयसहस्सा बावीसं खलु भवे सहस्साइं । दोन्नि सया पुक्खरद्धे तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १७६)

'कालोयं णं समुद्द'मित्यादि, कालोदं णमिति वाक्यालङ्कारे समुद्रं पुष्करवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति । 'पुक्खरवरे णं दीवे किं समचक्कवालसंठिए' इत्यादि प्राग्वत् ॥ विष्कम्भादिप्रतिपादनार्थमाह—'पुक्खरवरे णं भंते! दीवे' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! षोडश योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन एका योजनकोटी द्विनवतिः शतसहस्राणि एकोननवतिः सहस्राणि अष्टौ शतानि चतुर्नवतानि ९४ योजनानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः ॥ 'से ण'मित्यादि, स पुष्करवरद्वीप एकया पद्मवरवेदिकयाऽष्टयोजनोच्छ्रयया जगत्युपरिभाविन्येति गम्यते, एकेन वनषण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि वर्णकः पूर्ववत् ॥ अधुना द्वारवक्तव्यतामाह—'पुक्खरवरस्स ण'मित्यादि, पुष्करवरद्वीपस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च ॥ 'कहि णं भंते!' इत्यादि, क्व भदन्त! पुष्करवरद्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं?, भगवानाह—गौतम! पुष्करवरद्वीपपूर्वार्द्धपर्यन्ते पुष्करोदस्य समुद्रस्य पश्चिमदिशि अत्र पुष्करवरद्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तत्र जम्बूद्वीपविजयद्वारवदविशेषेण वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे वक्तव्या । एवं वैजयन्तादिसूत्राण्यपि भावनीयानि, सर्वत्र राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करवरद्वीपे ॥ सम्प्रति द्वाराणां परस्परमन्तरमाह—'पुक्खरवरदीवस्स ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अष्टचत्वारिंशद् योजनशतसहस्राणि द्वाविंशतिर्योजनसहस्राणि चत्वारि योजनशतानि एकोनसप्ततानि द्वारस्य द्वारस्य च परस्परमबाधयाऽन्तरपरिमाणं, चतुर्णामपि द्वाराणामेकत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

पृथुत्वमीलनेऽष्टादश योजनानि, तानि पुष्करवरद्वीपपरिमाणाद् १९२८९८९४ इत्येवंरूपात् शोध्यन्ते, शोधितेषु च तेषु जातमिदम्–एका योजनकोटी द्विनवतिः शतसहस्राणि एकोननवतिः सहस्राणि अष्टौ शतानि षट्सप्तत्यधिकानि १९२८९८७६, तेषां चतुर्भिर्भागे हृते लब्धं यथोक्तं द्वाराणां परस्परमन्तरपरिमाणं ४८२२४६९ ॥ 'पुक्खरवरदीवस्स णं भंते! दीवस्स पएसा पुक्खरवरसमुद्दं पुट्ठा?' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं प्राग्वत् ॥ सम्प्रति नामनिमित्तप्रतिपादनार्थमाह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते पुष्करवरद्वीपः २? इति, भगवानाह–गौतम! पुष्करवरद्वीपे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र २ प्रदेशे बहवः पद्मवृक्षाः, पद्मानि अतिविशालतया वृक्षा इव पद्मवृक्षाः, पद्मखण्डाः–पद्मवनानि, खण्डवनयोर्विशेषः प्राग्वत्, 'निच्चं कुसुमिया' इत्यादि विशेषणजातं प्राग्वत् । तथा पूर्वार्द्धे उत्तरकुरुषु यः पद्मवृक्षः पश्चिमार्द्धे उत्तरकुरुषु यो महापद्मवृक्षस्तयोरत्र पुष्करवरद्वीपे यथाक्रमं पद्मपुण्डरीकौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ यथाक्रमं पूर्वार्द्धापरार्द्धाधिपती परिवसतः, तथा चोक्तम्—"पउमे य महापउमे रुक्खा उत्तरकुरूसु जंबुसमा । एएसु वसंति सुरा पउमे तह पुंडरीए य ॥ १ ॥" पद्मं च पुष्करमिति पुष्करवरोपलक्षितो द्वीपः पुष्करवरो द्वीपः 'से एएणट्ठेण'मित्यादूपसंहारवाक्यम् ॥ सम्प्रति चन्द्रादित्यादिपरिमाणमाह—'पुक्खरवरे'त्यादि पाठसिद्धं, नवरं नक्षत्रादिपरिमाणमष्टाविंशत्यादिसङ्ख्यानि नक्षत्रादीनि चतुश्चत्वारिंशेन शतेन गुणयित्वा स्वयं परिभावनीयं, उक्तं चैवंरूपं परिमाणमन्यत्रापि—"चोयालं चंदसयं चोयालं चेव सूरियाण सयं । पुक्खरवरंमि दीवे चरंति एए पगासिंता ॥ १ ॥ चत्तारि सहस्साइं

१ पद्मश्च महापद्मो वृक्षौ उत्तरकुरुषु जम्बूसमौ । एतयोर्वसतः सुरौ पद्मस्तथा पुण्डरीकश्च ॥ १ ॥ २ चतुश्चत्वारिंशं चन्द्रशतं चतुश्चत्वारिंशं चैव सूर्याणां शतं । पुष्करवरे द्वीपे चरन्ति एते प्रकाशयन्तः ॥ १ ॥ चत्वारि सहस्राणि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

बत्तीसं चेव होंति नक्खत्ता । छच्च सया बावत्तर महागहा बारससहस्सा ॥ २ ॥ छन्नउइ सयसहस्सा चोयालीसं भवे सहस्साइं । चत्तारिं च सयाइं तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥" इति ॥ सम्प्रति मनुष्यक्षेत्रसीमाकारिमानुषोत्तरपर्वतवक्तव्यतामाह—**'पुक्खरवर-दीवस्स णं'**मित्यादि, पुष्करवरस्य णमिति वाक्यालङ्कृतौ द्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे मानुषोत्तरो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, स च वृत्तः, वृत्तं च मध्यपूर्णमपि भवति यथा कौमुदीशशाङ्कमण्डलं ततस्तद्रूपताव्यवच्छेदार्थमाह—वलयाकारसंस्थानसंस्थितो, यः पुष्करवरं द्वीपं द्विधा सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च विभजमानो विभजमानस्तिष्ठति, केनोल्लेखेन द्विधा विभजमानस्तिष्ठति? इत्यत आह—तद्यथा—अभ्यन्तरपुष्क-रार्द्धं च बाह्यपुष्करार्द्धं च, चशब्दौ समुच्चये, किमुक्तं भवति?—मानुषोत्तरात्पर्वतादर्वाग् यत्पुष्करार्द्धं तदभ्यन्तरपुष्करार्द्धं, यत्पुनस्त-स्मान्मानुषोत्तरपर्वतात्परतः पुष्करार्द्धं तद् बाह्यपुष्करार्द्धमिति ॥ **'अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौ-तम! अष्टौ योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशच्छतसहस्राणि त्रिंशत्सहस्राणि द्वे च योजनशते एकोनपञ्चाशे किञ्चिद्विशेषाधिके परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः ॥ **'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—अभ्यन्तरपुष्करार्द्ध-मभ्यन्तरपुष्करार्द्धम्? इति, भगवानाह—गौतम! अभ्यन्तरपुष्करार्द्धं मानुषोत्तरोत्तरेण पर्वतेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तं, ततो मानुषोत्तरपर्वताभ्यन्तरे वर्त्तमानत्वादभ्यन्तरपुष्करार्द्धं, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि गतार्थं ॥ **'अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं भंते! कइ चंदा पभासिंसु?'** इत्यादि चन्द्रादिपरिमाणसूत्रं पाठसिद्धं, नवरं नक्षत्रादिपरिमाणमष्टाविंशत्यादीनि नक्षत्राणि द्वासप्तत्या गुण-

१ द्वात्रिंशच्चैव भवन्ति नक्षत्राणि । महाग्रहा द्वादश सहस्राणि षट् शतानि द्विसप्ततानि ॥ २ ॥ षण्णवतिः शतसहस्राणि चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि । चत्वारि च शतानि तारागणाः कोटीकोटीनां भवेयुः ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

यित्वा परिभावनीयं, उक्तं चैवंरूपं परिमाणमन्यत्रापि—"बावत्तरिं च चंदा बावत्तरिमेव दिणयरा दित्ता । पुक्खरवरदीवड्ढे चरंति एए पगासिंता ॥ १ ॥ तिण्णि सया छत्तीसा छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु । नक्खत्ताणं तु भवे सोलाणि दुवे सहस्साणि ॥ २ ॥ अडयाल सयसहस्सा बावीसं चेव तह सहस्साइं । दो य सय पुक्खरद्धे तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३ ॥" इह सर्वत्र तारापरिमाणचिन्तायां कोटीकोट्य: कोट्य एव द्रष्टव्या:, तथा पूर्वसूरिव्याख्यानाद्, अपरे उच्छ्रयाङ्गुलप्रमाणमनुसृत्य कोटीकोटीरेव समर्थयन्ति, उक्तञ्च—"कोडाकोडी सन्नंतरं तु मन्नंति केइ थोवतया । अन्ने उस्सेहंगुलमाणं काऊण ताराणं ॥ १ ॥"

समयखेत्ते णं भंते! केवतियं आयामविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एगा जोयणकोडी जावब्भितरपुक्खरद्धपरिरओ से भाणियव्वो जाव अउणपण्णे॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति–माणुसखेत्ते २?, गोयमा! माणुसखेत्ते णं तिविधा मणुस्सा परिवसंति, तंजहा—कम्मभूमगा अकम्मभूमगा अंतरदीवगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति–माणुसखेत्ते माणुसखेत्ते॥ माणुसखेत्ते णं भंते! कति चंदा पभासेंसु वा ३?, कइ सूरा तवइंसु वा ३?, गोयमा!—बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं। सयलं मणुस्सलोयं चरंति एते पभासेंता ॥ १ ॥ एक्कारस य सहस्सा छप्पि य सोला महग्गहाणं तु। छच्च सया छण्णउया णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ॥ २॥ अडसीइ सयसहस्सा चत्तालीस सहस्स

१ कोटीकोटीति संज्ञान्तरं (कोटीहएं) मन्यन्ते केचित् क्षेत्रस्य स्तोकत्वात् । अन्ये उत्सेधाङ्गुलमानं ताराणां कृत्वा (कोटीकोटीमित्येव) ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयक्षेत्र-अधिकार: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७७] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [२५०--२८६]

मणुयलोगंमि । सत्त य सता अणूणा तारागणकोडकोडीणं ॥ ३ ॥ सोभं सोभेंसु वा ३ ॥ एसो तारापिंडो सव्वसमासेण मणुयलोगंमि । बहिया पुण ताराओ जिणेहिं भणिया असंखेज्जा ॥ १ ॥ एवइयं तारग्गं जं भणियं माणुसंमि लोगंमि । चारं कलंबुयापुप्फसंठियं जोइसं चरइ ॥२॥ रविससिगहनक्खत्ता एवइया आहिया मणुयलोए । जेसिं नामागोयं न पागया पन्नवेहिंति ॥ ३ ॥ छावट्ठी पिडगाइं चंदाइचा मणुयलोगंमि । दो चंदा दो सूरा य होंति एक्केक्कए पिडए ॥ ४ ॥ छावट्ठीपिडगाइं नक्खत्ताणं तु मणुयलोगंमि । छप्पन्नं नक्खत्ता य होंति एक्केक्कए पिडए ॥ ५ ॥ छावट्ठी पिडगाइं महागहाणं तु मणुयलोगंमि । छावत्तरं गहसयं च होइ एक्केक्कए पिडए ॥ ६ ॥ चत्तारि य पंतीओ चंदाइचाण मणुयलोगंमि । छावट्ठिय छावट्ठिय होइ य एक्केक्कया पंती ॥ ७ ॥ छप्पन्नं पंतीओ नक्खत्ताणं तु मणुयलोगंमि । छावट्ठी छावट्ठी हवइ य एक्केक्कया पंती ॥ ८ ॥ छावत्तरं गहाणं पंतिसयं होइ मणुयलोगंमि । छावट्ठी छावट्ठी य होंति एक्केक्किया पंती ॥ ९ ॥ ते मेरुपरियडन्ता पयाहिणावत्तमंडला सव्वे । अणवट्ठियजोगेहिं चंदा सूरा गहगणा य ॥ १० ॥ नक्खत्ततारगाणं अवट्ठिया मंडला मुणेयव्वा । तेऽविय पयाहिणावत्तमेव मेरुं अणुचरंति ॥ ११ ॥ रयणियरदिणयराणं उड्ढे व अहे व संकमो नत्थि । मंडलसंकमणं पुण अब्भिंतरबाहिरं तिरिए ॥ १२ ॥ रयणियरदिणयराणं नक्खत्ताणं महग्गहाणं च । चारविसेसेण भवे सुहदुक्खविही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

मणुस्साणं ॥ १३ ॥ तेसिं पविसंताणं तावक्खेत्तं तु वड्ढए नियमा । तेणेव कमेण पुणो परिहायइ निक्खमंताणं ॥ १४ ॥ तेसिं कलंबुयापुप्फसंठिया होइ तावखेत्तपहा । अंतो य संकुया बाहि वित्थडा चंदसूरगणा ॥ १५ ॥ केणं वड्ढति चंदो परिहाणी केण होइ चंदस्स । कालो वा जोण्हो वा केणऽणुभावेण चंदस्स?॥ १६ ॥ किण्हं राहुविमाणं निचं चंदेण होइ अविरहियं । चउरंगुलमप्पत्तं हिट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥ १७ ॥ बावट्ठिं बावट्ठिं दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स । जं परिवड्ढइ चंदो खवेइ तं चेव कालेणं ॥ १८ ॥ पन्नरसइभागेण य चंदं पन्नरसमेव तं वरइ । पन्नरसइभागेण य पुणोवि तं चेव तिक्कमइ ॥ १९ ॥ एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होइ चंदस्स । कालो वा जोण्हा वा तेणणुभावेण चंदस्स ॥ २० ॥ अंतो मणुस्सखेत्ते हवंति चारोवगा य उववण्णा । पञ्चविहा जोइसिया चंदा सूरा गहगणा य ॥ २१ ॥ तेण परं जे सेसा चंदाइचगहतारनक्खत्ता । नत्थि गई नवि चारो अवट्ठिया ते मुणेयव्वा ॥ २२ ॥ दो चंदा इह दीवे चत्तारि य सागरे लवणतोए । धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥ २३ ॥ दो दो जंबूदीवे ससिसूरा दुगुणिया भवे लवणे । लावणिगा य तिगुणिया ससिसूरा धायईसंडे ॥ २४ ॥ धायइसंडप्पभिई उद्दिट्ठतिगुणिया भवे चंदा । आइल्लचंदसहिया अणंतराणंतरे खेत्ते ॥ २५ ॥ रिक्खग्गहतारग्गं दीवसमुद्दे जहिच्छसे नाउं । तस्स ससीहिं गुणियं रिक्खग्गहतारगाणं तु ॥ २६ ॥ चंदातो सूरस्स य सूरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंदस्स अंतरं होइ । पन्नास सहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं ॥ २७ ॥ सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतरं होइ । बहियाओ मणुस्सनगस्स जोयणाणं सयसहस्सं ॥ २८ ॥ सूरंतरिया चंदा चंदंतरिया य दिणयरा दित्ता । चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य ॥ २९ ॥ अट्ठासीइं च गहा अट्ठावीसं च होंति नक्खत्ता । एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि ॥ ३० ॥ छावट्ठिसहस्साइं नव चेव सयाइं पंचसयराइं । एगससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥ ३१ ॥ बहियाओ माणुसनगस्स चंदसूराणऽवट्ठिया जोगा । चंदा अभीइजुत्ता सूरा पुण होंति पुस्सेहिं ॥ ३२ ॥ (सू० १७७)

'माणुसखेत्ते णं'मित्यादि, मनुष्यक्षेत्रं भदन्त! कियदायामविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्तं?, भगवानाह–गौतम! पञ्चचत्वारिंशद् योजनशतसहस्राण्यायामविष्कम्भेन, एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशत् शतसहस्राणि त्रिंशत्सहस्राणि द्वे योजनशते एकोनपञ्चाशे किञ्चिद्विशेषाधिके परिक्षेपेण प्रज्ञप्तं ॥ सम्प्रति नामनिमित्तमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–मनुष्यक्षेत्रं मनुष्यक्षेत्रं? इति, भगवानाह–गौतम! मनुष्यक्षेत्रे त्रिविधा मनुष्याः परिवसन्ति, तद्यथा–कर्म्मभूमका अकर्म्मभूमका अन्तरद्वीपकाश्च, अन्यच्च मनुष्याणां जन्म मरणं चात्रैव क्षेत्रे न तद्बहिः, तथाहि–मनुष्या मनुष्यक्षेत्रस्य बहिर्जन्मतो न भूता न भवन्ति न भविष्यन्ति च, तथा यदि नाम केनचिद्देवेन दानवेन विद्याधरेण वा पूर्वानुबद्धवैरनिर्यातनार्थमेवंरूपा बुद्धिः क्रियते यथाऽयं मनुष्योऽस्मात् स्थानाद् उत्पाट्य मनुष्यक्षेत्रस्य बहिः प्रक्षिप्यतां येनोर्द्ध्वशोषं शुष्यति म्रियते वेति तथाऽपि लोकानुभावा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

देव सा काचनाऽपि बुद्धिर्भूयः परावर्त्तते यथा संहरणमेव न भवति संहृत्य वा भूयः समानयति तेन संहरणतोऽपि मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्मनुष्या मरणमधिकृत्य न भूता न भवन्ति न भविष्यन्ति च, येऽपि जङ्घाचारिणो विद्याचारिणो वा नन्दीश्वरादीनपि यावद्गच्छन्ति तेऽपि तत्र गता न मरणमश्नुवते किन्तु मनुष्यक्षेत्रसमागता एव, तेन मानुषोत्तरपर्वतसीमाकं मनुष्याणां सम्बन्धि क्षेत्रं मनुष्यक्षेत्रमिति, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि गतार्थम् ॥ सम्प्रति मनुष्यक्षेत्रगतसमस्तचन्द्रादिसङ्ख्यापरिमाणमाह—**'मणुस्सखेत्ते णं भंते! कइ चंदा पभासिंसु'** इत्यादि पाठसिद्धं, उक्तं चैवंरूपं परिमाणमन्यत्रापि—"बत्तीसं चंदसयं बत्तीसं चेव सूरियाण सयं। सयलं मणुस्सलोयं चरंति एए पगासिंता ॥ १ ॥ एकारस य सहस्सा छप्पि य सोला महागहाणं तु। छच्च सया छन्नउया नक्खत्ता तिन्नि य सहस्सा ॥ २ ॥ अट्ठासीयं लक्खा चत्तालीसं च तह सहस्साइं। सत्त सया य अणूणा तारागणकोडकोडीणं ॥ ३ ॥" तत्र द्वात्रिंशं चन्द्रशतमेवं—द्वौ चन्द्रौ जम्बूद्वीपे चत्वारो लवणोदे द्वादश धातकीपण्डे द्वाचत्वारिंशत्कालोदे द्वासप्ततिरभ्यन्तरपुष्करार्द्धे सर्वसङ्ख्यया द्वात्रिंशं शतं, एवं सूर्याणामपि द्वात्रिंशं शतं परिभावनीयं, नक्षत्रादिपरिमाणमष्टाविंशत्यादिनक्षत्रादीनि द्वात्रिंशेन शतेन गुणयित्वा परिभावनीयं ॥ सम्प्रति सकलमनुष्यलोकगततारागणस्योपसंहारमाह—**'एषः'** अनन्तरोक्तसङ्ख्याकस्तारापिण्डः सर्वसङ्ख्यया मनुष्यलोके आख्यात इति गम्यते, बहिः पुनर्मनुष्यलोकाद् यास्तारास्ताः 'जिनैः' सर्वज्ञैस्तीर्थकृद्भिर्भणिता असङ्ख्याता द्वीपसमुद्राणामसङ्ख्यातत्वात्, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं च यथायोगं सङ्ख्यातानामसङ्ख्यातानां च ताराणां सद्भावात् **'एतावत्'** एतावत्सङ्ख्याकं **'ताराग्गं'** तारापरिमाणं यत् अनन्तरं भणितं मानुषे लोके तत् **'ज्योतिषं'** ज्योतिषदेवविमानरूपं **'कदम्बपुष्पसंस्थितं'** कदम्बपुष्पवद् अधःसङ्कुचितमुपरि विस्तीर्णं उत्तानीकृतार्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितमिति भावः **'चारं चरति'** चारं प्रतिपद्यते, तथा जगत्स्वाभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७७] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [२५०--२८६]

व्यात्, ताराग्रहणं चोपलक्षणं, ततः सूर्यादयोऽपि यथोक्तसङ्ख्याका मनुष्यलोके तथाजगत्स्वाभाव्याच्चारं प्रतिपद्यन्त इति द्रष्टव्यं ॥ सम्प्रत्येतद्गतमेवोपसंहारमाह–रविशशिग्रहनक्षत्राणि, उपलक्षणमेतत् तारकाणि च, **'एतावन्ति'** एतावत्सङ्ख्याकानि सपूर्वार्द्धे मनुष्यलोके, येषां किम्? इत्याह–येषां सूर्यादीनां यथोक्तसङ्ख्याकानां सकलमनुष्यलोकभाविनां प्रत्येकं नामगोत्राणि, इहान्वर्थयुक्तं नाम सिद्धान्तपरिभाषया नाम गोत्रमित्युच्यते, ततोऽयमर्थः–नामगोत्राणि–अन्वर्थयुक्तानि नामानि, यदिवा नामानि च गोत्राणि च नामगोत्राणि **'प्राकृताः'** अनतिशायिनः पुरुषाः कदाचनापि न प्रज्ञापयिष्यन्ति, केवलं यदा त्वाह सर्वज्ञ एवं, तत इदं सूर्यादिसङ्ख्यानं प्राक्तपुरुषाप्रमेयं सर्वज्ञोपदिष्टमिति सम्यक् श्रद्धेयं ॥ इह द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यावेकं पिटकमुच्यते, इत्थम्भूतानि च चन्द्रादित्यानां पिटकानि सर्वसङ्ख्यया मनुष्यलोके षट्षष्टिसङ्ख्यानि । अथ किंप्रमाणं पिटकमिति पिटकप्रमाणमाह–एकैकस्मिन् पिटके द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ भवत इति, किमुक्तं भवति?–द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यावित्येतावत्प्रमाणमेकैकचन्द्रादित्यानां पिटकमिति, एवंप्रमाणं च पिटकं जम्बूद्वीपे एकं, द्वयोरेव चन्द्रमसोर्द्वयोरेव सूर्ययोस्तत्र भावतः, द्वे पिटके लवणसमुद्रे चतुर्णां चन्द्रमसां चतुर्णां सूर्याणां च तत्र भावात्, एवं षट् पिटकानि धातकीपण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति भवन्ति सर्वमीलने चन्द्रादित्यानां षट्षष्टिः पिटकानि ॥ सर्वस्मिन्नपि मनुष्यलोके सर्वसङ्ख्यया नक्षत्राणां पिटकानि भवन्ति षट्षष्टिः, नक्षत्रपिटकपरिमाणं च शशिद्वयसम्बन्धिनक्षत्रसङ्ख्यापरिमाणं, तथा चाह–एकैकस्मिन् पिटके नक्षत्राणि भवन्ति षट्पञ्चाशत्, किमुक्तं भवति?–षट्पञ्चाशन्नक्षत्रसङ्ख्याकमेकैकं नक्षत्रपिटकमिति, अत्रापि षट्षष्टिसङ्ख्याभावनैवम्–एकं नक्षत्रपिटकं जम्बूद्वीपे द्वे लवणसमुद्रे षड् धातकीपण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्ध इति ॥ महाग्रहाणामप्यङ्गारकप्रभृतीनां सर्वस्मिन् मनुष्यलोके सर्वसङ्ख्यया पिटकानि भवन्ति षट्षष्टिः, ग्रहपिट-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जी० ५७

कपरिमाणं च शशिद्वयसम्बन्धिग्रहसङ्ख्यापरिमाणं, तथा चाह–एकैकस्मिन् पिटके भवति षट्सप्तं–षट्सप्तत्यधिकं ग्रहशतं, षट्सप्तत्यधिकग्रहशतपरिमाणमेकैकं ग्रहपिटकपरिमाणमिति भावः, षट्षष्टिसङ्ख्याभावना प्राग्वत् ॥ इह मनुष्यलोके चन्द्रादित्यानां चतस्रः पङ्क्तयो भवन्ति, तद्यथा–द्वे पङ्क्ती चन्द्राणां द्वे सूर्याणां, एकैका च पङ्क्तिर्भवति षट्षष्टिः षट्षष्टिः–षट्षष्टिषट्षष्टिसूर्यादिसङ्ख्या, तद्भावना चैवम्–एकः किल सूर्यो जम्बूद्वीपे मेरोर्दक्षिणभागे चारं चरन् वर्त्तते एक उत्तरभागे, एकश्चन्द्रमा मेरोः पूर्वभागे एकोऽपरभागे, तत्र यो मेरोर्दक्षिणभागे सूर्यश्चारं चरन् वर्त्तते ततः समश्रेणिव्यवस्थितौ द्वौ दक्षिणभागे एव सूर्यौ लवणसमुद्रे षड् धातकीषण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे, इत्यस्यामपि सूर्यपङ्क्तौ सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिः सूर्याः, तथा योऽपि च मेरोरुत्तरभागे सूर्यश्चारं चरन् वर्त्तते तस्यापि समश्रेण्या व्यवस्थितौ द्वौ उत्तरभागे सूर्यौ लवणसमुद्रे षड् धातकीषण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इत्यस्यामपि सूर्यपङ्क्तौ सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिः सूर्याः, तथा यो मेरोः किल पूर्वभागे चारं चरन् वर्त्तते चन्द्रमास्तत्समश्रेणिव्यवस्थितौ द्वौ पूर्वभागे एव चन्द्रमसौ लवणसमुद्रे षड् धातकीषण्डे एकविंशतिः कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इत्यस्यां चन्द्रपङ्क्तौ सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिश्चन्द्रमसः, एवं यो मेरोरपरभागे चन्द्रमास्तन्मूलायामपि पङ्क्तौ षट्षष्टिश्चन्द्रमसो वेदितव्याः ॥ नक्षत्राणां मनुष्यलोके सर्वसङ्ख्यया पङ्क्तयो भवन्ति षट्पंचाशत्, एकैका च पङ्क्तिर्भवति षट्षष्टिः षट्षष्टिस्तद्भवपरिमाणा इत्यर्थः, तथाहि–किलास्मिन् जम्बूद्वीपे दक्षिणतोऽर्द्धभागे एकस्य शशिनः परिवारभूतान्यभिजिदादीन्यष्टाविंशतिसङ्ख्यानि नक्षत्राणि क्रमेण व्यवस्थितानि चारं चरन्ति, उत्तरतोऽर्द्धभागे द्वितीयस्य शशिनः परिवारभूतान्यष्टाविंशतिसङ्ख्याकान्यभिजिदादीन्येव नक्षत्राणि क्रमेण व्यवस्थितानि, तत्र दक्षिणतोऽर्द्धभागे यत्राभिजिन्नक्षत्रं तत्समश्रेणिव्यवस्थिते द्वे अभिजिन्नक्षत्रे लवणसमुद्रे षड् धातकीषण्डे एकविं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७७] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [२५०--२८६]

शति: कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति, सर्वसङ्ख्यया षट्षष्टिरभिजिन्नक्षत्राणि पङ्क्त्या व्यवस्थितानि, एवं श्रवणादीन्यपि दक्षिणतोऽर्द्धभागे पङ्क्त्या व्यवस्थितानि षट्षष्टिसङ्ख्याकानि भावनीयानि, उत्तरतोऽप्यर्द्धभागे यदभिजिन्नक्षत्रं तत्समश्रेणिव्यवस्थितेऽपि उत्तरभाग एव द्वे अभिजिन्नक्षत्रे लवणसमुद्रे षड् धातकीषण्डे एकविंशति: कालोदे षट्त्रिंशत्पुष्करार्द्धे, एवं श्रवणादिपङ्क्तयोऽपि प्रत्येकं षट्षष्टिसङ्ख्याका २ वेदितव्या इति भवंति सर्वसङ्ख्यया षट्पञ्चाशत्सङ्ख्या नक्षत्राणां पङ्क्तय:, एकैका च पङ्क्ति: षट्षष्टिसङ्ख्येति ॥ 'ग्रहाणां' अङ्गारकप्रभृतीनां सर्वसङ्ख्यया मनुष्यलोके षट्सप्तत्यधिकं पङ्क्तिशतं भवति, एकैका च पङ्क्तिर्भवति षट्षष्टि:, अत्रापीयं भावना–जम्बूद्वीपे दक्षिणतोऽर्द्धभागे एकस्य शशिन: परिवारभूता अङ्गारकप्रभृतयोऽष्टाशीतिर्ग्रहा उत्तरतोऽर्द्धभागे द्वितीयस्य शशिन: परिवारभूता अङ्गारकप्रभृतय एवान्येऽष्टाशीतिग्रहा:, तत्र दक्षिणतोऽर्द्धभागे योऽङ्गारकनामा ग्रहस्तत्समश्रेणिव्यवस्थितौ दक्षिणभाग एव द्वावङ्गारकौ लवणसमुद्रे षड् धातकीषण्डे एकविंशति: कालोदे षट्त्रिंशदभ्यन्तरपुष्करार्द्धे इति, एवं शेषा अपि सप्ताशीतिर्ग्रहा: पङ्क्त्या व्यवस्थिता: प्रत्येकं षट्षष्टि: २ वेदितव्या:, एवमुत्तरतोऽप्यर्द्धभागेऽङ्गारकप्रभृतीनामष्टाशीतेर्ग्रहाणां पङ्क्तय: प्रत्येकं षट्षष्टिसङ्ख्याका २ भावनीया इति भवति सर्वसङ्ख्यया ग्रहाणां षट्सप्तं पङ्क्तिशतं, एकैका च पङ्क्ति: षट्षष्टिसङ्ख्याकेति ॥ **'ते'** मनुष्यलोकवर्त्तिन: सर्वे चंद्रा: सर्वे सूर्या: सर्वे ग्रहगणा अनवस्थितैर्यथायोगमन्यैरन्यैर्नक्षत्रै: सह योगमुपलक्षिता: **'पयाहिणावत्तमंडला'** इति प्रकर्षेण सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमतां चन्द्रादीनां दक्षिण एव मेरुर्भवति यस्मिन्नावर्त्ते–मण्डलपरिभ्रमणरूपे स प्रदक्षिण: २ आवर्त्तो येषां मण्डलानां तानि प्रदक्षिणावर्त्तानि तानि मण्डलानि मेरुं (प्रति) येषां ते प्रदक्षिणावर्त्तमण्डला मेरुमनुलक्षीकृत्य चरन्ति, एतेनैतदुक्तं भवति–सूर्यादय: समस्ता अपि मनुष्यलोकवर्त्तिन: प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलगत्या परिभ्रमन्तीति, इह चन्द्रादित्यग्रहाणां मण्डलान्यनवस्थि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते–द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तानि, यथायोगमन्यस्मिन्नन्यस्मिन्मण्डले तेषां संचरिष्णुत्वात्, नक्षत्रतारकाणां तु मण्डलान्यनवस्थितान्येव, तथा चाह—नक्षत्राणां तारकाणां च मण्डलान्यवस्थितानि ज्ञातव्यानि, किमुक्तं भवति?—आकालं प्रतिनियतमेकैकं नक्षत्राणां तारकाणां च मण्डलमिति, न चैवं व्यवस्थितमण्डलत्वोक्तावेवमाशङ्कनीयं यथा तेषां गतिरेव न भवतीति, यत आह—**'तेऽवि य'** इत्यादि, तान्यपि नक्षत्राणि तारकाणि च, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, प्रदक्षिणावर्त्तमेव, इदं क्रियाविशेषणं, मेरुमनुलक्ष्यीकृत्य चरन्ति, एतच्च मेरुं लक्ष्यीकृत्य तेषां प्रदक्षिणावर्त्तचरणं प्रत्यक्षत एवोपलक्ष्यत इति संवादि ॥ **'रजनिकरदिनकराणां'** चन्द्रादित्यानामूर्द्ध्वं वाऽधो वा सङ्क्रमो न भवति तथा जगत्स्वाभाव्यात्, तिर्यक् पुनर्मण्डलेषु सङ्क्रमणं भवति, किंविशिष्टमित्याह—**'साभ्यन्तरबाह्यम्'** अभ्यन्तरं च बाह्यं च अभ्यन्तरबाह्यं सह अभ्यन्तरबाह्यं यस्य येन वा तत् साभ्यन्तरबाह्यं, एतदुक्तं भवति?—सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात्परतस्तावन्मण्डलेषु सङ्क्रमणं यावत्सर्वबाह्यमण्डलं, सर्वबाह्याच्च मण्डलादर्वाग् मण्डलेषु तावत्सङ्क्रमणं यावत्सर्वाभ्यन्तरमिति ॥ **'रजनिकरदिनकराणां'** चन्द्रादित्यानां नक्षत्राणां महाग्रहाणां च **'चारविशेषेण'** तेन तेन चारेण सुखदुःखविधयो मनुष्याणां संभवन्ति, तथाहि—द्विविधानि सन्ति सदा मनुष्याणां कर्माणि, तद्यथा—शुभवेद्यानि अशुभवेद्यानि च, कर्मणां च सामान्यतो विपाकहेतवः पञ्च, तद्यथा—द्रव्यं क्षेत्रं कालो भावो भवश्च, उक्तञ्च—"[1]उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मुणो भणिया । दव्वं खेत्तं कालं भावं भवं च संपप्प ॥ १ ॥" शुभवेद्यानां च कर्मणां प्रायः शुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्री विपाकहेतुः, अशुभवेद्यानामशुभद्रव्यक्षेत्रादि सामग्री, ततो यदा येषां जन्मनक्षत्राद्यनुकूलश्चन्द्रादीनां चारस्तदा तेषां प्रायो यानि शुभवेद्यानि कर्म्माणि तानि तथाविधां विपाकसामग्रीमधिगम्य

१ उदयः क्षयः क्षयोपशम उपशमो यच्च कर्मणो भणिताः । द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं भवं च संप्राप्य ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपाकं प्रपद्यन्ते, प्रपन्नविपाकानि शरीरनीरोगतासंपादनतो धनवृद्धिकरणेन च वैरोपशमनतः प्रियसंप्रयोगसंपादनतो वा यदिवा प्रारब्धाभीष्टप्रयोजननिष्पत्तिकरणतः सुखमुपजनयन्ति, अत एव महीयांसः परमविवेकिनः स्वल्पमपि प्रयोजनं शुभतिथिनक्षत्रादावारभंते न तु यथा कथञ्चन, अत एव जिनानामपि भगवतामाज्ञा प्रव्राजनादिकमधिकृत्यैवमवर्त्तिष्ट–यथा शुभक्षेत्रे शुभदिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादौ प्रव्राजनव्रतारोपणादि कर्त्तव्यं नान्यथा, तथा चोक्तं पञ्चवस्तुके—"एसा जिणाण आणा खेत्ताईया य कम्मुणो भणिया । उदयाइकारणं जं तम्हा सव्वत्थ जइयव्वं ॥ १ ॥" अस्या अक्षरगमनिका–एषा जिनानामाज्ञा यथा शुभक्षेत्रे शुभां दिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादौ प्रव्राजनव्रतारोपणादि कर्त्तव्यं नान्यथा, अपिच–क्षेत्रादयोऽपि कर्म्मणामुदयादिकारणं भगवद्भिरुक्तास्ततोऽशुभद्रव्यक्षेत्रादिसामग्रीमवाप्य कदाचिदशुभवेद्यानि कर्म्माणि विपाकं गत्वोदयमासादयेयुः, तदुदये च गृहीतव्रतभङ्गादिदोषप्रसङ्गः, शुभक्षेत्रादिसामग्रीं तु प्राप्य जनानां शुभकर्म्मविपाकसम्भव इति संभवति निर्विघ्नं सामायिकपरिपालनादि, तस्मादवश्यं छद्मस्थेन सर्वत्र शुभक्षेत्रादौ यतितव्यं, ये तु भगवन्तोऽतिशयमन्तस्ते अतिशयबलादेव निर्विघ्नं सविघ्नं वा सम्यगवगच्छन्ति ततो न शुभतिथिमुहूर्त्तादिकमपेक्षन्त इति तन्मार्गानुसरणं छद्मस्थानां न न्याय्यं, तेन ये च परममुनिपर्युपासितप्रवचनविडम्बका अपरिमलितजिनशासनोपनिषद्भूतशास्त्रगुरुपरम्परायातनिरवद्यविशदकालोचितसामाचारीप्रतिपन्थिनः स्वमतिकल्पितसामाचारीका अभिदधति–यथा न प्रव्राजनादिषु शुभतिथिनक्षत्रादिनिरीक्षणे यतितव्यं, न खलु भगवान् जगत्स्वामी प्रव्राजनायोपस्थितेषु शुभतिथ्यादिनिरीक्षणं कृतवानिति तेऽपास्ता द्रष्टव्या इति ॥ तेषां–सूर्याचन्द्रमसां सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रविशतां तापक्षेत्रं प्रतिदिवसं क्रमेण नियमादायामतो वर्द्धते, येनैव च क्रमेण परिवर्द्धते तेनैव क्रमेण सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिर्निष्क्रामतां परिहीयते,

॥ ३३८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तथाहि–सर्वबाह्यमण्डले चारं चरतां सूर्याणां चन्द्रमसां च प्रत्येकं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य दशधा प्रविभक्तस्य द्वौ द्वौ भागौ तापक्षेत्रं, ततः सूर्यस्याभ्यन्तरं प्रविशतः प्रतिमण्डलं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतप्रविभक्तस्य द्वौ द्वौ भागौ तापक्षेत्रस्य वर्द्धेते, चन्द्रमसस्तु मण्डलेषु प्रत्येकं पौर्णमासीसम्भवे क्रमेण प्रतिमण्डलं षड्विंशतिभागाः सप्तविंशतितमस्य च भागस्यैकः सप्तभागः, एवं च प्रतिमण्डलमभिवृद्धौ यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरतस्तदा प्रत्येकं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य त्रयः परिपूर्णा दशभागास्तापक्षेत्रं, ततः पुनरपि सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्बहिर्निष्क्रमेण सूर्यस्य प्रतिमण्डलं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतप्रविभक्तस्य जम्बूद्वीपचक्रवालस्य द्वौ द्वौ भागौ परिहीयेते, चन्द्रमसस्तु मण्डलेषु प्रत्येकं पौर्णमासीसम्भवे क्रमेण प्रतिमण्डलं षड्विंशतिभागाः सप्तविंशतितमस्य च भागस्य चैकः सप्तभाग इति ॥ **'तेषां'** चन्द्रसूर्याणां तापक्षेत्रपन्थाः कलम्बुयापुष्पं–नालिकापुष्पं तद्वत्संस्थिताः कलम्बुयापुष्पसंस्थिताः, एतदेव व्याचष्टे–अन्तः–मेरुदिशि सङ्कुचिता बहिः–लवणदिशि विस्तृताः, एतच्चन्द्रप्रज्ञप्तौ सूर्यप्रज्ञप्तौ चतुर्थे प्राभृते सविस्तरं भावितमिति ततोऽवधार्यम् ॥ सम्प्रति चन्द्रमसमधिकृत्य गौतमः प्रश्नयति–केन कारणेन शुक्लपक्षे वर्द्धते ? केन वा कारणेन चन्द्रस्य कृष्णपक्षे परिहानिर्भवति ? केन वा **'अनुभावेन'** प्रभावेण चन्द्रस्यैकः पक्षः कृष्णो भवति एकः **'ज्योत्स्नः'** शुक्लः ? इति, एवमुक्ते भगवानाह–इह द्विविधो राहुरुक्तस्तद्यथा–पर्वराहुर्नित्यराहुश्च, तत्र पर्वराहुः स उच्यते यः कदाचिदकस्मात्समागत्य निजविमानेन चन्द्रविमानं सूर्यविमानं वाऽन्तरितं करोति, अन्तरिते च कृते लोके ग्रहणमिति प्रसिद्धिः, स इह न गृह्यते, यस्तु नित्यराहुस्तस्य विमानं कृष्णं तथाजगत्स्वाभाव्याच्चन्द्रेण सह **'नित्यं'** सर्वकालमविरहितं तथा **'चउरंगुलेन'** चतुरङ्गुलैरप्राप्तं सन् **'चन्द्रस्य'** चन्द्रविमानस्याधस्ताच्चरति, तच्चैवं चरत् शुक्लपक्षे शनैः शनैः प्रकटीकरोति चन्द्रमसं कृष्णपक्षे च शनैः शनैरावृणोति, तथा चाह–इह द्वाषष्टिभागीकृतस्य चन्द्रविमानस्य द्वौ भागावुपरितनौ सदाऽनावार्यस्वभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलाद् अपाकृत्य शेषस्य पञ्चदशभिर्भागे हृते ये चत्वारो भागा लभ्यन्ते ते द्वाषष्टिशब्देनोच्यन्ते, अवयवे समुदायोपचारात्, एतच्च व्याख्यानमेतस्यैव चूर्णिमुपजीव्य कृतं न स्वमनीषिकया, तथा च तद्ग्रन्थः—"चन्द्रविमानं द्वाषष्टिभागीक्रियते, ततः पञ्चदशभिर्भागोऽपहियते, तत्र चत्वारो भागा द्वाषष्टिभागानां पञ्चदशभागेन लभ्यन्ते शेषौ द्वौ, एतावद् दिने दिने शुक्लपक्षस्य राहुणा मुच्यत" इति, एवं च सति यत्समवायाङ्गसूत्रम्—"सुक्कपक्खस्स दिवसे दिवसे बावट्ठिं बावट्ठिं भागे परिवड्ढइ" इति, तदप्येवमेव व्याख्येयं, संप्रदायवशाद्धि सूत्रं व्याख्येयं, न स्वमनीषिकया, अन्यथा महदाशातनाप्रसक्तेः, संप्रदायश्च यथोक्तस्वरूप इति, तत्र शुक्लपक्षस्य दिवसे यद्—यस्मात्कारणाच्चन्द्रो द्वाषष्टिद्वाषष्टिभागान्—द्वाषष्टिभागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान् यावत्परिवर्द्धते, कालेन—कृष्णपक्षेण पुनर्दिवसे २ तानेव द्वाषष्टिभागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान् **'प्रक्षपयति'** परिहापयति, एतदेव व्याचष्टे—कृष्णपक्षे प्रतिदिवसं राहुविमानं स्वकीयेन पञ्चदशेन भागेन तं **'चन्द्रं'** चन्द्रविमानं पञ्चदशमेव भागं **'वृणोति'** आच्छादयति, शुक्लपक्षे पुनस्तमेव प्रतिदिवसं पञ्चदशभागमात्मीयेन पञ्चदशेन भागेन **'व्यतिक्रामति'** मुञ्चति, किमुक्तं भवति?—कृष्णपक्षे प्रतिपद आरभ्यात्मीयेन पञ्चदशेन पञ्चदशेन भागेन प्रतिदिवसमेकैकं पञ्चदशभागमुपरितनभागादारभ्यावृणोति, शुक्लपक्षे तु प्रतिपद आरभ्य तेनैव क्रमेण प्रतिदिवसमेकैकं पञ्चदशभागं प्रकटीकरोति, तेन जगति चन्द्रमण्डलस्य वृद्धिहानी प्रतिभासेते, स्वरूपतः पुनश्चन्द्रमण्डलमवस्थितमेव, तथा चाह—एवं राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणानावरणकरणतो **'वर्द्धते'** वर्द्धमानः प्रतिभासते चन्द्रः, एवं राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणावरणकरणतः परिहानिप्रतिभासो भवति चन्द्रस्य विषये, एतेनैव **'अनुभावेन'** कारणेनैकः पक्षः **'कालः'** कृष्णो भवति यत्र चन्द्रस्य परिहानिः प्रतिभासते, एकस्तु **'ज्योत्स्नः'** शुक्लो यत्र चन्द्रविषयो वृद्धिप्रतिभासः ॥ **'अन्तः'** मध्ये **'मनुष्यक्षेत्रे'** मनुष्यक्षेत्रस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

पञ्चविधा ज्योतिष्कास्तद्यथा–चन्द्राः सूर्या ग्रहगणाः चशब्दान्नक्षत्राणि तारकाश्च भवन्ति **'चारोपगाः'** चारयुक्ताः, **'तेने'**त्ति प्राकृतत्वात्पञ्चम्यर्थे तृतीया ततो मनुष्यक्षेत्रात्परं यानि शेषाणि **'चन्द्रादित्यग्रहतारानक्षत्राणि'** चन्द्रादित्यग्रहतारानक्षत्रविमानानि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, तेषां नास्ति गतिः–न स्वस्मात्स्थानाच्चलनं नापि **'चारः'** मण्डलगत्या परिभ्रमणं किन्त्ववस्थितान्येव तानि ज्ञातव्यानि ॥ सम्प्रति प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं चन्द्रादिसङ्कलनामाह–'एगे जंबुद्दीवे दुगुणा लवणे चउग्गुणा होंति । लावणगा य तिगुणिया ससिसूरा धायइसंडे' ॥ १ ॥ द्वौ चन्द्रौ उपलक्षणमेतत् द्वौ सूर्यौ च **'इह'** अस्मिन् जम्बूद्वीपे, चत्वारः **'सागरे'** समुद्रे **'लवणतोये'** लवणजले, धातकीषण्डे द्वीपे द्वादश चन्द्राश्च द्वादश सूर्याश्च ॥ एतदेव भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादयति–शशिनौ सूर्यौ जम्बूद्वीपे द्वौ द्वौ, तावेव द्विगुणितौ **'लवणे'** लवणसमुद्रे भवतः, चत्वारो लवणसमुद्रे शशिनश्चत्वारश्च सूर्या भवन्तीत्यर्थः, द्वयोर्द्वाभ्यां गुणने चतुर्भावात्, पाठान्तरम्—"एवं जंबूदीवे दुगुणा लवणे चउग्गुणा होंति "त्ति, **'एवम्'** उक्तेन प्रकारेण एकैकौ चन्द्रसूर्यौ जम्बूद्वीपे द्विगुणौ भवतः, किमुक्तं भवति?–द्वौ चन्द्रमसौ द्वौ सूर्यौ जम्बूद्वीप इति, **'लवणे'** लवणसमुद्रे तावेवैकैकौ सूर्याचन्द्रमसौ चतुर्गुणौ भवतः, चत्वारश्चन्द्राश्चत्वारः सूर्या लवणसमुद्रे भवन्तीति भावः, **'लावणिकाः'** लवणसमुद्रभवाः शशिसूर्यास्त्रिगुणिता धातकीषण्डे भवन्ति, द्वादश चन्द्रा द्वादश सूर्या धातकीषण्डे द्वीपे भवन्तीत्यर्थः ॥ सम्प्रति शेषद्वीपसमुद्रगतचन्द्रादित्यसङ्ख्यापरिज्ञानाय करणमाह–धातकीषण्डः प्रभृतिः–आदिर्येषां ते धातकीषण्डप्रभृतयस्तेषु धातकीषण्डप्रभृतिषु द्वीपेषु समुद्रेषु च ये उद्दिष्टाश्चन्द्रा द्वादशादयः उपलक्षणमेतत् सूर्या वा ते **'त्रिगुणिताः'** त्रिगुणीकृताः सन्तः **'आइल्लचंदसहिय'**त्ति उद्दिष्टचन्द्रयुक्ताद्वीपात्समुद्राद्वा प्राग् जम्बूद्वीपमादिं कृत्वा ये प्राक्तनाश्चन्द्रास्तैरादिमचन्द्रैः, उपलक्षणमेतत् आदिमसूर्यैश्च सहिता यावन्तो भवन्ति एतावत्प्रमाणा अनन्तरे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७७] + गाथा: ||१-३२|| दीप अनुक्रम [२५०--२८६]

॥ ३४० ॥

ऽनन्तरे कालोदादौ भवन्ति, तत्र धातकीषण्डे द्वीपे उद्दिष्टाश्चन्द्रा द्वादश ते त्रिगुणाः क्रियन्ते जाताः षट्त्रिंशत्, आदिमचन्द्राः षट्, तद्यथा—द्वौ चन्द्रौ जम्बूद्वीपे चत्वारो लवणसमुद्रे, एतैरादिमचन्द्रैः सहिता द्वाचत्वारिंशद्भवन्ति, एतावन्तः कालोदसमुद्रे चन्द्राः, एष एव विधिः सूर्याणामपि, तेन सूर्या अपि तत्रैतावन्तो वेदितव्याः, तथा कालोदे समुद्रे द्वाचत्वारिंशच्चन्द्रमस उद्दिष्टास्ते त्रिगुणाः क्रियन्ते जाताः षड्विंशं शतं, आदिमचन्द्रा अष्टादश, तद्यथा—द्वौ जम्बूद्वीपे चत्वारो लवणसमुद्रे द्वादश धातकीषण्डे, एतैरादिमचन्द्रैः सहितं षड्विंशं शतं चतुश्चत्वारिंशं शतं जातं, एतावन्तः पुष्करवरद्वीपे चन्द्रा एतावन्त एव च सूर्याः, एवं सर्वेष्वपि द्वीपसमुद्रेष्वेतत्करणवशाच्चन्द्रसङ्ख्या प्रतिपत्तव्या, सूर्यसङ्ख्याऽपि ॥ सम्प्रति प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं च ग्रहनक्षत्रतारापरिमाणज्ञानोपायमाह—अत्राग्रशब्दः परिमाणवाची, यत्र द्वीपे समुद्रे वा नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणं वा ज्ञातुमिच्छसि तस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा सम्बन्धिभिः शशिभिरेकस्य शशिनः परिवारभूतं नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणं च गुणितं सद् यावद् भवति तावत्प्रमाणं तत्र द्वीपे समुद्रे वा नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणमिति, यथा लवणसमुद्रे किल नक्षत्रादिपरिमाणं ज्ञातुमिष्टं, लवणसमुद्रे च शशिनश्चत्वारस्तत एकस्य शशिनः परिवारभूतानि यान्यष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि तानि चतुर्भिर्गुण्यन्ते जातं द्वादशोत्तरं शतं, एतावन्ति लवणसमुद्रे नक्षत्राणि, तथाऽष्टाशीतिर्ग्रहा एकस्य शशिनः परिवारभूतास्ते चतुर्भिर्गुण्यन्ते जातानि त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ३५२, एतावन्तो लवणसमुद्रे ग्रहाः, तथैकस्य शशिनः परिवारभूतानि तारागणकोटीकोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नव शतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि, तानि चतुर्भिर्गुण्यन्ते, जातानि कोटीकोटीनां द्वे लक्षे सप्तषष्टिः सहस्राणि नव शतानि २६७९००।००।००।०००।००।००० एतावत्यो लवणसमुद्रे तारागणकोटीकोटयः, एवंरूपा च नक्षत्रादीनां लवणसमुद्रे सङ्ख्या प्रागेवोक्ता, एवं सर्वेष्वपि द्वीपसमुद्रेषु नक्ष-

॥ ३४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

त्रादिसङ्ख्यापरिमाणं भावनीयम् ॥ सम्प्रति मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिनां चन्द्रसूर्याणां परस्परमन्तरपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—**'मनुष्यनगस्य'** मानुषोत्तरपर्वतस्य बहिश्चन्द्रात्सूर्यस्य सूर्याच्चन्द्रस्यान्तरं भवति **'अन्यूनानि'** परिपूर्णानि योजनानां पञ्चाशत् सहस्राणि, एतावता चन्द्रस्य सूर्यस्य च परस्परमन्तरमुक्तम् ॥ इदानीं चन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य सूर्यस्य च परस्परमन्तरमाह—**'सूरस्स य सूरस्स य'** इत्यादि, सूर्यस्य सूर्यस्य परस्परं चन्द्रस्य चन्द्रस्य परस्परमन्तरं भवति योजनानां शतसहस्रं—लक्षं, तथाहि—चन्द्रान्तरिताः सूर्याः सूर्यान्तरिताश्चन्द्रा बहिर्व्यवस्थिताः, चन्द्रसूर्याणां च परस्परमन्तरं पञ्चाशद्योजनसहस्राणि ५००००, ततश्चन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य सूर्यस्य च परस्परमन्तरं भवति योजनानां लक्षं, एतच्चैवमन्तरपरिमाणं सूचीश्रेण्या प्रतिपत्तव्यं न वलयाकारश्रेण्येति ॥ सम्प्रति बहिश्चन्द्रसूर्याणां पङ्क्त्याऽवस्थानमाह—नृलोकाद्बहिः पङ्क्त्याऽवस्थिताः सूर्यान्तरिताश्चन्द्राश्चन्द्रान्तरिता दिनकराः **'दीप्साः'** दीप्यन्ते स्म भास्करा इत्यर्थः, कथम्भूतास्ते चन्द्रसूर्याः? इत्याह—**'चित्रान्तरलेश्याकाः'** चित्रमन्तरं लेश्या च प्रकाशरूपा येषां ते तथा, तत्र चित्रमन्तरं चन्द्राणां सूर्यान्तरितत्वात् सूर्याणां चन्द्रान्तरितत्वात्, चित्रा लेश्या चन्द्रमसां शीतरश्मित्वात् सूर्याणामुष्णरश्मित्वात्, लेश्याविशेषप्रदर्शनार्थमाह—**'सुहलेसा मंदलेसा य'** सुखलेश्याश्चन्द्रमसो, न शीतकाले मनुष्यलोक इवात्यन्तशीतरश्मय इत्यर्थः, मन्दलेश्याः सूर्या न तु मनुष्यलोके निदाघसमय इव एकान्तोष्णरश्मय इत्यर्थः, आह च तत्त्वार्थटीकाकारो **हरिभद्रसूरिः**—"नात्यन्तं शीताश्चन्द्रमसः नात्यन्तोष्णाः सूर्याः किन्तु साधारणा द्वयोरपी"ति, इहेदमुक्तं भवति—यत्र द्वीपे समुद्रे वा नक्षत्रादिपरिमाणं ज्ञातुमिष्यते तत्रैकशशिपरिवारभूतं नक्षत्रादिपरिमाणं तावद्भिः शशिभिर्गुणयितव्यमिति । तत्रैकशशिपरिवारभूतानां ग्रहादीनां परिमाणमाह—'अट्ठासीई-' त्यादि गाथाद्वयमपि पाठसिद्धम् ॥ बहिः **'मनुष्यनगस्य'** मनुष्यपर्वतस्य चन्द्रसूर्याणां योगा अवस्थिता न मनुष्यलोक इवान्यान्यन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७७] + गाथा: ||१-३२||

दीप अनुक्रम [२५०--२८६]

क्षत्रसञ्चारिणश्चाराभावात्, क्वचित् 'अवट्ठिया तेया' इति पाठस्तत्रावस्थितानि तेजांसीति व्याख्येयं, किमुक्तं भवति?—सूर्याः सदैवानत्युष्णतेजसो न तु जातुचिदपि मनुष्यलोके ग्रीष्मकाल इवात्युष्णतेजसः, चन्द्रमसोऽपि सदैवानतिशीतलेश्याका न पुनः कदाचनाप्यन्तर्मनुष्यक्षेत्रस्य शिशिरकाल इवातिशीततेजस इति, तत्र प्रथमपाठपक्षे तानेवावस्थितान् योगानाह—'चंदा अभिई' इत्यादि, द्वितीयपाठपक्षे तथेति पठयितव्यं, चन्द्राः सर्वेऽपि मनुष्यक्षेत्राद्बहिरभिजिता नक्षत्रेण युक्ताः, सूर्याः पुनर्भवन्ति पुष्यैर्युक्ता इति ॥ सम्प्रति मानुषोत्तरपर्वतोच्चैस्त्वादिप्रतिपादनार्थमाह—

माणुसुत्तरे णं भंते! पव्वते केवतियं उड्ढं उच्चत्तेणं? केवतियं उव्वेहेणं? केवतियं मूले विक्खम्भेणं? केवतियं मज्झे विक्खंभेणं? केवतियं सिहरे विक्खंभेणं? केवतियं अंतो गिरिपरिरएणं? केवतियं बाहिं गिरिपरिरएणं? केवतियं मज्झे गिरिपरिरएणं? केवतियं उवरि गिरिपरिरएणं?, गोयमा! माणुसुत्तरे णं पव्वते सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढंउच्चत्तेणं चत्तारि तीसे जोयणसए कोसं च उव्वेहेणं मूले दसबावीसे जोयणसते विक्खंभेणं मज्झे सत्ततेवीसे जोयणसते विक्खंभेणं उवरि चत्तारिचउवीसे जोयणसते विक्खंभेणं अंतो गिरिपरिरएणं—एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं। तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं, बाहिरगिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं छत्तीसं च सहस्साइं सत्तचोद्दसोत्तरे जोयणसते परिक्खेवेणं, मज्झे गिरिपरिरएणं एगा जोयण-

॥ ३४१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
मानुषोत्तरपर्वत-अधिकार: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [१७८]

दीप अनुक्रम [२८७]

कोडी बायालीसं च सतसहस्साइं चोत्तीसं च सहस्सा अट्ठनेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, उवरि गिरिपरिरएणं एगा जोयणकोडी बायालीसं च सयसहस्साइं बत्तीसं च सहस्साइं नव य बत्तीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, मूले विच्छिन्ने मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए अंतो सण्हे मज्झे उदग्गे बाहिं दरिसणिज्जे ईसिं सण्णिसण्णे सीहणिसाई अवद्धजवरासिसंठाणसंठिते सव्वजंबूणयामए अच्छे सण्हे जाव पडिरूवे, उभओपासिं दोहिं पउमवरवेदियाहिं दोहि य वणसंडेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ते वण्णओ दोण्हवि ॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—माणुसुत्तरे पव्वते २?, गोयमा! माणुसुत्तरस्स णं पव्वतस्स अंतो मणुया उप्पिं सुवण्णा बाहिं देवा अदुत्तरं च णं गोयमा! माणुसुत्तरपव्वतं मणुया ण कयाइ विनिवइंसु वा वीतिवयंति वा वीतिवइस्संति वा णण्णत्थ चारणेहिं वा विज्जाहरेहिं वा देवकम्मुणा वावि, से तेणट्ठेणं गोयमा!० अदुत्तरं च णं जाव णिच्चेत्ति ॥ जावं च णं माणुसुत्तरे पव्वते तावं च णं अस्सिंलोए त्ति पवुच्चति, जावं च णं वासातिं वा वासधरातिं वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चति, जावं च णं गेहाइ वा गेहावणाति वा तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चति, जावं च णं गामाति वा जाव रायहाणीति वा तावं च णं अस्सिंलोएत्ति पवुच्चति, जावं च णं अरहंता चक्कवट्टि बलदेवा वासुदेवा पडिवासुदेवा चारणा विज्जाहरा समणा समणीओ सावया साविआओ मणुया पगतिभद्दगा विणीता तावं च णं अस्सिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोएत्ति पवुच्चति, जावं च णं समयाति वा आवलियाति वा आणापाणूइति वा थोवाइ वा लवाइ वा मुहुत्ताइ वा दिवसाति वा अहोरत्ताति वा पक्खाति वा मासाति वा उदूति वा अयणाति वा संवच्छराति वा जुगाति वा वाससताति वा वाससहस्साति वा वाससयसहस्साइ वा पुव्वंगाति वा पुव्वाति वा तुडियंगाति वा, एवं पुव्वे तुडिए अडडे अववे हूहुकए उप्पले पउमे णलिणे अच्छिणिउरे अउते णउते मउते चूलिया सीसपहेलिया जाव य सीसपहेलियंगेति वा सीसपहेलियाति वा पलिओवमेति वा सागरोवमेति वा उवसप्पिणीति वा ओसप्पिणीति वा तावं च णं अस्सिं लोगे वुच्चति, जावं च णं बादरे विज्जुकारे बायरे थणियसद्दे तावं च णं अस्सिं० जावं च णं बहवे ओराला बलाहका संसेयंति संमुच्छंति वासं वासंति तावं च णं अस्सिं लोए, जावं च णं बायरे तेउकाए तावं च णं अस्सिं लोए, जावं च णं आगराति वा नदीउह वा णिहीति वा तावं च णं अस्सिंलोगित्ति पवुच्चति, जावं च णं अगडाति वा णदीति वा तावं च णं अस्सिं लोए जावं च णं चंदोवरागाति वा सूरोवरागाति वा चंदपरिएसाति वा सूरपरिएसाति वा पडिचंदाति वा पडिसूराति वा इंदधणूइ वा उदगमच्छेइ वा कपिहसिताणि वा तावं च णं अस्सिंलोगेति प० ॥ जावं च णं चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं अभिगमणनिग्गमणवुड्ढिणिवुड्ढिअणवट्ठियसंठाणसंठिती आघविज्जति तावं च णं अस्सिं लोएत्ति पवुच्चति ॥ (सू० १७८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१७८]

दीप अनुक्रम [२८७]

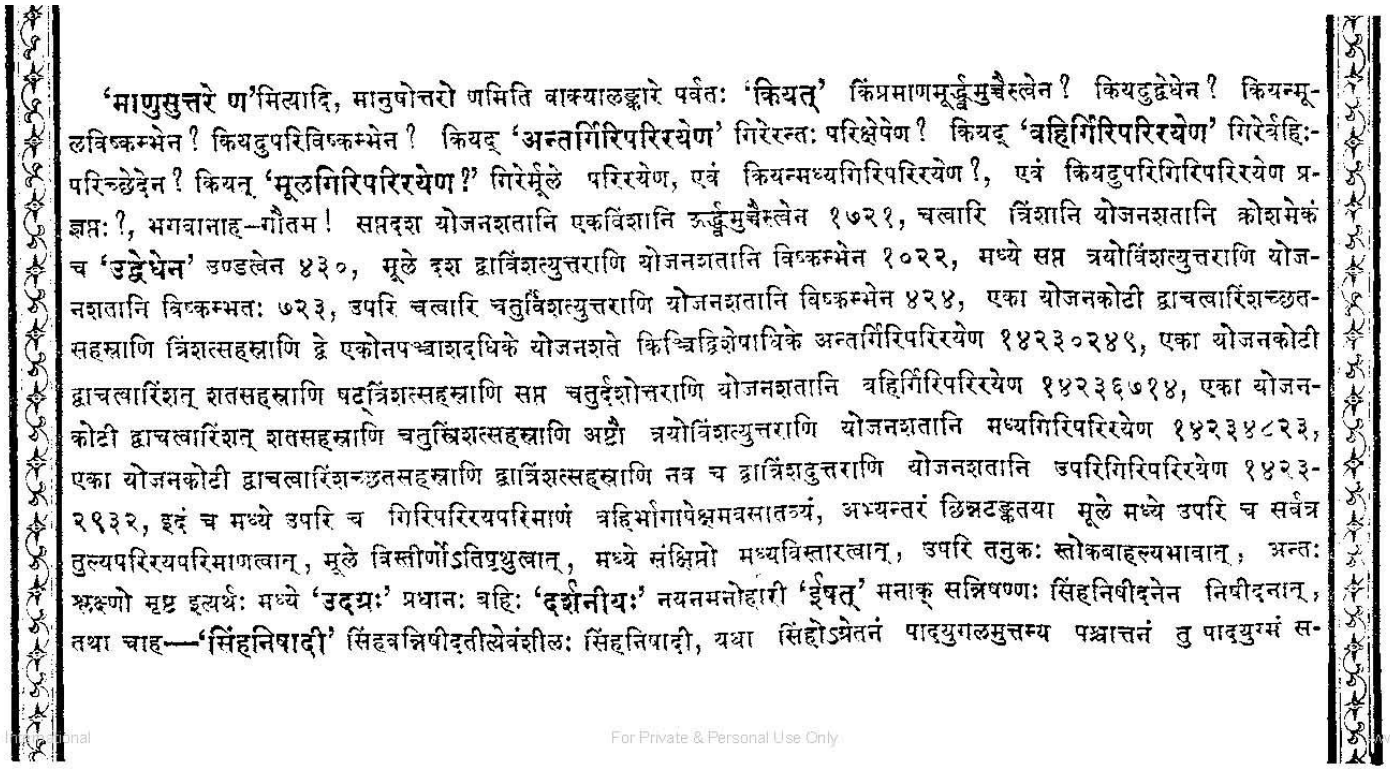

'माणुसुत्तरे ण'मित्यादि, मानुषोत्तरो णमिति वाक्यालङ्कारे पर्वतः 'कियत्' किंप्रमाणमूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन? कियदुद्वेधेन? कियन्मूलविष्कम्भेन? कियदुपरिविष्कम्भेन? कियद् 'अन्तर्गिरिपरिरयेण' गिरेरन्तः परिक्षेपेण? कियद् 'बहिर्गिरिपरिरयेण' गिरेर्बहिःपरिच्छेदेन? कियत् 'मूलगिरिपरिरयेण?' गिरेर्मूले परिरयेण, एवं कियन्मध्यगिरिपरिरयेण?, एवं कियदुपरिगिरिपरिरयेण प्रश्नः?, भगवानाह–गौतम! सप्तदश योजनशतानि एकविंशानि ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन १७२१, चत्वारि त्रिंशानि योजनशतानि क्रोशमेकं च 'उद्वेधेन' उण्डत्वेन ४३०, मूले दश द्वाविंशत्युत्तराणि योजनशतानि विष्कम्भेन १०२२, मध्ये सप्त त्रयोविंशत्युत्तराणि योजनशतानि विष्कम्भतः ७२३, उपरि चत्वारि चतुर्विंशत्युत्तराणि योजनशतानि विष्कम्भेन ४२४, एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशच्छतसहस्राणि त्रिंशत्सहस्राणि द्वे एकोनपञ्चाशदधिके योजनशते किञ्चिद्विशेषाधिके अन्तर्गिरिपरिरयेण १४२३०२४९, एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशत् शतसहस्राणि षट्त्रिंशत्सहस्राणि सप्त चतुर्दशोत्तराणि योजनशतानि बहिर्गिरिपरिरयेण १४२३६७१४, एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशत् शतसहस्राणि चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि अष्टौ त्रयोविंशत्युत्तराणि योजनशतानि मध्यगिरिपरिरयेण १४२३४८२३, एका योजनकोटी द्वाचत्वारिंशच्छतसहस्राणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि नव च द्वात्रिंशदुत्तराणि योजनशतानि उपरिगिरिपरिरयेण १४२३२९३२, इदं च मध्ये उपरि च गिरिपरिरयपरिमाणं बहिर्भागापेक्षमवसातव्यं, अभ्यन्तरं छिन्नटङ्कतया मूले मध्ये उपरि च सर्वत्र तुल्यपरिरयपरिमाणत्वात्, मूले विस्तीर्णोऽतिपृथुत्वात्, मध्ये संक्षिप्तो मध्यविस्तारत्वात्, उपरि तनुकः स्तोकबाहल्यभावात्, अन्तः श्लक्ष्णो मृष्ट इत्यर्थः मध्ये 'उदग्रः' प्रधानः बहिः 'दर्शनीयः' नयनमनोहारी 'ईषत्' मनाक् सन्निषण्णः सिंहनिषीदनेन निषीदनात्, तथा चाह—'सिंहनिषादी' सिंहवन्निषीदतीत्येवंशीलः सिंहनिषादी, यथा सिंहोऽग्रेतनं पादयुगलमुत्तम्य पश्चात्तनं तु पादयुग्मं स-

जी० ५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१७८]

दीप अनुक्रम [२८७]

ङ्कोन्य पुताभ्यां मनागवलम्बो निषीदति तथा निषण्णश्च शिरःप्रदेशे उन्नतः पश्चाद्भागे तु निम्नो निम्नतरः एवं मानुषोत्तरोऽपि जम्बूद्वीपदिशि छिन्नटङ्कः स चोन्नतः पाश्चात्यभागे तूपरितनभागादारभ्य पृथुत्वप्रदेशवृद्ध्या निम्नोनिम्नतर इति, एतदेवातिव्यक्तमाह—'अवद्धजवरासिसंठाणसंठिए' इति अपगतमर्द्धं यस्य सोऽपार्द्धः स चासौ यवश्च राशिश्च अपार्द्धयवराशी तयोरिव यत्संस्थानं यस्य तेन संस्थितः, यथा यवो राशिश्च धान्यानामपान्तराले ऊर्द्ध्वाधोभागेन छिन्नो मध्यभागे छिन्नटङ्क इव भवति बहिर्भागे तु शनैः शनैः पृथुत्ववृद्ध्या निम्नो निम्नतरस्तद्वदेषोऽपि, यत्रग्रहणं पृथग्व्याख्यातमन्यत्र केवलापार्द्धयवसंस्थानतयाऽपि प्रतिपादनात्, उक्तञ्च—"जंवूणयामओ सो रम्मो अद्धजवसंठिओ भणिओ। सिंहनिसादीएणं दुहाकओ पुक्खरद्दीवो ॥ १ ॥" 'सव्वजंबूणयामए' इति सर्वात्मना जाम्बूनदमयः 'अच्छे जाव पडिरूवे' इति प्राग्वत्। 'उभओ पासि'मित्यादि उभयोः पार्श्वयोरन्तर्भागे मध्यभागे चेत्यर्थः प्रत्येकमेकैकभावेन द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां वनखण्डाभ्यां च 'सर्वतः' सर्वासु दिक्षु 'समन्ततः' सामस्त्येन संपरिक्षिप्तः, द्वयोरपि पद्मवरवेदिकावनखण्डयोः प्रमाणं वर्णकश्च प्राग्वत् ॥ साम्प्रतं नामनिमित्तमभिधित्सुराह— 'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—मानुषोत्तरः पर्वतः मानुषोत्तरः पर्वतः ? इति, भगवानाह—गौतम ! मानुषोत्तरपर्वतस्य 'अन्तः' मध्ये मनुष्याः उपरि 'सुवर्णाः' सुवर्णकुमारा देवाः बहिः सामान्यतो देवाः, ततो मनुष्याणामुत्तरः—पर इति मानुषोत्तरः। अथान्यद् गौतम ! मानुषोत्तरं पर्वतं मनुष्या न कदाचिदपि व्यतिव्रजितवन्तः व्यतिव्रजन्ति व्यतिव्रजिष्यन्ति वा, किं सर्वथा न ? इत्याह—नान्यत्र, चारणेन पञ्चम्यर्थे तृतीया प्राकृतत्वात् 'चारणात्' जङ्घाचारणलब्धिसंपन्नात् विद्याधराद् देवकर्मण एव क्रियया देवोत्पादनादित्यर्थः, चारणादयो व्यतिव्रजन्त्यपि मानुषोत्तरं पर्वतमिति तद्वर्जनं, ततो मानुषाणामुत्तरः—उच्चैस्तरोऽलङ्घनीयत्वान्मानुषोत्तरः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तथा चाह–**'से एएणट्ठेण'**मित्याद्युपसंहारवाक्यं गतार्थं ॥ सम्प्रत्येतावानेव मनुष्यलोकोऽत्रैव च वर्षवर्षधरादय इत्येतत्सूत्रं प्रतिपादयितुकाम आह—**'जावं च ण'**मित्यादि, यावदयं मानुषोत्तरपर्वतस्तावत् **'अस्सिंलोए'** इति अयं मानुषलोक इति प्रोच्यते न परतः, तथा यावद्वर्षाणि–भरतादीनि क्षेत्राणीति वा वर्षधरपर्वता–हिमवदादय इति वा तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते न परतः, एतावता किमुक्तं भवति ?–वर्षाणि वर्षधरपर्वताश्च मनुष्यलोक एव नान्यत्रेति, एवमुत्तरत्रापि भावनीयं, तथा यावद्गृहाणीति वा गृहापतनानीति वा तत्र गृहाणि प्रतीतानि गृहापतनानीति–गृहेष्वागमनानि तावदयं मनुष्यलोकः प्रोच्यते, गृहाणि गृहापतनानि वाऽस्मिन्नेव मनुष्यलोके नान्यत्रेति भावः, तथा ग्रामा इति वा नकराणीति वा यावत्सन्निवेशा इति वा, यावत्करणात् खेटकर्वटादिपरिग्रहस्तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, अत्रापि भावार्थः प्राग्वत्, तथा यावदर्हन्तश्चक्रवर्त्तिनो बलदेवा वासुदेवाश्चारणा–जङ्घाचारणविद्याधराः **'श्रमणाः'** साधवः **'श्रमण्यः'** संयत्यः श्रावकाः श्राविकाश्च, तथा मनुष्याः प्रकृतिभद्रका इत्यादि यावद्विनीतास्तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, अर्हदादीनामत्रैव भावो नान्यत्रेति भावार्थः। तथा यावदुदारा बलाहका–मेघाः संस्विद्यन्ते संमूर्च्छन्ति–वर्षा वर्षन्ति, अस्य व्याख्यानं प्राग्वत् तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, मेघानामपि वर्षुकाणामत्रैव भावो नान्यत्रेति भावार्थः, तथा यावन् **'बादरः'** गुरुतरः **'स्तनितशब्दः'** गर्जितशब्द इति, 'बादरो विद्युत्कार इति वा' बादरा–अतिबहलतरा विद्युत् तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, तथा यावदयं बादरोऽग्निकायिकस्तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, बादराग्निकायिकस्यापि मनुष्यलोकात्परतोऽसम्भवात्, तथा यावदाकरा इति वा, आकरा–हिरण्याकरादयः, नद्य इति वा निधय इति वा तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, तेषामपि मनुष्यक्षेत्रादन्यत्रासम्भवात्, तथा यावत्समया इति वा, समयः–परमनिरुद्धः कालविशेषो यस्याधो विभागः कर्त्तुं न शक्यते, स च सूचिकदारकस्तरुणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलवानित्यादिपूर्वोक्तविशेषणविशिष्टो यावन्निपुणशिल्पोपगत एकां महतीपटशाटिकां पट्टशाटिकां वा गृहीत्वा शीघ्रं हस्तमात्रमपसारयन् यावता कालेनोपरितनतन्तुगतमुपरितनं पक्ष्म छिनत्ति ततोऽपि मनाक् सूक्ष्मतरो, जघन्ययुक्तासङ्ख्यातकसमयानां समुदायः एकावलिका, सङ्ख्येया आवलिका एक उच्छ्वासः सङ्ख्येयाऽऽवलिका निःश्वासः उच्छ्वासनिःश्वासौ समुदितावेक आनप्राणकालः, किमुक्तं भवति ?–हृष्टस्य नीरोगस्य श्रमबुभुक्षादिना निरुपक्रुष्टस्य यावता कालेनैतावुच्छ्वासनिःश्वासौ भवतः तावान् काल आनप्राणः, उक्तञ्च—"हट्ठस्स अणवकल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो। एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चए ॥१॥" सप्त प्राणा एकः स्तोकः सप्त स्तोका एको लवः सप्तसप्ततिसङ्ख्या लवा एको मुहूर्त्तः, उक्तञ्च—"सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे। लवाण सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए ॥ १ ॥"अस्मिंश्च मुहूर्त्ते यद्यावलिकाश्चिन्त्यन्ते तदा तासामेका कोटी सप्तषष्टिर्लक्षाः सप्तसप्ततिः सहस्राणि द्वे शते षोडशाधिके, उक्तञ्च—"एगा कोडी सत्तट्ठि लक्खा सत्तत्तरी सहस्सा य। दो य सया सोलहिया आवलियाणं मुहुत्तंमि ॥१॥" उच्छ्वासाश्च मुहूर्त्ते त्रीणि सहस्राणि सप्त शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि, उक्तञ्च—"तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा। एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ १ ॥" त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणोऽहोरात्रः, पञ्चदशाहोरात्रः पक्षः, द्वौ पक्षौ मासः, द्वौ मासौ ऋतुः, ते च षट्, तद्यथा–प्रावृड् वर्षारात्रः शरद् हेमन्तः वसन्तः ग्रीष्मश्च, तत्र—'आषाढाद्या ऋतव' इति वचनाद् आषाढश्रावणौ प्रावृड् भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षारात्रः कार्त्तिकमार्गशीर्षौ शरद् पौषमाघौ हेमन्तः फाल्गुनचैत्रौ वसन्तः वैशाखज्येष्ठौ ग्रीष्मः, ये त्वभिदधति–वसन्ताद्या ऋतवः (इति वसन्तः) ग्रीष्मः प्रावृट्शरदौ हेमन्तः शिशिर इति पठिति तदप्रमाणमवसातव्यं, जैनमतोत्तीर्णत्वात्, त्रय ऋतवोऽयनं, द्वे अयने संवत्सरः, पञ्चसंवत्सरं युगं, विंशतिर्युगानि वर्षशतं, इहाहोरात्रे मासे वर्षे वर्षशते चोच्छ्वासपरिमाणमेवं पू-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

वर्षसूरिभि: संकलितम्—"एगं च सयसहस्सं ऊसासाणं तु तेरस सहस्सा । नउयसएणं अहिया दिवसनिसिं होंति विन्नेया ॥ १ ॥ (११३९०)। मासेऽवि य ऊसासा लक्खा तिन्नीस सहस पणनउई। सत्त सयाइं जाणसु कहियाइं पुव्वसूरीहिं ॥२॥ (३३९५७००)। चत्तारि य कोडीओ लक्खा सत्तेव होंति नायव्वा । अडयालीससहस्सा चारसया होंति वरिसेणं ॥ ३ ॥" (४०७४८४००) । दश वर्षशतानि वर्षसहस्रं शतं वर्षसहस्राणां वर्षशतसहस्रं चतुरशीतिः वर्षशतसहस्राणि एकं पूर्वाङ्गं, चतुरशीतिः पूर्वाङ्गशतसहस्राणि एकं पूर्वं, चतुरशीतिः पूर्ववर्षशतसहस्राणि एकं त्रुटिताङ्गं, चतुरशीतिः त्रुटिताङ्गशतसहस्राणि एकं त्रुटितं, चतुरशीतिस्त्रुटितशतसहस्राणि एकमडडाङ्गं, चतुरशीतिरडडाङ्गशतसहस्राणि एकमडडं, चतुरशीतिरडडशतसहस्राणि एकमववाङ्गं, चतुरशीतिरववाङ्गशतसहस्राणि एकमववं, चतुरशीतिरववशतसहस्राणि एकं हूहुकाङ्गं, चतुरशीतिर्हूहुकाङ्गशतसहस्राणि एकं हूहुकं, चतुरशीतिर्हूहुकशतसहस्राणि एकमुत्पलाङ्गं, चतुरशीतिरुत्पलाङ्गशतसहस्राणि एकमुत्पलं, चतुरशीतिरुत्पलशतसहस्राणि एकं पद्माङ्गं, चतुरशीतिः पद्माङ्गशतसहस्राणि एकं पद्मं, चतुरशीतिः पद्मशतसहस्राणि एकं नलिनाङ्गं, चतुरशीतिर्नलिनाङ्गशतसहस्राणि एकं नलिनं, चतुरशीतिर्नलिनशतसहस्राणि एकमर्थनिकुराङ्गं, चतुरशीतिरर्थनिकुराङ्गशतसहस्राणि एकमर्थनिकुरं, चतुरशीतिरर्थनिकुरशतसहस्राणि एकमयुताङ्गं, चतुरशीतिरयुताङ्गशतसहस्राणि एकमयुतं, चतुरशीतिरयुतशतसहस्राणि एकं प्रयुताङ्गं, चतुरशीतिः प्रयुताङ्गशतसहस्राणि एकं प्रयुतं, चतुरशीतिः प्रयुतशतसहस्राणि एकं नयुताङ्गं, चतुरशीतिर्नयुताङ्गशतसहस्राणि एकं नयुतं, चतुरशीतिर्नयुतशतसहस्राणि एकं चूलिकाङ्गं, चतुरशीतिश्चूलिकाङ्गशतसहस्राणि एका चूलिका, चतुरशीतिश्चूलिकाशतसहस्राणि एकं शीर्षप्रहेलिकाङ्गं, चतुरशीतिः शीर्षप्रहेलिकाङ्गशतसहस्राणि एका शीर्षप्रहेलिका, एतावानेव गणितस्य विषयोऽतः परमौपमिकं कालपरिमाणं, एतदेवाह—पल्योपममिति वा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पल्योपमस्वरूपं सङ्ग्रहणिटीकातोऽवसातव्यं, तत्र सविस्तरमभिहितत्वात्, पल्योपमानां दश कोटीकोट्य एकं सागरोपमं, दश कोटीकोट्यः सागरोपमाणां सुषमसुषमाद्यरकक्रमेण एकाऽवसर्पिणी, सागरोपमाणां दश कोटीकोट्य एव दुष्षमदुष्षमाद्यरकक्रमेणैकोत्सर्पिणी, तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, अन्यत्रैवंरूपकालपरिमाणासम्भवात्, कालद्रव्यस्य मनुष्यक्षेत्र एव भावात् ॥ 'जावं च ण'मित्यादि, यावच्चन्द्रोपरागा इति वा सूर्योपरागा इति वा चन्द्रपरिवेषा इति वा सूर्यपरिवेषा इति वा प्रतिचन्द्रा इति वा प्रतिसूर्या इति वा इन्द्रधनुरिति वा उदकमत्स्या इति वा कपिहसितमिति वा, एतेषामर्थः प्राग्वत्तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, अन्यत्रैषामभाव इति भावः ॥ 'जावं च ण'मित्यादि, यावच्चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणि, सूत्रे पुंस्त्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, णमिति वाक्यालङ्कारे अभिगमनं—सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरप्रवेशनं निर्गमनं—सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिर्गमनं वृद्धिः—शुक्लपक्षे चन्द्रमसो वृद्धिप्रतिभासः निर्वृद्धिः—वृद्धेरभावः, कृष्णपक्षे चन्द्रमस एव हानिप्रतिभास इति भावः, अनवस्थितं—सन्ततं चारप्रवृत्त्या यत्संस्थानं—सम्यगवस्थानमनवस्थितसंस्थानं, एतेषां द्वन्द्वैस्तैः संस्थितानि—यथायोगं व्यवस्थितानि अभिगमननिर्गमनवृद्धिनिर्वृद्ध्यनवस्थितसंस्थानसंस्थितानीति व्याख्यायन्ते तावदयं मनुष्यलोक इति प्रोच्यते, अन्यत्र चन्द्रादीनामभिगमनाद्यसम्भवात् ॥

अंतो णं भंते! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवा ते णं भदन्त! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितीया गतिरतिया गतिसमावण्णगा?, गोयमा! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा णो कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा नो चारट्ठितीया गतिरतिया गतिसमावण्णगा उद्दमुहकलंबुयपुप्फसंठाणसंठि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तेहिं जोयणसाहस्सितेहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सियाहिं बाहिरियाहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहयनट्टगीतवादितंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवादितरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा महया उक्कट्ठिसीहणायबोलकलकलसद्देण विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा अच्छयपव्वयरायं पदाहिणावत्तमंडलयारं मेरुं अणुपरियडंति ॥ तेसि णं भंते! देवाणं इंदे चवति से कहमिदाणिं पकरेंति?, गोयमा! ताहे चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अन्ने इंदे उववण्णे भवति ॥ इंदट्ठाणे णं भंते! केवतियं कालं विरहिते उववातेणं?, गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ॥ बहिया णं भंते! मणुस्सखेत्तस्स जे चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवा ते णं भंते! देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितीया गतिरतिया गतिसमावण्णगा?, गोयमा! ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा नो कप्पोववण्णगा विमाणोववन्नगा नो चारोववण्णगा चारट्ठितीया नो गतिरतिया नो गतिसमावण्णगा पक्किट्ठगसंठाणसंठितेहिं जोयणसतसाहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सियाहिं य बाहिराहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महताहतणट्टगीयवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा सुहलेस्सा सीयलेस्सा मंदलेस्सा मंदायवलेस्सा चित्तंतरलेसागा कूडा इव ठाणट्ठिता अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेसाहिं ते पदेसे सव्वतो समंता ओभासेंति उज्जोवेंति तवंति पभासेंति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

जया णं भंते! तेसिं देवाणं इंदे चयति से कहमिदाणिं पकरेंति?, गोयमा! जाव चत्तारि पंच सामाणिया तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव तत्थ अण्णे उववण्णे भवति। इंदट्ठाणे णं भंते! केवतियं कालं विरहओ उववातेणं?, गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ॥ (सू० १७९)

'अंतो ण'मित्यादि, 'अन्तः' मध्ये णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य ये चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपास्ते भदन्त! देवाः किमूर्द्धोपपन्नाः?—सौधर्मादिभ्यो द्वादशभ्यः कल्पेभ्य ऊर्द्धमुपपन्ना ऊर्द्धोपपन्नाः कल्पेषु—सौधर्मादिषु उपपन्नाः कल्पोपपन्नाः विमानेषु—सामान्यरूपेषु उपपन्ना विमानोपपन्नाः चारो—मण्डलगत्या परिभ्रमणं तमुपपन्ना—आश्रितवन्तश्चारोपपन्नाः चारस्य—यथोक्तरूपस्य स्थितिः—अभावो येषां ते चारस्थितिका अपगतचारा इत्यर्थः गतौ रतिः—आसक्तिः प्रीतिर्येषां ते गतिरतिकाः, एतेन गतौ रतिमात्रमुक्तं, सम्प्रति साक्षाद्गतिं प्रश्नयति—**'गतिसमापन्नाः?'** गतिसमापन्नाः—गतियुक्ताः, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—गौतम! ते देवा नोर्द्धोपपन्नास्तथा चारोपपन्नाश्चारसहिता नो चारस्थितिकाः, तथा स्वभावतोऽपि गतिरतिकाः साक्षाद्गतियुक्ताश्च, नालिकापुष्पसंस्थानसंस्थितैः **'योजनसाहस्रिकैः'** अनेकयोजनसहस्रप्रमाणैस्तापक्षेत्रैः **'साहस्रिकाभिः'** अनेकसहस्रसङ्ख्याभिर्वाह्याभिः पर्षद्भिः, अत्र बहुवचनं व्यत्ययापेक्षया, **'वैकुर्विकाभिः'** विकुर्वितनानारूपधारिणीभिः 'महयाहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेण'मिति पूर्ववत् **'दिव्यान्'** प्रधानात् भोगार्हो भोगाः—शब्दादयो भोगभोगास्तान् भुञ्जानास्तथा स्वभावतो गतिरतिकैर्बाह्यपर्षदन्तर्गतैर्देवैर्वेगेन गच्छत्सु विमानेषु **'उत्कृष्टतः'** उत्कर्षवशेन ये मुच्यन्ते सिंहनादादयश्च क्रियन्ते बोलाः, बोलो नाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

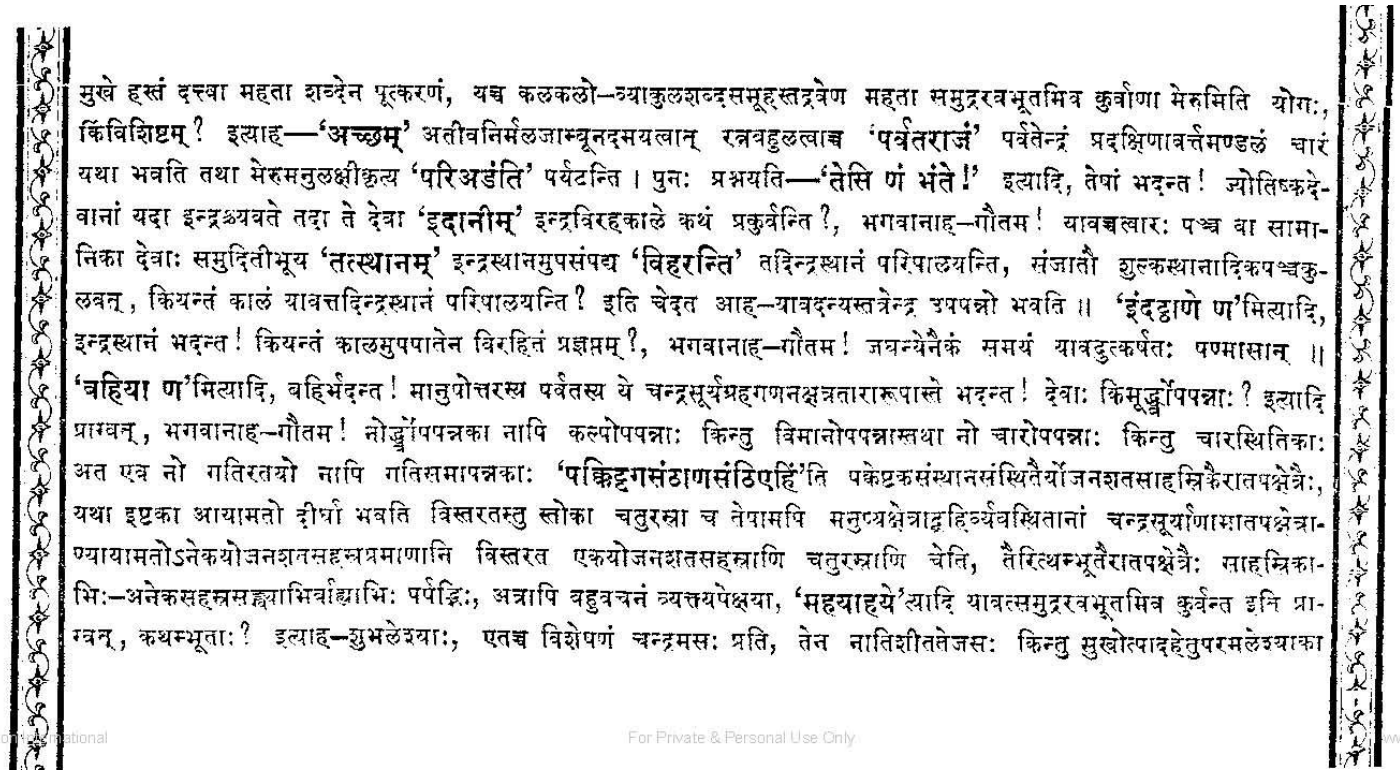

मुखे हस्तं दत्त्वा महता शब्देन पूत्करणं, यच्च कलकलो–व्याकुलशब्दसमूहस्तद्रवेण महता समुद्ररवभूतमिव कुर्वाणा मेरुमिति योगः, किंविशिष्टम्? इत्याह—**'अच्छम्'** अतीवनिर्मलजाम्बूनदमयत्वात् रत्नबहुलत्वाच्च **'पर्वतराजं'** पर्वतेन्द्रं प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलं चारं यथा भवति तथा मेरुमनुलक्षीकृत्य **'परिअडंति'** पर्यटन्ति। पुनः प्रश्नयति—**'तेसि णं भंते!'** इत्यादि, तेषां भदन्त! ज्योतिष्कदेवानां यदा इन्द्रश्च्यवते तदा ते देवा **'इदानीम्'** इन्द्रविरहकाले कथं प्रकुर्वन्ति?, भगवानाह–गौतम! यावच्चत्वारः पञ्च वा सामानिका देवाः समुदितीभूय **'तत्स्थानम्'** इन्द्रस्थानमुपसंपद्य **'विहरन्ति'** तदिन्द्रस्थानं परिपालयन्ति, संजातौ शुल्कस्थानादिकपञ्चकुलवत्, कियन्तं कालं यावत्तदिन्द्रस्थानं परिपालयन्ति? इति चेदत आह–यावदन्यस्तत्रेन्द्र उपपन्नो भवति॥ **'इंदट्ठाणे ण'**मित्यादि, इन्द्रस्थानं भदन्त! कियन्तं कालमुपपातेन विरहितं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! जघन्येनैकं समयं यावदुत्कर्षतः षण्मासान्॥ **'बहिया ण'**मित्यादि, बहिर्भदन्त! मानुषोत्तरस्य पर्वतस्य ये चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपास्ते भदन्त! देवाः किमूर्द्धोपपन्नाः? इत्यादि प्राग्वत्, भगवानाह–गौतम! नोर्द्धोपपन्नका नापि कल्पोपपन्नाः किन्तु विमानोपपन्नास्तथा नो चारोपपन्नाः किन्तु चारस्थितिकाः अत एव नो गतिरतयो नापि गतिसमापन्नकाः **'पक्किट्ठगसंठाणसंठिएहिं'**ति पक्वेष्टकसंस्थानसंस्थितैर्योजनशतसाहस्रिकैरातपक्षेत्रैः, यथा इष्टका आयामतो दीर्घा भवति विस्तरतस्तु स्तोका चतुरस्रा च तेषामपि मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्व्यवस्थितानां चन्द्रसूर्याणामातपक्षेत्राण्यायामतोऽनेकयोजनशतसहस्रप्रमाणानि विस्तरत एकयोजनशतसहस्राणि चतुरस्राणि चेति, तैरित्थम्भूतैरातपक्षेत्रैः साहस्रिकाभिः–अनेकसहस्रसङ्ख्याभिर्वाह्याभिः पर्षद्भिः, अत्रापि बहुवचनं व्यक्तयपेक्षया, **'महयाहये'**त्यादि यावत्समुद्ररवभूतमिव कुर्वन्त इति प्राग्वत्, कथम्भूताः? इत्याह–शुभलेश्याः, एतच्च विशेषणं चन्द्रमसः प्रति, तेन नातिशीततेजसः किन्तु सुखोत्पादहेतुपरमलेश्याका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यर्थः, मन्दलेश्या, एतच्च विशेषणं सूर्यान् प्रति, तथा च एतदेव व्याचष्टे—'मन्दातपलेश्याः' मन्दा नात्युष्णस्वभावा आतपरूपा लेश्या—रश्मिसङ्घातो येषां ते तथा, पुनः कथम्भूताश्चन्द्रादित्याः? इत्याह—'चित्रान्तरलेश्याः' चित्रमन्तरं लेश्या च येषां ते तथा, भावार्थश्चास्य पदस्य प्रागेवोपदर्शितः, त इत्थम्भूताश्चन्द्रादित्याः परस्परमवगाढाभिर्लेश्याभिः, तथाहि—चन्द्रमसां सूर्याणां च प्रत्येकं लेश्या योजनशतसहस्रप्रमाणविस्तारा, चन्द्रसूर्याणां च सूचीपङ्क्त्या व्यवस्थितानां परस्परमन्तरं पञ्चाशद् योजनसहस्राणि, ततश्चन्द्रप्रभासम्मिश्राः सूर्यप्रभाः सूर्यप्रभासम्मिश्राश्च चन्द्रप्रभाः इतीत्थं परस्परमवगाढाभिर्लेश्याभिः **कूटानीव**—पर्वतोपरिव्यवस्थितशिखराणीव **'स्थानस्थिताः'** सदैवैकत्र स्थाने स्थितास्तान् तान् प्रदेशान् स्वस्वप्रत्यासन्नान् उद्द्योतयन्ति अवभासयन्ति तापयन्ति प्रकाशयन्ति ॥ 'तेसि णं भंते! देवाणं जाहे इंदे चयई'त्यादि प्राग्वत् ॥

पुक्खरवरण्णं दीवं पुक्खरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जाव संपरिक्खित्ताणं चिट्ठति ॥ पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते?, गोयमा! संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते ॥ पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स कति दारा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता तहेव सव्वं पुक्खरोदसमुद्दपुरत्थिमपेरंते वरुणवरदीवपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं पुक्खरोदस्स विजए नामं दारे पण्णत्ते, एवं सेसाणवि । दारंतरंमि संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । पदेसा जीवा य तहेव । से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति?—पुक्ख-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
पुष्करोद-आदि समुद्राधिकारः आरभ्यते

रोदे समुद्दे २?, गोयमा! पुक्खरोदस्स णं समुद्दस्स उदगे अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं सिरिधरसिरिप्पभा य दो देवा जाव महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से एतेणट्ठेणं जाव णिच्चे। पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे केवतिया चंदा पभासिंसु वा ३?, संखेज्जा चंदा पभासेंसु वा ३ जाव तारागण कोडीकोडीउ सोभेंसु वा ३॥ पुक्खरोदे णं समुद्दे वरुणवरेणं दीवेणं संपरि० वट्टे वलयागारे जाव चिट्ठति, तहेव समचक्कवालसंठिते केवतियं चक्कवालविक्खंभेणं? केवइयं परिक्खेवेणं? पण्णत्ता, गोयमा! संखिज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पउमवरवेदियावणसंडवण्णओ दारंतरं पदेसा जीवा तहेव सव्वं॥ से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ वरुणवरे दीवे २?, गोयमा! वरुणवरे णं दीवे तत्थ २ देसे २ तहिं २ बहुओ खुड्डा खुड्डियाओ जाव बिलपंतियाओ अच्छाओ पत्तेयं २ पउमवरवेइयापरि० वण० वारुणिवरोदगपडिहत्थाओ पासातीताओ ४, तासु णं खुड्डाखुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वता जाव खडहडगा सव्वफलिहामया अच्छा तहेव वरुणवरुणप्पभा य एत्थ दो देवा महिड्ढीया परिवसंति, से तेणट्ठेणं जाव णिच्चे। जोतिसं सव्वं संखेज्जगेणं जाव तारागणकोडिकोडीओ। वरुणवरण्णं दीवं वरुणोदे णामं समुद्दे वट्टे वलया० जाव चिट्ठति, समचक्क० विसमचक्कवि० तहेव सव्वं भाणियव्वं, विक्खंभपरिक्खेवो संखिज्जाइं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोयणसहस्साइं दारंतरं च पउमवर० वणसंडे पएसा जीवा अट्ठो गोयमा! वारुणोदस्स णं स-
मुद्दस्स उदए से जहा नामए चंदप्पभाइ वा मणिसिलागाइ वा वरसीधुवरवारुणीइ वा पत्ता-
सवेइ वा पुप्फासवेइ वा चोयासवेइ वा फलासवेइ वा महुमेरगइ वा जातिप्पसन्नाइ वा खजूर
सारेइ वा मुद्दियासारेइ वा कापिसायणाइ वा सुपक्कखोयरसेइ वा पभूतसंभारसंचिता पोसमा-
ससतभिसयजोगवत्तिता निरुवहतविसिट्ठदिन्नकालोवयारा सुधोता उक्कोसग (मयपत्ता) अट्ठ-
पिट्ठपुट्ठा (पिट्ठ निट्ठिजा) [मुखइंतवरकिमदिण्णकद्दमा कोपसन्ना अच्छा वरवारुणी अतिरसा
जंबूफलपुट्ठवन्ना सुजाता ईसिउट्ठावलंबिणी अहियमधुरपेज्जा ईसासिरत्तणेत्ता कोमलकवोलकरणी
जाव आसादिता विसदिता अणिहुयसंलावकरणहरिसपीतिजणणी संतोसततविबोक्कहावबि-
ब्भमविलासवेल्लहलगमणकरणी विरणमधियसत्तजणणी य होति संगामदेसकालेकयरणसम-
रपसरकरणी कढियाणविज्जुपयतिहिययाण मउयकरणी य होति उववेसिता समाणा गतिं ख-
लावेति य सयलंमिवि सुभासवुप्पालिया समरभग्गवणोसहयारसुरभिरसदीविया सुगंधा आ-
सायणिज्जा विस्सायणिज्जा पीणणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा सविंदियगातपल्हायणिज्जा]
आसला मांसला पेसला (ईसी ओट्ठावलंबिणी ईसी तंबच्छिकरणी ईसी वोच्छेया कडुआ)
वण्णेणं उववेया गंधेणं उववेया रसेणं उववेया फासेणं उववेया, भवे एयारूवे सिया?, गोयमा!

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१८०]

दीप अनुक्रम [२८९--२९१]

नो इणट्ठे समट्ठे, वारुणस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरे जाव उदए। से एएणट्ठेणं एवं वुच्चति०, तत्थ णं वारुणिवारुणकंता देवा महिड्ढीया० जाव परिवसंति, से एएणट्ठेणं जाव णिच्चे, सव्वं जोइससंखिज्जे केण नायव्वं वारुणवरे णं दीवे कइ चंदा पभासिंसुवा ३? ॥ (सू० १८०)

'पुक्खरवरण्ण'मित्यादि, पुष्करवरं णमिति वाक्यालङ्कारे द्वीपं पुष्करोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति ॥ 'पुक्खरोदे णं भंते! समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए' इत्यादि प्राग्वत् ॥ सम्प्रति विष्कम्भादिप्रतिपादनार्थमाह ---'पुक्खरोदे ण'मित्यादि, पुष्करोदो भदन्त! समुद्रः कियच्चक्रवालविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! सङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेन सङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः । 'से ण'मित्यादि, स पुष्करोदः समुद्र एकया पद्मवरवेदिकया सामर्थ्यादष्टयोजनोच्छ्रयजगत्यपरिभाविन्या एकेन वनखण्डेन सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्तः ॥ 'पुक्खरोदस्स णं भंते!' इत्यादि, पुष्करोदस्य भदन्त! समुद्रस्य कति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं, क्व भदन्त! पुष्करोदसमुद्रस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! पुष्करोदसमुद्रस्य पूर्वार्द्धपर्यन्तेऽरुणवरद्वीपपूर्वार्द्धस्य पश्चिमदिशि, अत्र पुष्करोदसमुद्रस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तच्च जम्बूद्वीपविजयद्वारवद्वक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करोदे समुद्रे ॥ 'कहि ण'मित्यादि, क्व भदन्त! पुष्करोदसमुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! पुष्करोदसमुद्रस्य दक्षिणपर्यन्तेऽरुणवरद्वीपदक्षिणार्द्धस्योत्तरतोऽत्र पुष्करोदसमुद्रस्य वैजयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम् ॥ क्व भदन्त! पुष्करोदसमुद्रस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! पुष्करोदसमुद्रस्य पश्चिमपर्यन्तेऽरुणवरद्वीपपश्चिमार्द्धस्य

जी० ५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८०]

दीप अनुक्रम [२८९--२९१]

पूर्वतोऽत्र पुष्करोदसमुद्रस्य जयन्तं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, तदपि जम्बूद्वीपगतजयन्तद्वारवत्, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करोदसमुद्रे ॥ **'कहि ण'**मित्यादि, क्व भदन्त! पुष्करोदसमुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! पुष्करोदसमुद्रस्योत्तरपर्यन्तेऽरुणवरद्वीपस्य दक्षिणतोऽत्र पुष्करोदसमुद्रस्यापराजितं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्, एतदपि जम्बूद्वीपगतापराजितद्वारवदवक्तव्यं, नवरं राजधानी अन्यस्मिन् पुष्करोदसमुद्रे ॥ **'पुक्खरोदस्स ण'**मित्यादि, पुष्करोदस्य भदन्त! समुद्रस्य द्वारस्य द्वारस्य च परस्परमन्तरमेतत् कियत् **'अवाधया'** अन्तरित्वा व्याघातरूपया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! सङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राणि द्वारस्य द्वारस्य च परस्परमवाधयाऽन्तरं प्रज्ञप्तम् ॥ **'पएसे'**त्यादि प्रदेशजीवोपपातसूत्रचतुष्टयं तथैव पूर्ववत्, नवरम्–"पुक्खरोयस्स णं भंते! समुद्दस्स पएसा अरुणवरं दीवं पुट्ठा?, हंता! पुट्ठा, ते णं भंते! पुक्खरोदे समुद्दे अरुणवरे दीवे?, गोयमा! पुक्खरोए णं समुद्दे नो अरुणवरे दीवे। अरुणवरस्स णं भंते! दीवस्स पएसा पुक्खरोदण्णं समुद्दं पुट्ठा?, हंता पुट्ठा, ते णं भंते! किं अरुणवरे दीवे पुक्खरोदे समुद्दे?, गोयमा! अरुणवरे णं दीवे नो खलु ते पुक्खरोए समुद्दे। पुक्खरोए णं भंते! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता अरुणवरे दीवे पच्चायंति?, गोयमा! अत्थेगइया पच्चायंति अत्थेगइया नो पच्चायंति। अरुणवरे णं भंते! दीवे जीवा उद्दाइत्ता पुक्खरोदे समुद्दे०?" इति, (पुष्करोदान्वर्थे) भगवानाह–गौतम! पुष्करोदस्य णमिति पूर्ववत् समुद्रस्योदकम् **'अच्छम्'** अनाविलं **'पथ्यं'** न रोगहेतुः **'जात्यं'** न विजातिमत् **'तनु'** लघुपरिणामं **'स्फटिकवर्णाभं'** स्फटिकरत्नच्छायं प्रकृत्योदकरसं प्रज्ञप्तं, श्रीधरश्रीप्रभौ चात्र–पुष्करोदे समुद्रे द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, ततस्ताभ्यां सपरिवाराभ्यां गगनमिव चन्द्रादित्याभ्यां ग्रहनक्षत्रादिपरिवारोपेताभ्यां तदुदकमवभासत इति, पुष्करमिवोदकं यस्यासौ पुष्करोदः, तथा चाह–**'से एएणट्ठेण'**मित्यादुपसंहारवाक्यम्। "पुक्खरोए णं भंते! समुद्दे कइ चंदा पभा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

सिमु ?' इत्यादि पाठसिद्धं, सर्वत्र सङ्ख्येयमय निर्वचनभावात् ॥ **'पुक्खरोदण्णं समुद्द'**मित्यादि, पुष्करोदं णमिति पूर्ववत् समुद्रं वरुणवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति । अत्रापि पुष्करोदसमुद्रवच्चक्रवालविष्कम्भपरिक्षेपवेदिकावनखण्डद्वारतदन्तरप्रदेशजीवोपपातवक्तव्यता वक्तव्या ॥ सम्प्रति नामान्वर्थमभिधित्सुराह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते वरुणवरो द्वीपो वरुणवरो द्वीपः? इति, भगवानाह–गौतम! वरुणवरस्य द्वीपस्य तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे बहवः 'खुड्डा खुड्डियाओ जाव विलपंतियाओ यावत्करणात् पुक्खरणीओ गुंजालियाओ दीहियाओ सराओ सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ बिलपंतीओ अच्छाओ जाव महुररसणिचयातो' इति यावत्करणात् 'सण्हाओ रयणमयकूलाओ समतीराओ वइरामयपासाणाओ तवणिज्जतलाओ सुवण्णसुज्झरययवालुयाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडाओ सुहोयाराओ सुहुत्ताराओ णाणामणितित्थसुबद्धाओ चाउक्कोणाओ अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछन्नपत्तभिसमुणालाओ बहुलुप्पलकुमुयनलिणसुभगसोगंधियाओ पुंडरीयसयपत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिलपडिपुण्णाओ पडिहत्थगभमन्तमच्छकच्छभअणेगसउणगणमिहुणविचरियसद्दुण्णइयमहुरसरनाइयाओ" अस्य व्याख्यानं प्राग्वत् । 'वारुणीवरोदगपडिहत्थाओ' इत्यादि, वारुणिवरे च वरवारुणीव यद् उदकं तेन **'पडिहत्थाओ'** प्रतिपूर्णाः 'पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ' इति पाठसिद्धम् । **'तिसोवानतोरणा'** इति तासां त्रिसोपानानि तोरणानि च प्रत्येकं वक्तव्यानि, तानि चैवम्—"तासि णं खुड्डाखुड्डियाणं वावीणं पुक्खरिणीणं दीहियाणं गुंजालियाणं सरसियाणं सरपंतियाणं सरसरपंतियाणं बिलपंतियाणं पत्तेयं २ चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पन्नत्ता, तेसि णं तिसोपाणपडिरूवगाणं इमे एयारूवे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८०]

दीप अनुक्रम [२८९--२९१]

वण्णावासे पन्नत्ते, तंजहा—वइरामया नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहियक्ख-मइओ सूईओ नाणामणिमया अवलंबणा अवलंबणबाहाओ पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरतो पत्तेयं २ तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा नाणामणिमया नाणामणिमएसु खंभेसु उवनिविट्ठा विविहसुत्तंतरोवचिया विविहतारारू-वोववेया ईहामिगउसभतुरगनरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चीसहस्समालिणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तेसि णं तोरणाणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा पन्नत्ता, तंजहा—सोत्थियसिरिव-च्छनंदियावत्तवद्धमाणगभद्दासणकलसमच्छदप्पणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे किण्ह-चामरज्झया नीलचामरज्झया लोहियचामरज्झया हालिद्दचामरज्झया सुक्किलचामरज्झया अच्छा सण्हा रूप्पपट्टा वइरामयदंडा जल-यामलगंधिया सुरम्मा पासाईया दरसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। तेसि णं तोरणाणं उवरिं बहवे छत्ताइच्छत्ता पडागाइपडागा घंटा-जुयला उप्पलहत्थया कुमुयहत्थया नलिणहत्थगा सुभगहत्थगा सोगंधियहत्थगा पोंडरियहत्थगा महापोंडरीयहत्थगा सतपत्तहत्थगा सहस्सपत्तहत्थगा सयसहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।" अस्य व्याख्या पूर्ववत्। 'तासि णं खुड्डाखुड्डियाणं वावीणं पुक्खरिणीणं जाव बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वगा नियगपव्वयगा जगतीपव्वयगा दारुपव्वयगा मंडवगा दगमंडवगा दगमालगा दगपासाया उसडगा खडखडगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।' इति प्रा-

॥ ३५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

ग्वत् । 'तेसु णं पव्वयगेसु जाव पक्खंदोलगेसु बहवे हंसासणाइं उन्नयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं पउमासणाइं सीहासणाइं दिसासोवत्थियासणाइं सव्वफालियामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूवाइं । वरुणवरस्स णं दीवस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे आलीघरगा मालीघरगा केयइघरगा अच्छणघरगा पेच्छणघरगा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गत्तघरगा मोहणघरगा चित्तहरगा मालघरगा जालघरगा कुसुमघरगा सव्वफालियामया अच्छा जाव पडिरूवा । तेसु णं आलीघरएसु जाव कुसुमघरएसु बहवे हंसासणाइं जाव दिसासोवत्थियासणाइं सव्वफालियामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूवाइं। वरुणवरे णं दीवे णं तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे जातिमंडवगा जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा नवमालियामंडवगा वासंतियमंडवगा दहिवासइमंडवगा सूरुल्लियामंडवगा तंबोलमंडवगा अप्फायामंडवगा अइमुत्तमंडवगा मुद्दियामंडवगा मालुयामंडवगा सामलयामंडवगा सव्वफालिहामया अच्छा जाव पडिरूवा । तेसु णं जाइमंडवेसु जाव सामलयामंडवेसु बहवे पुढविसिलापट्टगा पन्नत्ता, अप्पेगइया हंसासणसंठिया अप्पेगइया कोंचासणसंठिया जाव अप्पेगइया दिसासोवत्थियासणसंठिया अप्पेगइया वरसयणविसिट्ठसंठाणसंठिया सव्वफालियामया अच्छा जाव पडिरूवा, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति निसीयंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीडंति पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणाणं फलवित्तिविसेसेसे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति' एतत्सर्वं प्राग्वद् व्याख्येयं, नवरं पुस्तकेष्वन्यथाऽन्यथा पाठ इति यथाऽवस्थितपाठप्रतिपत्त्यर्थं सूत्रमपि लिखितमस्ति, तदेवं यस्माद्वरवारुणीवात्र वाप्यादिपूर्वकं तस्मादेष द्वीपो वरुणवर:, अन्यत्र वरुण वरुणप्रभौ चात्र वरुणवरे द्वीपे द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतस्तस्माद्वरुणवरो–वरुणदेवप्रधान:, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि। चन्द्रादिसङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—'वरुणवरे णं दीवे कइ चंदा पभासिंसु' इत्यादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठसिद्धं सर्वत्र सङ्क्षेयतयाऽभिधानात् ॥ 'वरुणवरण्णं दीव'मित्यादि, वरुणवरमिति पूर्ववत्, वरुणोदः समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति, यथैव पुष्करोदसमुद्रस्य वक्तव्यता तथैवास्यापि यावज्जीवोपपातसूत्रद्वयम् ॥ सम्प्रति नामनिबन्धनमभिधित्सुराह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि,अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते वरुणोदः समुद्रो वरुणोदः समुद्रः? इति,भगवानाह—गौतम! वरुणोदस्य समुद्रस्योदकं, सा लोकप्रसिद्धा यथा नाम—**'चन्द्रप्रभेति वा'** चन्द्रस्येव प्रभा–आकारो यस्याः सा चन्द्रप्रभा–सुराविशेषः, इतिशब्द उपमाभूतवस्तुपरिसमाप्तिद्योतकः, वाशब्दः समुच्चये, एवमन्यत्रापि, मणिशलाकेव मणिशलाका वरं च तत्सीधु च २ वरा चासौ वारुणी च वरवारुणी, धातकीपत्ररससार आसवः पत्रासवः, एवं पुष्पासवः फलासवश्च परिभावनीयः, चोयो–गन्धद्रव्यं तत्सारः आसवश्चोयासवः, मधुमेरकौ लोकादवसातव्यौ (मद्य) विशेषौ, जातिपुष्पवासिता प्रसन्ना जातिप्रसन्ना, मूलदलखर्जूरसार आसवः खर्जूरसारः, मृद्वीका–द्राक्षा तत्सारनिष्पन्न आसवो मृद्वीकासारः **'कापिशयनं'** मद्यविशेषः **सुपक्वः**–सुपरिपाकागतो यः **क्षोदरस**–इक्षुरसस्तन्निष्पन्न आसवः सुपक्वेक्षुरसः, अष्टवारपिष्टप्रदाननिष्पन्ना अष्टपिष्टनिष्ठिता जम्बूफलकालिवरप्रसन्ना सुराविशेषः, उत्कर्षेण मदं प्राप्ता उत्कर्षमदप्राप्ता **'आसला'** आस्वादनीया **'मांसला'** बहला **'पेसला'** मनोज्ञा ईषद् ओष्ठमवलम्बते–ततः परमतिप्रकृष्टास्वादगुणरसोपेतत्वात् झटिति परतः प्रयाति ईषदोष्ठावलम्बिनी, तथा ईषत्ताम्राक्षिकरणी, तथा ईषत्–मनाग् व्यवच्छेदे–पानोत्तरकालं कटुका तीक्ष्णेति भावः एलाद्युपबृंहकद्रव्यसमायोगात्, तथा वर्णेनातिशायिना एवं गन्धेन स्पर्शेनोपेता **'आस्वादनीया'** महतामप्यास्वादयितुं योग्या **'विस्वादनीया'** विशेषत आस्वादयितुं योग्या अतिपरमास्वादनीयरसोपेतत्वात्, दीपयति जाठराग्निमिति दीपनीया **'कृद्धहुल'**मिति वचनात्कर्त्तर्यनीयप्रत्ययः, एवं मदयतीति मदनीया–मन्मथजननी बृंहतीति बृंह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

णीया धातूपचयकारित्वात् सर्वेन्द्रियाणि गात्रं च प्रह्लादयतीति सर्वेन्द्रियगात्रप्रह्लादनीया । एवमुक्ते गौतम आह–भगवन्! भवेदेतद्रूपं वरुणोदकसमुद्रस्योदकम्?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थः, वरुणोदस्य णमिति यस्मादर्थे निपातानामनेकार्थत्वात् समुद्रस्योदकम् 'इतः' पूर्वस्मात्सुरादिविशेषसमूहादिष्टतरमेव कान्ततरमेव प्रियतरमेव मनोज्ञतरमेव मनआपतरमेवास्वादेन प्रज्ञप्तं, ततो वारुणीवोदकं यस्यासौ वारुणोदः, तथा वारुणिवारुणकान्तौ चात्र वारुणोदे समुद्रे यथाक्रमं पूर्वापरार्द्धाधिपती महर्द्धिकौ देवौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, ततो वारुणेर्वारुणकान्तस्य च सम्बन्धि उदकं यस्यासौ वारुणोदः, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं', चन्द्रादिसूत्रं प्राग्वत् ॥

वारुणवरण्णं समुद्दं खीरवरे णामं दीवे वट्टे जाव चिट्ठति सव्वं संखेज्जगं विक्खंभे य परिक्खेवो य जाव अट्ठो, बहूओ खुड्डा० वावीओ जाव सरसरपंतियाओ खीरोदगपडिहत्थाओ पासातीयाओ ४, तासु णं खुड्डियासु जाव बिलपंतियासु बहवे उप्पायपव्वयगा० सव्वरयणामया जाव पडिरूवा, पुंडरीगपुक्खरदंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया जाव परिवसंति, से एतेणट्ठेणं जाव निच्चे जोतिसं सव्वं संखेज्जं ॥ खीरवरण्णं दीवं खीरोए नामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जाव परिक्खिवित्ता णं चिट्ठति, समचक्कवालसंठिते नो विसमचक्कवालसंठिते, संखेज्जाइं जोयणस० विक्खंभपरिक्खेवो तहेव सव्वं जाव अट्ठो, गोयमा! खीरोयस्स णं समुद्दस्स उदगं [से जहाणामए—सुउसुहीमारुयपण्णअज्जुणतरुणसरसपत्तकोमलअत्थिरग्गत्तणग्गपोंडगवरुच्छुचारिणीणं लवं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८१]

दीप अनुक्रम [२९२]

गपत्तपुप्फपल्लवकक्कोलगसकलरुक्खबहुगुच्छगुम्मकलितमलट्ठिमधुपयुरपिप्पलीफलितवल्लिवरविव-रचारिणीणं अप्पोदगपीतसइरससमभूमिभागणिभयसुहोसियाणं सुप्पेसितसुहातरोगपरिवज्जि-ताण णिरुवहतसरीरिणं कालप्पसविणीणं बितियततियसामप्पसूताणं अंजणवरगवलबलयज-लधरजचंजणरिट्ठभमरपभूयसमप्पभाणं कुंडदोहणाणं बद्धत्थीपत्थुताण रूढाणं मधुमासकाले संगहनेहो अज्जचातुरक्केव होज्ज तासिं खीरे मधुररसविवगच्छबहुदव्वसंपउत्ते पत्तेयं मंद-ग्गिसुकढिते आउत्ते] खंडगुडमच्छंडितोववेते रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स उवट्ठविते आसायणिज्जे विस्सायणिज्जे पीणणिज्जे जाव सव्विंदियगातपल्हातणिज्जे जाव वण्णेणं उववेते जाव फासेणं, भवे एयारूवे सिया?, णो इणट्ठे समट्ठे, खीरोदस्स णं से उदए एत्तो इट्ठयराए चेव जाव आसा-एणं पण्णत्ते, विमलविमलप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढीया जाव परिवसंति, से तेणट्ठेणं संखेज्ज चंदा जाव तारा ॥ (सू० १८१)

'वरुणोदण्ण'मित्यादि, वरुणोदं णमिति पूर्ववत् समुद्रं क्षीरवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थित: सर्वत: समन्तात्सं-परिक्षिप्य तिष्ठति, एवं चैव वरुणवरद्वीपस्य वक्तव्यता सैवेहापि द्रष्टव्या यावज्जीवोपपातसूत्रम् । सम्प्रति नामान्वर्थमभिधित्सुराह— 'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते क्षीरवरो द्वीप: क्षीरवरो द्वीप: ?, प्रभूतजनोक्तिसङ्ग्रहार्थं वीप्सायां द्विर्वचनं, भगवानाह–गौतम! क्षीरवरे द्वीपे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे 'बहवो खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ' इत्यादि वरुणवरद्वी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

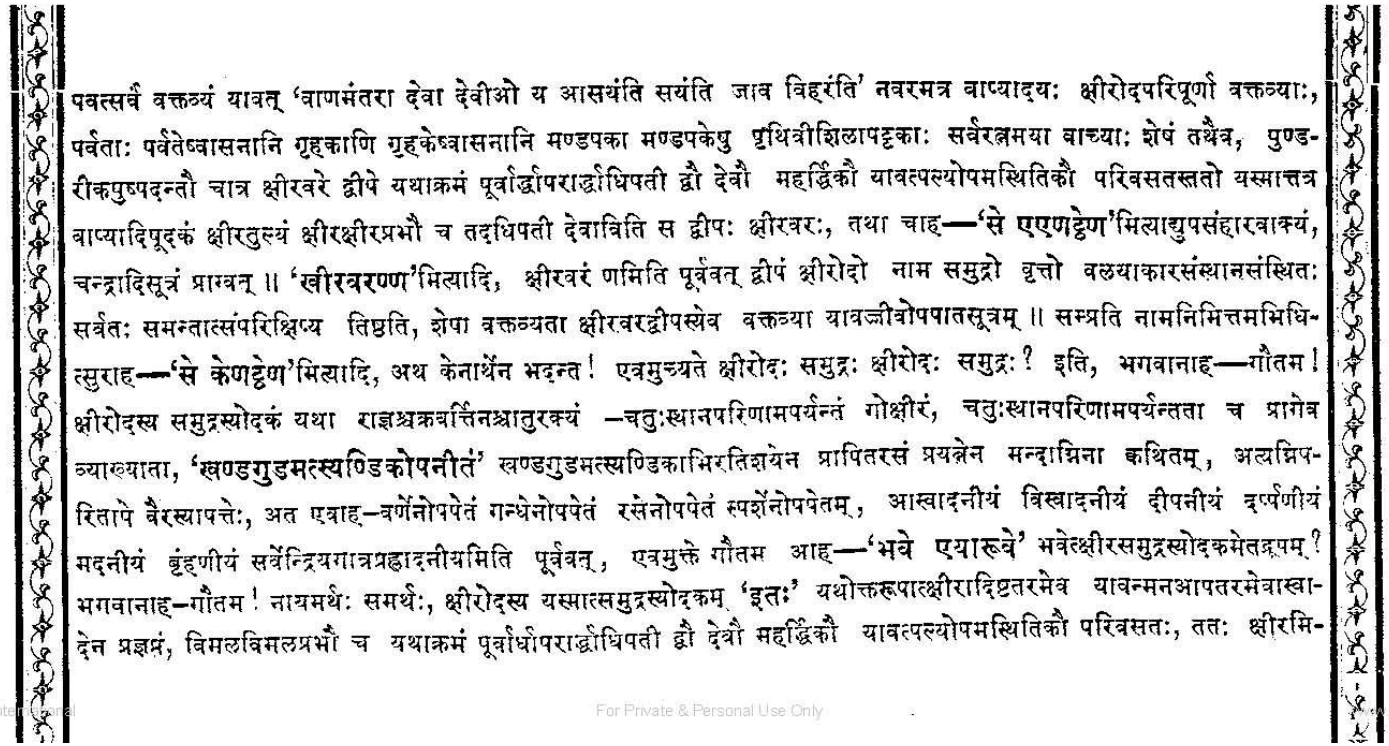

पवत्सर्वं वक्तव्यं यावत् 'वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति जाव विहरंति' नवरमत्र वाप्यादयः क्षीरोदपरिपूर्णा वक्तव्याः, पर्वताः पर्वतेष्वासनानि गृहकाणि गृहकेष्वासनानि मण्डपका मण्डपकेषु पृथिवीशिलापट्टकाः सर्वरत्नमया वाच्याः शेषं तथैव, पुण्डरीकपुष्पदन्तौ चात्र क्षीरवरे द्वीपे यथाक्रमं पूर्वार्द्धापरार्द्धाधिपती द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतस्ततो यस्मात्तत्र वाप्यादिपूदकं क्षीरतुल्यं क्षीरक्षीरप्रभौ च तदधिपती देवाविति स द्वीपः क्षीरवरः, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्याद्युपसंहारवाक्यं, चन्द्रादिसूत्रं प्राग्वत् ॥ **'खीरवरण्ण'**मित्यादि, क्षीरवरं णमिति पूर्ववत् द्वीपं क्षीरोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति, शेषा वक्तव्यता क्षीरवरद्वीपस्येव वक्तव्या यावज्जीवोपपातसूत्रम् ॥ सम्प्रति नामनिमित्तमभिधित्सुराह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते क्षीरोदः समुद्रः क्षीरोदः समुद्रः? इति, भगवानाह—गौतम! क्षीरोदस्य समुद्रस्योदकं यथा राज्ञश्चक्रवर्त्तिनश्चातुरक्यं —चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तं गोक्षीरं, चतुःस्थानपरिणामपर्यन्तता च प्रागेव व्याख्याता, **'खण्डगुडमत्स्यण्डिकोपनीतं'** खण्डगुडमत्स्यण्डिकाभिरतिशयेन प्रापितरसं प्रयत्नेन मन्दाग्निना कथितम्, अत्यग्निपरितापे वैरस्यापत्तेः, अत एवाह—वर्णेनोपपेतं गन्धेनोपपेतं रसेनोपपेतं स्पर्शेनोपपेतम्, आस्वादनीयं विस्वादनीयं दीपनीयं दर्पणीयं मदनीयं बृंहणीयं सर्वेन्द्रियगात्रप्रह्लादनीयमिति पूर्ववत्, एवमुक्ते गौतम आह—**'भवे एयारूवे'** भवेत्क्षीरसमुद्रस्योदकमेतद्रूपम्? भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थः, क्षीरोदस्य यस्मात्समुद्रस्योदकम् **'इतः'** यथोक्तरूपात्क्षीरादिष्टतरमेव यावन्मनआपतरमेवास्वादेन प्रज्ञप्तं, विमलविमलप्रभौ च यथाक्रमं पूर्वार्धापरार्द्धाधिपती द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, ततः क्षीरमि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८१]

दीप अनुक्रम [२९२]

वोदकं यस्य क्षीरवन्निर्मलस्वभावयोः सुरयोः सम्बन्धि उदकं यत्रेति वा क्षीरोदः, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि गतार्थम् ॥ सम्प्रति चन्द्रादित्यसङ्ख्याप्रतिपादनार्थमाह—'खीरोए णं भंते! समुद्दे' इत्यादि सुगमम् ॥

खीरोदण्णं समुद्दं घयवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जाव परिक्खित्तेति समचक्कवाल० नो विसम० संखेज्जविक्खंभपरि० पदेसा जाव अट्ठो, गोयमा! घयवरे णं दीवे तत्थ २ बहवे खुड्डाखुड्डीओ वावीओ जाव घयोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वगा जाव खडहड० सव्वकंचणमया अच्छा जाव पडिरूवा, कणयकणयप्पभा एत्थ दो देवा महिड्ढीया चंदा संखेज्जा ॥ घयवरण्णं दीवं च घतोदे णाम समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जाव चिट्ठति, समचक्क० तहेव दारपदेसा जीवा य अट्ठो, गोयमा! घयोदस्स णं समुद्दस्स उदए से जहा० [1]पप्फुल्लसल्लइविमुक्कलकण्णियारसरसवसुविबुद्धकोरेंटदामपिंडिततरस्स निद्धगुणतेयदीवियनिरुवहयविसिट्ठसुंदरतरस्स सुजायदहिमहियतद्दिवसगहियनवणीयपडुवणावियमुक्कट्ठियउद्दावसज्जवीसंदियस्स अहियं पीवरसुरहिगंधमणहरमहुरपरिणामदरिसणिज्जस्स पत्थनिम्मलसुहोवभोगस्स सरयकालंमि होज्ज गोघतव-

१ टीकामूलपाठयोर्महद्वैषम्यमत्र । प्रफुल्लशल्लकीविमुक्तकलकर्णिकारसर्षपसुविबुद्धकोरण्टकदामपिण्डिततरस्य स्निग्धगुणतेजोदीप्तस्य निरुपहतविशिष्टसुन्दरतरस्य सुजातदधिमथने तद्दिवसगृहीतनवनीतपटुसंगृहीतोत्क्वथितउद्दामसद्योविस्यन्दितस्य अधिकपीवरसुरभिगन्धमनोहरमधुरपरिणामदर्शनीयस्य पथ्यनिर्मलसुखोपभोग्यस्य शरत्काले भवेत् गोघृतवरस्य मण्डः इति छाया । प्राक् अग्रेऽप्येवं पाठवैषम्ये ज्ञेयं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

रस्स मंडए, भवे एतारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा! घतोदस्स णं समुद्दस्स एत्तो इट्ठतर जाव अस्साएणं प० कंतसुकंता एत्थ दो देवा महिड्ढीया जाव परिवसंति सेसं तं चेव जाव तारागणकोडीकोडीओ ॥ घतोदण्णं समुद्दं खोदवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारे जाव चिट्ठति तहेव जाव अट्ठो, खोतवरे णं दीवे तत्थ २ देसे २ तहिं २ खुड्डावावीओ जाव खोदोदगपडिहत्थाओ उप्पातपव्वयता सव्ववेरुलियामया जाव पडिरूवा, सुप्पभमहप्पभा य दो देवा महिड्ढीया जाव परिवसंति, से एतेणं० सव्वं जोतिसं तं चेव जाव तारा० ॥ खोयवरण्णं दीवं खोदोदे नाम समुद्दे वट्टे वलया० जाव संखेज्जाइं जोयणसतपरिक्खेवेणं जाव अट्ठे, गोयमा! खोदोदस्स णं समुद्दस्स उदए जहा से० आसलमांसलपसत्थवीसंतनिद्धसुकुमालभूमिभागे सुच्छिन्ने सुकट्ठलट्ठविसिट्ठनिरुवहयाजीयवावीतसुकासजपयत्तनिउणपरिकम्मअणुपालियसुवुड्ढिवुड्ढाणं सुजातार्णं लवणतणदोसवज्जियाणं णयायपरिवड्ढियाणं निम्मातसुंदराणं रसेणं परिणयमउपीणपोरभंगुरसुजायमधुररसपुप्फविरिइयाणं उवहवविवज्जियाणं सीयपरिफासियाणं अभिणवतवग्गाणं अपालिताणं निभायणिच्छोडियवाडिगाणं अवणितमूलाणं गंठिपरिसोहिताणं कुसलणरकप्पियाणं उव्वणं जाव पोंडियाणं वलवगणरजत्तजन्तपरिगालितमेत्ताणं खोयरसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिते अहियपत्थलहुके वण्णोववेते तहेव, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खोयरसस्स णं समुद्दस्स उदए एत्तो इट्ठतरए चेव जाव आसाएणं प० पुण्णभद्दमाणिभद्दा य (पुण्णपुण्णभद्दा) इत्थ दुवे देवा जाव परिवसंति, सेसं तहेव, जोइसं संखेज्जं चंदा० ॥ (सू० १८२)

'खीरोदण्णं समुद्द'मित्यादि, क्षीरोदं णमिति पूर्ववत् समुद्रं घृतवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति, अत्रापि चक्रवालविष्कम्भपरिक्षेपपद्मवरवेदिकावनषण्डद्वारान्तरप्रदेशजीवोपपातवक्तव्यता पूर्ववत् ॥ सम्प्रति नामनिमित्तमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—घृतवरो द्वीपो घृतवरो द्वीपः ?, भगवानाह—गौतम! घृतवरे द्वीपे 'तत्थ तत्थ देसे तहिं' इत्यादि, अरुणवरद्वीपवत्सर्वं तावद्वक्तव्यं यावत् 'वानमंतरा देवाय देवीओ य आसयंति सयंति यावद् विहरंति' इति, नवरं वाप्यादयो घृतोदकपरिपूर्णा इति वक्तव्याः, तथा पर्वताः पर्वतेष्वासनानि गृहकाणि गृहकेष्वासनानि मण्डपका मण्डपकेषु पृथ्वीशिलापट्टकाः सर्वात्मना कनकमया इति वक्तव्यं, कनककनकप्रभौ चात्र देवौ यथाक्रमं पूर्वार्द्धापरार्द्धाधिपती महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः ततो घृतोदकवाप्यादियोगाद् घृतवर्णदेवस्वामिकत्वाच्च घृतवरो दीप इति, तथा चाह— 'से एएणट्ठेण'मित्यादि चन्द्रादित्यादिसङ्ख्यासूत्रं प्राग्वत् ॥ 'घयवरण्णं दीव'मित्यादि, घृतवरं द्वीपं घृतोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति, शेषं यथा घृतवरस्य द्वीपस्य यावज्जीवोपपातसूत्रम् ॥ इदानीं नामनिमित्तमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—घृतोदः समुद्रो घृतोदः समुद्रः? इति, भगवानाह—गौतम! घृतोदस्य समुद्रस्योदकं स यथा नाम सकललोकप्रसिद्धः 'शारदिकः' शरत्कालभावी गोघृतवरस्य मण्डः—घृतसङ्घातस्य यदुपरिभागस्थितं घृतं स मण्ड इत्यभिधीयते सार इत्यर्थः, तथा चाह मूलटीकाकारः—"घृतमण्डो घृतसार" इति, सुकथितो—यथाऽग्निपरिता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

पतापित:, तदानामद्वार: (उद्भाव:)—स्थानान्तरेष्वद्याप्यसङ्क्रामित: सद्योविस्यन्दित:—तत्कालनिष्पादितो विश्रान्त:—उपशान्तकचवर: सल्लकीकर्णिकारपुष्पवर्णाभो वर्णेनोपपेतो गन्धेन रसेन स्पर्शेनोपपेत आस्वादनीयो विस्वादनीयो दीपनीयो मदनीयो बृंहणीय: सर्वेन्द्रियगात्रप्रह्लादनीय:, एवमुक्ते गौतम आह—'भवे एयारूवे' भवेद् घृतोदस्य समुद्रस्योदकमेतद्रूपं ?, भगवानाह—नायमर्थ: समर्थ:, घृतोदस्य यस्मात्समुद्रस्योदकम् 'इत:' यथोक्तस्वरूपाद् घृतादिष्टतरमेव यावन्मनआपतरमेवास्वादेन प्रज्ञप्तं, कान्तसुकान्तौ च यथाक्रमं पूर्वार्द्धपश्चिमार्द्धाधिपती अत्र घृतोदे समुद्रे महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसत:, ततो घृतमिवोदकं यस्यासौ घृतोद:, तथा चाह—'से एएणट्ठेण'मित्यादि सुगमं, चन्द्रादिसङ्ख्यासूत्रमपि सुगमम् ॥ 'घतोदण्ण'मित्यादि, घृतोदं णमिति वाक्यालङ्कारे समुद्रं क्षोदवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थित: सर्वत: समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति, चक्रवालविष्कम्भपरिक्षेपद्वारादिवक्तव्यता तथैव यावज्जीवोपपातसूत्रम् ॥ सम्प्रति नामान्वर्थमभिधित्सुराह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते क्षोदवरो द्वीप: २ ? इति, भगवानाह—गौतम! क्षोदवरे द्वीपे तत्र तत्र देशे तस्य तस्य देशस्य तत्र तत्र प्रदेशे **'बहवे खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ'** इत्यादि पूर्ववत्तावद्वक्तव्यं यावद् **'वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति जाव विहरंति'** नवरं वाप्यादय: क्षोदोदकपरिपूर्णा इति वक्तव्यं, तथा पर्वतका: पर्वतेष्वासनानि गृहकाणि गृहकेष्वासनानि मण्डपका मण्डपकेषु पृथिवीशिलापट्टका: सर्वात्मना वैडूर्यमया: प्रज्ञप्ता:, सुप्रभमहाप्रभौ च यथाक्रमं पूर्वार्धापरार्द्धाधिपती द्वौ देवावत्र क्षोदवरे द्वीपे महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसत:, तत: क्षोदोदकवाप्यादियोगात्क्षोदवर: स द्वीप:, एतदेवाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि, चन्द्रादिसूत्रं प्राग्वत् ॥ **'खोयवरण्णं दीव'**मित्यादि, क्षोदवरं णमिति पूर्ववद् द्वीपं क्षोदोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थित: सर्वत: समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति । चक्रवाल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

विष्कम्भादिवक्तव्यता पूर्ववद् यावज्जीवोपपातसूत्रम् ॥ सम्प्रति नामनिमित्तमभिधित्सुराह—'से केणट्ठेण'मित्यादि, अथ केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते क्षोदोदः समुद्रः २? इति, भगवानाह–क्षोदोदस्य समुद्रस्योदकं यथा नाम इक्षूणां जात्यानां जात्यत्वमेवाह— **'वरपुंडगाणं'** विशिष्टानां पुण्ड्रदेशोद्भवानां हरितानां शाड्वलानां **'भेरण्डेक्षूणां वा'** भेरण्डदेशोद्भवानां वा इक्षूणां **'कालपोराणं'**ति कृष्णपर्वणाम् उपरितनपत्रसमूहापेक्षया हरितालवत्पिञ्जराणाम् **'अपनीतमूलानाम्'** अपनीतमूलत्रिभागानां त्रिभागनिर्वर्तितवाटानां ऊर्द्धभागादपि त्रिभागहीनानामिति भावः मध्यत्रिभागावशेषाणामिति समुदायार्थः **'गंठिपरिसोहियाणं'**ति ग्रन्थिः–पर्वग्रन्थिः शोधितः–अपनीतो येभ्यस्ते तथा, तेषां मूलत्रिभागे उपरितनत्रिभागे पर्वग्रन्थौ च नातिसमीचीनो रस इति तद्वर्जनं क्षोदरसो भवेद् **'वस्त्रपरिपूतः'** श्लक्ष्णवस्त्रपरिपूतः चतुर्जातकेन सुष्ठु–अतिशयेन वासितश्चतुर्जातकवासितः, चतुर्जातकं त्वगेलाकेसराख्यगन्धद्रव्यमरिचात्मकं, उक्तञ्च—"त्वगेलाकैसरैस्तुल्यं, त्रिसुगन्धं त्रिजातकम्। मरिचेन समायुक्तं, चतुर्जातकमुच्यते ॥ १ ॥" अधिकं–अतिशयेन पथ्यं न रोगहेतुः लघुः–परिणामलघुः वर्णेन–सामर्थ्यादतिशायिना उपपेतः एवं गन्धेन रसेन स्पर्शेनोपपेत आस्वादनीयो दर्पणीयो मदनीयो बृंहणीयः सर्वेन्द्रियगात्रप्रह्लादनीयः, एवमुक्ते गौतम आह—**'भवे एयारूवे'** भवेद् भगवन्! क्षोदोदसमुद्रस्योदकमेतद्रूपं?, भगवानाह–गौतम! नायमर्थः समर्थः, क्षोदोदस्य यस्मात्समुद्रस्योदकम् **'अस्मात्'** यथोक्तरूपात्क्षोदरसादिष्टतरमेव यावन्मनआपतरमेवास्वादेन प्रज्ञप्तम्, इह प्रविरलपुस्तकेऽन्यथाऽपि पाठो दृश्यते सोऽप्येतदनुसारेण व्याख्येयो, बहुषु तु पुस्तकेषु न दृष्ट इति न लिखितः, पूर्णपूर्णप्रभौ च यथाक्रमं पूर्वार्द्धापरार्द्धाधिपती **'अत्र'** क्षोदोदे समुद्रे द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, ततः क्षोद इव–क्षोदरस इवोदकं यस्य स क्षोदोदः, तथा चाह—**'से एएणट्ठेण'**मित्यादि। चन्द्रादिसङ्ख्यासूत्रं प्राग्वत् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

खोदोदण्णं समुद्दं णंदीसरवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठिते तहेव जाव परिक्खेवो। पउमव-
र० वणसंडपरि० दारा दारंतरप्पदेसे जीवा तहेव ॥ से केणट्ठेणं भंते!, गोयमा! देसे २ बहुओ खु-
ड्डा० वावीओ जाव बिलपंतियाओ खोदोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वगा सव्ववइरामया अच्छा
जाव पडिरूवा ॥ अदुत्तरं च णं गोयमा! णंदिसरदीवचक्कवालविक्खंभबहुमज्झदेसभागे एत्थ
णं चउद्दिसिं चत्तारि अंजणपव्वता पण्णत्ता, ते णं अंजणपव्वयगा चतुरसीतिजोयणसहस्साइं
उड्ढं उच्चत्तेणं एगमेगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं मूले साइरेगाइं दस जोयणसहस्साइं धरणियले
दस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं ततोऽणंतरं च णं मायाए २ पदेसपरिहाणीए परिहाय-
माणा २ उवरिं एगमेगं जोयणसहस्सं आयामविक्खंभेणं मूले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च
तेवीसे जोयणसते किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं धरणियले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च
तेवीसे जोयणसते देसूणे परिक्खेवेणं सिहरतले तिण्णि जोयणसहस्साइं एकं च बावट्ठं जोय-
णसतं किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया
गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वंजणामया अच्छा जाव पत्तेयं २ पउमवरवेदियापरि० पत्तेयं २ वणसं-
डपरिक्खित्ता वण्णओ ॥ तेसि णं अंजणपव्वयाणं उवरि पत्तेयं २ बहुसमरमणिज्जो भूमिभागो
पण्णत्तो, से जहाणामए—आलिंगपुक्खरेति वा जाव सयंति ॥ तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दीश्वरद्वीपस्य अधिकार: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं २ सिद्धायतणा एकमेकं जोयणसतं आयामेणं पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसतसंनिविट्ठा वण्णओ ॥ तेसि णं सिद्धायतणाणं पत्तेयं २ चउद्दिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता—देवदारे असुरदारे णागदारे सुवण्णदारे, तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तंजहा—देवे असुरे णागे सुवण्णे, ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेता वरकणग० वन्नओ जाव वणमाला। तेसि णं दाराणं चउद्दिसिं चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता, ते णं मुहमंडवा एगमेगं जोयणसतं आयामेण पंचास जोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाणं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं वण्णओ ॥ तेसि णं मुहमंडवाणं चउद्दि(तिदि)सिं चत्तारि (तिण्णि) दारा पण्णत्ता, ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं तावतियं चेव पवेसेणं सेसं तं चेव जाव वणमालाओ। एवं पेच्छाघरमंडवावि, तं चेव पमाणं जं मुहमंडवाणं, दारावि तहेव, णवरि बहुमज्झदेसे पेच्छाघरमंडवाणं अक्खाडगा मणिपेढियाओ अद्धजोयणप्पमाणाओ सीहासणा अपरिवारा जाव दामा थूभाइं चउद्दिसिं तहेव णवरि सोलसजोयणप्पमाणा सातिरेगाइं सोलस जोयणाइं उच्चा सेसं तहेव जाव जिणपडिमा। चेइयरुक्खा तहेव चउद्दिसिं तं चेव पमाणं जहा विजयाए रायहाणीए णवरि मणिपेढियाए सो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

लसजोयणप्पमाणाओ, तेसि णं चेइयरुक्खाणं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ अट्ठजोयण-विक्खंभाओ चउजोयणबाहल्लाओ महिंदज्झया चउसट्ठिजोयणुच्चा जोयणोव्वेधा जोयणवि-क्खंभा सेसं तं चेव। एवं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ, णवरि खोयरसपडिपुण्णाओ जोयणसतं आयामेणं पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णासं जोयणाइं उव्वेधेणं सेसं तं चेव, म-णुगुलियाणं गोमाणसीण य अडयालीसं २ सहस्साइं पुरच्छिमेणवि सोलस पच्चत्थिमेणवि सो-लस दाहिणेणवि अट्ठ उत्तरेणवि अट्ठ साहस्सीओ तहेव सेसं उल्लोया भूमिभागा जाव बहुम-ज्झदेसभागे, मणिपेढिया सोलस जोयणा आयामविक्खंभेणं अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं तारिसं मणिपीढियाणं उप्पिं देवच्छंदगा सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं सातिरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयण० अट्ठसयं जिणपडिमाणं सव्वो सो चेव गमो जहेव वेमाणि-यसिद्धायतणस्स ॥ तत्थ णं जे से पुरच्छिमिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—णंदुत्तरा य णंदा आणंदा णंदिवद्धणा। (नंदिसेणा अ-मोघाय गोथूभा य सुदंसणा) ताओ णंदापुक्खरिणीओ एगमेगं जोयणसतसहस्सं आयामविक्खं-भेणं दस जोयणाइं उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेदिया०. पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ता तत्थ तत्थ जाव सोवाणपडिरूवगा तोरणा ॥ तासि णं पुक्खरिणीणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं दहिमुहपव्वया चउसट्ठि जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं सव्वत्थसमा पल्लगसंठाणसंठिता दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए परिक्खेवेणं पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तहा पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया० वणसंडवण्णओ बहुसम० जाव आसयंति सयंति। सिद्धायतणं तं चेव पमाणं अंजणपव्वएसु सच्चेव वत्तव्वया णिरवसेसं भाणियव्वं जाव उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा ॥ तत्थ णं जे से दक्खिणिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—भद्दा य विसाला य कुमुया पुंडरिगिणी, (नन्दुत्तरा य नंदा आनन्दा नन्दिवद्धणा) तं चेव पमाणं तं चेव दहिमुहा पव्वया तं चेव पमाणं जाव सिद्धायतणा ॥ तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वए तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—णंदिसेणा अमोहा य, गोत्थूभा य सुदंसणा, (भद्दा विसाला कुमुदा पुंडरिकिणी) तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव सिद्धायतणा ॥ तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ, तंजहा—विजया वेजयंती जयंती अपराजिया, सेसं तहेव जाव सिद्धायतणा सव्वा ते चिय वण्णणा णातव्वा ॥ तत्थ णं बहवे भवणवइवाणमंतरजोतिसियवेमाणिया देवा चाउमासियापडिवएसु संवच्छरिएसु वा अण्णेसु बहूसु जिण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

जम्मणणिक्खमणाणुप्पत्तिपरिणिव्वाणमादिएसु य देवकज्जेसु य देवसमुदएसु य देवसमितीसु य देवसमवाएसु य देवपओयणेसु य एगंतओ सहिता समुवागता समाणा पमुदितपक्कीलिया अट्ठाहितारूवाओ महामहिमाओ करेमाणा पालेमाणा सुहंसुहेणं विहरंति। कइलासहरिवाहणा य तत्थ दुवे देवा महिड्ढीया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, से एतेणट्ठेणं गोयमा! जाव णिच्चा जोतिसं संखेज्जं ॥ (सू० १८३)

'खोदोदण्णं समुद्द'मित्यादि, क्षोदोदं णमिति पूर्ववत् समुद्रं नन्दीश्वरवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति। चक्रवालविष्कम्भपरिक्षेपादिवक्तव्यता प्राग्वद् यावज्जीवोपपातसूत्रम् ॥ सम्प्रति नामनिमित्तमभिधित्सुराह—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि, अथ केनार्थेन—केन कारणेन भदन्त! एवमुच्यते—नन्दीश्वरवरो द्वीपो नन्दीश्वरवरो द्वीपः? इति, भगवानाह—गौतम! नन्दीश्वरवरे द्वीपे बहवः **'खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ'** इत्यादि प्रागुक्तं सर्वं तावद्वक्तव्यं यावत् 'वाणमन्तरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति जाव विहरंति' नवरमत्र वाप्यादयः क्षोदोदकप्रतिपूर्णा वक्तव्याः, पर्वतकाः पर्वतकेष्वासनानि गृहाणि गृहकेष्वासनानि मंडपका मंडपकेषु शिलापट्टकाः सर्वात्मना वज्रमयाः, शेषं तथैव ॥ **'अदुत्तरं च णं गोयमा!'** इत्यादि, अथान्यद् गौतम! नन्दीश्वरवरे चत्वारो दिशः समाहृताश्चतुर्दिक् तस्मिन् चक्रवालविष्कम्भेन मध्यदेशभागे एकैकस्यां दिशि एकैकभावेन चत्वारोऽञ्जनपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पूर्वेण—पूर्वस्यां दिशि, एवं पश्चिमायां दक्षिणस्यामुत्तरस्याम् ॥ **'ते ण'**मित्यादि, ते अञ्जनपर्वताश्चतुरशीतियोजनसहस्राण्यूर्द्धमुच्चैस्त्वेन एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन मूले सातिरेकाणि दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन धरणितले दश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेन तदनन्तरं च मात्रया परिहीयमानाः परिहीयमाना उपर्येकैकं योजनसहस्रमायामविष्कम्भेन मूले एकत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट्त्रयोविंशानि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि ३१६२३ परिक्षेपेण धरणितले एकत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट्त्रयोविंशानि योजनशतानि देशोनानि परिक्षेपेण ३१६२३ उपरि त्रीणि योजनसहस्राणि एकं च द्वाषष्टं योजनशतं किञ्चिद्विशेषाधिकं ३१६२ परिक्षेपेण, ततो मूले विस्तीर्णा मध्ये संक्षिप्ता उपरि तनुकाः अत एव गोपुच्छसंस्थानसंस्थिताः सर्वात्मना **'अञ्जनमयाः'** अञ्जनरत्नात्मकाः **'अच्छा जाव पडिरूवा'** इति प्राग्वत् प्रत्येकं २ पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं २ वनषण्डपरिक्षिप्ताः पद्मवरवेदिकावनषण्डवर्णनं प्राग्वत् ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषामञ्जनपर्वतानां प्रत्येकं प्रत्येकमुपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तस्य **'से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा'** इत्यादिवर्णनं जम्बूद्वीपजगत्या उपरितनभागस्येव तावद्वक्तव्यं यावत् 'तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति जाव विहरंति' ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं सिद्धायतनं प्रज्ञप्तं, तानि च सिद्धायतनानि प्रत्येकं प्रत्येकमेकं योजनशतमायामेन पञ्चाशद्योजनानि विष्कम्भेन द्विसप्ततियोजनानि **ऊर्द्धमुच्चैस्त्वेन**, अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टानीत्यादि तद्वर्णनं विजयदेवसुधर्मसभावद्वक्तव्यम् ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां सिद्धायतनानां प्रत्येकं **'चतुर्दिशि'** चतसृषु दिक्षु, एकैकस्यां दिशि एकैकभावेन, चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–पूर्वेण–पूर्वस्याम्, एवं दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां, तत्र पूर्वस्यां दिशि द्वारं देवद्वारं, देवनामकस्य तदधिपतेस्तत्र भावात्, एवं दक्षिणस्यामसुरद्वारं पश्चिमायां नागद्वारमुत्तरस्यां सुवर्णद्वारम् ॥ **'तत्थे'**त्यादि, तत्र तेषु चतुर्षु द्वारेषु यथाक्रमं चत्वारो देवा महर्द्धिका यावत्पल्योपमस्थितयः परिवसन्ति, तद्यथा–देव इत्यादि पूर्ववत्, पूर्वद्वारे देवनामा दक्षिणद्वारेऽसुरनामा पश्चिमद्वारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

नागनामा उत्तरद्वारे सुवर्णनामा ॥ **'ते णं दारा'** इत्यादि, तानि द्वाराणि षोडश योजनानि प्रत्येकमूर्द्धमुच्चैस्त्वेनाष्टौ योजनानि विष्कम्भत:, **'तावइयं चेव'**त्ति तावदेव–अष्टावेव योजनानीति भाव: प्रवेशेन 'सेया वरकणगथूभियागा ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवणलयपउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवरवेइयापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुगलजन्तजुत्ता इव अच्चीसहस्समालिणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुलोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा, वन्नओ तेसिं दाराणं इमो होइ, तंजहा–वइरामया नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियरुइलखंभा जायरूवोवचियपवरपंचवन्नमणिरयणकुट्टिमतला हंसगब्भमया एलुगा गोमेज्जमया इंदकीला जोईरसमया उत्तरंगा लोहियक्खमईओ दारचेडाओ (पिंडीओ) वेरुलियामया कवाडा लोहियक्खमईओ सूईओ वइरामया संधी नाणामणिमया समुग्गया वइरामईओ अग्गलाओ अग्गलापासाया रययामईओ आवत्तणपेढियाओ अंकोत्तरपासा निरंतरघणकवाडा भित्तीसु चेव भित्तिगुलिया छप्पन्ना तिन्नि होंति गोमाणसीओवि तत्तिया नाणामणिरयणजालपिंजरमणिवंसगलोहियक्खपडिवंसगरययभोम्मा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोईरसमया वंसकवेल्लुगा य रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरि पुंछणीओ सव्वसेयरययामए अच्छायणे अंकामयकणगकूडतवणिज्जथूभियागा सेया संखदलविमलनिम्मलदहिघणगोखीरफेणरययनिगरप्पगासद्धचंदचित्ता नाणामणिमयदामालंकिया अंतो बहिं च सण्हतवणिज्जरुइलवालुयापत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा' एतच्च यद्यपि विजयद्वारवर्णनायामपि व्याख्यातं तथाऽपि स्थानाशून्यार्थं किञ्चिद्व्याख्यायते–श्वेतानि अङ्करत्नबाहुल्याद्वरकनकस्तूपिकानि ईहामृगऋषभतुरगनरमकरविहगव्यालककिन्नररुरुसरभचमरकुंजरवनलतापद्मलताभक्तिचित्राणि प्रतीतं, तथा स्तम्भोद्गताभि:–स्तम्भोपरिवर्त्तिनीभिर्वज्ररत्नमयीभिर्वेदिकाभि:

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

परिगतानि सन्ति यानि अभिरमणीयानि तानि स्तम्भोद्गतवरवज्रवेदिकाभिः परिगताभिरामाणि, विद्याधरयोर्यद् यमलं–समश्रेणीकं युगलं तेषां यन्त्राणि–प्रपञ्चास्तैर्युक्तानीव, अर्चिषां सहस्रैर्मालनीयानि अर्चिःसहस्रमालनीयानि–परिवारणीयानि, किमुक्तं भवति?– एवं नाम प्रभासमुदयोपेतानि येनैवं संभावनोपजायते यथा नूनमेतानि न स्वाभाविकप्रभासमुदयोपेतानि किन्तु विशिष्टविद्याशक्तिमत्पुरुषविशेषप्रपञ्चयुक्तानीति रूपकसहस्रकलितानि 'भिसमाणा' इति दीप्यमानानि **'भिब्भिसमाणा'** इति अतिशयेन दीप्यमानानि **'चक्खुलोयणलेसा'** इति चक्षुः कर्तृ लोकने–अवलोकने लिशतीव–दर्शनीयत्वातिशयतः श्लिष्यतीव यत्र तानि चक्षुर्लोकनलेशानि शुभस्पर्शानि सश्रीकाणि रूपकाणि यत्र तानि सश्रीकरूपाणि वर्णो–वर्णकनिवेशस्तेषां द्वाराणामयं भवति, तद्यथा–वज्रमया नेमा–भूमिभागादूर्द्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशा रिष्टमयानि प्रतिष्ठानानि–मूलपादाः 'वैडूर्यरुचिरस्तम्भानि' जातरूपोपचितप्रवरपञ्चवर्णमणिरत्नकुट्टिमतलानि हंसगर्भमयाः 'एलुकाः' देहल्यः गोमेयकरत्नमया इन्द्रकीला ज्योतीरसमयानि उत्तराङ्गानि लोहिताक्षमयाः 'द्वारपिण्ड्यः' द्वारशाखाः वैडूर्यमयौ कपाटौ लोहिताक्षमय्यः सूचयः–फलकद्वयसन्धिविघटनाभावहेतुपादुकास्थानीया वज्रमयाः 'सन्धयः' सन्धिभेलाः फलकानां नानामणिमयाः 'समुद्गकाः' चूर्ति(सूची)गृहाणि वज्रमया अर्गलाः (अर्गलाप्रासादाः–) प्रासादे यत्रार्गलाः प्रविशन्ति रजतमय्य आवर्त्तनपीठिकाः, आवर्त्तनपीठिका यत्रेन्द्रकीलको निवेशितः, 'अंकोत्तरपासा' इति अङ्का–अङ्करत्नमया उत्तरपार्श्वा येषां तानि तथा, निरन्तरकौ–लघुच्छिद्रैरपि रहितौ घनौ कपाटौ येषां तानि निरन्तरघनकपाटानि, **'भित्तीसु चेवे'**त्यादि, तेषां द्वाराणामुभयोः पार्श्वयोर्भित्तिषु–भित्तिसमीपे भित्तिगता–भित्तिसंबद्धा गुलिकाः–पीठिका भित्तिगुलिकास्तिस्रः षट्पञ्चाशद्भवन्ति षट्पञ्चाशत्रिकप्रमाणा भवन्ति **'गोमाणसिया तत्तिया'** इति 'तावत्य एव' षट्पञ्चाशत्रिकप्रमाणा एव **'गोमानस्यः'** शय्याः, तथा **'ना-**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

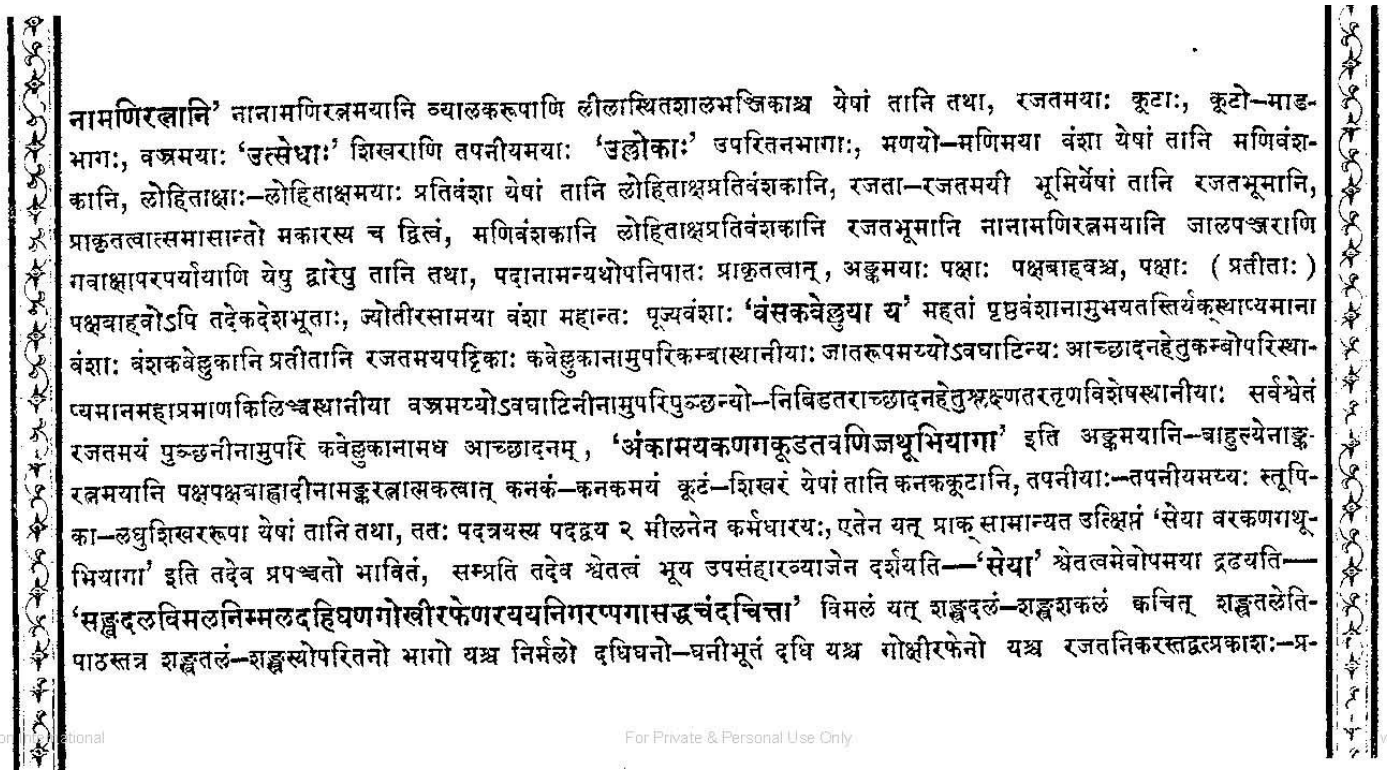

नामणिरत्नानि' नानामणिरत्नमयानि व्यालकरूपाणि लीलास्थितशालभञ्जिकाश्च येषां तानि तथा, रजतमयाः कूटाः, कूटो–माङ्ग-भागः, वज्रमयाः 'उत्सेधाः' शिखराणि तपनीयमयाः 'उल्लोकाः' उपरितनभागाः, मणयो–मणिमया वंशा येषां तानि मणिवंश-कानि, लोहिताक्षाः–लोहिताक्षमयाः प्रतिवंशा येषां तानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि, रजता–रजतमयी भूमिर्येषां तानि रजतभूमानि, प्राकृतत्वात्समासान्तो मकारस्य च द्वित्वं, मणिवंशकानि लोहिताक्षप्रतिवंशकानि रजतभूमानि नानामणिरत्नमयानि जालपञ्जराणि गवाक्षापरपर्यायाणि येषु द्वारेषु तानि तथा, पदानामन्यथोपनिपातः प्राकृतत्वात्, अङ्कमयाः पक्षाः पक्षबाहवश्च, पक्षाः (प्रतीताः) पक्षबाहवोऽपि तदेकदेशभूताः, ज्योतीरसामया वंशा महान्तः पूज्यवंशाः 'वंसकवेल्लुया य' महतां पृष्ठवंशानामुभयतस्तिर्यक्स्थाप्यमाना वंशाः वंशकवेल्लुकानि प्रतीतानि रजतमयपट्टिकाः कवेल्लुकानामुपरिकम्बास्थानीयाः जातरूपमय्योऽवघाटिन्यः आच्छादनहेतुकम्बोपरिस्था-प्यमानमहाप्रमाणकिलिञ्चस्थानीया वज्रमय्योऽवघाटिनीनामुपरिपुञ्छन्यो–निबिडतराच्छादनहेतुश्लक्ष्णतरतृणविशेषस्थानीयाः सर्वश्वेतं रजतमयं पुञ्छनीनामुपरि कवेल्लुकानामध आच्छादनम्, 'अंकामयकणगकूडतवणिज्जथूभियागा' इति अङ्कमयानि–बाहुल्येनाङ्क-रत्नमयानि पक्षपक्षबाह्यादीनामङ्करत्नात्मकत्वात् कनकं–कनकमयं कूटं–शिखरं येषां तानि कनककूटानि, तपनीयाः–तपनीयमय्यः स्तूपि-काः–लघुशिखररूपा येषां तानि तथा, ततः पदत्रयस्य पदद्वय २ मीलनेन कर्मधारयः, एतेन यत् प्राक् सामान्यत उल्लिखितं 'सेया वरकणगथू-भियागा' इति तदेव प्रपञ्चतो भावितं, सम्प्रति तदेव श्वेतत्वं भूय उपसंहारव्याजेन दर्शयति—'सेया' श्वेतत्वमेवोपमया द्रढयति—'सङ्खदलविमलनिम्मलदहिघणगोखीरफेणरययनिगरप्पगासद्धचंदचित्ता' विमलं यत् शङ्खदलं–शङ्खशकलं क्वचित् शङ्खतलेति-पाठस्तत्र शङ्खतलं–शङ्खस्योपरितनो भागो यश्च निर्मलो दधिघनो–घनीभूतं दधि यश्च गोक्षीरफेनो यश्च रजतनिकरस्तद्वत्प्रकाशः–प्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

तिमता येषां तानि तथाऽर्द्धचन्द्रैश्चित्राणि–नानारूपाणि आश्चर्यभूतानि वा अर्द्धचन्द्रचित्राणि, ततः पूर्वपदेन विशेषणसमासः, नानामणिमयीभिर्दामभिरलङ्कृतानि नानामणिमयदामालङ्कृतानि अन्तर्बहिश्च श्लक्ष्णतपनीयरुचिरवालुकानां प्रस्तटः–प्रस्तारो येषु तानि तथा, शुभस्पर्शानि सश्रीकरूपाणि प्रासादीयानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि व्यक्तम् ॥ **'तेसि णं दाराण'**मित्यादि, तेषां द्वाराणामुभयोः पार्श्वयोरेकैकनैषेधिकीभावेन **'दुहतो'** इति द्विधातो–द्विप्रकारायां नैषेधिक्यां नैषेधिकी–निषीदनस्थानं द्वारकुड्यसमीपे नितम्ब इत्यर्थः षोडश षोडश वन्दनकलशाः प्रज्ञप्ताः, वर्णकस्तेषां वाच्यः, स चैवम्—'ते णं वंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा चंदणकयचच्चागा आविद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया इंदकुंभसमाणा पन्नत्ता समणाउसो!' व्यक्तं नवरं 'महया महया' इति अतिशयेन महान्तः 'इन्द्रकुम्भसमानाः' महाकुम्भप्रमाणकुम्भसदृशाः, **'एवं नेयव्वं जाव सोलस वणमालाओ पन्नत्ताओ'** 'एवम्' अनेन प्रकारेण तावन्नेतव्यं यावत्षोडश वनमालाः प्रज्ञप्ताः, तच्चैवम्—'तेसि णं दाराणं उभओ पासिं दुहतो निसीहियाए सोलस सोलस नागदंतया पन्नत्ता, ते णं नागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिया हेमजालगवक्खजालखिंखिणीजालपरिक्खित्ता अब्भुग्गया निसढा तिरियं सुसंपग्गहिया अहे पन्नगद्धरूवा पन्नगसंठाणसंठिया सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया गयदंतसमाणा पन्नत्ता समणाउसो!, तेसु णं नागदंतकेसु बहवे किण्हसुत्तवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा नीलसुत्तवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा०, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायमेइज्जमाणा एइज्जमाणा पलंबमाणा पलंबमाणा पझंझमाणा पझंझमाणा ओरालेणं मणुन्नेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति, तेसि णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

नागदंताणं उवरिं अन्ने सोलस सोलस नागदंतया मुत्ताजालंतरोसिया हेमजाल जाव महया महया गयदंतसमाणा पन्नत्ता समणाउसो!, तेसु णं नागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पन्नत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कगेसु बहवे वेरुलियमयाओ धूवघडियाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामातो सुगंधवरगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुन्नेणं घाणमणनिव्वुइकरेणं गंधेणं ते पएसे आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ चिट्ठंति। तेसि णं दाराणं उभओ पासि दुहतो निसीहियाए सोलस सोलस सालभंजियाओ पन्नत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ सुयलंकियाओ णाणाविहरागवसणाओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ नाणामल्लपिणद्धाओ सुट्ठिगेज्झसुमज्झाओ आमेलजमलजुगलवट्टियअब्भुन्नयपीणरइयसंठियपओहराओ ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ वामहत्थगहियग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खचिट्ठिएहिं लूसेमाणीओ विव चक्खुलोयणलेसाओ अण्णमण्णं खिज्जमाणीओ इव पुढविपरिमाणाओ सासयभावमुवगयाओ चंदाणणातो चंदविलासिणीतो चंदद्धसमनिडालाओ चंदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोवेमाणीओ विज्जुघणमरीइसूरदिप्पंततेयअहिगतरसन्निकासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ। तेसि णं दाराणं उभओ पासि दुहओ निसीहिआए सोलस २ जालकडगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तेसि णं दाराणं उभओ पासि दुहतो निसीहियाए सोलस सोलस घंटाओ पण्णत्ताओ। तासि णं घंटाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पन्नत्ते–जंबूणयामईओ घंटाओ वइरामईओ लालाओ नाणामणिमया घंटापासाओ तवणिज्जमयाओ संकलाओ रययामया रज्जूओ। ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ मेहस्सराओ हंसस्सराओ कोंचस्सराओ सीहस्सराओ दुंदुभिस्सराओ नंदिस्सराओ नंदिघोसाओ मंजुस्सराओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ सु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मरनिग्घोसाओ ओरालेणं मणुन्नेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सरेणं ते पएसे सव्वतो समंता आपूरेमाणीओ सिरीए अतीव उवसोहेमाणीओ उवसोभेमाणीतो चिट्ठंति । तेसि णं दाराणं उभओ पासि दुहतो निसीहियाए सोलस सोलस वणमालाओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणमालाओ नाणादुमलयकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणसोभंतसस्सिरीयातो सव्वरयणामईओ पासाईयाओ जाव पडिरूवाओ'इति, पाठसिद्धमेतत् नवरं नागदन्तसूत्रे नागदन्ता–अङ्कुटकाः, **'मुत्ताजालंतरूसिए'** इत्यादि, मुक्ताजालानामन्तरेषु यानि उच्छ्रितानि–लम्बमानानि हेमजालानि–हेममयदामसमूहा यानि गवाक्षजालानि–गवाक्षाकृतिरत्नविशेषदामसमूहाः यानि च किङ्किणीघण्टाजालानि–क्षुद्रघण्टासमूहास्तैः परिक्षिप्ताः–सर्वतो व्याप्ताः, **'अब्भुग्गया'** इति अभिमुखमुद्गता अभ्युद्गताः अग्रिमभागे मनाग् उन्नता इति भावः **'अभिनिसिट्ठा'** इति अभिमुखं–बहिर्भागाभिमुखं निसृष्टा अभिनिसृष्टाः 'तिरियं सुसंपरिग्गहिया' इति तिर्यग् भित्तिप्रदेशैः सुष्ठु–अतिशयेन सम्यग्–मनागप्यचलनेन परिगृहीताः **'अहेपन्नगद्धरूवा'** अधः–अधस्तनं यत् पन्नगस्यार्द्धं तस्येव रूपं–आकारो येषां ते तथा, अधःपन्नगार्द्धवदतिसरला दीर्घाश्चेति भावः, एतदेव व्याचष्टे–पन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थिताः, **'किण्हसुत्तवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा'** इति, कृष्णसूत्रवद्धा वग्घारिया–अवलंबिता माल्यदामकलापाः–पुष्पमालासमूहाः, एवं नीललोहितहारिद्रशुक्लसूत्रवद्धा अपि वाच्याः, **'तवणिज्जलंबूसगा'** इति दाम्नामग्रिमभागे गोलकाकृतिमण्डनविशेषो लम्बूसगः **'सुवण्णपयरगमंडिया'** इति सुवर्णप्रतरेण–सुवर्णपत्रकेण मण्डितानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि, सालभञ्जिकासूत्रे **'आमेलगजमलजुगलवट्टियअब्भुन्नयपीणरइयसंठियपओहराओ'** इति पीनं–पीवरं रचितं तथाजगत्स्थितिस्वाभाव्याद् रतिदं वा संस्थितं–संस्थानं यकाभ्यां तौ पीनरचितसंस्थितौ पीनरतिदसंस्थितौ वा आमेलक–आपीडः शेखरक इत्यर्थः तस्य यमलं–समश्रेणीकं यद् युगलं–द्वन्द्वं तद्वद् वर्त्तितौ–व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

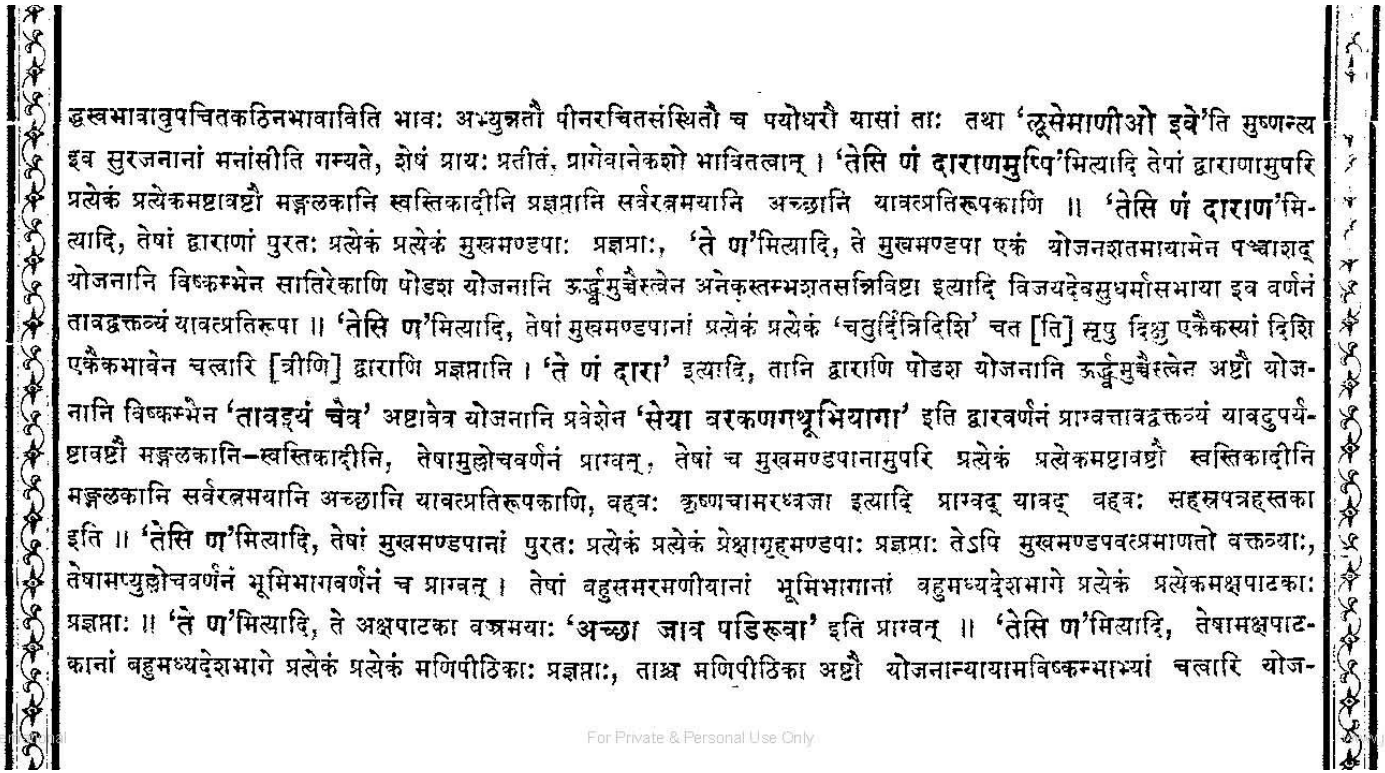

ह्लस्वभावावुपचितकठिनभावाविति भाव: अभ्युन्नतौ पीनरचितसंस्थितौ च पयोधरौ यासां ता: तथा '**लूसेमाणीओ इवे**'ति मृष्णन्त्य इव सुरजनानां मनांसीति गम्यते, शेषं प्राय: प्रतीतं, प्रागेवानेकशो भावितत्वात् । '**तेसि णं दाराणमुप्पि**'मित्यादि तेषां द्वाराणामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टावष्टौ मङ्गलकानि स्वस्तिकादीनि प्रज्ञप्तानि सर्वरत्नमयानि अच्छानि यावत्प्रतिरूपकाणि ॥ '**तेसि णं दाराण**'मित्यादि, तेषां द्वाराणां पुरत: प्रत्येकं प्रत्येकं मुखमण्डपा: प्रज्ञप्ता:, '**ते ण**'मित्यादि, ते मुखमण्डपा एकं योजनशतमायामेन पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भेन सातिरेकाणि षोडश योजनानि ऊर्द्धमुच्चैस्त्वेन अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टा इत्यादि विजयदेवसुधर्मासभाया इव वर्णनं तावद्वक्तव्यं यावत्प्रतिरूपा ॥ '**तेसि ण**'मित्यादि, तेषां मुखमण्डपानां प्रत्येकं प्रत्येकं 'चतुर्दिंत्रिदिशि' चत [ति] सृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकभावेन चत्वारि [त्रीणि] द्वाराणि प्रज्ञप्तानि । '**ते णं दारा**' इत्यादि, तानि द्वाराणि षोडश योजनानि ऊर्द्धमुच्चैस्त्वेन अष्टौ योजनानि विष्कम्भेन '**तावइयं चेव**' अष्टावेव योजनानि प्रवेशेन '**सेया वरकणगथूभियागा**' इति द्वारवर्णनं प्राग्वत्तावद्वक्तव्यं यावदुपर्यष्टावष्टौ मङ्गलकानि–स्वस्तिकादीनि, तेषामुल्लोचवर्णनं प्राग्वत्, तेषां च मुखमण्डपानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानि सर्वरत्नमयानि अच्छानि यावत्प्रतिरूपकाणि, वहव: कृष्णचामरध्वजा इत्यादि प्राग्वद् यावद् वहव: सहस्रपत्रहस्तका इति ॥ '**तेसि ण**'मित्यादि, तेषां मुखमण्डपानां पुरत: प्रत्येकं प्रत्येकं प्रेक्षागृहमण्डपा: प्रज्ञप्ता: तेऽपि मुखमण्डपवत्प्रमाणतो वक्तव्या:, तेषामप्युल्लोचवर्णनं भूमिभागवर्णनं च प्राग्वत् । तेषां बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकमक्षपाटका: प्रज्ञप्ता: ॥ '**ते ण**'मित्यादि, ते अक्षपाटका वज्रमया: '**अच्छा जाव पडिरूवा**' इति प्राग्वत् ॥ '**तेसि ण**'मित्यादि, तेषामक्षपाटकानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिका: प्रज्ञप्ता:, ताश्च मणिपीठिका अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां चत्वारि योज-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

नानि बाहल्येन सर्वाग्रेण मणिमय्योऽच्छा इत्यादि प्राग्वत् ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं २ सिंहासनं प्रज्ञप्तं, तेषां च सिंहासनानां वर्णनं विजयदूष्यवर्णनमङ्कुशवर्णनं दामवर्णनं च प्राग्वत् ॥ तेषां च प्रेक्षागृहमण्डपानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टावष्टौ स्वस्तिकादीनि मङ्गलकानि यावद् बहवः सहस्रपत्रहस्तका इति । **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां प्रेक्षागृहमण्डपानां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिकाः प्रत्येकं प्रत्येकं षोडश योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां अष्टौ योजनानि बाहल्येन सर्वाग्रेण मणिमय्योऽच्छा इत्यादि प्राग्वद् यावत्प्रतिरूपाः ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं २ चैत्यस्तूपाः प्रज्ञप्ताः ॥ **'ते णं चेइयथूभा'** इत्यादि, ते चैत्यस्तूपाः षोडश योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां सातिरेकाणि षोडश योजनान्यूर्ध्वमुच्चैस्त्वेन, ते च शङ्खाङ्ककुन्ददकरजोऽमृतमथितफेनपुञ्जसंनिकाशा 'अच्छा' इत्यादि प्राग्वत् यावत्प्रतिरूपाः ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां चैत्यस्तूपानामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहवः कृष्णचामरध्वजा इत्यादि प्राग्वद् यावद् बहवः सहस्रपत्रहस्तकाः ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां चैत्यस्तूपानां प्रत्येकं प्रत्येकं **'चतुर्दिशि'** चतसृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकमणिपीठिकाभावेन चतस्रो मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिका अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां चत्वारि योजनानि बाहल्येन सर्वाग्रेण मणिमय्यो यावत्प्रतिरूपाः ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि एकैकस्या मणिपीठिकाया उपरि एकैकप्रतिमाभावेन चतस्रो जिनप्रतिमा जिनोत्सेधप्रमाणमात्राः पञ्चधनुःशतप्रमाणा इत्यर्थः सर्वाग्रेण रत्नमय्यः संपर्यङ्कासननिषण्णाः स्तूपाभिमुख्यस्तिष्ठन्ति, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि ऋषभा दक्षिणस्यां वर्द्धमानाः अपरस्यां चन्द्राननाः उत्तरस्यां वारिषेणाः ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां चैत्यस्तूपानां पुरतः प्रत्येकं प्रत्येकं मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिकाः षोडश योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यामष्टौ योजनानि बाहल्येन सर्वाग्रेण

॥ ३६२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

मणिमय्योऽच्छा यावत्प्रतिरूपा: ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकं चैत्यवृक्ष: प्रज्ञप्त:, ते च चैत्यवृक्षा अष्टौ योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन अर्द्धयोजनमुद्वेधेन द्वे योजने उच्चैस्त्वेन स्कन्ध: स एवार्द्धयोजनं विष्कम्भेन यावद्बहुमध्यदेशभागे ऊर्द्ध्वं विनिर्गता शाखा–विडिमा सा षड् योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन, साऽपि चार्द्धयोजनं विष्कम्भेन, सर्वाग्रेण सातिरेकाण्यष्टौ योजनानि प्रज्ञप्ता । 'तेसि णमयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते' इत्यादि चैत्यवृक्षवर्णनं विजयराजधानीगतचैत्यवृक्षवद्भावनीयं यावत्तावर्णनमिति ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां चैत्यवृक्षाणामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहव: कृष्णचामरध्वजा इत्यादि तावद् यावत्सहस्रपत्रहस्तका: सर्वरत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपा: ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां चैत्यवृक्षाणां पुरत: प्रत्येकं मणिपीठिका: प्रज्ञप्ता:, ताश्च मणिपीठिका अष्टौ योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां चत्वारि योजनानि बाहल्येन सर्वात्मना मणिमय्योऽच्छा यावत्प्रतिरूपा: ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां मणिपीठिकानामुपरि प्रत्येकं २ महेन्द्रध्वज: प्रज्ञप्त:, ते च महेन्द्रध्वजा: षष्टियोजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन योजनमुद्वेधेन योजनं विष्कम्भेन वज्रमया इत्यादि वर्णनं विजयदेवराजधानीगतमहेन्द्रध्वजवद्वेदितव्यं यावत्तेषां महेन्द्रध्वजानामुपरि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहव: कृष्णचामरध्वजा यावद् बहव: सहस्रपत्रहस्तका: सर्वरत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपा: ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां महेन्द्रध्वजानां पुरत: प्रत्येकं प्रत्येकं नन्दाभिधाना पुष्करिणी प्रज्ञप्ता, **'ताओ नंदाओ पुक्खरिणीओ'** इत्यादि, ताश्च नन्दापुष्करिण्य एकैकं योजनशतमायामविष्कम्भाभ्यां पञ्चाशद् योजनानि विष्कम्भेन दश योजनान्युद्वेधेन 'अच्छाओ सण्हाओ रययमयकूलाओ' इत्यादि पुष्करिणीवर्णनं जगत्युपरिपुष्करिणीवद्वक्तव्यं नवरं **'खोदरसपडिपुण्णाओ'** इति वक्तव्यं, ताश्च नन्दापुष्करिण्य: प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया प्रत्येकं प्रत्येकं वनखण्डेन च परिक्षिप्ता:, तासां च नन्दापुष्करिणीनां त्रिदिशि त्रिसोपानप्रतिरूपकाणि प्रज्ञप्तानि तेषां वर्णनं

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...inelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

तोरणवर्णनं च प्राग्वत् । इदमन्यदधिकं पुस्तकान्तरे दृश्यते—'तासि णं पुक्खरिणीणं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तंजहा –पुरच्छिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं—"पुव्वेण असोगवणं दाहिणतो होइ चंपगवणं तु (सत्तपण्णवणं) । अवरेण चंपगवणं चूयवणं उत्तरे पासे ॥ १ ॥" **'तेसु ण'**मित्यादि, तेषु सिद्धायतनेषु प्रत्येकं प्रत्येकमष्टचत्वारिंशत् गुलिकासहस्राणि, गुलिकाः–पीठिका अभिधीयन्ते, ताश्च मनोगुलिकापेक्षया प्रमाणतः क्षुल्लास्तासां सहस्राणि गुलिकासहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि षोडश सहस्राणि पश्चिमायां षोडश सहस्राणि दक्षिणस्यामष्टौ सहस्राणि उत्तरस्यामष्टौ सहस्राणि । **'तासु णं गुलियासु बहवे सुवण्णरूप्पामया फलगा पन्नत्ता'** इत्यादि विजयदेवराजधानीगतसुधर्म्मासभायामिव वक्तव्यं यावद्दामवर्णनं ॥ **'तेसु ण'**मित्यादि, तेषु सिद्धायतनेषु प्रत्येकं प्रत्येकमष्टचत्वारिंशत् मनोगुलिकासहस्राणि प्रज्ञप्तानि, गुलिकापेक्षया प्रमाणतो महतीतराः, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि षोडश सहस्राणि पश्चिमायां षोडश सहस्राणि दक्षिणस्यामष्टौ सहस्राणि उत्तरस्यामष्टौ सहस्राणि, एतास्वपि फलकनागदन्तकमाल्यदामवर्णनं प्राग्वत् ॥ **'तेसु णं सिद्धायतणेसु'** इत्यादि, तेषु सिद्धायतनेषु प्रत्येकं प्रत्येकमष्टचत्वारिंशद्धोमानुष्यः–शय्यारूपाः स्थानविशेषास्तासां सहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि षोडश सहस्राणि पश्चिमायां षोडश सहस्राणि दक्षिणस्यामष्टौ उत्तरस्यामष्टौ सहस्राणि, तास्वपि फलकवर्णनं नागदन्तवर्णनं सिक्कवर्णनं धूपघटिकावर्णनं प्राग्वत् ॥ **'तेसि णं सिद्धायतणाण'**मित्यादि उल्लोकवर्णनमन्तर्बहुसमरमणीयभूमिभागवर्णनं शब्दवर्जं प्राग्वत् ॥ **'तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाण'**मित्यादि, तेषां बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं २ मणिपीठिकाः प्रज्ञप्ताः, ताश्च मणिपीठिकाः षोडश योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यामष्टौ योजनानि बाहल्येन सर्वात्मना मणिमय्यो यावत्प्रतिरूपकाः ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां च मणिपीठिकानामुपरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत्येकं २ देवच्छन्दक: प्रज्ञप्त:, ते च देवच्छन्दका: षोडश योजनान्यायामविष्कम्भाभ्यां सातिरेकाणि षोडश योजनान्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन सर्वात्मना रत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपा: **'तेसु ण'**मित्यादि, तेषु देवच्छन्दकेषु प्रत्येक २ मष्टशतं जिनप्रतिमानां जिनोत्सेधप्रमाणमात्राणां पञ्चधनु:शतप्रमाणानामित्यर्थ: सन्निक्षिप्तं तिष्ठति, प्रतिमावर्णनादि विजयदेवराजधानीगतसिद्धायतनवत्तावद्वक्तव्यं यावदष्टशतं धूपकडुच्छुकानाम् ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां सिद्धायतनानामुपरि प्रत्येकं प्रत्येकमष्टावष्टौ मङ्गलकानि बहव: कृष्णचामरध्वजा यावद्बहव: सहस्रपत्रहस्तका: सर्वरत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपा: ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, तत्र तेषु चतुर्ष्वञ्जनपर्वतेषु मध्ये योऽसौ पूर्वदिग्भावी अञ्जनकपर्वतस्तस्य **'चतुर्दिशि'** चतसृषु दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकनन्दापुष्करिणीभावेन चतस्रो नन्दापुष्करिण्य: प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि नन्दिषेणा दक्षिणस्याममोघा अपरस्यां गोस्तूपा उत्तरस्यां सुदर्शना, ताश्च पुष्करिण्य एकं योजनशतमायामविष्कम्भाभ्यां त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके त्रीणि गव्यूतानि अष्टाविंशं धनु:शतं त्रयोदशाङ्गुलानि अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्ता:, दश योजनान्युद्वेधेन, 'अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ' इत्यादि जगत्युपरिपुष्करिणीवन्निरवशेषं वक्तव्यं नवरं 'वट्टाओ समतीराओ खोदोदगपडिपुण्णाओ' इति विशेष:, ताश्च प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया वनखण्डेन च परिक्षिप्ता:, अत्रापीदमन्यदधिकं पुस्तकान्तरे दृश्यते—'तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता तंजहा–पुरच्छिमेणं दाहिणेणं अवरेणं उत्तरेणं, पुव्वेणं असोगवणं जाव चूयवणं उत्तरे पासे' एवं शेषाञ्जनपर्वतसम्बन्धिनीनामपि नन्दापुष्करिणीनां वाच्यम् ॥ **'तासि ण'**मित्यादि, तासां पुष्करिणीनां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं २ दधिमुखनामा पर्वत: प्रज्ञप्त:, **'ते ण'**मित्यादि, ते दधिमुखपर्वताश्चतु:षष्टियोजनसहस्राणि ऊर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन सर्वत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाः पल्यङ्कसंस्थानसंस्थिता दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन एकत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् 'त्रयोविंशानि' त्रयोविंशत्यधिकानि योजनशतानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्ताः सर्वात्मना स्फटिकमया अच्छा यावत्प्रतिरूपाः प्रत्येकं प्रत्येकं पद्मवरवेदिकया परिक्षिप्ताः प्रत्येकं २ वनखण्डेन परिक्षिप्ताः । 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां दधिमुखपर्वतानामुपरि प्रत्येकं २ बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, तस्य शब्दवर्णनं तावद्वक्तव्यं यावद्बहवो 'वानमन्तरा देवा देवीओ य आसयंति सयंति जाव विहरंति' ॥ 'तेसि ण'मित्यादि, तेषां बहुसमरमणीयानां भूमिभागानां बहुमध्यदेशभागे प्रत्येकं २ सिद्धायतनं प्रज्ञप्तं, सिद्धायतनवक्तव्यता प्रमाणादिका अञ्जनपर्वतोपरिसिद्धायतनवद्वक्तव्या यावदष्टशतं प्रत्येकं प्रत्येकं धूपकडुच्छुकानामिति ॥ 'तत्थ णं जे से दाहिणे अंजणगपव्वए' इत्यादि, दक्षिणाञ्जनकपर्वतस्यापि पूर्वदिग्भाव्यञ्जनकपर्वतस्येव निरवशेषं वक्तव्यं, नवरं नन्दापुष्करिणीनां नामनानात्वं तद्यथा–पूर्वस्यां नन्दोत्तरा दक्षिणस्यां नन्दा अपरस्यामानन्दा उत्तरस्यां नन्दिवर्द्धना, शेषं तथैव ॥ 'तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि' इत्यादि, पूर्वदिग्भाव्यञ्जनपर्वतस्येव पश्चिमदिग्भाव्यञ्जनपर्वतस्यापि वक्तव्यं यावत्प्रत्येकं प्रत्येकमष्टशतं धूपकडुच्छुकानां, नवरं नन्दापुष्करिणीनां नामनानात्वं, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि भद्रा दक्षिणस्यां विशाला अपरस्यां कुमुदा उत्तरस्यां पुण्डरीकिणी, शेषं तथैव ॥ एवमुत्तरदिग्भाव्यञ्जनकपर्वते वक्तव्यं, नवरमत्रापि नन्दापुष्करिणीनां नामनानात्वं, तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि विजया दक्षिणस्यां वैजयन्ता अपरस्यां जयन्ता उत्तरस्यामपराजिता, शेषं तथैव यावत्प्रत्येकं प्रत्येकमष्टशतं धूपकडुच्छुकानामिति । षोडशानामपि चामीषां वापीनामपान्तराले प्रत्येकं प्रत्येकं रतिकरपर्वतौ जिनभवनमण्डितशिखरौ शास्त्रान्तरेऽभिहिताविति सर्वसङ्ख्यया नन्दीश्वरद्वीपे द्वापञ्चाशत् सिद्धायतनानि ॥ 'तत्थ ण'मित्यादि, 'तत्र' तेषु सिद्धायतनेषु णमिति पूर्ववत् बहवो भवनपतिवानमन्तरज्योतिष्कवैमानिका

॥ ३६४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

देवाश्चातुर्मासिकेषु पर्युषणायामन्येषु च बहुषु जिनजन्मनिष्क्रमणज्ञानोत्पादपरिनिर्वाणादिषु देवकार्येषु देवसमितिषु, एतदेव पर्याय-द्वयेन व्याचष्टे–देवसमवायेषु देवसमुदायेषु आगता: प्रमुदितप्रक्रीडिता अष्टाह्निकारूपा महामहिमा: कुर्वन्त: सुखंसुखेन **'विहरन्ति'** आसते । **अदुत्तरं च णं गोयमा!'** इत्यादि, अथान्यद् गौतम! नन्दीश्वरवरे द्वीपे चक्रवालविष्कम्भेन बहुमध्यदेशभागे चतसृषु विदिक्षु एकैकस्यां विदिशि एकैकभावेन चत्वारो रतिकरपर्वता: प्रज्ञप्तास्तद्यथा–एक उत्तरपूर्वस्यां द्वितीयो दक्षिणपूर्वस्यां तृतीयो दक्षिणापरस्यां चतुर्थ उत्तरापरस्याम् ॥ **'ते ण'**मित्यादि, ते रतिकरपर्वता दश योजनसहस्राण्यूर्द्ध्वमुच्चैस्त्वेन एकं योजनसहस्रमुद्वेधेन सर्वत्रसमा झल्लरीसंस्थानसंस्थिता दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेन एकत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट्त्रयोविंशानि योजनशतानि परिक्षेपेण सर्वात्मना रत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपा:, तत्र योऽसावुत्तरपूर्वो रतिकरपर्वतस्तस्य **'चतुर्दिशि'** चतुर्दिक्षु एकैकस्यां दिशि एकैकराजधानीभावेन ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणामग्रमहिषीणां जम्बूद्वीपप्रमाणाश्चतस्रो राजधान्य: प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि नन्दोत्तरा दक्षिणस्यां नन्दा पश्चिमायामुत्तरकुरा उत्तरस्यां देवकुरा, तत्र कृष्णाया:–कृष्णनामिकाया अग्रमहिष्या नन्दोत्तरा कृष्णराज्या नन्दा रामाया उत्तरकुरा रामरक्षिताया देवकुरा, तत्र योऽसौ दक्षिणपूर्वो रतिकरपर्वतस्तस्य चतुर्दिशि शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणामग्रमहिषीणां जम्बूद्वीपप्रमाणाश्चतस्रो राजधान्य: प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि सुमना: दक्षिणस्यां सौमनसा अपरस्यामर्चिर्मालिनी उत्तरस्यां मनोरमा, तत्र **'पद्माया'** पद्मनामिकाया अग्रमहिष्या सुमना: शिवाया: सौमनसा शच्याश्चार्चिर्मालिनी अञ्जुकाया मनोरमा, तत्र योऽसौ दक्षिणपश्चिमो रतिकरपर्वतस्तस्य चतुर्दिशि शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणामग्रमहिषीणां जम्बूद्वीपप्रमाणाश्चतस्रो राजधान्य: प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि भूता दक्षिणस्यां भूतावतंसा अपरस्यां गोस्तूपा उत्तरस्यां सुदर्शना, तत्र 'अम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८३]

दीप अनुक्रम [२९४]

लायाः' अमलनामिकाया अग्रमहिष्या भूता राजधानी अप्सरसो भूतावतंसिका नवमिकाया गोस्तूपा रोहिण्याः सुदर्शना, तत्र यो-ऽसावुत्तरपश्चिमो रतिकरपर्वतस्तस्य चतुर्दिशि ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतसृणामग्रमहिषीणां जम्बूद्वीपप्रमाणाश्चतस्रो राज-धान्यः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पूर्वस्यां दिशि रत्ना दक्षिणस्यां रत्नोच्चया अपरस्यां सर्वरत्ना उत्तरस्यां रत्नसञ्चया, तत्र वसुनामिकाया अग्रम-हिष्या रत्ना वसुप्राप्ताया रत्नोच्चया वसुमित्रायाः सर्वरत्ना वसुंधराया रत्नसञ्चया । रतिकरपर्वतचतुष्टयवक्तव्यता केषुचित्पुस्तकेषु स-र्वथा न दृश्यते । कैलासहरिवाहननामानौ च द्वौ देवौ तत्र यथाक्रमं पूर्वार्द्धापरार्द्धाधिपती महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ परिव-सतः, तत एवं नन्द्या–समृद्ध्या 'टुनदु समृद्धौ' इति वचनात् ईश्वरः–स्फातिमान् न तु नान्नेति नन्दीश्वरः, तथा चाह—'से एए-णट्ठेण'मित्याद्युपसंहारवाक्यं प्रतीतं, चन्द्रादिसङ्ख्यासूत्रं प्राग्वत् ॥

णंदिस्सरवरण्णं दीवं णंदीसरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिते जाव सव्वं तहेव अट्ठो जो खोदोदगस्स जाव सुमणसोमणसभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया जाव परिवसंति सेसं तहेव जाव तारगं ॥ (सू० १८४)

'नंदीसरण्ण'मित्यादि, नन्दीश्वरं णमिति पूर्ववत् नन्दीश्वरोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठति यथैव क्षोदोदकसमुद्रस्य वक्तव्यता तथैवास्याप्यर्थसहिता वक्तव्या, नवरमत्र सुमनसुमनसौ च द्वौ देवौ वक्तव्यौ, तावतिशयेन स्फीताविति नन्दीश्वरयोरुदकं यत्रासौ नन्दीश्वरोदः, अथवा नन्दीश्वरवरं द्वीपं परिवेष्ट्य स्थित इति नन्दीश्वरं प्रति लग्न-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्
नन्दीश्वर-समुद्र आदि द्वीप-समुद्राधिकार: आरभ्यते

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८४]

दीप अनुक्रम [२९५]

मुदकं यस्यासौ नन्दीश्वरोद:, एवं सर्वत्रापि समुद्रेषु द्वीपेषु च व्युत्पत्तिर्यथायोगं भावनीया ॥ एवमेते जम्बूद्वीपादयो नन्दीश्वरसमुद्रपर्यवसाना एकप्रत्यवतारा उक्ता:, अत ऊर्द्धमरुणादीन द्वीपान् समुद्रांश्च प्रत्येकं त्रिप्रत्यवतारान् विवक्षुराह—

णंदीसरोदं समुद्दं अरुणे णामं दीवे वट्टे वलयागार जाव संपरिक्खित्ता णं चिट्ठति । अरुणे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिए?, गोयमा! समचक्कवालसंठिते नो विसमचक्कवालसंठिते, केवतियं चक्कवालवि० संठिते?, संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं संखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते, पउमवरवेइयासंडदारा दारंतरा य तहेव संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं दारंतरं जाव अट्ठो, वावीओ खोतोदगपडिहत्थाओ उप्पातपव्वयका सव्ववइरामया अच्छा, असोग वीतसोगा य एत्थ दुवे देवा महिड्ढीया जाव पलिवसंति, से तेण० जाव संखेज्जं सव्वं ॥ अरुणण्णं दीवं अरुणोदे णामं समुद्दे तस्सवि तहेव परिक्खेवो अट्ठो खोतोदगे णवरिं सुभद्द सुमणभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया सेसं तहेव ॥ अरुणोदगं समुद्दं अरुणवरे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाण० तहेव संखेज्जगं सव्वं जाव अट्ठो खोयोदगपडिहत्थाओ उप्पायपव्वतया सव्ववइरामया अच्छा, अरुणवरभद्दअरुणवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । एवं अरुणवरोदेवि समुद्दे जाव देवा अरुणवरअरुणवरमहावरा य एत्थ दो देवा सेसं तहेव ॥ अरुणवरोदण्णं समुद्दं अरुणवरावभासे णामं दीवे वट्टे जाव देवा अरुणवरावभासभद्दा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

रुणवरावभाससमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । एवं अरुणवरावभासे समुद्दे णवरि देवा अरुणवरावभासवरारुणवरावभासमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया ॥ कुंडले दीवे कुंडलभद्दकुंडलमहाभद्दा दो देवा महिड्ढीया, कुंडलोदे समुद्दे चक्खुसुभचक्खुकंता एत्थ दो देवा म० । कुंडलवरे दीवे कुंडलवरभद्दकुंडलवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया, कुंडलवरोदे समुद्दे कुंडलवर [वर] कुंडलवरमहावरा एत्थ दो देवा म० ॥ कुंडलवरावभासे दीवे कुंडलवरावभासभद्दकुंडलवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा० ॥ कुंडलवरोभासोदे समुद्दे कुंडलवरोभासवरकुंडलवरोभासमहावरा एत्थ दो देवा म० जावपलिओवमट्ठितीया परिवसंति ॥ कुंडलवरोभासं णं समुद्दं रुचगे णामं दीवे वट्टे वलया० जाव चिट्ठति, किं समचक्क० विसमचक्कवाल०?, गोयमा ! समचक्कवाल० नो विसमचक्कवालसंठिते, केवतियं चक्कवाल० पण्णत्ते?, सव्वट्ठ मणोरमा एत्थ दो देवा सेसं तहेव । रुयगोदे नामं समुद्दे जहा खोदोदे समुद्दे संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं चक्कवालवि० संखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं परिक्खेवेणं दारा दारंतरंपि संखेज्जाइं जोतिसंपि सव्वं संखेज्जं भाणियव्वं, अट्ठोवि जहेव खोदोदस्स नवरि सुमणसोमणसा एत्थ दो देवा महिड्ढीया तहेव रुयगाओ आढत्तं असंखेज्जं विक्खंभा परिक्खेवो दारा दारंतरं च जोइसं च सव्वं असंखेज्जं भाणियव्वं । रुयगोदण्णं समुद्दं रुयगवरं णं दीवे वट्टे रुयगवरभद्दरुयगवरमहाभद्दा एत्थ दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१८५]

दीप अनुक्रम [२९६--३००]

देवा रुयगवरोदे रुयगवररुयगवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । रुयगवरावभासे दीवे रुयगवरावभासभद्दरुयगवरावभासमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । रुयगवरावभासे समुद्दे रुयगवरावभासवररुयगवरावभासमहावरा एत्थ० ॥ हारदीवे हारभद्दहारमहाभद्दा एत्थ० । हारसमुद्दे हारवरहारवरमहावरा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । हारवरोदे हारवरभद्दहारवरमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । हारवरोए समुद्दे हारवरहारवरमहावरा एत्थ० । हारवरावभासे दीवे हारवरावभासभद्दहारवरावभासमहाभद्दा एत्थ० । हारवरावभासोए समुद्दे हारवरावभासवरहारवरावभासमहावरा एत्थ० । एवं सव्वेवि तिपडोयारा णेतव्वा जाव सूरवरोभासोए समुद्दे, दीवेसु भद्दनामा वरनामा होंति उदहीसु, जाव पच्छिमभावं च खोतवरादीसु सयंभूरमणपज्जंतेसु वावीओ खोओदगपडिहत्थाओ पव्वयका य सव्ववइरामया । देवदीवे दीवे २ दो देवा महिड्ढीया देवभद्ददेवमहाभद्दा एत्थ० देवोदे समुद्दे देववरदेवमहावरा एत्थ० जाव सयंभूरमणे दीवे सयंभूरमणभद्दसयंभूरमणमहाभद्दा एत्थ दो देवा महिड्ढीया । सयंभुरमणण्णं दीवं सयंभुरमणोदे नामं समुद्दे वट्टे वलया० जाव असंखेज्जाइं जोयणसतसहस्साइं परिक्खेवेणं जाव अट्ठो, गोयमा ! सयंभुरमणोदए उदए अच्छे पत्थे जच्चे तणुए फलिहवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१८५]

दीप अनुक्रम [२९६--३००]

श्रीजीवा-जीवाभि० मलयगि-रीयावृत्तिः ॥ ३६७ ॥

सयंभुरमणवरसयंभुरमणमहावरा इत्थ दो देवा महिड्ढीया, सेसं तहेव जाव असंखेज्जाओ तारा-गणकोडिकोडीओ सोभेंसु वा ३ ॥ (सू० १८५)

'नंदीसरवरोदण्णं समुद्द'मित्यादि, नन्दीश्वरोदं समुद्रमरुणो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितो यावत्परिक्षिप्य तिष्ठति । यैव क्षोदवरद्वीपवक्तव्यता सैवात्राप्यर्थसहिता वक्तव्या, नवरमत्र वाप्यादयः क्षीरो(क्षोदो)दकपरिपूर्णाः, पर्वतादयस्तु सर्वात्मना वज्रमया वक्तव्याः, अशोकवीतशोकौ च द्वौ देवौ, स च देवप्रभया पर्वतादिगतवज्ररत्नप्रभया चारुण इति अरुणनामा ॥ 'अरुण-ण्ण'मित्यादि, अरुणं णमिति पूर्ववत् द्वीपमरुणोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति । यैव क्षोदोदकसमुद्रवक्तव्यता सैवेहापि वक्तव्या, नवरमत्र सुभद्रसुमनोभद्रनामानौ द्वौ देवौ वक्तव्यौ, ततोऽरुणद्वीपपरिक्षेपी यदिवा सुभद्रसुमनोभद्रदेवाभरणतुल्याऽरुणं—आरक्तमुदकं यस्यासावरुणोदयः ॥ 'अरुणोद्ण्ण'मित्यादि, अरुणोदं समुद्रमरुणवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थितो यावत्परिक्षिप्य तिष्ठति । अत्रापि वक्तव्यता सैव नवरमत्रारुणवरभद्रारुणवरमहाभद्रौ देवौ वाच्यौ, नामव्युत्पत्तिभावनाऽपि स्वधिया भावनीया ॥ अरुणवरद्वीपमरुणवरोदो नाम समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितो यावत्परिक्षिप्य तिष्ठति । अत्रापि वक्तव्यता सैव नवरमरुणवरारुणमहावरावत्र देवौ ॥ अरुणवरोदं समुद्रमरुणवरावभासो नाम द्वीपो वृत्तो यावत्परिक्षिप्य तिष्ठति, वक्तव्यता अत्रापि क्षोदवरद्वीपवत् नवरमत्रारुणवरावभासभद्रारुणवरावभासमहाभद्रौ देवौ । अरुणावभासं द्वीपमरुणावभासो नाम समुद्रो वृत्तो यावत्परिक्षिप्य तिष्ठति, वक्तव्यताऽत्रापि क्षोदोदसमुद्रवत् नवरमत्रारुणवरावभासवरारुणवरावभासमहावरौ देवौ । तदेवमरुणो द्वीपः समुद्रश्च त्रिप्रत्यवतार उक्तस्तद्यथा—अरुणो द्वीपोऽरुणः समुद्रः अरुणवरो द्वीपः अरुणवरः समुद्रः

३ प्रतिपत्तौ त्रिप्रत्यव-तारा द्वी-पसमुद्राः उद्देशः २ सू० १८५

॥ ३६७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

अरुणवरावभासो द्वीपोऽरुणवरावभासः समुद्रः ॥ एवं कुण्डलो द्वीपः कुण्डलः समुद्रश्च त्रिप्रत्यवतारो वक्तव्यस्तद्यथा—अरुणवरावभाससमुद्रपरिक्षेपी कुण्डलो द्वीपः तत्परिक्षेपी कुण्डलः समुद्रः तत्परिक्षेपी कुण्डलवरो द्वीपः तत्परिक्षेपी कुण्डलवरः समुद्रः तत्परिक्षेपी कुण्डलवरावभासो द्वीपः तत्परिक्षेपी कुण्डलवरावभासः समुद्रः, वक्तव्यता सर्वत्रापि क्षोदवरद्वीपक्षोदोदसमुद्रवद्वक्तव्या, नवरं देवतानामिदं नामनानात्वं—कुण्डले द्वीपे कुण्डलभद्रकुण्डलमहाभद्रौ द्वौ देवौ, कुण्डलसमुद्रे चक्षुःशुभचक्षुःकान्तौ, कुण्डलवरे द्वीपे कुण्डलवरभद्रकुण्डलवरमहाभद्रौ, कुण्डलवरे समुद्रे कुण्डलवरकुण्डलवरमहावरौ कुण्डलवरावभासे द्वीपे कुण्डलवरावभासभद्रकुण्डलवरावभासमहाभद्रौ, कुण्डलवरावभासे समुद्रे कुण्डलवरावभासवरकुण्डलवरावभासमहावरौ । कुण्डलवरावभाससमुद्रपरिक्षेपी रुचको द्वीपो रुचकद्वीपपरिक्षेपी रुचकः समुद्रः तत्परिक्षेपी रुचकवरो द्वीपस्तत्परिक्षेपी रुचकवरः समुद्रः तत्परिक्षेपी रुचकवरावभासो द्वीपः तत्परिक्षेपी रुचकवरावभासः समुद्रः, वक्तव्यता सर्वत्रापि प्राग्वत् नवरं देवनामनानात्वं, रुचके द्वीपे सर्वार्थमनोरमौ देवौ, रुचकसमुद्रे सुमनःसौमनसौ, रुचकवरे द्वीपे रुचकवरभद्ररुचकवरमहाभद्रौ, रुचकवरे समुद्रे रुचकवररुचकवरमहावरौ, रुचकवरावभासे द्वीपे रुचकवरावभासभद्ररुचकवरावभासमहाभद्रौ, रुचकवरावभासे समुद्रे रुचकवरावभासवररुचकवरावभासमहावरौ, एतावता ग्रन्थेन यदन्यत्र पठ्यते—"जंबूदीवे लवणे धायइ कालोय पुक्खरे वरुणे । खीरघयखोयनंदी अरुणवरे कुंडले रुयगे ॥ १ ॥" इति तद्भावितम् । अत ऊर्द्धं तु यानि लोके शङ्खध्वजकलशश्रीवत्सादीनि शुभानि नामानि तन्नामानो द्वीपसमुद्राः प्रत्येतव्याः, सर्वेऽपि च त्रिप्रत्यवताराः, अपान्तराले च भुजगवरः कुशवरः क्रौञ्चवर इति । तथा यानि कानिचिदाभरणनामानि हारार्द्धहारप्रभृतीनि यानि वस्तुनामानि आजिनादीनि यानि गन्धनामानि कोष्ठादीनि यान्युत्पलनामानि जलरुहचन्द्रोद्द्योतप्रमुखाणि यानि च तिलकप्रभृतीनि

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८५]

दीप अनुक्रम [२९६--३००]

वृक्षनामानि यानि च पृथिव्याः "पुढवीसक्करावालुया उ उवले सिला य लोणूसे" इत्यादि षट्त्रिंशद्भेदभिन्नाया निधीनां नवानां रत्नानां चतुर्दशानां चक्रवर्त्तिसम्बन्धिनां वर्षधरपर्वतानां–क्षुल्लहिमवदादीनां ह्रदानां–पद्ममहापद्मानां नदीनां–गङ्गासिन्धुप्रभृतीनां महानदीनां अन्तरनदीनां च विजयानां–कच्छादीनां द्वात्रिंशतो वक्षस्कारपर्वतानां–मालयवदादीनां कल्पानां–सौधर्मादीनां द्वादशानाम् इन्द्राणां–शक्रादीनां दशानां कुरूणां–देवकुरूत्तरकुरूणां मन्दरस्य–मेरोः आवासानां–शक्रादिसम्बन्धिनां मेरुप्रत्यासन्नादीनां भवनपत्यादिसम्बन्धिनां च कूटानां–क्षुल्लहिमवदादिसम्बन्धिनां नक्षत्राणां–कृत्तिकादीनामष्टाविंशतेः चन्द्राणां सूर्याणां च नामानि तानि सर्वाण्यपि द्वीपसमुद्रेषु त्रिप्रत्यवतारणि वक्तव्यानीति दिदर्शयिषुराह—**'एवं हारद्दीवे'** इत्यादि, एवं च हारो द्वीपो हारोदः समुद्रः, हारवरो द्वीपो हारवरः समुद्रः, हारवरावभासो द्वीपो हारवरावभासः समुद्रः, द्वीपसमुद्रवक्तव्यता पूर्ववत्, नवरं हारे द्वीपे हारभद्रहारमहाभद्रौ देवौ हारे समुद्रे हारवरहारमहावरौ, हारवरे द्वीपे हारवरभद्रहारवरमहाभद्रौ, हारवरे समुद्रे हारवरहारवरमहावरौ, हारवरावभासे द्वीपे हारवरावभासभद्रहारवरावभासमहाभद्रौ, हारवरावभासे समुद्रे हारवरावभासवरहारवरावभासमहावरौ । एवं शेषाणामप्याभरणनाम्नां त्रिप्रत्यवतारो वक्तव्यः–अर्द्धहारो द्वीपः अर्द्धहारः समुद्रः, अर्द्धहारवरो द्वीपः अर्द्धहारवरः समुद्रः, अर्द्धहारवरावभासो द्वीपः अर्द्धहारवरावभासः समुद्रः, कनकावलिद्वीपः कनकावलिसमुद्रः, कनकावलिवरो द्वीपः कन० व० समुद्रः, कनकावलिवरावभासो द्वीपः कनकावलिवरावभासः समुद्रः, रत्नावलिर्द्वीपः रत्नावलिः समुद्रः, रत्नावलिवरो द्वीपः रत्नावलिवरः समुद्रः, रत्नावलीवरावभासो द्वीपः रत्नावलीवरावभासः समुद्रः मुक्तावली द्वीपः मुक्तावली समुद्रः मुक्तावलीवरो द्वीपः मुक्तावलीवरः समुद्रः मुक्तावलिवरावभासो द्वीपो मुक्तावलिवरावभासः समुद्रः । वस्तुनामचिन्तायामपि आजिनो द्वीपः आजिनः समुद्रः, आजिनवरो द्वीपः आजिनवरः समुद्रः, आ-

॥ ३६८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

प्रत सूत्रांक [१८५]

दीप अनुक्रम [२९६--३००]

जिनवरावभासो द्वीपः आजिनवरावभासः समुद्र इत्यादि । देवचिन्तायामपि अर्द्धहारे द्वीपेऽर्द्धहारभद्रार्द्धहारमहाभद्रौ देवौ, अर्द्धहारे समुद्रेऽर्द्धहारवरार्द्धहारमहावरौ, अर्द्धहारवरे द्वीपेऽर्द्धहारवरभद्रार्द्धहारवरमहाभद्रौ, अर्द्धहारवरे समुद्रेऽर्द्धहारवरार्द्धहारवरमहावरौ, अर्द्धहारावभासे द्वीपेऽर्द्धहारवरावभासभद्रार्द्धहारवरावभासमहाभद्रौ, अर्द्धहारवरावभासे समुद्रेऽर्द्धहारवरावभासवरार्द्धहारवरावभासमहावरौ, कनकावलिद्वीपे कनकावलिभद्रकनकावलिमहाभद्रौ, कनकावली समुद्रे कनकावलिवरकनकावलिमहावरौ, कनकावलिवरे द्वीपे कनकावलिवरभद्रकनकावलिवरमहाभद्रौ, कनकावलिवरे समुद्रे कनकावलिवरकनकावलिवरमहावरौ, कनकावलिवरावभासे द्वीपे कनकावलिवरावभासभद्रकनकावलिवरावभासमहाभद्रौ, कनकावलिवरावभासे समुद्रे कनकावलिवरावभासवरकनकावलिवरावभासमहावरौ, रत्नावली द्वीपे रत्नावलिभद्ररत्नावलिमहाभद्रौ, रत्नावली समुद्रे रत्नावलिवररत्नावलिमहावरौ, रत्नावलिवरे द्वीपे रत्नावलिवरभद्ररत्नावलिवरमहाभद्रौ, रत्नावलिवरे समुद्रे रत्नावलिवररत्नावलीवरमहावरौ, रत्नावलिवरावभासे द्वीपे रत्नावलिवरावभासभद्ररत्नावलिवरावभासमहाभद्रौ, रत्नावलिवरावभासे समुद्रे रत्नावलिवरावभासवररत्नावलिवरावभासमहावरौ, मुक्तावली द्वीपे मुक्तावलिभद्रमुक्तावलिमहाभद्रौ, मुक्तावली समुद्रे मुक्तावलिवरमुक्तावलिमहावरौ, मुक्तावलिवरे द्वीपे मुक्तावलिवरभद्रमुक्तावलिवरमहाभद्रौ, मुक्तावलिवरे समुद्रे मुक्तावलिवरमुक्तावलिमहावरौ, मुक्तावलिवरावभासे द्वीपे मुक्तावलिवरावभासभद्रमुक्तावलिवरावभासमहाभद्रौ, मुक्तावलिवरावभासे समुद्रे मुक्तावलिवरावभासवरमुक्तावलिवरावभासमहावरौ, आजिने द्वीपे आजिनभद्राजिनमहाभद्रौ, आजिने समुद्रे आजिनवराजिनवरमहावरौ, आजिनवरे द्वीपे आजिनवरभद्राजिनवरमहाभद्रौ, आजिनवरे समुद्रे आजिनवराजिनवरमहावरौ, आजिनवरावभासे द्वीपे आजिनवरावभासभद्राजिनवरावभासमहाभद्रौ, आजिनवरावभासे समुद्रे आजिनवरावभासवराजिनवरावभासमहा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरौ । एवं सर्वत्रापि त्रिः प्रत्यवतारो देवानां नामानि च भावनीयानि यावत् सूर्यो द्वीप: सूर्य: समुद्र:, सूर्यवरो द्वीप: सूर्यवर: समुद्र:, सूर्यवरावभासो द्वीप: सूर्यवरावभास: समुद्र:, आह च मूलचूर्णिकृत्—'अरुणाई दीवसमुद्दा तिपडोयारा यावत् सूर्यावभास: समुद्र:" तत्र सूर्ये द्वीपे सूर्यभद्रसूर्यमहाभद्रौ देवौ, सूर्ये समुद्रे सूर्यवरसूर्यमहावरौ, सूर्यवरे द्वीपे सूर्यवरभद्रसूर्यवरमहाभद्रौ, सूर्यवरे समुद्रे सूर्यवरसूर्यमहावरौ, सूर्यवरावभासे द्वीपे सूर्यवरावभासभद्रसूर्यवरावभासमहाभद्रौ, सूर्यवरावभासे समुद्रे सूर्यवरावभासवरसूर्यवरावभासमहावरौ । सूर्यवरावभाससमुद्रात्परं यदस्ति तदाह—'सूरवरावभासण्णं समुद्दं देवे नामं दीवे वट्टे' इत्यादि, सूर्यवरावभासं णमिति पूर्ववत् समुद्रं देवो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थित: समन्तात्संपरिक्षिप्य तिष्ठति । 'देवे णं भंते! दीवे किं समचक्कवालसंठिते विसमचक्कवालसंठिए?, गोयमा! समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए, देवे णं भंते! दीवे केवइयं चक्कवालविक्खंभेणं केवइयं परिक्खेवेणं पन्नत्ते?, गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, [ग्रन्थाग्रम् ११०००] असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं परिक्खेवेणं पन्नत्ते, से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसंडेणं परिक्खित्ते' सुगमं, नवरम् एकया पद्मवरवेदिकयाऽष्टयोजनोच्चह्रयजगत्युपरिभाविन्येति द्रष्टव्यं, एवमेकेन वनषण्डेन च, इदं तु सूत्रं बहुषु पुस्तकेषु न दृश्यते केषुचित् 'तहेवे'त्यतिदेश इति लिखितं ॥ 'कइ णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! देवस्य द्वीपस्य द्वाराणि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! चत्वारि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विजयं वैजयन्तं जयन्तमपराजितं ॥ 'कहि णं भंते! देवस्स दीवस्से'त्यादि, क्व भदन्त! देवस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! देवद्वीपपूर्वार्द्धपर्यन्ते देवसमुद्रस्य पूर्वा(पश्चा)र्द्धस्य पश्चिमदिशि 'अत्र' एतस्मिन्नवकाशे विजयं नाम द्वारं प्रज्ञप्तं, प्रमाणं वर्णकश्च जम्बूद्वीपविजयद्वारवत्, नामान्वर्थसूत्रमपि तथैव ॥ 'कहि णं भंते' इत्यादि, क

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

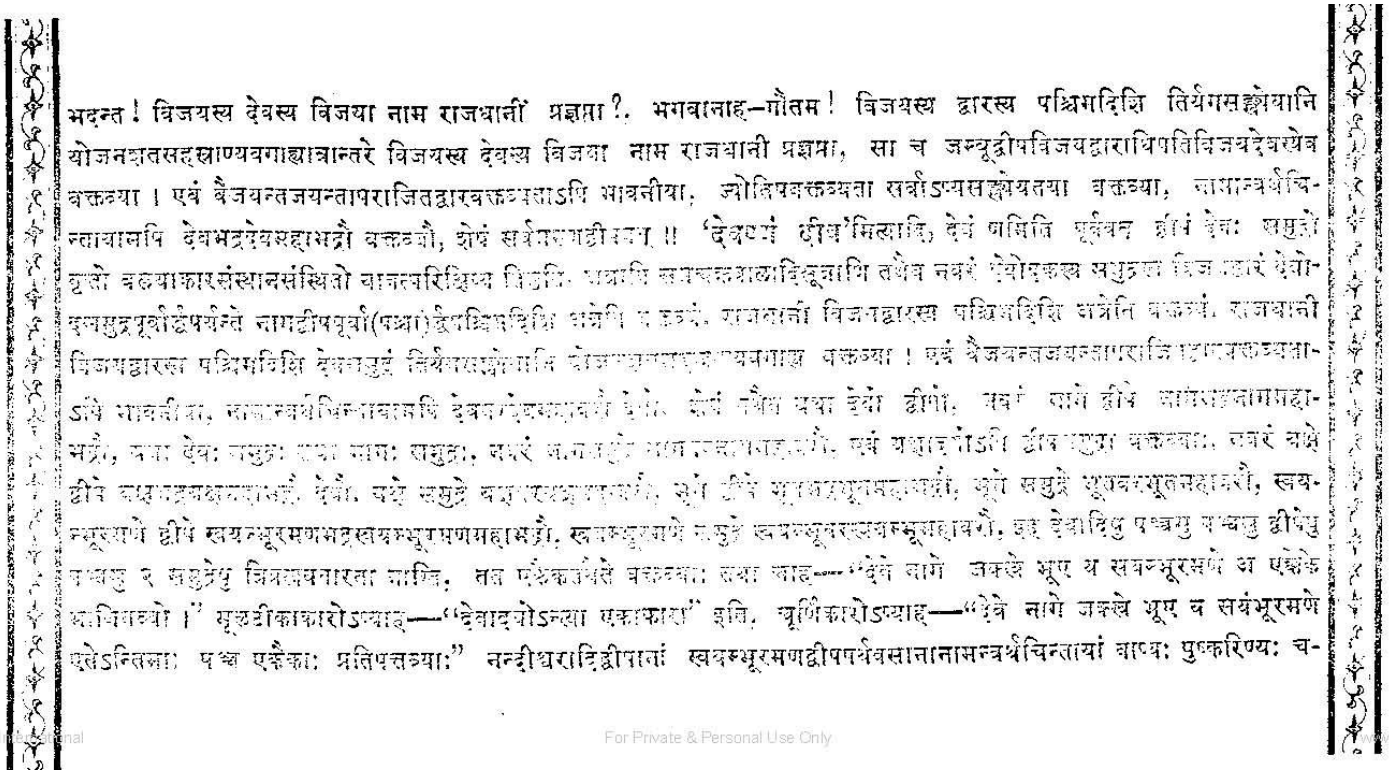

भदन्त! विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! विजयस्य द्वारस्य पश्चिमदिशि तिर्यगसङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यवगाह्यात्रान्तरे विजयस्य देवस्य विजया नाम राजधानी प्रज्ञप्ता, सा च जम्बूद्वीपविजयद्वाराधिपतिविजयदेवस्येव वक्तव्या। एवं वैजयन्तजयन्तापराजितद्वारवक्तव्यताऽपि भावनीया, ज्योतिष्कवक्तव्यता सर्वाऽप्यसङ्ख्येयतया वक्तव्या, नामान्वर्थचिन्तायामपि देवभद्रदेवसहाभद्रौ वक्तव्यौ, शेषं सर्वमनन्तरपद्मवरवेदिकावत्॥ 'देवदीवे दीवे'मित्यादि, देवं णमिति पूर्ववत् द्वीपं देवः समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितो यावत्परिक्षिप्य तिष्ठति, अन्यानि सर्वाण्यनन्तरशालादिसूत्राणि तथैव नवरं देवोदकस्य समुद्रस्य विजयद्वारं देवोदकसमुद्रपूर्वार्द्धपर्यन्ते नामद्वीपपूर्वा(पश्चा)र्द्धदक्षिणदिशि अत्रेति वक्तव्यं, राजधानी विजयद्वारस्य पश्चिमदिशि देवकुरुं तिर्यगसङ्ख्येयानि योजनशतसहस्राण्यवगाह्य वक्तव्या। एवं वैजयन्तजयन्तापराजितद्वारवक्तव्यताऽपि भावनीया, नामान्वर्थचिन्तायामपि देवकुरुदेवस्यैवार्थो देयः, शेषं तथैव यथा देवो द्वीपो, नवरं नामे द्वीपे नागराजनागमहाभद्रौ, नाग देवः समुद्रः नाग नागः समुद्रः, नवरं जलरसे नागद्वीपसमुद्रौ, एवं यक्षाद्योऽपि द्वीपसमुद्रा वक्तव्याः, नवरं यक्षे द्वीपे यक्षभद्रयक्षमहाभद्रौ देवौ, यक्षे समुद्रे यक्षवरयक्षमहावरौ, भूते द्वीपे भूतवरभूतमहाभद्रौ, भूते समुद्रे भूतवरभूतमहावरौ, स्वयम्भूरमणे द्वीपे स्वयम्भूरमणभद्रस्वयम्भूरमणमहाभद्रौ, स्वयम्भूरमणे समुद्रे स्वयम्भूरवरस्वयम्भूमहावरौ, इह देवादिषु पञ्चसु पञ्चसु द्वीपेषु पञ्चसु २ समुद्रेषु त्रिप्रत्यवतारता भणिता, तत्र पञ्चैकार्थेषु वक्तव्याः तथा चाह—"देवे नागे जक्खे भूए य सयम्भूरमणे अ एक्केक्कम्मि तओ तओ।" मूलटीकाकारोऽप्याह—"देवादयोऽन्ता एकाकाराः" इति, चूर्णिकारोऽप्याह—"देवे नागे जक्खे भूए य सयंभूरमणे एतेऽनन्तरा: पञ्च एक्कैका: प्रतिपत्तव्या:" नन्दीश्वरादिद्वीपानां स्वयम्भूरमणद्वीपपर्यवसानानामन्वर्थचिन्तायां वाप्यः पुष्करिण्यः च-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८५]

दीप अनुक्रम [२९६--३००]

शब्दाद् दीर्घिकादयश्च क्षीरो(क्षोदो)दकपरिपूर्णा वक्तव्याः, पर्वतादयश्च सर्वात्मना वज्रमयाः, नन्दीश्वरसमुद्रादीनां भूतसमुद्रपर्यवसानानाम न्वर्थचिन्तायामुदकमिक्षुरससदृशं वक्तव्यं, स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य पुष्करोदसदृशं, 'रुयगाईण'मित्यादि प्रथमोऽसङ्क्षेयप्रमाणतया रुचक-नामा यो द्वीपस्तदादीनां द्वीपसमुद्राणां विष्कम्भपरिक्षेपद्वारान्तराणि ज्योतिष्कं चाविशेषेणासङ्क्षेयं वेदितव्यं ॥ साम्प्रतमेकैकेन जम्बू-द्वीपादिनाम्ना कियन्तो द्वीपाः समुद्राश्च ? इति निर्णेतुकाम आह—

केवइया णं भंते! जंबुद्दीवा दीवा णामधेज्जेहिं पण्णत्ता?, गोयमा! असंखेज्जा जंबुद्दीवा २ नाम-धेज्जेहिं पण्णत्ता, केवतिया णं भंते! लवणसमुद्दा २ पण्णत्ता?, गोयमा! असंखेज्जा लवणसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता, एवं धायतिसंडावि, एवं जाव असंखेज्जा सूरदीवा नामधेज्जेहि य। एगे देवे दीवे पण्णत्ते एगे देवोदे समुद्दे पण्णत्ते, एवं णागे जक्खे भूते जाव एगे सयंभूरमणे दीवे एगे सयंभूरमणसमुद्दे णामधेज्जेणं पण्णत्ते ॥ (सू० १८६) लवणस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते?, गोयमा! लवणस्स उदए आइले रइले लिंदे लवणे कडुए अपेज्जे बहूणं दुपयचउप्पयमिगपसुपक्खिसरिसवाणं णण्णत्थ तज्जोणियाणं सत्ताणं ॥ कालोयस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते?, गोयमा! आसले पेसले मांसले कालए मासरासिवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते ॥ पुक्खरोदगस्स णं भंते! समुद्दस्स उदए केरिसए पण्णत्ते?, गोयमा! अच्छे जच्चे तणुए फालियवण्णाभे पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ते ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

वरुणोदस्स णं भंते०!, गोयमा! से जहा णामए—पत्तासवेति वा चोयासवेति वा खज्जूरसारेति वा सुपिक्कखोतरसेति वा मेरएति वा कविसायणेति वा चंदप्पभाति वा मणसिलाति वा वरसीधूति वा पवरवारुणी वा अट्ठपिट्ठपरिणिट्ठिताति वा जंबुफलकालिया वरप्पसण्णा उक्कोसमदप्पत्ता ईसिउट्ठावलंबिणी ईसितंबच्छिकरणी ईसिवोच्छेयकरणी आसला मांसला पेसला वण्णेणं उववेता जाव णो तिणट्ठे समट्ठे, वारुणोदए इत्तो इट्ठतरए चेव जाव अस्साएणं प०। खीरोदस्स णं भंते! उदए केरिसए अस्साएणं पण्णत्ते?, गोयमा! से जहा णामए—रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चाउरक्के गोखीरे पज्जत्तिमंदग्गिसुकड्ढिते आउत्तरखंडमच्छंडितोववेते वण्णेणं उववेते जाव फासेण उववेए, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा! खीरोयस्स० एत्तो इट्ठ जाव अस्साएणं पण्णत्ते। घतोदस्स णं से जहा णामए सारतिकस्स गोघयवरस्स मंडे सल्लइकण्णियारपुप्फवण्णाभे सुकड्ढितउदारसज्झवीसंदिते वण्णेणं उववेते जाव फासेण य उववेए, भवे एयारूवे सिया?, णो तिणट्ठे समट्ठे, इत्तो इट्ठयरो० खोदोदस्स से जहा णामए उच्छूण जच्चपुंडकाण हरियालपिंडराणं भेरुंडछणाण वा कालपोराणं तिभागनिव्वाडियवाडगाणं बलवगणरजंतपरिगालियमित्ताणं जे य रसे होज्जा वत्थपरिपूए चाउज्जातगसुवासिते अहियपत्थे लहुए वण्णेणं उववेए जाव भवेयारूवे सिया?, नो तिणट्ठे समट्ठे, एत्तो इट्ठयरा०, एवं सेस-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

गाणवि समुद्दाणं भेदो जाव सयंभुरमणस्स, णवरि अच्छे जच्चे पत्थे जहा पुक्खरोदस्स ॥ कति णं भंते! समुद्दा पत्तेगरसा पण्णत्ता?, गोयमा! चत्तारि समुद्दा पत्तेगरसा पण्णत्ता, तंजहा—लवणे वरुणोदे खीरोदे घयोदे ॥ कति णं भंते! समुद्दा पगतीए उदगरसे णं पण्णत्ता?, गोयमा! तओ समुद्दा पगतीए उदगरसेणं पण्णत्ता, तंजहा—कालोए पुक्खरोए सयंभुरमणे, अवसेसा समुद्दा उस्सण्णं खोतरसा पं० समणाउसो! ॥ (सू० १८७)

'केवइया ण'मित्यादि, कियन्तो भदन्त! जम्बूद्वीपा द्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, जम्बूद्वीपादिनाम्ना कियन्तो द्वीपाः प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, एवमुक्ते भगवानाह—गौतम! असङ्ख्येया जम्बूद्वीपा द्वीपाः प्रज्ञप्ताः, जम्बूद्वीपा इति नाम्नाऽसङ्ख्येया द्वीपा इति भावः, एवं लवण इति नाम्नाऽसङ्ख्येयाः समुद्राः, धातकीषण्ड इति नाम्नाऽसङ्ख्येया द्वीपाः, कालोद इति नाम्नाऽसङ्ख्येयाः समुद्राः, एवं यावत्सूर्यवरावभास इति नाम्नाऽसङ्ख्येयाः समुद्राः, तथा चाह—'एवं जाव' इत्यादि, 'एवं' उक्तेन प्रकारेण तावद्वाच्यं यावदसङ्ख्येयाः सूर्याः सूर्य इति नाम्ना त्रिप्रत्यवतारपतितेनेति गम्यते, अरुणादारभ्य देवद्वीपादर्वाक् सर्वेषामेव त्रिप्रत्यवतारतयाऽनन्तरमेवाभिधानात् समुद्राः प्रज्ञप्ताः ॥ सम्प्रति देवादीनधिकृत्य प्रश्ननिर्वचनसूत्राण्याह—'कइ णं भंते' इत्यादि, कति भदन्त! देवद्वीपाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! एको देवद्वीपः प्रज्ञप्तः, एवं दशाप्येते एकाकारा वक्तव्याः, तथा चाह—'एवं जाव एगे सयंभूरमणे समुद्दे पन्नत्ते' इति। 'लवणे णं समुद्दे केरिसए आसाएणं पन्नत्ते?' इत्यादीनि तु लवणकालोदपुष्करोदवरुणोदक्षीरोदघृतोदक्षोदोदविषयाणि सप्त सूत्राणि स्वयं भावनीयानि, भावार्थस्य प्रागेवाभिहितत्वात्, शेषाः समुद्रा यथा क्षोदोदः समुद्रस्तथा प्रतिपत्तव्याः, नवरं स्वयम्भूरमणसमुद्रो यथा

॥ ३७१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८६--१८७]

दीप अनुक्रम [३०१--३०२]

पुष्करोदः ॥ सम्प्रति ये प्रत्येकरसा ये च प्रकृत्युदकरसास्तान् वैचित्र्येनाह—'कइ णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! समुद्राः 'प्रत्येकरसाः' समुद्रान्तरैः सहासाधारणरसाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! चत्वारः प्रत्येकरसाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–लवणोदः वरुणोदः क्षीरोदः घृतोदः, न हि लवणो वरुणोदः क्षीरोदो घृतोदो वाऽन्यः समुद्रो यथोक्तरसः समस्ति तत एते चत्वारोऽपि प्रत्येकरसाः ॥ 'कइ ण'मित्यादि, कति भदन्त! समुद्राः प्रकृत्या उदकरसाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! त्रयः समुद्राः प्रकृत्या उदकरसेन प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कालोदः पुष्करोदः स्वयम्भूरमणः, अवशेषाः समुद्राः 'उस्सन्नं' बाहुल्येन क्षोदरसाः प्रज्ञप्ताः ॥

कति णं भंते! समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता?, गोयमा! तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तंजहा—लवणे कालोए सयंभुरमणे, अवसेसा समुद्दा अप्पमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ लवणे णं भंते! समुद्दे कति मच्छजातिकुलकोडिजोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! सत्त मच्छजातिकुलकोडीजोणीसमुहसतसहस्सा पण्णत्ता ॥ कालोए णं भंते! समुद्दे कति मच्छजाति० पण्णत्ता?, गोयमा! नव मच्छजातिकुलकोडीजोणी० ॥ सयंभुरमणे णं भंते! समुद्दे०, अद्धतेरस मच्छजातिकुलकोडीजोणीपमुहसतसहस्सा पण्णत्ता ॥ लवणे णं भंते समुद्दे मच्छाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता गो०?, जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं पंचजोयणसयाइं ॥ एवं कालोए उ० सत्त जोयणसताइं ॥ सयंभूरमणे जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जति० उक्कोसेणं दस जोयणसताइं ॥ (सू० १८८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८८]

दीप अनुक्रम [३०३]

'कइ णं भंते!' इत्यादि, कति भदन्त! समुद्रा बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! त्रयः समुद्राः बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा–लवणः कालोदः स्वयम्भूरमणः, अवशेषाः समुद्रा अल्पमत्स्यकच्छपाकीर्णाः प्रज्ञप्ताः न पुनर्निर्मत्स्यकच्छपाः प्रज्ञप्ता हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ सम्प्रति लवणादिषु मत्स्यकुलकोडिपरिज्ञानार्थमाह—'लवणे णं भंते!' इत्यादि, लवणे भदन्त! समुद्रे 'कति' किंप्रमाणानि जातिप्रधानानि कुलानि २ जातिकुलानां कोट्यो जातिकुलकोटयः मत्स्यानां जातिकुलकोट्यो मत्स्यजातिकुलकोटयस्तासां योनिप्रमुखाणि–योनिप्रवाहाणि शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?, इहैकस्यामपि योनौ अनेकानि जातिकुलानि भवन्ति, यथा एकस्यामेव छगणयोनौ कृमिकोटिकुलमिलिकाकुलं वृश्चिककुलमित्यादि तत उक्तं योनिप्रमुखशतसहस्राणीति, भगवानाह–गौतम! सप्त जलमत्स्यजातिकुलकोटीनां योनिप्रमुखाणि शतसहस्राणि, एवं कालोदसूत्रं स्वयम्भूरमणसूत्रमपि भावनीयं, नवरं कालोदे नव मत्स्यजातिकुलकोटियोनिप्रमुखशतसहस्राणि, स्वयम्भूरमणसमुद्रेऽर्द्धत्रयोदश ॥ अधुना लवणादिषु मत्स्यप्रमाणनभिधित्सुराह—'लवणे णं भंते!' इत्यादि, लवणे भदन्त! समुद्रे मत्स्यानां 'केमहालिका' किंमहती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! जघन्येनाङ्गुलासङ्ख्येयभाग उत्कर्षेण पञ्च योजनशतानि ॥ एवं कालोदस्वयम्भूरमणसमुद्रविषये अपि सूत्रे भावनीये, नवरं कालोदे उत्कर्षतः सप्त योजनशतानि स्वयम्भूरमणे योजनसहस्रम् ॥

केवतिया णं भंते! दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता?, गोयमा! जावतिया लोगे सुभा णामा सुभा वण्णा जाव सुभा फासा एवतिया दीवसमुद्दा नामधेज्जेहिं पण्णत्ता ॥ केवतिया णं भंते! दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पण्णत्ता?, गोयमा! जावतिया अड्ढाइज्जाणं सागरोवमाणं उद्धारसमया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—द्वीप-समुद्राधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

एवतिया दीवसमुद्दा उद्धारसमएणं पन्नत्ता ॥ (सू० १८९) दीवसमुद्दा णं भंते! किं पुढविपरिणामा आउपरिणामा जीवपरिणामा पुग्गलपरिणामा?, गोयमा! पुढविपरिणामावि आउपरिणामावि जीवपरिणामावि पुग्गलपरिणामावि ॥ दीवसमुद्देसु णं भंते! सव्वपाणा सव्वभूया सव्वजीवा सव्वसत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव तसकाइयत्ताए उववण्णपुव्वा?, हंता! गोयमा! असति अदुवा अणंतखुत्तो (सू० १९०) इति दीवसमुद्दा समत्ता ॥

'केवइया णं भंते!' इत्यादि, कियन्तो भदन्त! द्वीपसमुद्रा नामधेयैः प्रज्ञप्ताः?, यदि नाम सङ्ख्यातुमिष्यन्ते तदा कियन्तस्ते प्रज्ञप्ता इत्यर्थः, इयमत्र भावना–इहैकैकेन नाम्नाऽसङ्ख्येया द्वीपा असङ्ख्येयाः समुद्राः प्रोच्यन्ते अन्तिमान् देवादीन् पञ्च द्वीपान् पञ्च समुद्रान् मुक्त्वा, ततः सर्वसङ्ख्यया कियन्ति द्वीपसमुद्राणां नामानि? इति, भगवानाह–गौतम! यावन्ति लोके सामान्यतः 'शुभानि नामानि' शङ्खचक्रस्वस्तिककलशश्रीवत्सादीनि 'शुभा वर्णाः शुभा गन्धाः शुभा रसाः शुभाः स्पर्शाः' शुभवर्णनामानि शुभगन्धनामानि शुभरसनामानि शुभस्पर्शनामानि, एतावन्तो द्वीपसमुद्रा नामधेयैः प्रज्ञप्ताः, एतावन्ति द्वीपसमुद्राणां नामधेयानीति भावः ॥ सम्प्रत्युद्धारसागरोपमप्रमाणतो द्वीपसमुद्रपरिमाणमाह—'केवइया णं भंते!' इत्यादि, कियन्तो भदन्त! द्वीपसमुद्राः 'उद्धारेण' उद्धारपल्योपमसागरोपमप्रमाणेन प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–हे गौतम! यावन्तोऽर्द्धतृतीयानामुद्धारसागरोपमाणां उद्धारसमयाः–एकैकेन(क) सूक्ष्मवालाग्रापहारसमया एतावन्तो द्वीपसमुद्रा उद्धारेण प्रज्ञप्ताः, उक्तञ्च—"उद्धारसागराणं अड्ढाइज्जाण जत्तिया समया । दुगुणादुगुणपवित्थर दीवोदहि रज्जु एवइया ॥ १ ॥" 'दीवसमुद्दा णं भंते!' इत्यादि, । द्वीपसमुद्रा णमिति पूर्ववत् भदन्त! किं पृथिवीपरि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१८९--१९०]

दीप अनुक्रम [३०४--३०५]

णामा अप्परिणामा जीवपरिणामाः पुद्गलपरिणामाः ?, भगवानाह–गौतम! पृथिवीपरिणामा अपि अप्परिणामा अपि जीवपरिणामा अपि पुद्गल परिणामा अपि, पृथ्व्यवजीवपुद्गलपरिणामात्मकत्वात्सर्वद्वीपसमुद्राणाम् ॥ **'दीवसमुद्देसु णं भंते! सव्वपाणा सव्वभूया'** इत्यादि, द्वीपसमुद्रेषु णमिति पूर्ववत् सर्वेष्वपि गम्यते भदन्त! सर्वे **'प्राणाः'** द्वीन्द्रियादयः सर्वे **'भूताः'** तरवः सर्वे **'जीवाः'** पञ्चेन्द्रियाः सर्वे **'सत्त्वाः'** पृथिव्यादयः उत्पन्नपूर्वाः?, भगवानाह–गौतम! असकृदुत्पन्नपूर्वा अथवाऽनन्तकृत्वः, सर्वेषामपि सांव्यवहारिकराश्यन्तर्गतानां जीवानां सर्वेषु स्थानेषु प्रायोऽनन्तश उत्पादात् ॥ तदेवं द्वीपसमुद्रवक्तव्यता गता ॥ सम्प्रति द्वीपसमुद्राणां पुद्गलपरिणामत्वात् तेषां च पुद्गलानां विशिष्टपरिणामपरिणतानामिन्द्रियग्राह्यत्वादिन्द्रियविषयपुद्गलपरिणाममाह—

कतिविहे णं भंते इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते?, गोयमा! पंचविहे इंदियविसए पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तंजहा—सोतिंदियविसए जाव फासिंदियविसए। सोतिंदियविसए णं भंते! पोग्गलपरिणामे कतिविहे पण्णत्ते?, गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सुब्भिसद्दपरिणामे य दुब्भिसद्दपरिणामे य, एवं चक्खिंदियविसयादिएहिवि सुरूवपरिणामे य दुरूवपरिणामे य। एवं सुरभिगंधपरिणामे य दुरभिगंधपरिणामे य, एवं सुरसपरिणामे य दूरसपरिणामे य, एवं

१ यद्यपि नात्र तृतीयप्रतिपत्तिसमाप्तिसूचकं किंचित् तथापि अग्रे ज्योतिष्कवक्तव्यतापूर्त्तौ चतुर्थप्रतिपत्तौ ज्योतिष्क उद्देशक इति वैमानिकाधिकारसंपूर्त्तौ च चतुर्थप्रतिपत्तौ वैमानिकाख्य उद्देशक इति च सूचनात् गम्यते यदुत अत्र तृतीयप्रतिपत्तिः समाप्ता, यद्वा तत्र चतुर्विधानां प्रतिपत्तिर्या सा चतुर्थप्रतिपत्तिरिति व्याख्येयं, यतः प्रतिपादयिष्यति तदनन्तरं पञ्चविधजीवप्रतिपादनमन्याश्चतुर्थ्याः प्रतिपत्तेरारम्भं, अन्यद्वोऽयमविरोधि कारणं सुधीभिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—इन्द्रियविषयाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तृतीय-प्रतिपत्तौ द्वीप-समुद्राधिकार: परिसमाप्त: अथ इन्द्रियविषयाधिकार: आरब्ध:

प्रत सूत्रांक [१९१]

दीप अनुक्रम [३०६]

सुफासपरिणामे य दुफासपरिणामे य ॥ से नूणं भंते! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु उच्चावएसु रूवपरिणामेसु एवं गंधपरिणामेसु रसपरिणामेसु फासपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया?, हंता गोयमा! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतित्ति वत्तव्वं सिया, से णूणं भंते! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति?, हंता गोयमा! सुब्भिसद्दा दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति दुब्भिसद्दा सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, से णूणं भंते! सुरुवा पुग्गला दूरूवत्ताए परिणमंति दुरूवा पुग्गला सुरूवत्ताए०?, हंता गोयमा०!, एवं सुब्भिगंधा पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति दुब्भिगंधा पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति?, हंता गोयमा०! एवं सुफासा दुफासत्ताए?, सुरसा दूरसत्ताए०?, हंता गोयमा!० ॥ (सू० १९१)

'कइविहे णं भंते!' इत्यादि, कतिविधो भदन्त! इन्द्रियविषयः पुद्गलपरिणामः प्रज्ञप्तः?, भगवानाह–गौतम! पञ्चविध इन्द्रियविषयः पुद्गलपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियविषय इत्यादि सुगमं, 'सुब्भिसद्दपरिणामे' इति शुभः शब्दपरिणामः 'दुब्भिसद्दपरिणामे' इति अशुभः शब्दपरिणामः ॥ 'से णूणं भंते!' इत्यादि, अथ 'नूनं' निश्चितमेतद् भदन्त! 'उच्चावचैः' उत्तमाधमैः शब्दपरिणामैर्यावत्स्पर्शपरिणामैः परिणमन्तः पुद्गलाः परिणमन्तीति वक्तव्यं स्यात्?, परिणमन्तीति ते वक्तव्या भवेयुरित्यर्थः, भगवानाह—'हन्ता गोयमा!' इत्यादि, हन्तेति प्रत्यवधारणे स्यादेव वक्तव्यमिति भावः, परिणामस्य यथावस्थितस्य भावात्, तथा तथा

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...rainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९१]

दीप अनुक्रम [३०६]

द्रव्यक्षेत्रादिसामग्रीवशतस्तत्तद्रूपास्कन्दनं हि परिणामः, स च तत्रास्तीति न कश्चित्तथाऽभिधाने दोषः ॥ 'से णूणं भंते!' इत्यादि, अथ 'नूनं' निश्चितमेतद् भदन्त! 'शुभशब्दाः' शुभशब्दरूपाः पुद्गला अशुभशब्दतया परिणमन्ति अशुभशब्दा वा पुद्गलाः शुभशब्दतया?, भगवानाह–हन्त गौतम! इत्यादि सुप्रतीतं, एतेन सान्वयं परिणाममाह, अन्यथा तद्यो(दयो) गादसतः सत्ताऽनुपपत्तेरतिप्रसङ्गात् ॥ एवं रूपरसगन्धस्पर्शेष्वप्यात्मीयात्मीयाभिलापेन द्वौ द्वावालापकौ वक्तव्यौ ॥

देवे णं भंते! महिड्ढीए जाव महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खवित्ता पभू तमेव अणुपरिवट्टित्ताणं गिण्हित्तए?, हंता पभू, से केणट्ठे णं भंते! एवं वुच्चति—देवे णं महिड्ढीए जाव गिण्हित्तए?, गोयमा! पोग्गले खित्ते समाणे पुव्वामेव सिग्घगती भवित्ता तओ पच्छा मंदगती भवति, देवे णं महिड्ढीए जाव महाणुभागे पुव्वंपि पच्छावि सीहे सीहगती (तुरिए तुरियगती) चेव से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चति जाव एवं अणुपरियट्टित्ताणं गेण्हित्तए ॥ देवे णं भंते! महिड्ढीए बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पुव्वामेव बालं अच्छित्ता अभेत्ता पभुं गंठित्तए?, नो इणट्ठे समट्ठे १, देवे णं भंते! महिड्ढिए बाहिरए पुग्गले अपरियाइत्ता पुव्वामेव बालं छित्ता भित्ता पभू गंठित्तए?, नो इणट्ठे समट्ठे २, देवे णं भंते! महिड्ढीए बाहिरए पुग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बालं अच्छित्ता अभित्ता पभू गंठित्तए?, नो इणट्ठे समट्ठे ३, देवे णं भंते! महिड्ढीए जाव महाणुभागे बाहिरे पोग्गले परियाइत्ता पुव्वामेव बालं छेत्ता भेत्ता पभू गंठित्तए?, हंता पभू ४, तं चेव णं गंठिं छउमत्थे ण जाणति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—देवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तृतीय-प्रतिपत्तौ इन्द्रियविषयाधिकार: परिसमाप्त: अथ देवाधिकार: आरब्ध:

ण पासति एवंसुहुमं च णं गढिया ३, देवे णं भंते! महिड्ढीए पुव्वामेव बालं अच्छेत्ता अभेत्ता पभू दीहिकरित्तए वा हस्सीकरित्तए वा?, नो तिणट्ठे समट्ठे ४, एवं चत्तारिवि गमा, पढमबिइयभंगेसु अपरियाइत्ता एगंतरियगा अच्छेत्ता अभेत्ता, सेसं तहेव, तं चेव सिद्धिं छउमत्थे ण जाणति ण पासति एसुहुमं च णं दीहिकरेज्ज वा हस्सीकरेज्ज वा ॥ (सू० १९२)

'देवे णं भंते!' इत्यादि, देवो भदन्त! महर्द्धिकः यावत्कारणात् महाद्युतिको महाबलो महायशा महानुभाग इति परिग्रहः एषां व्याख्यानं पूर्ववत्, पूर्वमेव **'पुद्गलं'** लेष्ट्वादिकं प्रयत्नेनेति गम्यते क्षिप्त्वा 'प्रभुः' समर्थस्तमेव पुद्गलं क्षिप्तं भूमावपतितं सन्तम् **'अनुपरिवर्त्य'** प्रादक्षिण्येन परिभ्रम्य ग्रहीतुम्?, भगवानाह–हन्त! प्रभुः, देवस्य प्रभूतशक्तिकत्वात् ॥ एतदेव जिज्ञासिषुः पृच्छति **—'से केणट्ठेणं भंते!'** इत्यादि, (प्रश्नसूत्रं सुगमं) भगवानाह–गौतम! पुद्गलः क्षिप्तः सन् पूर्वमेव शीघ्रगतिर्भवति प्रयत्नजनितसंस्कारस्यातितीव्रत्वात्, पश्चान्मन्दगतिः संस्कारस्य मन्दमन्दतया भवनात्, देवः पुनः पूर्वमपि पश्चादपि च शीघ्र उत्साहविशेषेण शीघ्रगतिः साक्षाच्छीघ्रगमनेन, एतदेव व्याचष्टे–त्वरितस्त्वरितगतिर्भवतीति, **'से एएणट्ठेण'**मित्याद्युपसंहारवाक्यं गतार्थम् ॥ **'देवे णं भंते!'** इत्यादि, देवो भदन्त! महर्द्धिको यावन्महानुभागो बाह्यान् पुद्गलान् **'अपर्यादाय'** अगृहीत्वा बालं अच्छित्त्वा अभित्त्वा तदवस्थमेव सन्तमिति भावः तच्छरीरस्य मनागपि विक्रियामनापाद्येति तात्पर्यार्थः प्रभुः **'ग्रन्थयितुं'** दृढबन्धनबद्धीकर्त्तुम्?, भगवानाह–नायमर्थः समर्थः, बाह्यपुद्गलानादानेन तच्छरीरस्य मनागपि विक्रियानापादने बन्धनस्य कर्त्तुमशक्यत्वात्, एतेन देवोऽप्यनिबन्धनां क्रियां न करोति, विशिष्टसामर्थ्यस्यापि निबन्धनविषयत्वादित्यावेदितं। द्वितीयसूत्रे बालं छित्त्वा भित्त्वेति विशेषः, शेषं तथैव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९२]

दीप अनुक्रम [३०७]

अत्रापि ग्रथयितुमशक्तिः उभयकारणजन्यस्य कार्यस्यैकतरस्यापि कारणस्याभावेऽभावात् । तृतीयसूत्रे बाह्यान् पुद्गलान् पर्यादाय बालमच्छित्त्वाऽभित्त्वेति विशेषः । चतुर्थे बाह्यान् पुद्गलानादाय बालं छित्त्वा भित्त्वेति विशेषः, अत्र ग्रथयितुं प्रभुरिति वक्तव्यं, कारणसामग्र्यस्य सम्भवात्, तं च ग्रन्थिं छद्मस्थो मनुष्यो न जानाति न पश्यति, किमुक्तं भवति ?—स बालोऽन्यो वा तटस्थः पुरुषोऽनतिशयी न जानाति ज्ञानेन न पश्यति चक्षुषा 'एवं खलु सुहुमं च णं गढेज्जा' एवं खलु सूक्ष्मं देवो ग्रथयेत् ॥ एवं बालदीर्घह्रस्वीकरणविषयाण्यपि चत्वारि सूत्राणि भावनीयानि नवरं 'तं च णं सिद्धि'मिति, तां—ह्रस्वीकरणसिद्धिं दीर्घीकरणसिद्धिं वा, शेषं प्रतीतम् ॥

देवसामर्थ्यप्रत्यासत्त्यैव ज्योतिष्कावधिकृत्याह—

अत्थि णं भंते! चंदिमसूरियाणं हिट्ठिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि समंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि?, हंता अत्थि, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति—अत्थि णं चंदिमसूरियाणं जाव उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि?, गोयमा! जहा जहा णं तेसिं देवाणं तवनियमबंभचेरवासाइं [उक्कडाइं] उस्सियाइं भवंति तहा तहा णं तेसिं देवाणं एयं पण्णायति अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा, से एएणट्ठेणं गोयमा! अत्थि णं चंदिमसूरियाणं उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि० ॥ (सू० १९३) एगमेगस्स णं चंदिमसूरियस्स—अट्ठासीतिं च गहा अट्ठावीसं च होइ नक्खत्ता । एगससीपरिवारो एत्तो ताराण वोच्छामि ॥ १ ॥ छावट्ठिसहस्साइं-णव चेव सयाइं पंचसयराइं । एगससीपरिवारो तारागणकोडिकोडीणं ॥ २ ॥ (सू० १९४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्

तृतीय-प्रतिपत्तौ देवाधिकार: परिसमाप्त: अथ ज्योतिष्क-उद्देशक: आरब्ध:

'अत्थि णं भंते! चंदिमसूरियाण'मित्यादि, अस्ति भदन्त! चन्द्रसूर्याणां सामान्यतो बहुवचनं, हिट्ठिंपि–क्षेत्रापेक्षयाऽधस्तना अपि **'तारारूपाः'** तारारूपविमानाधिष्ठातारो देवा द्युतिविभवलेश्यादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि हीना अपीत्यर्थः, केचित्तुल्या अपि, तथा समपि चन्द्रविमानैः सूर्यविमानैश्च क्षेत्रापेक्षया समश्रेण्यपि व्यवस्थितास्तारारूपाः देवाः ताश्चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि केचित्तुल्या अपि तथा चन्द्रविमानानां सूर्यविमानानां चोपर्यपि ये व्यवस्थितास्तारारूपा देवास्तेऽपि चन्द्रसूर्याणां देवानां द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य केचिदणवोऽपि केचित्तुल्या अपि?, भगवानाह—**'हन्ता अत्थि'** यदेतत्त्वया पृष्टं तत्सर्वं तथैवास्ति ॥ एवमुक्ते पुनः प्रश्नयति—**'से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति अत्थि णं चंदिमसूरियाण'**मित्यादि, भगवानाह–गौतम! **'जहा जहा ण'**मित्यादि, यथा यथा णमिति वाक्यालङ्कारे तेषां देवानां–तारारूपविमानाधिष्ठातॄणां प्राग्भवे तपोनियमब्रह्मचर्याणि **'उत्सृतानि'** उत्कृष्टानि भवन्ति, तत्र तपो–नमस्कारसहितादि नियमस्तु–अहिंसादि ब्रह्मचर्य–वस्तिनिरोधादि उत्सृतानीत्युपलक्षणं तेन यथा यथाऽनुत्सृतान्यपि द्रष्टव्यं, अन्यथाऽणुत्वायोगात्, तथा तथा तेषां देवानां तस्मिन् तारारूपविमानाधिष्ठातृभवे एवं प्रज्ञायते, तद्यथा–अणुत्वं तुल्यत्वं चेति, **'से एएणट्ठेण'**मित्यादि, किमुक्तं भवति?–यैः प्राग्भवे तपोनियमब्रह्मचर्याणि मन्दानि कृतानि ते तारारूपविमानाधिष्ठातृदेवभवमनुप्राप्ताश्चन्द्रसूर्येभ्यो देवेभ्यो द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य हीना भवन्ति, यैस्तु भवान्तरे तपोनियमब्रह्मचर्याणि अत्युत्कटान्यासेवितानि ते तारारूपविमानाधिष्ठातृरूपं देवभवमनुप्राप्ता द्युतिविभवादिकमपेक्ष्य चन्द्रसूर्यदेवैः सह समाना भवन्ति, न चैतदनुपपन्नं, दृश्यन्ते हि मनुष्यलोके केचित् जन्मान्तरोपचिततथाविधपुण्यप्राग्भारा राजत्वमप्राप्ता अपि राज्ञा सह तुल्यविभवा इति ॥ **'एगमेगस्स णं भंते! चंदिमसूरियस्से'**त्यादि, एकैकस्य भदन्त! चन्द्रसूर्यस्य, अनेन च पदेन यथा नक्षत्रादीनां चन्द्रः स्वामी तथा सूर्योऽपि, तस्यापी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९३--१९४] + गाथा: दीप अनुक्रम [३०८--३११]

न्द्रत्वाद् (ते) द्युतिं ख्यापयन्ति, कियन्ति नक्षत्राणि परिवार: प्रज्ञप्त: ?, कियन्तो महाग्रहा–अङ्गारकादय: परिवार: प्रज्ञप्त: ?, कियत्यस्तारागणकोटीकोट्य: परिवार: प्रज्ञप्त: ?, इह भूयान् पुस्तकेषु वाचनाभेदो गलितानि च सूत्राणि बहुषु पुस्तकेषु ततो यथाऽवस्थितवाचनाभेदप्रतिपत्त्यर्थं गलितसूत्रोद्धरणार्थं चैवं सुगमान्यपि विव्रियन्ते, भगवानाह–गौतम! एकैकस्य चन्द्रसूर्यस्याष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि परिवार: प्रज्ञप्त:, अष्टाशीतिर्महाग्रहा: परिवार: प्रज्ञप्त: । 'छावट्ठिसहस्साइं' इति गाथा, षट्षष्टि: सहस्राणि नव चैव शतानि पञ्चसप्ततानि एकशशिपरिवारस्तारागणकाटीकोटीनां, कोटीकोटीति कोट्या एव सञ्ज्ञा, ततस्तारागणकोटीनामिति द्रष्टव्यम् ॥

जंबूदीवे णं भंते! दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ केवतियं अबाधाए जोतिसं चारं चरति?, गोयमा! एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं अबाधाए जोतिसं चारं चरति, एवं दक्खिणिल्लाओ पच्चत्थिमिल्लाओ उत्तरिल्लाओ एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयण० जाव चारं चरति ॥ लोगंताओ भंते! केवतियं अबाधाए जोतिसे पण्णत्ते?, गोयमा! एक्कारसहिं एक्कारेहिं जोयणसतेहिं अबाधाए जोतिसे पण्णत्ते ॥ इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ केवतियं अबाहाए सव्वहेट्ठिल्ले तारारूवे चारं चरति? केवतियं अबाधाए सूरविमाणे चारं चरति? केवतियं अबाधाए चंदविमाणे चारं चरति? केवतियं अबाधाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरति?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणि० सत्तहिं णउएहिं जोयणसतेहिं अबाहाए जोतिसं (सव्व) हेट्ठिल्ले तारारूवे चारं चरति, अट्ठहिं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

जोयणसतेहिं अबाधाए सूरविमाणे चारं चरति, अट्ठहिं असीएहिं जोयणसतेहिं अबाधाए चंद-
विमाणे चारं चरति, नवहिं जोयणसएहिं अबाहाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरति ॥ स-
व्वहेट्ठिमिल्लाओ णं भंते! तारारूवाओ केवतियं अबाहाए सूरविमाणे चारं चरइ? केवइयं
अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ? केवतियं अबाहाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ?, गो-
यमा! सव्वहेट्ठिल्लाओ णं दसहिं जोयणेहिं सूरविमाणे चारं चरति णउतीए जोयणेहिं अबा-
धाए चंदविमाणे चारं चरति दसुत्तरे जोयणसते अबाधाए सव्वोपरिल्ले तारारूवे चारं चरइ ॥
सूरविमाणाओ णं भंते! केवतियं अबाधाए चंदविमाणे चारं चरति? केवतियं सव्वउवरिल्ले
तारारूवे चारं चरति?, गोयमा! सूरविमाणाओ णं असीए जोयणेहिं चंदविमाणे चारं चरति,
जोयणसय अबाधाए सव्वोवरिल्ले तारारूवे चारं चरति ॥ चंदविमाणाओ णं भंते! केवतियं
अबाधाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरति?, गोयमा! चंदविमाणाओ णं वीसाए जोयणेहिं
अबाधाए सव्वउवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ, एवामेव सपुव्वावरेणं दसुत्तरसतजोयणबाहल्ले
तिरियमसंखेज्जे जोतिसविसए पण्णत्ते ॥ (सू० १९५) जंबूदीवे णं भंते! कयरे णक्खत्ते सव्व-
ब्भिंतरिल्लं चारं चरंति? कयरे नक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ? कयरे नक्खत्ते सव्वउवरिल्लं
चारं चरति? कयरे नक्खत्ते सव्वहिट्ठिल्लं चारं चरति?, गोयमा! जंबूदीवे णं दीवे अभी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनक्खत्ते सव्वब्भिंतरिल्लं चारं चरति मूले णक्खत्ते सव्वबाहिरिल्लं चारं चरइ साती णक्खत्ते सव्वोवरिल्लं चारं चरति भरणीणक्खत्ते सव्वहेट्ठिल्लं चारं चरति ॥ (सू० १९६)

'जंबूदीवे ण'मित्यादि' जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य सकलतिर्यग्लोकमध्यवर्त्तिनं कियत्क्षेत्रमबाधया सर्वतः कृत्वा **'ज्योतिषं'** ज्योतिश्चक्रं **'चारं चरति'** मण्डलगत्या परिभ्रमति?, भगवानाह–गौतम! एकादश योजनशतानि **'एकविंशानि'** एकविंशत्यधिकानि अबाधया ज्योतिषं चारं चरति, किमुक्तं भवति?–मेरोः सर्वत एकादश योजनशतान्येकविंशत्यधिकानि मुक्त्वा तदनन्तरं चक्रवालतया ज्योतिश्चक्रं चारं चरति ॥ **'लोगंताओ णं भंते!'** इत्यादि, लोकान्तादर्वाग् णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! कियत्क्षेत्रमबाधया अपान्तराले कृत्वा ज्योतिषं प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! एकादश योजनशतानि 'एकादशानि' एकादशोत्तराण्यबाधया कृत्वा ज्योतिषं प्रज्ञप्तम् ॥ **'इमीसे णं भंते!'** इत्यादि, 'अस्यां' यत्र वयं व्यवस्थिता रत्नप्रभायां पृथिव्यां बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् आरभ्य कियदबाधया कृत्वाऽधस्तनं तारारूपं ज्योतिषं चारं चरति?, कियदबाधया कृत्वा सूर्यविमानं चारं चरति?, कियदबाधया कृत्वा चन्द्रविमानं, कियदबाधया कृत्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिषं चारं चरति?, भगवानाह–गौतम! सप्त योजनशतानि नवत्यधिकान्यबाधया कृत्वाऽधस्तनं तारारूपं चारं चरति, अष्ट योजनशतान्यबाधया कृत्वा सूर्यविमानं, अष्टौ योजनशतान्यशीतान्यबाधया कृत्वा चन्द्रविमानं, नव योजनशतानि पूर्णान्यबाधया कृत्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिषं चारं चरति ॥ **'(सव्व) हेट्ठिल्लाओ णं भंते!'** इत्यादि, अधस्तनाद् भदन्त! तारारूपात् कियदबाधया कृत्वा सूर्यविमानं चारं चरति? कियदबाधया कृत्वा चन्द्रविमानं चारं चरति? कियदबाधयोपरितनं तारारूपम्?, भगवानाह–गौतम! दश योजनान्यबाधया कृत्वा सूर्यविमानं चारं चरति, तत एवाधस्तनात्तारा-

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

रूपान्नवतिं योजनान्यबाधया कृत्वा चन्द्रविमानं तत एवाधस्तनात्तारारूपाद्दशोत्तरं योजनशतमबाधया कृत्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिषं चारं चरति ॥ **'सूरविमाणाओ णं भंते!'** इत्यादि, सूर्यविमानाद् भदन्त! कियदबाधया कृत्वा चन्द्रविमानं चारं चरति?, कियदबाधयोपरितनं तारारूपम्?, भगवानाह–गौतम! अशीतिं योजनान्यबाधया कृत्वा चन्द्रविमानं चारं चरति, तत एव सूर्यविमानाद्योजनशतमबाधया कृत्वोपरितनं तारारूपम् ॥ **'चंदविमाणाओ णं भंते!'** इत्यादि, चन्द्रविमानाद्भदन्त! कियदबाधया कृत्वोपरितनं तारारूपं चारं चरति?, भगवानाह–गौतम! विंशतियोंजनान्यबाधया कृत्वोपरितनं तारारूपं चारं चरति ॥ **'जंबूदीवे णं भंते!'** इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे कतरत्, 'बहूनां प्रश्ने डतमश्चे'ति बहूनामपि निर्द्धार्ये डतरः, नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं–सर्वेषामन्येषां नक्षत्राणामभ्यन्तरं **'चारं'** मण्डलगत्या परिभ्रमणं चरति?, कतरत् नक्षत्रं **'सर्वबाह्यं'** सर्वेषां नक्षत्राणां बहिर्वर्त्तिनं चारं **'चरति'** प्रतिपद्यते?, कतरत् नक्षत्रं **'सर्वोपरितनं'** सर्वेषां नक्षत्राणामुपरितनं चारं चरति?, कतरत् नक्षत्रं सर्वाधस्तनं चारं चरति?, भगवानाह–गौतम! अभिजिन्नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं चारं चरति, मूलः पुनर्नक्षत्रं सर्वबाह्यं चारं चरति, स्वातिर्नक्षत्रं सर्वोपरितनं चारं चरति, भरणीनक्षत्रं सर्वाधस्तनं चारं चरति, उक्तञ्च—"सव्वब्भिंतरऽभीई मूलो पुण सव्ववाहिरो होइ। सव्वोवरिं तु साई भरणी पुण सव्वहेट्ठिलिया ॥ १ ॥"

चंदविमाणे णं भंते! किंसंठिते पण्णत्ते?, गोयमा! अद्धकविट्ठगसंठाणसंठिते सव्वफालिताभए अब्भुगतमूसितपहसिते वण्णओ, एवं सूरविमाणेवि नक्खत्तविमाणेवि ताराविमाणेवि अद्धकविट्ठसंठाणसंठिते ॥ चंदविमाणे णं भंते! केवतियं आयामविक्खंभेणं? केवतियं परिक्खेवेणं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९७]

दीप अनुक्रम [३१४]

केवतियं बाहल्लेणं पण्णत्ते?, गोयमा! छप्पन्ने एगसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं अट्ठावीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ सूरविमाणस्सवि सच्चेव पुच्छा, गोयमा! अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं चउवीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पन्नत्ते ॥ एवं गहविमाणेवि अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं सविसेसं परि० कोसं बाहल्लेणं ॥ णक्खत्तविमाणेणं कोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परि० अद्धकोसं बाहल्लेणं प० ताराविमाणे अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परि० पंचधणुसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥ (सू० १९७)

'चंदविमाणे णं भंते!' इत्यादि, चन्द्रविमानं भदन्त! 'किंसंस्थितं' किमिव संस्थितं २ प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! 'अर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितम्' उत्तानीकृतमर्द्धकपित्थं तस्येव यत् संस्थानं तेन संस्थितमर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितं, आह–यदि चन्द्रविमानमुत्तानीकृतार्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितं तत उदयकालेऽस्तमयकाले वा यदिवा तिर्यक् परिभ्रमत् पौर्णमास्यां कस्मात्तदर्द्धकपित्थफलाकारं नोपलभ्यते?, कामं शिरस उपरि वर्त्तमानं वर्त्तुलमुपलभ्यते, अर्द्धकपित्थस्य शिरस उपरि दूरमवस्थापितस्य परभागादर्शनतो वर्त्तुलतया दृश्यमानत्वात्, उच्यते, इहार्द्धकपित्थफलाकारं चन्द्रविमानं न सामस्त्येन प्रतिपत्तव्यं, किन्तु तस्य विमानस्य पीठं, तस्य च पीठस्योपरि चन्द्रदेवस्य–ज्योतिश्चक्रराजस्य प्रासादः, स च प्रासादस्तथा कथञ्चनापि व्यवस्थितो यथा पीठेन सह भूयान् वर्त्तुल आकारो भवति, स च दूरभावादेकान्ततः समवृत्ततया जनानां प्रतिभासते ततो न कश्चिद्दोषः, न चैतत् स्वमनीषिकाया विजृम्भितं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

यत एतदेव जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणेन विशेषणवत्यामाक्षेपपुरस्सरमुक्तम्—"अद्धकविट्ठागारा उदयत्थमणंमि कह न दीसंति । ससिसूराण विमाणा तिरियक्खेत्तं ठियाणं च ? ॥ १ ॥ उत्ताणद्धकविट्ठागारं पीढं तदुवरिं च पासाओ । वट्टालेखेण ततो समवट्टं दूरभावातो ॥ २ ॥" तथा सर्व—निरवशेषं स्फटिकविशेषमणिमयं सर्वस्फटिकमयं तथाऽभ्युद्गता—आभिमुख्येन सर्वतो विनिर्गता उत्सृताः—प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा तया सितं अभ्युद्गतोत्सृतप्रभासितं, यावत्करणात् 'विविहमणिरयणभत्तिचित्ते वाउद्धुयविजयवेजयन्तीपडागछत्तातिछत्तकलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जालंतररयणपंजलोम्मीलियमणिकणगथूभियागे वियसियसयवत्तपुंडरीयतिलगरयणद्धचंदचित्ते अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्जवालुयापत्थडे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे' इति, तत्र विविधा—अनेकप्रकारा मणयः—चन्द्रकान्तादयो रत्नानि च—कर्केतनादीनि तेषां भक्तयो—विच्छित्तिविशेषास्ताभिश्चित्रं—अनेकरूपवद् आश्चर्यवद्वा विविधमणिरत्नभक्तिचित्रं, तथा वातोद्धूता—वायुकम्पिता विजयः—अभ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्त्यभिधानाः पताका विजयवैजयन्त्यः, अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो विजयवैजयन्त्यः—पताकास्ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः, छत्रातिच्छत्राणि—उपर्युपरिस्थितातपत्राणि तैः कलितं वातोद्धूतविजयवेजयन्तीपताकाकलितं तुङ्गं—उच्चम् अत एव 'गगणतलमणुलिहंतसिहरं' गगनतलमनुलिखद्—अभिलङ्घयद् गगनतलानुलिखच्छिखरं, तथा जालानि—जालकानि तानि च भवनभित्तिषु लोके प्रतीतानि तदन्तरेषु विशिष्टशोभानिमित्तं रत्नानि यत्र तज्जालान्तररत्नं, सूत्रे चात्र प्रथमैकवचनलोपो द्रष्टव्यः, तथा पञ्जराद् उन्मीलितमिव—बहिष्कृतमिव पञ्जरोन्मीलितमिव, यथा हि किल किमपि वस्तु पञ्जराद्—वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद् बहिष्कृतमत्यन्तमविनष्टच्छायत्वात् शोभते तथा तदपि विमानमिति भावः, तथा मणिकनकानां सम्बन्धिनी स्तूपिका—

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only elibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९७]

दीप अनुक्रम [३१४]

श्रीजीवाजीवाभि० मलयगिरीयावृत्तिः

॥ ३७९ ॥

शिखरं यस्य तत् मणिकनकस्तूपिकाकं, तथा विकसितानि यानि शतपत्राणि पुण्डरीकाणि च द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन स्थितानि तिलकाश्च–भित्त्यादिषु पुण्ड्राणि रत्नमयाश्चार्द्धचन्द्रा द्वारादिषु तैश्चित्रं विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नार्द्धचन्द्रचित्रम्, 'अंतो बहिं च सण्हे' इत्यादि अञ्जनपर्वतोपरिसिद्धायतनद्वारवत्, **'एवं सूरविमाणेवी'**त्यादि, एवं–चन्द्रविमानमिव सूर्यविमानमपि वक्तव्यं ग्रहविमानमपि नक्षत्रविमानमपि तारविमानमपि, ज्योतिर्विमानानां प्रायः एकरूपत्वात्॥ **'चंदविमाणे णं भंते!'** इत्यादि, चन्द्रविमानं भदन्त! कियदायामविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण कियद्बाहल्येन प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह–गौतम! षट्पञ्चाशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यायामविष्कम्भेन, तदेवायामविष्कम्भमानं त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण, अष्टाविंशतिमेकषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन प्रज्ञप्तम्॥ **'सूरविमाणे णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, भगवानाह–गौतम! अष्टचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्यायामविष्कम्भेन, तदेवायामविष्कम्भमानं त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण, चतुर्विंशतिमेकषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन॥ **'गहविमाणे णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं तथैव, भगवानाह–गौतम! अर्द्धयोजनमायामविष्कम्भेन तदेवार्द्धयोजनं त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण क्रोशं बाहल्येन॥ **'नक्खत्तविमाणे णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं तथैव, भगवानाह–गौतम! क्रोशमेकमायामविष्कम्भेन तदेवायामविष्कम्भपरिमाणं त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण अर्द्धक्रोशं च बाहल्येन प्रज्ञप्तम्॥ **'ताराविमाणे णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं तथैव, भगवानाह–गौतम! अर्द्धक्रोशमायामविष्कम्भेन तदेवायामविष्कम्भायामपरिमाणं त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण, पञ्चधनुःशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्, एवंपरिमाणं च ताराविमानमुत्कृष्टस्थितिकस्य तारादेवस्य सम्बन्धि द्रष्टव्यं, जघन्यस्थितिकस्य तु पञ्चधनुःशतान्यायामविष्कम्भेन अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि बाहल्येन, उक्तञ्च तत्त्वार्थभाष्ये—"अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाः सूर्यमण्डलविष्कम्भः, चन्द्रमसः षट्पञ्चाशत्, ग्रहा-

३ प्रतिपत्तौ चन्द्रादिसंस्थानायामादि उद्देशः २ सू० १९७

॥ ३७९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

णामर्द्धयोजनं, गव्यूतं नक्षत्राणां, सर्वोत्कृष्टायास्तारायाः अर्द्धक्रोशः, जघन्यायाः पञ्चधनुःशतानि, विष्कम्भार्द्धबाहल्याश्च भवन्ति सर्वे सूर्यादयो नृलोके" इति ॥

चंदविमाणे णं भंते ! कति देवसाहस्सीओ परिवहंति ?, गोयमा ! चंदविमाणस्स णं पुरच्छिमेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्मलदधिघणगोखीरफेणरययणिगरप्पगासाणं (महु-गुलियपिंगलक्खाणं) थिरलट्ठ [पउट्ठ] वट्टपीवरसुसिलिट्ठसुविसिट्ठतिक्खदाढाविडंबितमुहाणं रत्तु-प्पलपत्तमउयसुकुमालतालुजीहाणं [पसत्थसत्थवेरुलियभिसंतकक्कडनहाणं] विसालपीवरोरुप-डिपुण्णविउलखंधाणं मिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणविच्छिण्णकेसरसडोवसोभिताणं चंकमि-तललियपुलितधवलगव्वितगतीणं उस्सियसुणिम्मियसुजायअप्फोडियणंगूलाणं वइरामयण-क्खाणं वइरामयदन्ताणं वयरामयदाढाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसु-जोतिताणं कामगमाणं पीतिगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगतीणं अमियब-लवीरियपुरिसकारपरक्कमाणं महता अप्फोडियसीहनातीयबोलकलयलरवेणं मधुरेण मणहरेण य पूरिंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ सीहरूवधारिणं देवाणं पुरच्छिमिल्लं बाहं परिवहंति । चंदविमाणस्स णं दक्खिणेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं संखतलविमलनिम्म-लदधिघणगोखीरफेणरययणियरप्पगासाणं वइरामयकुंभजुयलसुट्ठितपीवरवरवइरसोंडवट्टियदि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्तसुरत्तपउमप्पकासाणं अब्भुण्णयगुणा (सुहा) णं तवणिज्जविसालचंचलचलंतचवलकण्णविमलु-
ज्जलाणं मधुवण्णभिसंतणिद्धपिंगलपत्तलतिवण्णमणिरयणलोयणाणं अब्भुग्गतमउलमल्लियाणं
धवलसरिससंठितणिव्वणदढकसिणफालियामयसुजायदंतमुसलोवसोभिताणं कंचणकोसीपवि-
ट्ठदंतग्गविमलमणिरयणरुइरपेरंतचित्तरूवगविरायिताणं तवणिज्जविसालतिलगपमुहपरिमंडिताणं
णाणामणिरयणमुद्धगेवेज्जबद्धगलयवरभूसणाणं वेरुलियविचित्तदंडणिम्मलवइरामयतिक्खलट्ठ-
अंकुसकुंभजुयलंतरोदियाणं तवणिज्जसुबद्धकच्छदप्पियबलुद्धराणं जंबूणयविमलघणमंडलवइरा-
मयलालालियतालणाणामणिरयणघण्टपासगरयतामयरज्जूवद्धलंबितघंटाजुयलमहुरसरमणह-
राणं अल्लीणपमाणजुत्तवट्टियसुजातलक्खणपसत्थतवणिज्जवालगत्तपरिपुच्छणाणं उयवियपडिपु-
ण्णकुम्मचलणलहुविक्कमाणं अंकामयणक्खाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जजो-
त्तगसुजोतियाणं कामकमाणं पीतिकमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमियगतीणं अमि-
यबलवीरियपुरिसकारपरक्कमाणं महया गंभीरगुलगुलाइयरवेणं महुरेणं मणहरेणं पूरेन्ता अंबरं दि-
साओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ गयरूवधारीणं देवाणं दक्खिणिल्लं बाहं परिवहंति ।
चंदविमाणस्स णं पच्चत्थिमेणं सेताणं सुभगाणं सुप्पभाणं चंकमियललियपुलितचलचवलककुदसा-
लीणं सण्णयपासाणं संगयपासाणं सुजायपासाणं मियमाइतपीणरइतपासाणं झसविहगसुजात-

॥ ३८० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

कुच्छीणं पसत्थणिद्धमधुगुलितभिसंतपिंगलक्खाणं विसालपीवरोरुपडिपुण्णविपुलखंधाणं वट्टप-
डिपुण्णविपुलकवोलकलिताणं घणणिचितसुबद्धलक्खणुण्णतईसिआणयवसभोट्ठाणं चंकमितल-
लितपुलियचक्कवालचवलगव्वितगतीणं पीवरोरुवट्टियसुसंठितकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमा-
णजुत्तपसत्थरमणिज्जवालगंडाणं समखुरवालधाणीणं समलिहिततिक्खग्गसिंगाणं तणुसुहुमसु-
जातणिद्धलोमच्छविधराणं उवचितमंसलविसालपडिपुण्णखुद्दपमुहपुंडराणं (खंधपएससुंदराणं)
वेरुलियभिसंतकडक्खसुणिरिक्खणाणं जुत्तप्पमाणप्पधाणलक्खणपसत्थरमणिज्जगग्गरगलसो-
भिताणं घग्घरगसुबद्धकण्ठपरिमंडियाणं नाणामणिकणगरयणघण्टवेयच्छगसुकयरतियमालि-
याणं वरघंटागलगलियसोभंतसस्सिरीयाणं पउमुप्पलभसलसुरभिमालाविभूसिताणं वइरखुराणं
विविधविखुराणं फालियामयदंताणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजो-
त्तियाणं कामकमाणं पीतिकमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमितगतीणं अमियबल-
वीरियपुरिसयारपरक्कमाणं महया गंभीरगज्जियरवेणं मधुरेण मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ
य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ वसभरूवधारिणं देवाणं पचत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति।
चंदविमाणस्स णं उत्तरेणं सेयाणं सुभगाणं सुप्पभाणं जच्चाणंतरमल्लिहायणाणं हरिमेलामदुलम-
ल्लियच्छाणं घणणिचितसुबद्धलक्खणुण्णताचंकमि (चंचुचि) यललियपुलियचलचवलचंचलगतीणं

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९८]

दीप अनुक्रम [३१५]

लंघणवग्गणधावणधारणतिवइजईणसिक्खियगईणं सण्णतपासाणं ललंतलामगलायवरभूसणाणं संणयपासाणं संगतपासाणं सुजायपासाणं मितमायितपीणरइयपासाणं झसविहगसुजातकुच्छीणं पीणपीवरवट्टितसुसंठितकडीणं ओलंबपलंबलक्खणपमाणजुत्तपसत्थरमणिज्जवालगंडाणं तणुसुहुमसुजायणिद्धलोमच्छविधराणं मिउविसयपसत्थसुहुमलक्खणधिकिण्णकेसरवालिधराणं ललियसविलासगति(ललंतथासगल)लाडवरभूसणाणं सुहमंडगोचूलचमरथासगपरिमंडियकडीणं तवणिज्जखुराणं तवणिज्जजीहाणं तवणिज्जतालुयाणं तवणिज्जजोत्तगसुजोतियाणं कामगमाणं पीतिगमाणं मणोगमाणं मणोरमाणं मणोहराणं अमितगतीणं अमियबलवीरियपुरिसयारपरक्कमाणं महया हयहेसियकिलकिलाइयरवेण महुरेणं मणहरेण य पूरेंता अंबरं दिसाओ य सोभयंता चत्तारि देवसाहस्सीओ हयरूवधारीणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति ॥ एवं सूरविमाणस्सवि पुच्छा, गोयमा! सोलस देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं ॥ एवं गहविमाणस्सवि पुच्छा, गोयमा! अट्ठ देवसाहस्सीओ परिवहंति पुव्वकमेणं, दो देवाणं साहस्सीओ पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति दो देवाणं साहस्सीओ दक्खिणिल्लं दो देवाणं साहस्सीओ पच्चत्थिमं दो देवसाहस्सी हयरूवधारीणं उत्तरिल्लं बाहं परिवहंति ॥ एवं णक्खत्तविमाणस्सवि पुच्छा, गोयमा! चत्तारि

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

देवसाहस्सीओ परिवहंति, सीहरूवधारीणं देवाणं पंचदेवसता पुरत्थिमिल्लं बाहं परिवहंति एवं चउद्दिसिंपि ॥ (सू० १९८)

'चंदविमाणे णं भंते!' इत्यादि, चन्द्रविमानं णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! कति देवसहस्राणि परिवहन्ति?, भगवानाह–गौतम! षोडश देवसहस्राणि परिवहन्ति, तद्यथा–पूर्वेण–पूर्वतः, एवं दक्षिणेन पश्चिमेन उत्तरेण, तत्र पूर्वेण सिंहरूपधारिणां देवानां चत्वारि सहस्राणि परिवहन्ति, दक्षिणेन गजरूपधारिणां देवानां चत्वारि सहस्राणि, पश्चिमेन वृषभरूपधारिणां देवानां चत्वारि सहस्राणि, उत्तरेणाश्वरूपधारिणां देवानां चत्वारि देवसहस्राणि, इयमत्र भावना–चन्द्रादिविमानानि तथाजगत्स्वाभाव्यान्निरालम्बनान्येव वहन्त्यवतिष्ठन्ते, केवलमाभियोगिका देवास्ते तथाविधनामकर्मोदयवशात्समानजातीयानां हीनजातीयानां वा निजस्फातिविशेषप्रदर्शनार्थमात्मानं बहु मन्यमानाः प्रमोदभृतः सततवहनशीलेषु विमानेष्वधः स्थित्वा केचित्सिंहरूपाणि केचिद्गजरूपाणि केचिद्वृषभरूपाणि केचिदश्वरूपाणि कृत्वा तानि विमानानि वहन्ति, न चैतदनुपपन्नं, यथा हि कोऽपि तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभागी दासोऽन्येषां समानजातीयानां हीनजातीयानां वा पूर्वपरिचितानामेवमहं नायकस्यास्य सुप्रसिद्धस्य संमत इति निजस्फातिविशेषप्रदर्शनार्थं सर्वमपि स्वोचितं कर्म्म नायकसमक्षं प्रमुदितः करोति, तथाऽऽभियोगिका देवास्तथाविधाभियोग्यनामकर्मोपभोगभाजः समानजातीयानां हीनजातीयानां वा देवानामन्येषामेवं वयं समृद्धा यत्सकललोकप्रसिद्धानां चन्द्रादीनां विमानानि वहाम इति निजस्फातिविशेषप्रदर्शनार्थमात्मानं बहु मन्यमाना उक्तप्रकारेण चन्द्रादिविमानानि वहन्ति ॥ एवं सूर्यादिविमानविषयाण्यपि सूत्राणि भावनीयानि, अत्र **जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति**सत्के सङ्ग्रहणिगाथे—"सोलस देवसहस्सा वहंति चंदेसु चेव सूरेसु। अट्ठेव सहस्साइं एक्केक्कंमि गहविमाणे ॥ १ ॥ चत्तारि **सहस्साइं**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१९८]

दीप अनुक्रम [३१५]

नक्खत्तंमि य हवंति एक्केके । दो चेव सहस्साइं तारारूवेक्कमेक्कंमि ॥ २ ॥" क्वचित्संग्रहादीनां वर्णनं दृश्यते तद्बहुषु पुस्तकेषु न दृष्टमित्युपेक्षितं, अवश्यं चेत्तद्व्याख्यानेन प्रयोजनं तर्हि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका परिभावनीया, तत्र सविस्तरं तद्व्याख्यानस्य कृतत्वात् ॥

एतेसि णं भंते चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवाणं कयरे कयरेहिंतो सिग्घगती वा मंदगती वा?, गोयमा! चंदेहिंतो सूरा सिग्घगती सूरेहिंतो गहा सिग्घगती गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगती णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगती, सव्वप्पगती चंदा सव्वसिग्घगतीओ तारारूवे ॥ (सू०१९९)
एएसि णं भंते! चंदिमजावतारारूवाणं कयरे २ हिंतो अप्पिड्ढिया वा महिड्ढिया वा?, गोयमा! तारारूवेहिंतो णक्खत्ता महिड्ढीया णक्खत्तेहिंतो गहा महिड्ढीया गहेहिंतो सूरा महिड्ढीया सूरेहिंतो चंदा महिड्ढीया, सव्वप्पड्ढिया तारारूवा सव्वमहिड्ढीया चंदा ॥ (सू० २००)

'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणां मध्ये कतरे कतरेभ्योऽल्पगतयः? कतरे कतरेभ्यः शीघ्रगतयः?, भगवानाह–गौतम! चन्द्रेभ्यः सूर्याः शीघ्रगतयः सूर्येभ्यो ग्रहाः शीघ्रगतयः ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि नक्षत्रेभ्यस्तारारूपाः शीघ्रगतयः, चन्द्रेणाहोरात्राक्रमणीयस्य क्षेत्रस्य सूर्यादिभिर्हीनहीनतरेणाहोरात्रेणाक्रम्यमाणत्वात्, एतच्च सविस्तरं चन्द्रप्रज्ञप्तौ सूर्यप्रज्ञप्तौ भावितमिति ततोऽवधार्यं, एवं च सर्वमन्दगतयश्चन्द्राः सर्वशीघ्रगतयस्तारा: ॥ 'एएसि ण'मित्यादि, एतेषां भदन्त! चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणां मध्ये कतरे कतरेभ्योऽल्पर्द्धिकाः कतरे कतरेभ्यो महर्द्धिकाः?, भगवानाह–गौतम! तारकेभ्यो नक्षत्राणि महर्द्धिकानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

बृहत्स्थितिकत्वात्, एवं नक्षत्रेभ्यो महा महर्द्धिकाः, ग्रहेभ्यः सूर्या महार्द्धिकाः, सूर्येभ्यश्चन्द्रा महर्द्धिकाः, एवं सर्वाल्पर्द्धयस्ताराः सर्वमहर्द्धयश्चन्द्राः ॥ सम्प्रति जम्बूद्वीपे ताराणां परस्परमन्तरप्रतिपादनार्थमाह—

जंबूदीवे णं भंते! दीवे तारारूवस्स २ एस णं केवतियं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते?, गोयमा! दुविहे अंतरे पण्णत्ते, तंजहा—वाघातिमे य निव्वाघाइमे य, तत्थ णं जे से वाघातिमे से जहण्णेणं दोण्णि य छावट्ठे जोयणसए उक्कोसेणं बारस जोयणसहस्साइं दोण्णि य बायाले जोयणसए तारारूवस्स २ य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। तत्थ णं जे से णिव्वाघातिमे से जहण्णेणं पंचधणुसयाइं उक्कोसेणं दो गाउयाइं तारारूव जाव अंतरे पण्णत्ते ॥ (सू०२०१) चंदस्स णं भंते! जोतिसिंदस्स जोतिसरन्नो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—चंदप्पभा दोसिणाभा अच्चिमाली पभंकरा, एत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवारे य, पभू णं ततो एगमेगा देवी अण्णाइं चत्तारि २ देविसहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए, एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, से तं तुडिए ॥ (सू०२०२) पभू णं भंते! चंदे जोतिसिंदे जोतिसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुधम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?, णो तिणट्ठे समट्ठे। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति नो पभू चंदे जोतिसराया चंडवडेंसए विमाणे सभाए सुधम्माए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२०१--२०४]

दीप अनुक्रम [३१८--३२१]

चंदंसि सीहासणंसि तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए?, गोयमा! चंदस्स जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुधम्माए माणवगंसि चेतियखंभंसि वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहुयाओ जिणसक्कहाओ सण्णिखित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं चंदस्स जोतिसिंदस्स जोतिसरन्नो अन्नेसिं च बहूणं जोतिसियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ, तासिं पणिहाए नो पभू चंदे जोतिसराया चंदवडिं० जाव चंदंसि सीहासणंसि जाव भुंजमाणे विहरित्तए, से एएणट्ठेणं गोयमा! नो पभू चंदे जोतिसराया चंदवडेंसए विमाणे सभाए सुधम्माए चंदंसि सीहासणंसि तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, अदुत्तरं च णं गोयमा! पभू चंदे जोतिसिंदे जोतिसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुधम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवाणं साहस्सीहिं अन्नेहिं बहूहिं जोतिसिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपुरिवडे महयाहयणट्टगीइवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, केवलं परियारतुडिएण सद्धिं भोगभोगाइं बुद्धीए नो चेव णं मेहुणवत्तियं ॥ (सू० २०३) सूरस्स णं भंते! जोतिसिंदस्स जोतिसरन्नो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—सूरप्पभा आयवाभा अच्चिमाली पभंकरा, एवं अवसेसं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

जहा चंदस्स णवरिं सूरवडिंसए विमाणे सूरंसि सीहासणंसि, तहेव सव्वेसिंपि गहाईणं चत्तारि अग्गमहिसीओ० तंजहा—विजया वेजयंती जयंती अपराजिया, तेसिंपि तहेव । (सू० २०४)

'जंबूदीवे णं भंते! दीवे'इत्यादि, जम्बूद्वीपे भदन्त! द्वीपे तारायास्तारायाः एतदन्तरं कियदबाधया प्रज्ञप्तम्?, भगवानाह—गौतम! द्विविधमन्तरं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—व्याघातिमं निर्व्याघातिमं च, व्याहननं व्याघातः—पर्वतादिस्खलनं तेन निर्वृत्तं व्याघातिमं 'भावादिम' इति इमप्रत्ययः, निर्व्याघातिमं—व्याघातिमान्निर्गतं स्वाभाविकमित्यर्थः, तत्र यन्निर्व्याघातिमं तज्जघन्येन पञ्च धनुःशतानि उत्कर्षतो द्वे गव्यूते, तत्र यद् व्याघातिमं तज्जघन्येन द्वे योजनशते 'षट्षष्टे' षट्षष्ट्यधिके, एतच्च निषधकूटादिकमपेक्ष्य वेदितव्यं, तथाहि—निषधपर्वतः स्वभावादप्युच्चैश्चत्वारि योजनशतानि तस्योपरि पञ्च योजनशतोच्चानि कूटानि, तानि च मूले पञ्च योजनशतान्यायामविष्कम्भाभ्यां मध्ये त्रीणि योजनशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि उपर्यर्द्धतृतीयानि योजनशतानि, तेषां चोपरितनभागसमश्रेणिप्रदेशे तथाजगत्स्वाभाव्यादष्टावष्टौ योजनान्युभयतोऽबाधया कृत्वा ताराविमानानि परिभ्रमन्ति, ततो जघन्यतो व्याघातिममन्तरं द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिके भवति, उत्कर्षतो द्वादश योजनसहस्राणि द्वे योजनशते द्वाचत्वारिंशदधिके, एतच्च मेरुमपेक्ष्य द्रष्टव्यं, तथाहि—मेरुर्दश योजनसहस्राणि मेरोश्चोभयतोऽबाधया एकादश योजनशतान्येकविंशत्यधिकानि, ततः सर्वसङ्ख्यामीलने द्वादश योजनसहस्राणि द्वे च योजनशते द्वाचत्वारिंशदधिके, क्वचित्सर्वत्र 'वाघाइए निव्वाघाइए' इति पाठस्तत्र व्याघातो—यथोक्तरूपोऽस्यास्तीति व्याघातिकम्, 'अतोऽनेकस्वरा'दिति मत्वर्थीय इकप्रत्ययः, व्याघातिकान्निर्गतं निर्व्याघातिकमिति ॥ 'चंदस्स णं भंते!' इत्यादि, चन्द्रस्य भदन्त! ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य 'कति' कियत्सङ्ख्याका अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह—गौतम! चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तद्यथा—चन्द्रप्रभा १ **'दोसिणाभा'** इति ज्योत्स्नाभा २ अर्चिर्मालिनी ३ प्रभङ्करा ४ ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, 'तत्र' तासु चतसृषु अग्रमहिषीषु मध्ये एकैकस्या देव्याश्चत्वारि २ देवीसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः, किमुक्तं भवति?—एकैकाऽग्रमहिषी चतुर्णां २ देवीसहस्राणां पट्टराज्ञी, एकैव सा इत्थम्भूताऽग्रमहिषी परिवारावसरे तथाविधां ज्योतिष्कराजचन्द्रदेवेच्छामुपलभ्य प्रभुरन्यानि आत्मसमानरूपाणि चत्वारि देवीसहस्राणि विकुर्वितुं, स्वाभाविकानि पुनः 'एवमेव' उक्तप्रकारेणैव **'सपूर्वापरेण'** पूर्वापरमीलनेन षोडश [ग्रन्थाग्रम् ११५००] देवीसहस्राणि चन्द्रदेवस्य भवन्ति, **'सेत्तं तुडिए'** तदेतावत् **'तुटिकम्'** अन्तःपुरम्, आह **चूर्णिकृत्**—'तुटिकमन्तःपुरमुपदिश्यते' इति ॥ **'पभू णं भंते!'** इत्यादि, प्रभुर्भदन्त! चन्द्रो ज्योतिषेन्द्रो ज्योतिषराजश्चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चन्द्रे सिंहासने **'तुटिकेन'** अन्तःपुरेण सार्द्धं दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जमानः **'विहर्तुम्'** आसितुम्?, भगवानाह—गौतम! नायमर्थः समर्थः ॥ अत्रैव कारणं पृच्छति—**'से केणट्ठेण'**मित्यादि तदेव, भगवानाह—गौतम! चन्द्रस्य ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां माणवकचैत्यस्तम्भे वज्रमयेषु गोलवृत्तसमुद्गकेषु तेषु च यथा तिष्ठन्ति तथा विजयराजधानीगतसुधर्मासभायामिव द्रष्टव्यं, बहूनि जिनसक्थीनि संनिक्षिप्तानि तिष्ठन्ति यानि, सूत्रे स्त्रीत्वनिर्देशः प्राकृतत्वात्, चन्द्रस्य ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य अर्चनीयानि पुष्पादिभिर्वन्दनीयानि विशिष्टैः स्तोत्रैः स्तोतव्यानि पूजनीयानि वस्त्रादिभिः सत्कारणीयानि आदरप्रतिपत्त्या सन्माननीयानि जिनोचितप्रतिपत्त्या कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यमिति पर्युपासनीयानि, **'तासिं पणिहाए'** इति तेषां प्रणिधया तान्याश्रित्य नो प्रभुश्चन्द्रो ज्योतिषराजश्चन्द्रावतंसके विमाने यावद्विहर्तुमिति । **'पभू णं गोयमा'** इत्यादि, प्रभुर्गौतम! चन्द्रो ज्योतिषेन्द्रो ज्योतिषराजश्चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चन्द्रसिंहासने चतुर्भिः सामानिकसहस्रैश्चतसृ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकारः एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देशः- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

भिरग्रमहिषीभि: सपरिवाराभिस्तिसृभि: पर्षद्भि: सप्तभिरनीकै: सप्तभिरनीकाधिपतिभि: षोडशभिरात्मरक्षकदेवसहस्रैरन्यैश्च बहुभि-ज्योतिषैर्देवैर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृत: 'महयाहयेत्यादि पूर्ववत् यावद्दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुमिति, न पुन: 'मैथुन-प्रत्ययं' मैथुननिमित्तं दिव्यान् स्पर्शादीन् भुञ्जानो विहर्त्तुं प्रभुरिति ॥ 'सूरस्स णं भंते!' इत्यादि, सूरस्य भदन्त! ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य कति अग्रमहिष्य: प्रज्ञप्ता:?, भगवानाह–गौतम! चतस्रोऽग्रमहिष्य: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा–सूर्यप्रभा आतपाभा अर्चिर्मालीप्रभङ्करा । 'तत्थ णं एगमेगाए देवीए' इत्यादि चन्द्रवक्तावद्वक्तव्यं यावत् 'नो चेव णं मेहुणवत्तियं' नवरं सूर्यावतंसके विमाने सूर्ये सिंहासने इति वक्तव्यं, शेषं तथैव ॥

चंदविमाणे णं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, एवं जहा ठितीपए तहा भाणियव्वा जाव ताराणं ॥ (सू० २०५)

'चंदविमाणे णं भंते!' इत्यादि, चन्द्रविमाने भदन्त! देवानां कियन्तं कालं स्थिति:?, भगवानाह–गौतम! जघन्येन चतुर्भाग-पल्योपमं–चतुर्भाग: पल्योपमस्य चतुर्भागपल्योपममर्द्धपिप्पलीवत्, अत्रापि चिरन्तनव्याकरणेऽयं समास:, यदिवा चतुर्भागमात्रं पल्योपमं चतुर्भागपल्योपममिति विशेषणसमास: पल्योपमस्य चतुर्भाग इत्यर्थ:, उत्कर्षत: पल्योपमं वर्षशतसहस्राभ्यधिकं, चन्द्रवि-माने हि चन्द्रदेव उत्पद्यते अन्ये च तत्सामानिकात्मरक्षादय:, तत्रात्मरक्षादीनां यथोक्ता जघन्या स्थिति: उत्कृष्टा चन्द्रमसां तत्सामा-निकानां वा । 'चंदविमाणे णं भंते!' इत्यादि, चन्द्रविमाने भदन्त! देवीनां कियन्तं कालं स्थिति: प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! जघन्येन चतुर्भागपल्योपममुत्कर्षत: पल्योपमार्द्धं पञ्चाशता वर्षसहस्रैरभ्यधिकं । एवं सूर्यादिविमानविषयाण्यपि स्थितिसूत्राणि वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

च्यानि, नवरं सूर्यविमाने देवानां जघन्यतश्चतुर्भागपल्योपममुत्कर्षतः पल्योपमं वर्षसहस्राभ्यधिकं, देवीनां जघन्यतश्चतुर्भागपल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं पञ्चभिर्वर्षशतैरभ्यधिकं, ग्रहविमानदेवानां जघन्यतश्चतुर्भागपल्योपममुत्कर्षतः परिपूर्णं पल्योपमं, देवीनां उत्कृष्टमर्धपल्योपमं जघन्येन चतुर्भागपल्योपमं, नक्षत्रविमाने देवानां जघन्यतश्चतुर्भागपल्योपममुत्कर्षतोऽर्द्धपल्योपमं, देवीनां उत्कृष्टतोऽधिकचतुर्भागपल्योपमं जघन्येन चतुर्भागपल्योपमं, ताराविमाने जघन्येनाष्टभागपल्योपममुत्कर्षतश्चतुर्भागपल्योपमं, देवीनां जघन्यतोऽष्टभागपल्योपममुत्कर्षतः सातिरेकमष्टभागपल्योपममिति ॥

एतेसि णं भंते! चंदिमसूरियगहणक्खत्ततारारूवाणं कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! चंदिमसूरिया एते णं दोण्णिवि तुल्ला सव्वत्थोवा संखेज्जगुणा णक्खत्ता संखेज्जगुणा गहा संखेज्जगुणाओ तारगाओ ॥ (सू० २०६) जोइसुद्देसओ समत्तो ॥

'एतेसि णं भंते!' इत्यादि, एतेषां भदन्त! चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणां कतरे कतरेभ्योऽल्पाः कतरे कतरेभ्यो बहुका वा? कतरे कतरैस्तुल्याः?, अत्र विभक्तिपरिणामेन तृतीया व्याख्येया, कतरे कतरेभ्यो विशेषाधिकाः?, भगवानाह–गौतम! चन्द्रसूर्यौ एते द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, प्रतिद्वीपं प्रतिसमुद्रं चन्द्रसूर्याणां समसङ्ख्याकत्वात्, शेषेभ्यो ग्रहादिभ्यः सर्वेऽपि स्तोकाः, तेभ्यो नक्षत्राणि सङ्ख्येयगुणानि अष्टाविंशतिगुणत्वात्, तेभ्योऽपि ग्रहाः सङ्ख्येयगुणाः सातिरेकत्रिगुणत्वात्, तेभ्योऽपि ताराः सङ्ख्येयगुणाः प्रभूतकोटीकोटीगुणत्वात् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां चतुर्थप्रतिपत्तौ ज्योतिषोद्देशकः समाप्तः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—ज्योतिष्कदेवाधिकार: एक एव वर्तते, तत् कारणात् उद्देश:- '२' अत्र २ इति निरर्थकम्,

प्रत सूत्रांक [२०७]

दीप अनुक्रम [३२४]

उक्ता ज्योतिषवक्तव्यता, सम्प्रति वैमानिकवक्तव्यतामाह—

कहि णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता?, कहि णं भंते! वेमाणिया देवा परिवसंति?, जहा ठाणपदे तहा सव्वं भाणियव्वं णवरं परिसाओ भाणितव्वाओ जाव सुक्के, अन्नेसिं च बहूणं सोधम्मकप्पवासीणं देवाण य देवीण य जाव विहरंति ॥ (सू० २०७)

'कहि णं भंते! वेमाणियाण'मित्यादि, क भदन्त! वैमानिकानां देवानां विमानानि प्रज्ञप्तानि?, तथा क भदन्त! वैमानिका देवाः परिवसन्ति?, भगवानाह–गौतम! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् रुचकोपलक्षितादिति भावः ऊर्द्धं चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणामप्युपरि बहूनि योजनानि बहूनि योजनशतानि बहूनि योजनसहस्राणि बहूनि योजनशतसहस्राणि बह्वीर्योजनकोटीकोटीः ऊर्द्धं दूरमुत्प्लुत्य–बुद्ध्या गत्वा, एतच्च सार्द्धरज्जूपलक्षणं, तथा चोक्तम्—"सोहम्मंमि दिवड्ढा अड्ढाइज्जा य रज्जु माहिंदे। बंभंमि अद्धपंचम छ अच्चुए सत्त लोगंते ॥ १ ॥ [सौधर्मे सार्धे सार्धे द्वे रज्जू माहेन्द्रे। ब्रह्मदेवलोके अर्धपञ्चमाः षड् अच्युते सप्त लोकान्ते ॥ १ ॥] 'एत्थ ण'मित्यादि, 'अत्र' एतस्मिन् सार्द्धरज्जूपलक्षिते क्षेत्रे ईषत्प्राग्भारादर्वाक् सौधर्मेशानसनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकलान्तकशुक्रसहस्रारानतप्राणतारणाच्युतग्रैवेयकानुत्तरेषु स्थानेषु 'अत्र' एतस्मिन् वैमानिकानां चतुरशीतिर्विमानावासशतसहस्राणि सप्तनवतिः सहस्राणि त्रयोविंशतिर्विमानानि ८४९७०२३ भवन्तीत्याख्यातानि, इयं च सङ्ख्या—"बत्तीसअट्ठवीसा बारसअट्ठ चउरो सयसहस्सा" इत्यादिसङ्ख्यापरिमीलनेन भावनीया ॥ 'ते णं विमाणा' इत्यादि, तानि विमानानि सर्वरत्नमयानि 'अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।"

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only ainelibrary.org

तृतीय-प्रतिपत्तौ ज्योतिष्क-उद्देशक: परिसमाप्त: अथ वैमानिक-उद्देशक: (१) आरब्ध:

'एत्थ ण'मित्यादि, एतेषु विमानेषु बहवो वैमानिका देवाः परिवसन्ति, तद्यथा–सौधर्मा ईशाना यावद् ग्रैवेयका अनुत्तराः, एते च व्यपदेशास्तात्स्थ्यादवगन्तव्याः, यथा पञ्चालदेशनिवासिनः पञ्चालाः, एते च कथम्भूताः? इत्याह—'ते ण'मित्यादि, ते सौधर्मादयोऽच्युतपर्यवसाना यथाक्रमं मृगमहिषवराहसिंहच्छगलदर्दुरहयगजपतिभुजगखड्गवृषभाङ्कविडिमप्रकटितचिह्नमुकुटाः, मृगादिरूपाणि प्रकटितानि चिह्नानि मुकुटे येषां ते तथेति भावः, तद्यथा–सौधर्मदेवा मृगरूपप्रकटितचिह्नमुकुटाः ईशानदेवा महिषरूपप्रकटितचिह्नमुकुटाः सनत्कुमारदेवा वराहरूपप्रकटितचिह्नमुकुटाः माहेन्द्रदेवाः सिंहरूपप्रकटितमुकुटचिह्नाः ब्रह्मलोकदेवाश्छगलरूपप्रकटितमुकुटचिह्नाः लान्तकदेवा दर्दुररूपप्रकटितमुकुटचिह्नाः शुक्रकल्पदेवा हयमुकुटचिह्नाः सहस्रारकल्पदेवा गजपतिमुकुटचिह्नाः आनतकल्पदेवा भुजगमुकुटचिह्नाः, प्राणतकल्पदेवाः खड्गमुकुटचिह्नाः, खड्गः चतुष्पदविशेष आटव्यः, आरणकल्पदेवा वृषभमुकुटचिह्नाः अच्युतकल्पदेवा विडिममुकुटचिह्नाः तथा प्रशिथिलवरमुकुटकिरीटधारिणः, **'वरकुंडलुज्जोवियाणणा'** इति वराभ्यां कुण्डलाभ्यामुद्द्योतितं–भास्वरीकृतमाननं येषां ते वरकुण्डलोद्द्योतिताननाः, **'मउडदित्तसिरया'** मुकुटेन दीप्तं शिरो येषां ते मुकुटदीप्तशिरसः रक्ताभा–रक्तवर्णाः, एतदेव सविशेषमाह—**'पउमपम्हगोरा'** पद्मपक्ष्मवत्–पद्मपत्रवद् गौराः पद्मपक्ष्मगौराः श्रेयांसः–परमप्रशस्याः शुभवर्णगन्धस्पर्शाः **'उत्तमविकुर्विणः'** उत्तमं विकुर्वन्तीत्येवंशीला उत्तमविकुर्विणः, **'विविहवत्थमल्लधारी'** विविधानि शुभात् शुभतराणि वस्त्राणि माल्यानि च धारयन्तीत्येवंशीला विविधवस्त्रमाल्यधारिणः महर्द्धिका महाद्युतयो महायशसो महाबला महानुभागा महासौख्याः तथा 'हारविराइयवच्छा कडगतुडियथंभियभुया संगयकुंडलमट्ठगंडयलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमालामउली कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२०७]

दीप अनुक्रम [३२४]

दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा' इति प्रागुक्तासुरकुमारवन्नेतव्यम् ॥ **'ते णं तत्थ साणं साण'**मित्यादि, ते वैमानिका देवाः शक्रादयोऽच्युतपर्यवसानास्तत्र स्वस्वकल्पे स्वेषां स्वेषां विमानावासशतसहस्राणां स्वेषां स्वेषां सामानिकसहस्राणां स्वेषां स्वेषां त्रायस्त्रिंशकानां स्वेषां स्वेषां लोकपालानां स्वासां स्वासामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां स्वासां २ पर्षदां स्वेषां स्वेषामनीकानां स्वेषां स्वेषामनीकाधिपतीनां स्वेषां स्वेषामात्मरक्षदेवसहस्राणां, अन्येषां च बहूनां देवानां देवीनां च 'आहेवचं पोरेवचं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावचं कारेमाणा पालेमाणा महयाहयनट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंती'ति ॥ **'कहि णं भंते!'** इत्यादि, क्व भदन्त! सौधर्मकदेवानां विमानानि प्रज्ञप्तानि?, तथा क्व भदन्त! सौधर्मकल्पदेवाः परिवसन्ति?, भगवानाह–गौतम! 'जम्बुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिमसूरिगहणक्खत्तारारूवाणं बहूणि जोयणाइं बहूणि जोयणसयाइं बहूणि जोयणसहस्साइं बहूणि जोयणसयसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पइत्ता' इति प्राग्वत्, **'एत्थ णं'** 'अत्र' एतस्मिन् सार्द्धरज्जूपलक्षिते क्षेत्रे सौधर्मो नाम कल्पः प्रज्ञप्तः, स च प्राचीनापाचीनायत उदग्दक्षिणविस्तीर्णः अर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थितः मेरोर्दक्षिणतस्तस्य भावात्, 'अर्चिर्मालीं' अर्चींषि–किरणास्तेषां माला अर्चिर्माला सा अस्यास्तीति अर्चिर्मालीं सर्वतः किरणमालापरिवृत इत्यर्थः, एतदेवोपमया द्रढयति–इङ्गालराशिवर्णाभिः प्रभाभिः पद्मरागादिसम्बन्धिनीभिर्जाज्वल्यमानतया देदीप्यमानाङ्गाररराशिवर्णाभप्रभाणां अत्यन्तोत्कटतया साक्षादङ्गारराशिरिव ज्वलन्नवभासत इति भावः, असङ्ख्येया योजनकोटाकोटयः परिक्षेपेण सर्वालना रत्नमयोऽच्छः, यावत्करणात् 'सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे' इत्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

दिपरिग्रहः ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, 'तत्थ ण'मिति पूर्ववत्, सौधर्मकल्पे द्वात्रिंशद् विमानावासशतसहस्राणि भवन्तीत्याख्यातं मया शेषैश्च तीर्थकृद्भिः ॥ **'ते णं विमाणा'** इत्यादि, तानि विमानानि सर्वात्मना रत्नमयानि अच्छानि यावत्प्रतिरूपाणि, अत्रापि यावत्करणात् 'सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा' इत्यादिपरिग्रहः ॥ **'तेसि ण'**मित्यादि, तेषां विमानानां बहुमध्ये पञ्चावतंसका–विमानावतंसकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—**'असोगवडिंसए'** इति, पूर्वस्यां दिशि अशोकावतंसकः दक्षिणस्यां सप्तपर्णावतंसकः अपरस्यां चम्पकावतंसकः उत्तरस्यां चूतावतंसकः मध्ये तेषां सौधर्मावतंसकः ॥ **'ते णं वडेंसया'** इत्यादि, ते पञ्चाप्यवतंसकाः सर्वात्मना रत्नमया अच्छा यावत्प्रतिरूपाः, अत्रापि यावत्करणात् 'सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा' इत्यादिपरिग्रहः । **'एत्थ ण'**मित्यादि, 'अत्र' एतेषु द्वात्रिंशत्शतसहस्रसङ्ख्येषु विमानेषु बहवः सौधर्म्मकाः–सौधर्मा एव सौधर्म्मका देवाः परिवसन्ति 'महिड्ढिया जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा' अत्र यावत्करणात् 'महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा' इत्यादिप्रागुक्तपरिग्रहः, 'ते णं तत्थ साणं साणं विमाणाणं साणं साणं सामाणियाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं २ अणियाणं साणं २ अणियाहिवईणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं जाव विहरंति' सुगमं ॥ **'सक्के य एत्थ'** इत्यादि, अत्र–एतस्मिन् सौधर्मे कल्पे शक्रः–शकनात् शक्रो देवेन्द्रो देवराजः परिवसति, स च कथम्भूतः? इत्याह—'वज्रपाणिः' वज्रं पाणावस्य वज्रपाणिः, असुरपुरदारणात् पुरन्दरः, **'सयक्कऊ'** इति शतं क्रतूनां–प्रतिमानां–अभिग्रहविशेषाणां श्रमणोपासकपञ्चमप्रतिमारूपाणां **कार्त्तिक**श्रेष्ठिभवापेक्षया यस्य स शतक्रतुः, **'सहस्सक्खे'** इति सहस्रमक्ष्णां यस्यासौ सहस्राक्षः, इन्द्रस्य हि किल मन्त्रिणां पञ्च शतान्यालना सह परिपूर्णानि सन्ति तदीयानामक्ष्णामिन्द्रप्रयोजनव्यापृतत्वाद् इन्द्रसम्बन्धीनि विवक्षितानीति सहस्राक्षत्वं, **'मघवं'** इति मघा–म-

॥ २८७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०७]

दीप अनुक्रम [३२४]

हामेघास्ते यस्य वशे सन्ति स मघवान्, पाको नाम बलवान् रिपुः स शिष्यते–निराक्रियते येन स पाकशासनः, दक्षिणार्द्धलोकाधिपतिः मेरोर्दक्षिणतः सर्वस्यापि तदाभाव्यत्वात्, द्वात्रिंशद्विमानावासशतसहस्राधिपतिः, सौधर्मे कल्पे एतावतां विमानावासशतसहस्राणां भावात्, ऐरावणवाहनः, ऐरावणनाम्नो गजपतेस्तद्वाहनस्य भावात्, सुरेन्द्रः सौधर्मवासिनां सुराणां सर्वेषामपि तदाज्ञावर्त्तित्वात्, **'अरयंबरवत्थधरे'** इति अरजांसि–रजोरहितानि स्वच्छतया अम्बरवद् अम्बराणि वस्त्राणि धारयतीति अरजोऽम्बरवस्त्रधरः, **'आलइयमालमउडे'** इति माला च मुकुटश्च मालामुकुटं आलिङ्गितं–आविद्धं मालामुकुटं येन स आलिङ्गितमालामुकुटः, कृतकण्ठेमाल आविद्धशिरसिमुकुट इति भावः, **'नवहेमचारुचित्तचंचलकुण्डलविलिहिज्जमाणगंडे'** नवमिव–प्रत्यग्रमिव हेम यत्र ते नवहेमनी नवहेमभ्यां चारुचित्राभ्यां चञ्चलाभ्यां कुण्डलाभ्यां विलिख्यमानौ गण्डौ यस्य स तथा, 'महिड्ढिए जाव दसदिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे' अत्र यावत्करणात् 'महज्जुईए महाबले महायसे' इत्यादि पूर्वोक्तपरिग्रहः, सौधर्मे कल्पे सौधर्मावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां शक्रे सिंहासने **'से णं तत्थ बत्तीसाए'** इत्यादि स तत्र द्वात्रिंशतो विमानावासशतसहस्राणां चतुरशीतेः सामानिकसहस्राणां त्रयस्त्रिंशतस्त्रायस्त्रिंशकानां चतुर्णां लोकपालानामष्टानामग्रमहिषीणां सपरिवाराणां तिसृणां पर्षदां सप्तानामनीकानां सप्तानामनीकाधिपतीनां चतसृणां चतुरशीतीनामात्मरक्षदेवसहस्राणां अन्येषां च बहूनां सौधर्मकल्पवासिनां वैमानिकानां देवानां देवीनां च 'आहेवच्चं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ' अत्र यावत्करणात् 'पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्त'मित्यादि परिग्रहः ॥

सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरन्नो कति परिसाओ पन्नत्ताओ?, गोयमा! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—समिता चंडा जाता, अब्भिंतरिया समिया मज्झिमिया चंडा बाहिरिया जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ?, मज्झिमियाए परि० तहेव बाहिरियाए पुच्छा, गोयमा! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ मज्झिमियाए परिसाए चउदस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियाए परिसाए सोलस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तहा अब्भिंतरियाए परिसाए सत्त देवीसयाणि मज्झिमियाए छच्च देवीसयाणि बाहिरियाए पंच देवीसयाणि पन्नत्ताइं ॥ सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? एवं मज्झिमियाए बाहिरियाएवि, गोयमा! सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि पलिओवमाइं ठिती, पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए देवाणं तिन्नि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, देवीणं ठिती, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं तिन्नि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता मज्झिमियाए दुन्नि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो सो चेव जहा भवणवासीणं ॥ कहि णं भंते! ईसाणकाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? तहेव सव्वं जाव ईसाणे एत्थ देविंदे देव० जाव विहरति। ईसाणस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—समिता चंडा जाता, तहेव सव्वं णवरं अब्भिंतरियाए परिसाए दस देवसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ, बाहिरियाए चउद्दस देवसाहस्सीओ, देवीणं पुच्छा, अब्भिंतरियाए णव देवीसता पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए अट्ठ देवीसता पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए सत्त देविसता पण्णत्ता, देवाणं० ठिती पं०?, अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता मज्झिमियाए छ पलिओवमाइं बाहिरियाए पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। देवीणं पुच्छा, अब्भिंतरियाए साइरेगाइं पंच पलिओवमाइं मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए तिण्णि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो तहेव भाणियव्वो ॥ सणंकुमाराणं पुच्छा तहेव ठाणपदगमेणं जाव सणंकुमारस्स तओ परिसाओ समिताई तहेव, णवरिं अब्भिंतरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, अब्भिंतरियाए परिसाए देवीणं ठिती अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, अट्ठो सो चेव ॥ एवं माहिंदस्सवि तहेव तओ परिसाओ णवरिं अब्भिंतरियाए परिसाए छद्देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमियाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरियाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, ठिती देवाणं अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं सत्त य पलिओ० ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए पंच सागरोवमाइं छच्च पलिओवमाइं, बाहिरियाए परिसाए अद्धपंचमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं ठिती पं० तहेव सव्वेसिं इंदाण ठाणपयगमेणं विमाणाणि वुच्चा ततो पच्छा परिसाओ पत्तेयं २ वुच्चति ॥ बंभस्सवि तओ परिसाओ पण्णत्ताओ अब्भिंतरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ मज्झिमियाए छ देवसाहस्सीओ बाहिरियाए अट्ठ देवसाहस्सीओ, देवाणं ठिती अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धणवमाइं सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं मज्झिमियाए परिसाए अद्धनवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं बाहिरियाए अद्धनवमाइं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं अट्ठो सो चेव ॥ लंतगस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भिंतरियाए परिसाए दो चेव साहस्सीओ मज्झिमियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियाए छद्देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, ठिती भाणियव्वा—अब्भिंतरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं छच्च पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता बाहिरियाए परिसाए बारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ॥ महासुक्कस्सवि जाव तओ परिसाओ जाव अब्भिंतरियाए एगं देवसहस्सं मज्झिमियाए दो देवसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०८]

दीप अनुक्रम [३२५]

हस्सीओ पन्नत्ताओ बाहिरियाए चत्तारि देवसाहस्सीओ, अब्भिंतरियाए परिसाए अद्धसोलस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं मज्झिमियाए अद्धसोलस सागरोवमाइं चत्तारि पलिओवमाइं बाहिरियाए अद्धसोलस सागरोवमाइं तिण्णि पलिओवमाइं अट्ठो सो चेव ॥ सहस्सारे पुच्छा जाव अब्भिंतरियाए परिसाए पंच देवसया मज्झिमियाए परि० एगा देवसाहस्सी बाहिरियाए दो देवसाहस्सीओ पन्नत्ता ठिती अब्भिंतरियाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता एवं मज्झिमियाए अद्धट्ठारस छप्पलिओवमाइं बाहिरियाए अद्धट्ठारस सागरोवमाइं पंच पलिओवमाइं अट्ठो सो चेव ॥ आणयपाणयस्सवि पुच्छा जाव तओ परिसाओ णवरि अब्भिंतरियाए अट्ठाइज्जा देवसया मज्झिमियाए पंच देवसया बाहिरियाए एगा देवसाहस्सी ठिती अब्भिंतरियाए एगूणवीस सागरोवमाइं पंच य पलिओवमाइं एवं मज्झि० एगोणवीस सागरोवमाइं चत्तारि य पलिओवमाइं बाहिरियाए परिसाए एगूणवीसं सागरोवमाइं तिण्णि य पलिओवमाइं ठिती अट्ठो सो चेव ॥ कहि णं भंते! आरणअच्चुयाणं देवाणं तहेव अच्चुए सपरिवारे जाव विहरति, अच्चुयस्स णं देविंदस्स तओ परिसाओ पण्णत्ताओ अब्भिंतरपरि० देवाणं पणवीसं सयं मज्झिम० अट्ठाइज्जा सया बाहिरय० पंचसया अब्भिंतरियाए एक्कवीसं सागरोवमा सत्त य पलिओवमाइं मज्झि० एक्कवीससागर० छप्पलि० बाहिर० एकवीसं सागरो०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच य पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ॥ कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति? जहेव ठाणपए तहेव, एवं मज्झिमगेवेज्जा उवरिमगेविज्जगा अणुत्तरा य जाव अहमिंदा नामं ते देवा पण्णत्ता समणाउसो! ॥ (सू० २०८) ॥ पढमो वेमाणियउद्देसओ ॥

'सक्कस्स णं भंते!' इत्यादि, शक्रस्य भदन्त! देवेन्द्रस्य देवराजस्य कति पर्षदः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! तिस्रः पर्षदः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा– शमिका चण्डा जाता, अभ्यन्तरिका शमिका मध्यमिका चण्डा बाह्या जाता ॥ **'सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरियाए'** इत्यादि प्रश्नषट्कं सुप्रतीतं, भगवानाह–गौतम! शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि द्वादश देवसहस्राणि प्रज्ञप्तानि मध्यमिकायां चतुर्दश देवसहस्राणि बाह्यायां षोडश देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि सप्त देवीशतानि मध्यमिकायां षड् देवीशतानि बाह्यायां पञ्च देवीशतानि ॥ **'सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरन्नो अब्भिंतरियाए परिसाए देवाणं केवइ काल'** मित्यादि प्रश्नषट्कं सुप्रतीतं, भगवानाह–गौतम! शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्याभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्च पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, मध्यमिकायां चत्वारि पल्योपमानि, बाह्यायां पर्षदि त्रीणि पल्योपमानि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता, मध्यमिकायां द्वे पल्योपमे, बाह्यायामेकं पल्योपमं ॥ 'से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चति सक्कस्स णं देवेंदस्स देवरन्नो तओ परिसाओ' इत्यादि सकलमपि सूत्रं चमरवक्तव्यतायामिव भावनीयम् ॥ **'कहि णं भंते! ईसाणगदेवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! ईसाणगदेवा परिवसंति'** इत्यादि सर्वं सौधर्मवद्वक्तव्यं नवरं 'मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण'–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा 'अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं' तथा पञ्चावतंसकाः–पूर्वस्यामङ्कावतंसको दक्षिणस्यां स्फटिकावतंसकः अपरस्यां रजतावतंसकः उत्तरस्यां जातरूपावतंसकः मध्ये ईशानावतंसकः, तथा शूलपाणिर्वृषभवाहनः, तथाऽशीतेः सामानिकसहस्राणां चतसृणामशीतीनामात्मरक्षदेवसहस्राणां, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि दश देवसहस्राणि मध्यमिकायां द्वादश बाह्यायां चतुर्दश, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि नव देवीशतानि मध्यमिकायामष्टौ देवीशतानि बाह्यायां सप्त देवीशतानि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां सप्त पल्योपमानि मध्यमिकायां षट् बाह्यायां पञ्च, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवीनां पञ्च पल्योपमानि मध्यमिकायां चत्वारि बाह्यायां त्रीणि, शेषं सर्वं शक्रवत् ॥ 'कहि णं भंते! सणंकुमाराणं देवाणं विमाणा पन्नत्ता?, कहि णं भंते! सणंकुमारा देवा परिवसंति?' इति पाठसिद्धं, भगवानाह–गौतम! 'सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूईओ जोयणकोडीओ बहूईओ जोयणकोडाकोडिओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं सणंकुमारे नामं कप्पे पन्नत्ते' इति पाठसिद्धं, नवरं **'सपक्खं सपडिदिसि'** समानाः पक्षाः–पूर्वापरदक्षिणोत्तररूपाः पार्श्वा यस्मिन् दूरमुत्पतने तत् सपक्षं 'समानस्य धर्मादिषु चे'ति समानस्य सभावः, तथा समानाः प्रतिदिशो–विदिशो यत्र तत् सप्रतिदिक् । 'पाईणपडीणायते उईणदाहिणविच्छिण्णे' इत्यादि सौधर्मकल्पवन्निरवशेषं वक्तव्यं, नवरं 'बारस विमाणावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खाय'मिति वक्तव्यं, तथा पञ्चानामवतंसकानां मध्ये चत्वारस्त एवाशोकावतंसकादयो मध्ये सनत्कुमारावतंसकः, अग्रमहिष्यो न वक्तव्यास्तत्र परिगृहीतदेवीनामसम्भवात्, तथा 'सणंकुमारे कप्पे सणंकुमारवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सणंकुमारंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बारसण्हं विमाणावाससयसहस्साणं बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीणं' तथा 'चउण्हं बावत्तराणं आयरक्खदेवसा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्सीणं' तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षद्यष्टौ देवसहस्राणि मध्यमिकायां दश बाह्यायां द्वादश, देवीपर्षदो न वक्तव्याः, तथाऽभ्यन्तरिकायाः पर्षदि देवानामर्द्धपञ्चमानि सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि स्थितिः मध्यमिकायामर्द्धपञ्चमानि सागरोपमाणि चत्वारि पल्योपमानि बाह्यायामर्द्धपञ्चमानि सागरोपमाणि त्रीणि पल्योपमानि, शेषं शक्रवत् ॥ "कहि णं भंते! माहिंदगदेवाणं विमाणा पन्नत्ता?, कहि णं भंते! माहिंदगदेवा परिवसंति?, गोयमा! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं माहिंदे कप्पे पण्णत्ते' इति पूर्ववत्, 'पाईणपडीणायए उईणदाहिणविच्छिन्ने' इत्यादि सर्वं शेषं सनत्कुमारवन्निरवशेषं वक्तव्यं, नवरमत्राष्टौ विमानावासशतसहस्राणि, अवतंसकाश्चत्वार ईशानवत्, तद्यथा–अङ्कावतंसकः स्फटिकावतंसको रजतावतंसको जातरूपावतंसको मध्ये माहेन्द्रावतंसकः। तथाऽऽधिपत्यचिन्तायाम् 'अट्ठण्हं विमाणावाससयसहस्साणं सत्तरीए सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं सत्तरीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं' इति, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि षड् देवसहस्राणि मध्यमिकायामष्टौ देवसहस्राणि बाह्यायां दश अभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानामर्द्धपञ्चमानि सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि, शेषं सर्वं यथा सनत्कुमारस्य ॥ 'कहि णं भंते! बंभलोगदेवाणं विमाणा पन्नत्ता? कहि णं भंते! बंभलोगदेवा परिवसंति?, गोयमा! सणंकुमारमाहिंदाणं कप्पा उप्पिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं बंभलोगे नामं कप्पे पन्नत्ते पाईणपडिणायए उदीणदाहिणविच्छिन्ने पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए अचिमाली इंगालरासिवण्णाभे' इति पूर्ववद्भावनीयं शेषं यथा सनत्कुमारस्य तथा वक्तव्यं, नवरमत्र चत्वारि विमानावासशतसहस्राणि, अवतंसका अपि चत्वारस्तथैव, तद्यथा–अशोकावतंसकः सप्तपर्णावतंसकः चम्पकावतंसकः चूतावतंसकः मध्ये ब्रह्मलोकावतंसकः, आधिपत्यचिन्तायामपि 'चउण्हं विमाणावाससयसहस्साणं सट्ठीए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य सट्ठीणमायर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खदेवसाहस्सीण'मिति, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि चत्वारि देवसहस्राणि मध्यमिकायां षड् देवसहस्राणि बाह्यायामष्टौ देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानामर्द्धनवमानि सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि स्थितिः मध्यमिकायां पर्षदि अर्द्धनवमानि सागरोपमाणि चत्वारि पल्योपमानि बाह्यायामर्द्धनवमानि सागरोपमाणि त्रीणि च पल्योपमानि, शेषं यथा सनत्कुमारस्य ॥ 'कहि णं भंते! लंतगलोगदेवाणं विमाणा पन्नत्ता ? कहि णं भंते! लंतगदेवा परिवसंति ?, गो० ! बंभलोयस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं लंतए नामं कप्पे पन्नत्ते पाईणपडिणायते उदीणदाहिणविच्छिण्णे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए अचिमाली' इत्यादि ब्रह्मलोकवत् नवरमत्र पञ्चाशद्विमानावाससहस्राणि वक्तव्यानि, अवतंसकाश्चत्वार ईशानवत्, तद्यथा—अङ्कावतंसकः स्फटिकावतंसकः रजतावतंसकः जातरूपावतंसकः मध्ये लन्तकावतंसकः, आधिपत्यचिन्तायां 'पण्णासाए विमाणावाससयसहस्साणं पण्णासाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्ह य पण्णासाणमायरक्खदेवसाहस्सीणं' तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि द्वे देवसहस्रे मध्यमिकायां चत्वारि बाह्यायां षट्, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां द्वादश सागरोपमाणि सप्त च पल्योपमानि स्थितिः मध्यमिकायां द्वादश सागरोपमाणि षट् च पल्योपमानि बाह्यायां द्वादश सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि ॥ 'कहि णं भंते! महासुक्कगदेवाणं विमाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते! महासुक्कगदेवा परिवसन्ति ?, गोयमा! लंतगकप्पस्स उवरिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं महासुक्कनामे कप्पे पन्नत्ते पाईणपडिणायते उदीणदाहिणविच्छिण्णे पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिते' इत्यादि सर्वं ब्रह्मलोकवत्, नवरमत्र चत्वारिंशद् विमानावाससहस्राणि वक्तव्यानि, अवतंसकाश्चत्वारस्तथैव, तद्यथा—अशोकावतंसकः सप्तपर्णावतंसकः चम्पकावतंसकः चूतावतंसकः मध्ये शुक्रावतंसकः, आधिपत्यचिन्तायां 'चत्तालीसाए विमाणावाससहस्साणं चत्तालीसाए सामाणियसाहस्सीणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०८]

दीप अनुक्रम [३२५]

चउण्हं चत्तालीसाणमायरक्खदेवसाहस्सीण'मिति, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि एकं देवसहस्रं मध्यमिकायां द्वे देवसहस्रे बाह्यायां चत्वारि देवसहस्राणि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि अर्द्धषोडश सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि स्थितिः मध्यमिकायां षोडश सागरोपमाणि चत्वारि पल्योपमानि बाह्यायामर्द्धषोडश सागरोपमाणि त्रीणि पल्योपमानि शेषं पूर्ववत् ॥ 'कहि णं भंते! सहस्सारदेवाणं विमाणा पण्णत्ता? कहि णं भंते! सहस्सारदेवा परिवसंति?, गोयमा! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं सहस्सारे नामं कप्पे पन्नत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिन्ने पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए' इत्यादि ब्रह्मलोकवत् नवरमत्र षड् विमानावाससहस्राणि वक्तव्यानि, अवतंसका एवम्–अङ्कावतंसकः स्फटिकावतंसकः रजतावतंसकः जातरूपावतंसकः मध्ये सहस्रारावतंसकः, आधिपत्यचिन्तायां 'छण्हं विमाणावाससहस्साणं तीसाए सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं तीसाणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं' तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्च देवशतानि मध्यमिकायामेकं देवसहस्रं बाह्यायां द्वे देवसहस्रे, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानां सार्द्धाष्टादशसागरोपमाणि सप्त च पल्योपमानि मध्यमिकायां पर्षदि अष्टादश सागरोपमाणि षट् च पल्योपमानि बाह्यायामर्द्धाष्टादशसागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि शेषं पूर्ववत् ॥ 'कहि णं भंते! आणयपाणयनामे दुवे कप्पा पण्णत्ता? कहि णं भंते! आणयपाणयगा देवा परिवसंति?, गोयमा! सहस्सारकप्पस्स उप्पिं सपक्खिं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं आणयपाणयनाम दुवे कप्पा पन्नत्ता पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिया अच्चिमाली इंगालरासिप्पभा' इत्यादि सनत्कुमारवत्, नवरं 'तत्थ णं आणयपाणयदेवाणं चत्तारि विमाणावाससया भवंतीति मक्खाय'मिति वक्तव्यं, अवतंसकाः अशोकावतंसकः सप्तपर्णावतंसकः चम्पकावतंसकः चूतावतंसकः मध्ये प्राणतावतंसकः, आधिपत्यचिन्तायां 'च-

॥ ३९२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उण्हं विमाणावाससयाणं वीसाए सामाणियसाहस्सीणं असीए आयरक्खदेवसाहस्सीणं' तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि अर्द्धतृतीयानि देवशतानि मध्यमिकायां पञ्च देवशतानि बाह्यायामेकं देवसहस्रं, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानामर्द्धैकोनविंशतिः सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि स्थितिः मध्यमिकायामर्द्धैकोनविंशतिः सागरोपमाणि चत्वारि च पल्योपमानि बाह्यायामर्द्धैकोनविंशतिः सागरोपमाणि त्रीणि च पल्योपमानि शेषं पूर्ववत् ॥ 'कहि णं भंते! आरणअच्चुयानामं दुवे कप्पा पण्णत्ता? कहि णं भंते! आरणअच्चुयगा देवा परिवसंति?, गोयमा! आणयपाणयाणं कप्पाणं उवरिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उप्पइत्ता एत्थ णं आरणअच्चुयानामं दुवे कप्पा पन्नत्ता पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिण्णा अद्धचंदसंठाणसंठिया अच्चिमाली इंगालरासिवण्णाभा' इत्यादि पूर्ववत्, नवरमर्द्धचन्द्रसंस्थानसंस्थितत्वं प्रत्येकापेक्षया मेरोर्दक्षिणोत्तरप्रविभागेनावस्थानात्, समुदितौ तु परिपूर्णचन्द्रसंस्थानौ द्रष्टव्यौ, तथा त्रीणि विमानावासशतानि वक्तव्यानि, अवतंसका इमे–अशोकावतंसकः स्फटिकावतंसकः रजतावतंसकः जातरूपावतंसकः मध्येऽच्युतावतंसकः, आधिपत्यचिन्तायां 'तिण्हं विमाणावाससयाणं दसण्हं सामाणियसाहस्सीणं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीणं' तथा चात्र विमानावाससङ्ग्रहणिगाथे—"बत्तीस १ ट्ठावीसा २ बारस ३ अट्ठ ४ चउरो सयसहस्सा ५ । पन्ना ६ चत्तालीसा ७ छच्च सहस्सा सहस्सारे ८ ॥ १ ॥ आणयपाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि । सत्त विमाणसयाइं चउसुवि एएसु कप्पेसु ॥ २ ॥" सामानिकसङ्ग्रहणिगाथा—"चउरासीई असीई बावत्तरि सत्तरी य सट्ठी य । पण्णा चत्तालीसा तीसा वीसा दस सहस्सा ॥ १ ॥" तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि पञ्चविंशं देवशतं मध्यमिकायामर्द्धतृतीयानि देवशतानि बाह्यायां पञ्च देवशतानि, तथाऽभ्यन्तरिकायां पर्षदि देवानामेकविंशतिः सागरोपमाणि सप्त च पल्योपमानि मध्यमिकायां पर्षदि एकविंशतिः सागरोपमाणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट् च पल्योपमानि बाह्यायामेकविंशति: सागरोपमाणि पञ्च पल्योपमानि, शेषं पूर्ववत् ॥ 'कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं विमाणा पन्नत्ता? कहि णं भंते! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?, गोयमा! आरणअच्चुयाणं कप्पाणं उवरिं सपक्खं सपडिदिसिं बहूइं जोयणाइं जाव उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ हेट्ठिमगेवेज्जविमाणा पण्णत्ता पाईणपडीणायया उदीणदाहिणविच्छिण्णा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली भासरासिवण्णाभा असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेण सव्वत्थरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, तत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं एक्कारसुत्तरे गेविज्जविमाणावाससए पन्नत्ते, ते णं विमाणा अच्छा जाव पडिरूवा, तत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति' पाठसिद्धं, 'सव्वे समड्ढिया' इत्यादि सर्वे–निरवशेषाः समा ऋद्धिर्येषां ते समर्द्धिकाः, एवं सर्वे समद्युतिकाः सर्वे समबलाः सर्वे समयशसः सर्वे समानुभागाः सर्वे समसौख्याः, अनिन्द्रा–न विद्यते इन्द्रः–अधिपतिर्येषां ते अनिन्द्राः, अप्रेषा–न विद्यते प्रेषा–प्रेष्यत्वं येषां ते अप्रेषाः, न विद्यते पुरोहितः–शान्तिकर्मकारी येषामशान्तेरभावात्ते अपुरोहिताः, किंरूपाः पुनस्ते? इत्याह–अहमिन्द्रा नाम ते देवगणाः प्रज्ञप्ताः हे श्रमण! हे आयुष्मन्! ॥ एवं मध्यमग्रैवेयकसूत्रमुपरितनग्रैवेयकसूत्रमपि भावनीयं, नवरमियं विमानसङ्ख्यासङ्ग्रहणिः— "एक्कासुत्तरं हिट्ठिमेसु १११ सत्तुत्तरं च मज्झिमए १०७। सयमेगं उवरिमए १०० पंचेव अणुत्तरविमाणा ५ ॥ १ ॥" 'कहि णं भंते! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं विमाणा पन्नत्ता? कहि णं भंते! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसंति?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिमसूरगहगणनक्खत्ततारारूवाणं बहूणि जोयणाइं बहूणि जोयणसयाणि जाव बहूईओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदबंभलोगलंतगसुक्कसहस्सारआणयपाणयआरणअच्चुयकप्पे तिन्नि

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जगविमाणावाससए वीइवइत्ता तेण परं दूरं गया नीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पंचदिसि पंच अणुत्तरा महइ-महालया विमाणा पन्नत्ता, तंजहा–विजये वैजयंते जयंते अपराजिते सव्वट्ठसिद्धे' इदं पाठसिद्धं, नवरं 'तिन्नि अट्ठारसुत्तरे' इति त्रीणि अष्टादशोत्तराणि विमानावासशतानि, तत्रैकादशोत्तरं शतमधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटेषु सप्तोत्तरं शतं मध्यमग्रैवेयकेषु परिपूर्णं शत-मुपरितनग्रैवेयकप्रस्तटेषु, सर्वसङ्ख्यया भवन्ति त्रीणि अष्टादशोत्तराणि, 'नीरजांसि' आगन्तुकरजोविरहात् 'निर्मलानि' स्वाभाविक-मलाभावात् 'वितिमिराणि' रत्नप्रभावितानप्रभावेन सर्वासु दिक्षु विदिक्षु चापहततमस्काण्डत्वात् 'विशुद्धानि' क्वचिदपि कलङ्कलेश-स्याप्यसम्भवात्, 'पंचदिसि' इति पञ्च पूर्वदक्षिणापरोत्तरमध्यमरूपा दिशः समाहृताः पञ्चदिक् तस्मिन्, तत्र पूर्वस्यां दिशि विजयं दक्षिणस्यां वैजयन्तं पश्चिमायां जयन्तं उत्तरस्यामपराजितं मध्ये सर्वार्थसिद्धम्, 'ते णं विमाणा' इत्यादि पूर्ववत् यावत् 'अहमिंदा नामं ते देवगणा पन्नत्ता समणाउसो!' ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां चतुर्थप्रतिपत्तौ वैमानिकाधिकारे प्रथमो वैमानिकोद्देशकः समाप्तः ॥

सम्प्रति द्वितीयो वक्तव्यस्तत्रेदं सूत्रम्—

सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता?, गोयमा! घणोदहिपइट्ठिया। सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु विमाणपुढवी किंपइट्ठिया पण्णत्ता?, गोयमा! घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता। बंभलोए णं भंते! कप्पे विमाणपुढवीणं पुच्छा, घणवायपइट्ठिया पण्णत्ता। लंतए णं भंते! पुच्छा, गोयमा! तदुभयपइट्ठिया। महासुक्कसहस्सारेसुवि तदुभयपइट्ठिया। आणय जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय-प्रतिपत्तौ वैमानिक-उद्देशक: (१) परिसमाप्त: अथ वैमानिक-उद्देशक: (२) आरब्ध:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

अच्चुएसु णं भंते! कप्पेसु पुच्छा, ओवासंतरपइट्ठिया । गेविज्जविमाणपुढवीणं पुच्छा, गोयमा! ओवासंतरपइट्ठिया । अणुत्तरोववाइयपुच्छा ओवासंतरपइट्ठिया ॥ (सू० २०९)

'सोहम्मीसाणेसु णं भंते' इत्यादि, सौधर्मेशानयोः, सूत्रे द्विवचनेऽपि बहुवचनं प्राकृतत्वात्, उक्तञ्च—"बहुवयणेण दुवयणं छट्ठिविभत्तीए भन्नइ चउत्थी । जह हत्था तह पाया नमोऽत्थु देवाहिदेवाणं ॥ १ ॥" [बहुवचनेन द्विवचनं षष्ठीविभक्त्या भण्यते चतुर्थी । यथा हस्तौ तथा पादौ नमोऽस्तु देवाधिदेवेभ्यः ॥ १ ॥] भदन्त! कल्पयोर्विमानपृथिवी 'किंप्रतिष्ठिता' कस्मिन् प्रतिष्ठिता –किमाश्रया किमाधारेत्यर्थः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! घनोदधिप्रतिष्ठिता प्रज्ञप्ता, एवं सनत्कुमारमाहेन्द्रेषु घनवातप्रतिष्ठिता, ब्रह्मलोकेऽपि घनवातप्रतिष्ठिता, लान्तके 'तदुभयप्रतिष्ठिता' घनोदधिघनवातप्रतिष्ठिता, महाशुक्रसहस्रारयोरपि तदुभयप्रतिष्ठिता, आनतप्राणतारणाच्युतेष्ववकाशान्तरप्रतिष्ठिता–आकाशप्रतिष्ठिता, एवं ग्रैवेयकविमानपृथिवी अनुत्तरविमानपृथिवी च, उक्तञ्च—"घणोदहिपइट्ठाणा सुरभवणा दोसु होंति कप्पेसु । तिसु वायपइट्ठाणा तदुभयपइट्ठिया तीसु ॥ १ ॥ तेण परं उवरिमगा आगासंतरपइट्ठिया सव्वे । एस पइट्ठाणविही उड्ढं लोए विमाणाणं ॥ २ ॥" अधुना पृथिवीबाहल्यप्रतिपादनार्थमाह—

सोहम्मीसाणकप्पेसु विमाणपुढवी केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ता?, गोयमा! सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता, एवं पुच्छा, सणंकुमारमाहिंदेसु छव्वीसं जोयणसयाइं । बंभलंतए पंचवीसं । महासुक्कसहस्सारेसु चउवीसं । आणयपाणयारणाच्चुएसु तेवीसं सयाइं । गेविज्जविमाणपुढवी बावीसं । अणुत्तरविमाणपुढवी एक्कवीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं ॥ (सू० २१०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केवइयं उहुं उच्चत्तेणं?, गोयमा! पंच जोयणसयाइं उहुं उच्चत्तेणं। सणंकुमारमाहिंदेसु छजोयणसयाइं, बंभलंतएसु सत्त, महासुक्कसहस्सारेसु अट्ठ, आणयपाणएसु ४ नव गेवेज्जविमाणाणं भंते! केवइयं उहुं उ०, दस जोयणसयाइं, अणुत्तरविमाणाणं एक्कारस जोयणसयाइं उहुं उच्चत्तेणं ॥ (सू० २११) सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा किंसंठिया पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–आवलियापविट्ठा बाहिरा य, तत्थ णं जे ते आवलियापविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा–वट्टा तंसा चउरंसा, तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णं णाणासंठिया पण्णत्ता, एवं जाव गेविज्जविमाणा, अणुत्तरोववाइयविमाणा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–वट्टे य तंसा य ॥ (सू० २१२) सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केवतियं आयामविक्खंभेणं केवतियं परिक्खेवेणं पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, जहा णरगा तहा जाव अणुत्तरोववातिया संखेज्जवित्थडा य असंखेज्जवित्थडा य, तत्थ णं जे से संखेज्जवित्थडे से जंबुद्दीवप्पमाणे असंखेज्जवित्थडा असंखेज्जाइं जोयणसयाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! विमाणा कतिवण्णा पन्नत्ता?, गोयमा! पंचवण्णा पण्णत्ता, तंजहा—किण्हा नीला लोहिया हालिद्दा सुक्किल्ला, सणंकुमारमाहिंदेसु चउवण्णा नीला जाव सुक्किल्ला, बंभलोगलंतएसुवि तिवण्णा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२१०--२१५]

दीप अनुक्रम [३२७--३३२]

लोहिया जाव सुक्किल्ला, महासुक्कसहस्सारेसु दुवण्णा—हालिद्दा य सुक्किल्ला य, आणयपाणता-रणच्चुएसु सुक्किल्ला, गेविज्जविमाणा सुक्किल्ला, अणुत्तरोववातियविमाणा परमसुक्किल्ला वण्णेणं पण्णत्ता ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केरिसया पभाए पण्णत्ता?, गोयमा! णिच्चालोआ णिच्चुज्जोया सयं पभाए पण्णत्ता जाव अणुत्तरोववातियविमाणा णिच्चालोआ णिच्चुज्जोता सयं पभाए पण्णत्ता॥ सोधम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु विमाणा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?, गोयमा! से जहा नामए—कोट्ठपुडाण वा जाव गंधेणं पण्णत्ता, एवं जाव एत्तो इट्ठयरागा चेव जाव अणुत्तरविमाणा ॥ सोहम्मीसाणेसु विमाणा केरिसया फासेणं पण्णत्ता?, से जहा णामए—आइणेति वा रूतेति वा सव्वो फासो भाणियव्वो जाव अणुत्तरोववातियविमाणा ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! (कप्पेसु) विमाणा केमहालिया पण्णत्ता?, गोयमा! अयण्णं जंबुद्दीवे २ सव्वदीवसमुद्दाणं सो चेव गमो जाव छम्मासे वीइवएज्जा जाव अत्थेगतिया विमाणावासा नो वीइवएज्जा जाव अणुत्तरोववातियविमाणा अत्थेगतियं विमाणं वीतिवएज्जा अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! विमाणा किंमया पण्णत्ता?, गोयमा! सव्वरयणामया पण्णत्ता, तत्थ णं बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उवचयंति, सासया णं ते विमाणा दव्वट्ठयाए जाव फासपज्जवेहिं असासता जाव अणुत्तरोववातिया वि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

माणा ॥ सोहम्मीसाणेसु णं देवा कओहिंतो उववज्जंति?, उववातो नेयव्वो जहा वक्कंतीए तिरियमणुएसु पंचेंदिएसु संमुच्छिमवज्जिएसु, उववाओ वक्कंतीगमेणं जाव अणुत्तरो० ॥ सोहम्मीसाणेसु देवा एगसमएणं केवतिया उववज्जंति?, गोयमा! जहन्नेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव सहस्सारे, आणतादी गेवेज्जा अणुत्तरा य एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा उववज्जंति ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! देवा समए २ अवहीरमाणा २ केवतिएणं कालेणं अवहिया सिया?, गोयमा! तेणं असंखेज्जा समए २ अवहीरमाणा २ असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणीहिं अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया जाव सहस्सारो, आणतादिगेसु चउसुवि, गेवेज्जेसु अणुत्तरेसु य समए समए जाव केवतिकालेणं अवहिया सिया?, गोयमा! ते णं असंखेज्जा समए २ अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागमेत्तेणं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवाणं केमहालया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा सरीरा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागो उक्कोसेणं सत्त रयणीओ, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जहण्णेणं अंगुलस संखेज्जतिभागो उक्कोसेणं जोयणसतसहस्सं, एवं एक्केक्का ओसारेत्ताणं जाव अणुत्तराणं एक्का रयणी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२१०--२१५]

दीप अनुक्रम [३२७--३३२]

गेविज्जणुत्तराणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे उत्तरवेउव्विया नत्थि ॥ (सू० २१३) सोहम्मीसाणेसु णं देवाणं सरीरगा किंसंघयणी पण्णत्ता?, गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी पण्णत्ता?, नेवट्ठि नेव छिरा नवि ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघातत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववातिया ॥ सोहम्मीसाणेसु देवाणं सरीरगा किंसंठिता पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा सरीरा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य, तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते समचउरंससंठाणसंठिता पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव अच्चुओ, अवेउव्विया गेविज्जणुत्तरा, भवधारणिज्जा समचउरंससंठाणसंठिता उत्तरवेउव्विया णत्थि ॥ (सू० २१४) सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसया वण्णेणं पन्नत्ता?, गोयमा! कणगत्तयरत्ताभा वण्णेणं पण्णत्ता । सणंकुमारमाहिंदेसु णं पउमपम्हगोरा वण्णेणं पण्णत्ता । बंभलोगे णं भंते! गोयमा! अल्लमधुगवण्णाभा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव गेवेज्जा, अणुत्तरोववातिया परमसुक्किल्ला वण्णेणं पन्नत्ता ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवाणं सरीरगा केरिसया गंधेणं पण्णत्ता?, गोयमा! से जहा णामए—कोट्ठपुडाण वा तदेव सव्वं जाव मणामतरता चेव गंधेणं पण्णत्ता जाव अणुत्तरोववाइया ॥ सोहम्मीसाणेसु देवाणं सरीरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता?, गोयमा! थिरमउयणिद्धसुकुमालच्छविफासेणं पण्णत्ता, एवं जाव अ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२१०--२१५]

दीप अनुक्रम [३२७--३३२]

णुत्तरोववातिया ॥ सोहम्मीसाणदेवाणं केरिसगा पुग्गला उस्सासत्ताए परिणमंति?, गोयमा! जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं उस्सासत्ताए परिणमंति जाव अणुत्तरोववातिया, एवं आहारत्ताएवि जाव अणुत्तरोववातिया ॥ सोहम्मीसाणदेवाणं कति लेस्साओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता । सणंकुमारमाहिंदेसु एगा पम्हलेस्सा, एवं बंभलोगेवि पम्हा, सेसेसु एक्का सुक्कलेस्सा, अणुत्तरोववातियाणं एक्का परमसुक्कलेस्सा ॥ सोहम्मीसाणदेवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी?, तिण्णिवि, जाव अंतिमगेवेज्जा देवा सम्मदिट्ठीवि मिच्छादिट्ठीवि सम्मामिच्छादिट्ठीवि, अणुत्तरोववातिया सम्मदिट्ठी णो मिच्छादिट्ठी णो सम्मामिच्छादिट्ठी ॥ सोहम्मीसाणा किं णाणी अण्णाणी?, गोयमा! दोवि, तिण्णि णाणा तिण्णि अण्णाणा णियमा जाव गेवेज्जा, अणुत्तरोववातिया नाणी नो अण्णाणी तिण्णि णाणा णियमा । तिविधे जोगे दुविहे उवयोगे सव्वेसिं जाव अणुत्तरा ॥ (सू० २१५)

'सोहम्मीसाणेसु ण'मित्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानपृथ्वी 'कियत्' किंप्रमाणा बाहल्येन प्रज्ञप्ता?, गौतम! सप्तविंशतियोंजनशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्ता, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः षड्विंशतियोंजनशतानि वक्तव्यानि, ब्रह्मलोकलान्तकयोः पञ्चविंशतिः, महाशुक्रसहस्रारयोश्चतुर्विंशतिः, आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु त्रयोविंशतिः, ग्रैवेयकेषु द्वाविंशतिः, अनुत्तरविमानेष्वेकविंशतियोंजनशतानि ॥ सम्प्रति विमानानामुच्चैस्त्वपरिमाणं प्रतिपिपादयिषुराह—'सोहम्मीसाणेसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णं भंते!' इत्यादि, इह विमानं महान्नगरकल्पं तस्य चोपरि बबखण्डप्राकाराः प्रासादादयः, तत्र पूर्वेण सूत्रकदम्बकेन विमानपृथिवीबाहल्यमुक्तं, अनेन प्रासादापेक्षया उच्चत्वमुच्यत इति गर्भः, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि कियद् ऊर्ध्वमुच्चैस्त्वेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चैस्त्वेन प्रज्ञप्तानि, मूलप्रासादादीनां तत्र पञ्चयोजनशतोच्छ्रयप्रमाणत्वात्, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः षड् योजनशतानि वक्तव्यानि, ब्रह्मलोकलान्तकयोः सप्त योजनशतानि, महाशुक्रसहस्रारयोरष्टौ योजनशतानि, आनतप्राणतारणाच्युतेषु कल्पेषु नव योजनशतानि, ग्रैवेयकेषु दश योजनशतानि, अनुत्तरेष्वेकादश योजनशतानि, सर्वत्रापि विमानानि बाहल्योच्चत्वमीलनेन द्वात्रिंशद्योजनशतानि, उपर्युपरि बाह्यमु(ल्यहानिवदु)च्चैस्त्वस्य वृद्धिभावात्, उक्तञ्च—"सत्तावीससयाइं आदिमकप्पेसु पुढविबाहल्लं। एक्केकहाणि सेसे दुदुगे य दुगे चउक्क य ॥ १ ॥ पंचसउच्चत्तेणं आदिमकप्पेसु होंति य विमाणा। एक्केक्कवुड्ढि सेसे दु दुगे य दुगे चउक्के य ॥२॥ गेवेज्जणुत्तरेसु एसेव कमो उ हाणिवुड्ढीए। एक्केकंमि विमाणा दोन्निवि मिलिया उ बत्तीसं ॥ ३ ॥" [सप्तविंशतिः शतानि आद्यकल्पयोः पृथ्वीबाहल्यं। एकैकहानिः शेषेषु द्वयोर्द्वयोर्द्वयोश्चतुष्के च ॥ १ ॥ ऊर्ध्वोच्चत्वेन पञ्च शतानि आद्यकल्पयोर्भवन्ति विमानानि। एकैकवृद्धिः शेषेषु द्वयोर्द्वयोश्च द्विके चतुष्के च ॥ २ ॥ ग्रैवेयकानुत्तरयोरेष एव क्रमो हानिवृद्ध्योः। एकैकस्मिन् विमानानि द्वावपि मीलयित्वा द्वात्रिंशच्छतानि ॥ ३ ॥] सम्प्रति संस्थाननिरूपणार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु णं भंते!'** इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि किंसंस्थितानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–आवलिकाप्रविष्टानि आवलिकाबाह्यानि च, तत्रावलिकाप्रविष्टानि नाम यानि पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु श्रेण्या व्यवस्थितानि, यानि पुनरावलिकाप्रविष्टानां प्राङ्गणप्रदेशे कुसुमप्रकर इव यतस्ततो विप्रकीर्णानि तान्यावलिकाबाह्यानि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२१०--२१५]

दीप अनुक्रम [३२७--३३२]

तानि पुष्पावकीर्णानीत्युच्यन्ते, पुष्पाणीव इतस्ततोऽवकीर्णानि–विप्रकीर्णानि पुष्पावकीर्णानि इति व्युत्पत्तिः, तानि च मध्यवर्त्तिनो विमानेन्द्रस्य दक्षिणतोऽपरत उत्तरतश्च विद्यन्ते न तु पूर्वस्यां दिशि, उक्तञ्च—"पुप्फावकिण्णगा पुण दाहिणतो पच्छिमेण उत्तरतो । पुव्वेण विमाणेंदस्स नत्थि पुप्फावकिण्णा उ ॥ १ ॥" 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्रावलिकाप्रविष्टाऽऽवलिकाबाह्येषु मध्ये यानि तानि आवलिकाप्रविष्टानि तानि त्रिविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–वृत्तानि त्र्यस्राणि चतुरस्राणि, इहावलिकाप्रविष्टानि प्रतिप्रस्टं विमानेन्द्रकस्य पूर्वदक्षिणापरोत्तररूपासु चतसृषु दिक्षु श्रेण्या व्यवस्थितानि, विमानेन्द्रकश्च सर्वोऽपि वृत्तः, ततः पार्श्ववृत्तीनि चतसृष्वपि दिक्षु त्र्यस्राणि, तेषां पृष्ठतश्चतसृष्वपि दिक्षु चतुरस्राणि, तेषां पृष्ठतो वृत्तानि, ततोऽपि भूयोऽपि त्र्यस्राणि ततोऽपि चतुरस्राणीत्येवमावलिकापर्यन्तः, तत्र त्रिविधान्येवावलिकाप्रविष्टानि ॥ **'तत्थ ण'**मित्यादि, तत्र यानि आवलिकाबाह्यानि तानि नानासंस्थानसंस्थितानि प्रज्ञप्तानि, तथाहि–कानिचिन्नन्द्यावर्ताकाराणि कानिचित्स्वस्तिकाकाराणि कानिचित् खड्गाकाराणीत्यादि, उक्तञ्च—"आवलियासु विमाणा वट्टा तंसा तहेव चउरंसा । पुप्फावकिण्णगा पुण अणेगविहरूवसंठाणा ॥ १ ॥" एवं तावद्वाच्यं यावद् ग्रैवेयकविमानानि, तान्येव यावदावलिकाप्रविष्टानामावलिकाबाह्यानां च भावात्, परत आवलिकाप्रविष्टान्येव, तथा चाह—**'अणुत्तरविमाणा णं भंते! विमाणा किंसंठिया पन्नत्ता?'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं, भगवानाह–गौतम! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–'वट्टे य तंसा य,' मध्यवर्त्तिसर्वार्थसिद्धाख्यं विमानं वृत्तं, शेषाणि विजयादीनि चत्वार्यपि त्र्यस्राणि, उक्तञ्च—"एगं वट्टं तंसा चउरो य अणुत्तरविमाणा ।" ॥ अधुनाऽऽयामविष्कम्भादिपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु णं भंते!'** इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि कियद् आयामविष्कम्भेन कियत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! द्विविधानि विमानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–सङ्ख्येयविस्तृतान्यसङ्ख्येयविस्तृतानि च,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र यानि तानि सङ्ख्येयविस्तृतानि सङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेन असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण, तत्र यानि तान्यसङ्ख्येयविस्तृतानि असङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भेन असङ्ख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण, एवं तावद्वाच्यं यावद् ग्रैवेयकविमानानि, तानि यावत् सङ्ख्येयविस्तृतानामसङ्ख्येयविस्तृतानां च बाहुल्येन भावात् न तु परतः, तथा चाह—**'अणुत्तरविमाणे णं भंते! केवइयं आयामविक्खंभेण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सङ्ख्येयविस्तृतानि असङ्ख्येयविस्तृतानि च, सर्वार्थसिद्धं सङ्ख्येयविस्तृतं शेषाण्यसङ्ख्येयविस्तृतानीति भावः, तत्र यत्तत्सङ्ख्येयविस्तृतं तद् एकं योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे शते सप्तविंशत्यधिके योजनानां क्रोशत्रिकमष्टाविंशं धनुःशतं त्रयोदशाङ्गुलानि एकमर्द्धाङ्गुलमिति परिक्षेपेण, तत्र यानि तान्यसङ्ख्येयविस्तृतानि तान्यसङ्ख्येयानि योजनसहस्राण्यायामविष्कंभेन असंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि ॥ सम्प्रति वर्णप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु णं भंते!'** इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि कतिवर्णानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! पञ्चवर्णानि, तद्यथा—कृष्णानि नीलानि लोहितानि हारिद्राणि शुक्लानि, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोश्चतुर्वर्णानि कृष्णवर्णाभावात्, ब्रह्मलोकलान्तकयोस्त्रिवर्णानि कृष्णनीलवर्णाभावात्, महाशुक्रसहस्रारयोर्द्विवर्णानि कृष्णनीलहारिद्रवर्णाभावात्, आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु एकवर्णानि, शुक्लवर्णस्यैकस्य भावात्, ग्रैवेयकविमानानि अनुत्तरविमानानि च परमशुक्लानि, उक्तञ्च—"सोहम्मि पंचवण्णा एक्कगहीणा उ जा सहस्सारे । दो दो तुल्ला कप्पा तेण परं पुंडरीयाइं ॥ १ ॥" सम्प्रति प्रभाप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु ण'**मित्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि कीदृशानि प्रभया प्रज्ञप्तानि?, कीदृशी तेषां प्रभा प्रज्ञप्तेति भावः, भगवानाह—गौतम! प्रभया प्रज्ञप्तानि **'नित्यालोकानि'**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

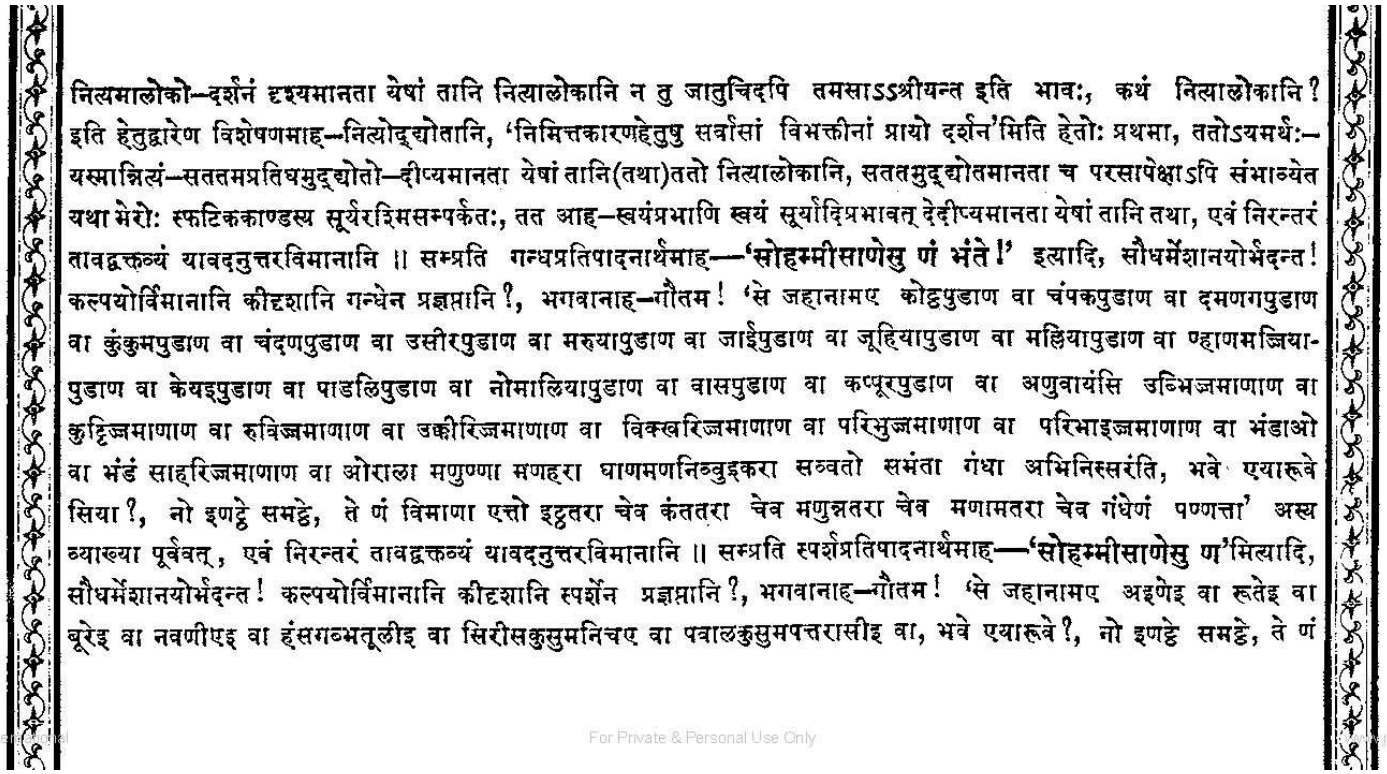

नित्यमालोको–दर्शनं दृश्यमानता येषां तानि नित्यालोकानि न तु जातुचिदपि तमसाऽऽश्रीयन्त इति भावः, कथं नित्यालोकानि? इति हेतुद्वारेण विशेषणमाह–नित्योद्द्योतानि, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति हेतोः प्रथमा, ततोऽयमर्थः– यस्मान्नित्यं–सततमप्रतिघमुद्द्योतो–दीप्यमानता येषां तानि(तथा)ततो नित्यालोकानि, सततमुद्द्योतमानता च परसापेक्षाऽपि संभाव्येत यथा मेरोः स्फटिककाण्डस्य सूर्यरश्मिसम्पर्कतः, तत आह–स्वयंप्रभाणि स्वयं सूर्यादिप्रभावत् देदीप्यमानता येषां तानि तथा, एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरविमानानि ॥ सम्प्रति गन्धप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु णं भंते!'** इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि कीदृशानि गन्धेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! 'से जहानामए कोट्ठपुडाण वा चंपकपुडाण वा दमणगपुडाण वा कुंकुमपुडाण वा चंदणपुडाण वा उसीरपुडाण वा मरुयापुडाण वा जाईपुडाण वा जूहियापुडाण वा मल्लियापुडाण वा ण्हाणमल्लिया-पुडाण वा केयइपुडाण वा पाडलिपुडाण वा नोमालियापुडाण वा वासपुडाण वा कप्पूरपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण वा कुट्टिज्जमाणाण वा रुविज्जमाणाण वा उक्कीरिज्जमाणाण वा विक्खरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा परिभाइज्जमाणाण वा भंडाओ वा भंडं साहरिज्जमाणाण वा ओराला मणुण्णा मणहरा घाणमणनिव्वुइकरा सव्वतो समंता गंधा अभिनिस्सरंति, भवे एयारूवे सिया?, नो इणट्ठे समट्ठे, ते णं विमाणा एत्तो इट्ठतरा चेव कंततरा चेव मणुन्नतरा चेव मणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता' अस्य व्याख्या पूर्ववत्, एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरविमानानि ॥ सम्प्रति स्पर्शप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु ण'**मित्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि कीदृशानि स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! 'से जहानामए अइणेइ वा रूतेइ वा बूरेइ वा नवणीएइ वा हंसगब्भतूलीइ वा सिरीसकुसुमनिचए वा पवालकुसुमपत्तरासीइ वा, भवे एयारूवे?, नो इणट्ठे समट्ठे, ते णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

विमाणा इत्तो इट्ठतरा चेव कंततरा चेव मणुन्नतरा चेव मणामतरा चेव फासेणं पण्णत्ता' इति पूर्ववत्, एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरविमानानि ॥ सम्प्रति महत्त्वप्रतिपादनार्थमाह—'**सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु**' इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि '**किंमहान्ति**' किंप्रमाणमहत्त्वानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! '**अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे**' इत्यादि जम्बूद्वीपवाक्यं परिपूर्णमेवं द्रष्टव्यं 'सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूवसंठाणसंठिते वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिन्नि य जोयणसयसहस्सा सोलस सहस्सा दो य सया सत्तावीसा तिन्नि य कोसे अट्ठावीसं धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं पन्नत्ते' इदं च पूर्ववद् भावनीयं, देवो नाम महर्द्धिको यावन्महाभाग: यावत्करणात् महाद्युतिक इत्यादिपरिग्रह:, '**जाव इणामेव**' 'इणामेवे'ति यावदिदानीमेव, अनेन चप्पुटिकात्रयानुकरणपुरस्सरमत्यन्तं कालस्तोकत्वं इतिकृत्वा केवलकल्पं—परिपूर्णं जम्बूद्वीपं द्वीपं त्रिभिरप्सरोनिपातैः—तिसृभिश्चप्पुटिकाभिरित्यर्थः त्रिसप्तकृत्वः—एकविंशतिवारान् '**अनुपरिवर्त्य**' प्रादक्षिण्येन परिभ्रम्य '**हव्वं**' शीघ्रमागच्छेत् '**से णं देवे**' इत्यादि, स देवस्तया सकलदेवजनप्रसिद्धया पूर्वदृष्टान्तभावितया '**उत्कृष्टया**' अतिशायिन्या 'तुरियाए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए' अमीषां पदानां व्याख्यानं पूर्ववत्, 'दिव्वया' देवगत्या व्यतिव्रजन् यावदेकाहं वा द्व्यहं वा उत्कर्षत: षण्मासान् व्यतिव्रजन् तत्रास्त्येककं विमानं यद् व्यतिव्रजेत् अस्त्येककं विमानं यन्न व्यतिव्रजेत्, 'एवंमहालिया णं' एतावंति महान्ति गौतम! विमानानि प्रज्ञप्तानि, एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरविमानानि ॥ '**सोहम्मीसाणेसु ण**'मित्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्विमानानि किंमयानि प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! सर्वात्मना रत्नमयानि अच्छानि यावत्प्रतिरूपाणि। '**तत्थ ण**'-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

मित्यादि, तत्र–तेषु विमानेषु बहवो जीवाः–पृथ्वीकायरूपाः पुद्गलाश्च **'अपक्कामन्ति'** गच्छन्ति **'व्युत्क्कामन्ति'** उत्पद्यन्ते, तथा **'चीयन्ते'** चयमुपगच्छन्ति **'उपचीयन्ते'** उपचयमुपगच्छन्ति, एतत् पुद्गलापेक्षं विशेषणं, पुद्गलानामेव चयोपचयधर्मकत्वात्, शाश्वतानि भदन्त! विमानानि द्रव्यार्थतया प्रज्ञप्तानि?, वर्णपर्यायै रसपर्यायैर्गन्धपर्यायैः स्पर्शपर्यायैरशाश्वतानि प्रज्ञप्तानि, एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरविमानानि ॥ **'सोहम्मीसाणेसु णं भंते!'** इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः कुतो योनेरुद्धृत्योत्पद्यन्ते? किं नैरयिकेभ्यः? इत्यादि यथा **'व्युत्क्रान्तौ'** व्युत्क्रान्त्याख्ये षष्ठे पदे **प्रज्ञापनायां** तथा वक्तव्यं यावदनुत्तरोपपातिका देवाः, इह तु ग्रन्थगौरवभयान्न लिख्यते भूयान् हि स ग्रन्थः ॥ सम्प्रति कियन्त एकस्मिन् समये उत्पद्यन्ते? इति निरूपणार्थमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवा एकस्मिन् समये, सूत्रे तृतीया सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वात्, कियन्त उत्पद्यन्ते?, भगवानाह–गौतम! जघन्येन एको द्वौ वा त्रयो वा, उत्कर्षतः सङ्ख्येया वाऽसङ्ख्येया वा तिरश्चामपि गर्भजपञ्चेन्द्रियाणां तत्रोत्पादात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावत्सहस्रारकल्पः, **'आणयदेवा णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनैको द्वौ त्रयो वा उत्कर्षतः सङ्ख्येयाः, मनुष्याणामेव तत्रोत्पादात्, तेषां कोटीकोटीप्रमाणत्वात्, एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरोपपातिका देवाः ॥ सम्प्रति कालतोऽपहारतः परिमाणमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः समये समये एकैकदेवापहारेणापह्रियमाणा अपह्रियमाणाः कियता कालेनापह्रियन्ते?, भगवानाह–गौतम! असङ्ख्येयास्ते देवाः समये समये एकैकदेवापहारेणापह्रियमाणाः २ असङ्ख्येयाभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिरपह्रियन्ते, एतावता किमुक्तं भवति?–असङ्ख्येयासूत्सर्पिण्यवसर्पिणीषु यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणाः सौधर्मेशानदेवा इति, एवमुत्तरत्रापि भावना भावनीया, एतच्च कल्पनामात्रं परिमाणावधारणार्थमुक्तं न पुनस्ते कदाच-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नापि केनाप्यपहृताः स्युः, तथा चाह—**'नो चेव णं अवहिया सिया'** एवं निरन्तरं तावद्वक्तव्यं यावत्सहस्रारकल्पदेवाः, **'आणयपाणयआरणअच्चुएसु'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! आनतप्राणतारणाच्युतेषु कल्पेषु देवा असङ्ख्येयाः, ते च समये समये एकैकापहारेणापह्रियमाणाः पल्योपमस्य–क्षेत्रपल्योपमस्य सूक्ष्मस्यासङ्ख्येयभागमात्रेण कालेनापह्रियन्ते, किमुक्तं भवति? –सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपमासङ्ख्येयभागे यावन्तः समयास्तावत्प्रमाणास्ते भवन्तीति, एवं ग्रैवेयकदेवा अनुत्तरोपपातिनोऽपि वाच्याः ॥ सम्प्रति शरीरावगाहनामानप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु णं भंते!'** इत्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां **'किंमहालया'** इति किं महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा–भवधारणीया उत्तरवैक्रिया च, तत्र या सा भवधारणीया सा जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रा उत्कर्षतः सप्त रत्नयः, तत्र या सा उत्तरवैक्रिया सा जघन्यतोऽङ्गुलस्य सङ्ख्येयं भागं यावत् न त्वसङ्ख्येयं तथाविधप्रयत्नाभावात्, उत्कर्षत एकं योजनशतसहस्रं, एवं तावद्वाच्यं यावदच्युतकल्पो, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोरुत्कर्षतो भवधारणीया षड् रत्नयः, ब्रह्मलोकलान्तकेषु पञ्च, महाशुक्रसहस्रारयोश्चत्वारः, आनतप्राणतारणाच्युतेषु त्रयः, **'गेवेज्जगदेवा णं भंते!'** इत्यादि, ग्रैवेयकदेवानां भदन्त! किंमहती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! ग्रैवेयकदेवानामेकं भवधारणीयं शरीरं प्रज्ञप्तं न तूत्तरवैक्रियं, शक्तौ सत्यामपि प्रयोजनाभावात्तदकरणात्, तदपि च भवधारणीयं जघन्यतोऽङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रमुत्कर्षतो द्वौ रत्नी, एवमनुत्तरोपपातसूत्रमपि वक्तव्यं, नवरमुत्कर्षत एका रत्निरिति वाच्यम् ॥ सम्प्रति संहननमधिकृत्याह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां शरीराणि **'किंसंहननानि'** किं संहननं येषां तानि तथा प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! षण्णां संहननानामन्यतमेनापि संहननेनासंहननानीति, संहननस्यास्थिरचनात्मकत्वात् तेषां चास्थ्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते—वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देशः २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देशः १ इति मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२१०--२१५]

दीप अनुक्रम [३२७--३३२]

दीनामसम्भवात्, तथा चाह—**'नेवट्ठी'** इत्यादि, नैवास्थि तेषां शरीरेषु नापि शिरा—ग्रीवाधमनिर्नापि स्नायूंषि—शेषं शिराजालं, किन्तु ये पुद्गला इष्टाः कान्ताः प्रिया मनोज्ञा मनआपतरा एतेषां व्याख्यानं प्राग्वत् ते तेषां सङ्घाततया परिणमन्ति ततः संहननाभावः, एवं तावद्वाच्यं यावदनुत्तरोपपातिकानां देवानां ॥ सम्प्रति संस्थानप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मीसाणेसु'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! तेषां शरीरकाणि द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भवधारणीयानि उत्तरवैक्रियाणि च, तत्र यद् भवधारणीयं तत्समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं, देवानां भवप्रत्ययतः प्रायः शुभनामकर्मोदयभावात्, तत्र यदुत्तरवैक्रियं तत् नानासंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं, तस्येच्छया निर्वर्त्यमानत्वात्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदच्युतः कल्पः, **'गेविज्जगदेवाण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! ग्रैवेयकदेवानामेकं भवधारणीयं शरीरं तच्च समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तं, एवमनुत्तरोपपातिसूत्रमपि । अधुना वर्णप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां शरीरकाणि कीदृशानि वर्णेन प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह—गौतम! कनकलगयुक्तानि कनकलगिव रक्ता आभा—छाया येषां तानि तथा वर्णेन प्रज्ञप्तानि, उक्तंकनकवर्णानीति भावः, एवं शेषसूत्राण्यपि भावनीयानि, नवरं सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्ब्रह्मलोकेऽपि च पद्मपक्ष्मगौराणि, पद्मकेसरतुल्यावदातवर्णानीति भावः, ततः परं लान्तकादिषु यथोत्तरं शुक्लशुक्लतरशुक्लतमानि, अनुत्तरोपपातिनां परमशुक्लानि, उक्तञ्च—"कणगत्तयरत्ताभा सुरवसभा दोसु होंति कप्पेसु । तिसु होंति पम्हगोरा तेण परं सुक्किला देवा ॥ १ ॥" सम्प्रति गन्धप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! **'से जहानामए—कोट्ठपुडाण वा'** इत्यादि विमानवद्भावनीयं, एवं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरोपपातिनाम् । सम्प्रति स्पर्शप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां शरीरकाणि कीदृशानि स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि?,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२१०--२१५]

दीप अनुक्रम [३२७--३३२]

भगवानाह–गौतम! **'थिरमउयणिद्धसुकुमाला फासेणं पण्णत्ता'** इति स्थिराणि नतु मनुष्याणामिव विशरारुभावं बिभ्राणानि मृदूनि–अकठिनानि स्निग्धानि–स्निग्धच्छायानि नतु रूक्षाणि सुकुमाराणि नतु कर्कशानि ततो विशेषणसमासः, स्पर्शेन प्रज्ञप्तानि, एवं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरोपपातिनां देवानां शरीरकाणि ॥ साम्प्रतमुच्छ्वासप्रतिपादनार्थमाह–**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां कीदृशाः पुद्गला उच्छ्वासतया परिणमन्ति?, भगवानाह–गौतम! ये पुद्गला इष्टाः कान्ताः प्रिया मनोज्ञा मनआपा एतेषां व्याख्यानं प्राग्वत् ते तेषामुच्छ्वासतया परिणमन्ति, एवं तावद्वाच्यं यावदनुत्तरोपपातिका देवाः। एवमाहारसूत्रा-ण्यपि ॥ सम्प्रति लेश्याप्रतिपादनार्थमाह–**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां कति लेश्याः प्रज्ञप्ताः?, भगवा-नाह–गौतम! एका तेजोलेश्या, इदं प्राचुर्यमङ्गीकृत्य प्रोच्यते, यावता पुनः कथञ्चित्तथाविधद्रव्यसम्पर्कतोऽन्याऽपि लेश्या यथास-म्भवं प्रतिपत्तव्या, सनत्कुमारमाहेन्द्रविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! एका पद्मलेश्या प्रज्ञप्ता, एवं ब्रह्मलोकेऽपि, लान्तके प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनं–गौतम! एका शुक्ललेश्या प्रज्ञप्ता, एवं यावदनुत्तरोपपातिका देवाः, उक्तञ्च–"किण्हानीलाकाउतेऊलेसा य भवणवंतरिया। जोइससोहम्मीसाण तेउलेसा मुणेयव्वा ॥ १ ॥ कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य। एएसु पम्हलेसा तेण परं सुक्कलेसा उ ॥ २ ॥" सम्प्रति दर्शनं चिचिन्तयिषुराह–**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवा णमिति वाक्याल-ङ्कारे किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः?, भगवानाह–गौतम! सम्यग्दृष्टयोऽपि मिथ्यादृष्टयोऽपि सम्यग्मिथ्यादृष्ट-योऽपि, एवं यावद् ग्रैवेयकदेवाः, अनुत्तरोपपातिनः सम्यग्दृष्टय एव वक्तव्याः न मिथ्यादृष्टयो नापि सम्यग्मिथ्यादृष्टयः तेषां तथा-स्वभावत्वात् ॥ सम्प्रति ज्ञानाज्ञानचिन्तां चिकीर्षुराह–**'सोहम्मी'**त्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! ज्ञानिनोऽप्यज्ञानिनो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते–वैमानिकदेवाधिकारस्य उद्देश: २ इति वर्तते, तत् स्थाने मुद्रण-दोषात् उद्देश: १ इति मुद्रितं

ऽपि, तत्र ये ज्ञानिनस्ते नियमात्त्रिज्ञानिनस्तद्यथा–आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनः, ये अज्ञानिनस्ते नियमात् त्र्यज्ञानिनस्तद्यथा–मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च, एवं तावद्वाच्यं यावद् ग्रैवेयकाः, अनुत्तरोपपातिनो ज्ञानिन एव वक्तव्याः, योगसूत्राणि पाठसिद्धानि ॥ सम्प्रत्यवधिक्षेत्रपरिमाणप्रतिपादनार्थमाह—

सोहम्मीसाणदेवा ओहिणा केवतियं खेत्तं जाणंति पासंति?, गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं अवही जाव रयणप्पभा पुढवी उड्ढं जाव साइं विमाणाइं तिरियं जाव असंखेज्जा दीवसमुद्दा [एवं—सक्कीसाणा पढमं दोचं च सणंकुमारमाहिंदा । तचं च बंभलंतग सुक्कसहस्सारग चउत्थी ॥ १ ॥ आणयपाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढवीं । तं चेव आरणचुय ओहीनाणेण पासंति ॥ २ ॥ छट्ठीं हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला । संभिण्णलोगनालिं पासंति अणुत्तरा देवा ॥ ३ ॥] (सू० २१६)

'सोहम्मी'त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः कियत्क्षेत्रमवधिना जानन्ति ज्ञानेन पश्यन्ति दर्शनेन?, भगवानाह–गौतम! जघन्येनाङ्गुलस्यासङ्ख्येयभागं, अत्र पर आह–नन्वङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्रक्षेत्रपरिमितोऽवधिः सर्वजघन्यो भवति, सर्वजघन्यश्चावधिस्तिर्यग्मनुष्येष्वेव न शेषेषु, यत आह भाष्यकारः स्वकृतभाष्यटीकायाम्—"उत्कृष्टो मनुष्येष्वेव नान्येषु, मनुष्यतिर्यग्योनिष्वेव जघन्यो नान्येषु, शेषाणां मध्यम एवे"ति तत्कथमिह सर्वजघन्य उक्तः?, उच्यते, सौधर्मादिदेवानां पारभाविकोऽप्युपपातकालेऽवधिः संभवति स एव कदाचित्सर्वजघन्योऽपि उपपातानन्तरं तु तद्भवजः ततो न कश्चिद्दोषः, आह च जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणः—"वेमा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१६]

दीप अनुक्रम [३३३--३३६]

णियाणमंगुलभागमसंखं जहन्नओ होइ (ओही)। उववाए परभविओ तब्भवजो होइ तो पच्छा ॥ १ ॥" 'उक्कोसेणं एवं' यथाऽवधिपदे प्रज्ञापनायां तथा वक्तव्यं, तच्चैवम्—'उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिले चरमंते' अधस्तनाश्चरमपर्यन्ताद् यावदित्यर्थः 'तिरियं जाव असंखेज्जे दीवसमुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं' स्वकीयानि विमानानि स्वकीयविमानस्तूपध्वजादिकं यावदित्यर्थः 'जाणंति पासंति, एवं सणंकुमारमाहिंदावि, नवरं अहे जाव दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए हेट्ठिले चरिमंते, एवं बंभलोगलंतगदेवावि, नवरं अहे जाव तच्चाए पुढवीए, महासुक्कसहस्सारगदेवा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेट्ठिले चरिमंते, आणयपाणयआरणच्चुयदेवा अहे जाव पंचमीए पुढवीए धूमप्पभाए हेट्ठिले चरिमंते, हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा छट्ठीए तमप्पभाए पुढवीए हेट्ठिले चरिमंते, उवरिमगेवेज्जगा देवा अहे जाव सत्तमाए पुढवीए हेट्ठिले चरिमंते, अणुत्तरोववाइयदेवा णं भंते! केवइयं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति?, गोयमा! संभिन्नं लोगनालिं' परिपूर्णं चतुर्दशरज्ज्वात्मिकां लोकनाडीमित्यर्थः 'ओहिणा जाणंति पासंति' इति, उक्तञ्च —"सक्कीसाणा पढमं दोच्चं च सणंकुमारमाहिंदा। तच्चं च बंभलंतग सुक्कसहस्सारगा चउत्थिं ॥ १ ॥ आणयपाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढविं। तं चेव आरणच्चुय ओहीनाणेण पासंति ॥ २ ॥ छट्ठिं हिट्ठिममज्झिमगेविज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला। संभिन्नलोगनालिं पासंति अणुत्तरा देवा ॥ ३ ॥ सम्प्रति समुद्घातप्रतिपादनार्थमाह—

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! देवाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता?, गोयमा! पंच समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाते कसाय० मारणंतिय० वेउव्विय० तेजससमुग्घाते एवं जाव अच्चुए। गेवेज्जाणं आदिल्ला तिण्णि समुग्घाता पण्णत्ता ॥ सोहम्मीसाणदेवा केरिसयं खुधपिवासं पच-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१७]

दीप अनुक्रम [३३७]

णुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! णत्थि खुधापिवासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति जाव अणुत्तरोववातिया ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवा एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए?, हंता पभू, एगत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवं वा जाव पंचिंदियरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचिंदियरूवाणि वा, ताइं संखेज्जाइंपि असंखेज्जाइंपि सरिसाइं पिअसरिसाइंपि संबद्धाइंपि असंबद्धाइंपि रूवाइं विउव्वंति विउव्वित्ता अप्पणा जहिच्छियाइं कज्जाइं करेंति जाव अच्चुओ, गेवेज्जणुत्तरोववातिया देवा किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पभू विउव्वित्तए?, गोयमा! एगत्तंपि पुहुत्तंपि, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा विउव्वंति वा विउव्विस्संति वा ॥ सोहम्मीसाणदेवा केरिसयं सायासोक्खं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! मणुण्णा सद्दा जाव मणुण्णा फासा जाव गेविज्जा, अणुत्तरोववाइया अणुत्तरा सद्दा जाव फासा॥ सोहम्मीसाणेसु देवाणं केरिसगा इड्ढी पण्णत्ता?, गोयमा! महिड्ढीया महज्जुइया जाव महाणुभागा इड्ढीए पं० जाव अच्चुओ, गेवेज्जणुत्तरा य सव्वे महिड्ढीया जाव सव्वे महाणुभागा अहिंदा नामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!॥ (सू० २१७)

'सोहम्मी'त्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! पञ्च समुद्घाताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातो मरणसमुद्घातो वैक्रियसमुद्घातस्तैजससमुद्घातः, एतेषां स्वरूपं प्रागेव द्वित्रिंशत्प्रतिपत्तावभिहितं, उत्तरौ द्वौ समुद्घातौ न भवतः, आ-

जी० ६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१७]

दीप अनुक्रम [३३७]

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

हारकलब्धिकेवलित्वाभावात्, एवं तावद्वाच्यं यावदच्युतः कल्पः, **'गेवेज्जगदेवाणंभंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! पञ्च समुद्घाताः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–वेदनासमुद्घात इत्यादि, एते च पञ्चापि तेषां शक्तितः प्रतिपत्तव्याः, कर्त्तव्यतया तु तत्र त्रय एव, तथा चाह—'नो चेव ण' मित्यादि, नैव कदाचनापि वैक्रियतैजससमुद्घाताभ्यां समवहताः समवहन्यन्ते समवहनिष्यन्ते प्रयोजनाभावतः प्रकृत्युपशान्ततया च वैक्रियसमुद्घातारम्भासम्भवात्, एवमनुत्तरोपपातिकानामपि वक्तव्यम् ॥ **'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः कीदृशं क्षुच पिपासा च क्षुत्पिपासं प्रत्यनुभवन्तो 'विहरन्ति' आसते?, गौतम! नास्त्येतद् यत्ते क्षुत्पिपासं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्तीति, एवं यावदनुत्तरोपपातिकाः ॥ **'सोहम्मीसाणेसु ण'**मित्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः **'एकत्वम्'** एकरूपं विकुर्वितुं प्रभवः पृथक्त्वं?–बहूनीत्यर्थः, भगवानाह–गौतम! एकत्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं पृथक्त्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं, एकत्वं विकुर्वन्त एकेन्द्रियरूपं वा द्वीन्द्रियरूपं वा त्रीन्द्रियरूपं वा चतुरिन्द्रियरूपं वा पञ्चेन्द्रियरूपं वा विकुर्वितुं, पृथक्त्वं विकुर्वन्त एकेन्द्रियरूपाणि यावत्पञ्चेन्द्रियरूपाणि वा, तान्यपि सङ्ख्येयानि विकुर्वन्ति असङ्ख्येयानि वा, तान्यपि **'सदृशानि'** सजातीयानि वा **'असदृशानि'** विजातीयानि **'संबद्धानि'** आत्मनि समवेतानि **'असंबद्धानि'** आत्मप्रदेशेभ्यः पृथग्भूतानि प्रासादघटपटादीनि, यथा चतुर्दशपूर्वधरा घटाद् घटसहस्रं पटात्पटसहस्रं कुर्वन्ति, विकुर्वित्वा पश्चाद् यादृच्छिकानि कार्याणि कुर्वन्ति, एवं तावद्यावदच्युतकल्पदेवाः, **'गेवेज्जगदेवाणं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्रतीतं, भगवानाह–गौतम! एकत्वमपि प्रभवो विकुर्वितुं पृथक्त्वमपि, 'नो चेव ण'मित्यादि, नैव पुनः **'सम्पत्त्या'** साक्षाद्वैक्रियरूपसम्पादनेन विकुर्वितवन्तो विकुर्वन्ति विकुर्विष्यन्ति एवमनुत्तरोपपातिका अपि वक्तव्याः ॥ **'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः कीदृशं **'सातसौख्यं'** सातं–आह्लादरूपं सौख्यं सातसौख्यं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति?,

॥ ४०३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवानाह–गौतम! मनोज्ञाः शब्दा मनोज्ञानि रूपाणि मनोज्ञा गन्धा मनोज्ञा रसाः मनोज्ञाः स्पर्शाः एवंरूपं सातसौख्यं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, एवं तावद्वाच्यं यावद्वैवेयकदेवाः, **'अणुत्तरोववाइयाण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अनुत्तराः शब्दा यावदनुत्तराः स्पर्शाः इत्येवंरूपं सातसौख्यं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ॥ साम्प्रतमृद्धिप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाः कीदृशा ऋद्ध्या प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! महर्द्धिका यावन्महानुभागाः, अमीषां पदानां व्याख्यानं पूर्ववत्, एवं तावद्वक्तव्यं यावदनुत्तरोपपातिका देवाः ॥ सम्प्रति विभूषाप्रतिपादनार्थमाह—

सोहम्मीसाणा देवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—वेउव्वियसरीरा य अवेउव्वियसरीरा य, तत्थ णं जे ते वेउव्वियसरीरा ते हारविराइयवच्छा जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा जाव पडिरूवा, तत्थ णं जे ते अवेउव्वियसरीरा ते णं आभरणवसणरहिता पगतित्था विभूसाए पण्णत्ता ॥ सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवीओ केरिसियाओ विभूसाए पण्णत्ताओ?, गोयमा! दुविधाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—वेउव्वियसरीराओ य अवेउव्वियसरीराओ य, तत्थ णं जाओ वेउव्वियसरीराओ ताओ सुवण्णसदालाओ सुवण्णसदालाइं वत्थाइं पवर परिहिताओ चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमणिडालाओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय जाव पासातीयाओ जाव पडिरूवा, तत्थ णं जाओ अवेउव्वियसरीराओ ताओ णं आभरणवसणरहियाओ पगतित्थाओ विभूसाए पण्णत्ताओ,

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१८--२२०]

दीप अनुक्रम [३३८-३४०]

सेसेसु देवा देवीओ णत्थि जाव अच्चुओ, गेवेज्जगदेवा केरिसया विभूसाए०?, गोयमा! आभरणवसणरहिया, एवं देवी णत्थि भाणियव्वं, पगतित्था विभूसाए पण्णत्ता, एवं अणुत्तरावि ॥ (सू०२१८) सोहम्मीसाणेसु देवा केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! इट्ठा सद्दा इट्ठा रूवा जाव फासा, एवं जाव गेवेज्जा, अणुत्तरोववातियाणं अणुत्तरा सद्दा जाव अणुत्तरा फासा ॥ (सू० २१९) ठिती सव्वेसिं भाणियव्वा, देवित्ताएवि, अणंतरं चयंति चइत्ता जे जहिं गच्छंति तं भाणियव्वं ॥ (सू० २२०)

'सोहम्मी'त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवानां शरीरकाणि कीदृशानि विभूषया प्रज्ञप्तानि?, भगवानाह–गौतम! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–भवधारणीयानि उत्तरवैक्रियाणि च, तत्र यानि तानि भवधारणीयानि तानि आभरणवसनरहितानि प्रकृतिस्थानि विभूषया प्रज्ञप्तानि, स्वाभाविक्येव तेषां विभूषा नौपाधिकीति भावः, तत्र यानि तानि उत्तरवैक्रियरूपाणि शरीराणि तानि **'हारविराइयवच्छा'** इत्यादि पूर्वोक्तं तावद्वक्तव्यं यावत् 'दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा विभूसाए पन्नत्ता' अस्य व्याख्या पूर्ववत्, एवं देवीष्वपि नवरं **'ताओ णं अच्छराओ सुवण्णसद्दालाओ'** इति नूपुरादिनिर्घोषयुक्ताः **'सुवण्णसद्दालाइं वत्थाइं पवरपरिहिताओ'** सकिङ्किणीकानि वस्त्राणि प्रवरं–अत्युद्भटं यथा भवत्येवं परिहितवन्त्य इति भावः, 'चंदाणणाओ चंदविलासिणीओ चंदद्धसमनिडालाओ चंदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोवेमाणीओ विज्जुघणमरीइसूरदिप्पंततेयअहिययरसन्निकासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ' इति प्राग्वत्, एवं देवानां शरीर-

॥ ४०४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१८--२२०]

दीप अनुक्रम [३३८-३४०]

विभूषा तावद्वाच्या यावदच्युतः कल्पः, देव्यस्तु सनत्कुमारादिषु न सन्तीति न तत्सूत्रं तत्र वाच्यं, 'गेवेज्जगदेवा णं भंते! सरीरा केरिसगा विभूसाए पन्नत्ता?, गोयमा! गेवेज्जगदेवाणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे ते णं आभरणवसणरहिया पगइत्था विभूसाए पण्णत्ता' इति पाठः, एवमनुत्तरोपपातिका अपि वाच्याः ॥ सम्प्रति कामभोगप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मी'**त्यादि, सौधर्मेशानयोर्भदन्त! कल्पयोः कीदृशान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तः प्रत्येकं वेदयमाना विहरन्ति?, भगवानाह—गौतम! इष्टान् शब्दान् इष्टानि रूपाणि इष्टान् गन्धान् इष्टान् रसान् इष्टान् स्पर्शान् प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, एवं यावद् ग्रैवेयकदेवाः, अनुत्तरोपपातिकसूत्रेषु अनुत्तरानिति वक्तव्यम् ॥ अधुना स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—**'सोहम्मगदेवाण'**मित्यादि, सौधर्म्मकदेवानां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, भगवानाह—गौतम! जघन्यत एकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सागरोपमे, एवमीशाने जघन्यत एकं सातिरेकं पल्योपममुत्कर्षतो द्वे सातिरेके सागरोपमे, सनत्कुमारे जघन्यतो द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सप्त सागरोपमाणि, माहेन्द्रे जघन्यतः सातिरेके द्वे सागरोपमे उत्कर्षतः सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि, ब्रह्मलोके जघन्यतः सप्त सागरोपमाणि उत्कर्षतो दश सागरोपमाणि, लान्तके जघन्यतो दशसागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्दश सागरोपमाणि, महाशुक्रे जघन्यतश्चतुर्दश सागरोपमाणि उत्कर्षतः सप्तदश, सहस्रारे जघन्यतः सप्तदश सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टादश, आनतकल्पे जघन्यतोऽष्टादश सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनविंशतिः, प्राणते जघन्यत एकोनविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो विंशतिः, आरणे जघन्यतो विंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षत एकविंशतिः, अच्युते जघन्यत एकविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतो द्वाविंशतिः, अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यतो द्वाविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयोविंशतिः, अधस्तनमध्यमग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यतस्त्रयोविंशतिः सागरोपमाणि उत्कर्षतश्चतुर्विंशतिः, अधस्तनोपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यतश्चतुर्विंशतिः सा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गरोपमाणि उत्कर्षत: पञ्चविंशति:, मध्यमाधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यत: पञ्चविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: षड्विंशति:, मध्यममध्यमग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यत: षड्विंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत: सप्तविंशति:, मध्यमोपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यत: सप्तविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षतोऽष्टविंशति:, उपरितनाधस्तनग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यतोऽष्टाविंशति: सागरोपमाणि उत्कर्षत एकोनत्रिंशत्, उपरितनमध्यमग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यत एकोनत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रिंशत्, उपरितनोपरितनग्रैवेयकप्रस्तटे जघन्यतस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षत एकत्रिंशत्, विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु जघन्यत एकत्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्, सर्वार्थसिद्धे महाविमानेऽजघन्योत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सम्प्रत्युद्वर्त्तनामाह—**'सोहम्मगदेवाण'**मित्यादि, सौधर्मकदेवा भदन्त! अनन्तरं—अव्यवधानेन च्यवित्वा क्व गच्छन्ति?, एतदेव व्याचष्टे—कोत्पद्यन्ते?, किं नैरयिकेषु गच्छन्ति यावद्देवेषु गच्छन्ति?, भगवानाह—गौतम! 'नो नेरइएसु उववज्जंति' इत्यादि यथा प्रज्ञापनायां षष्ठे व्युत्क्रान्त्याख्यपदे तथा वक्तव्यं, एष च सङ्क्षेपार्थ:—बादरपर्याप्तेषु पृथिव्यब्वनस्पतिषु पर्याप्तगर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु च सङ्ख्यातवर्षायुष्केषु, एवमीशानदेवा अपि, सनत्कुमारादय: सहस्रारपर्यन्ता: पर्याप्तगर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येष्वेव सङ्ख्यातवर्षायुष्केषु नैकेन्द्रियेष्वपि, आनतादयो यावदनुत्तरोपपातिका न तिर्यक्पञ्चेन्द्रियेष्वपि किन्तु यथोक्तरूपेषु मनुष्येषु ॥

सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु सव्वपाणा सव्वभूया जाव सत्ता पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सतिकाइयत्ताए देवत्ताए देवित्ताए आसणसयण जाव भंडोवगरणत्ताए उववण्णपुव्वा?, हंता

Jain Education Int... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२१]

दीप अनुक्रम [३४१]

गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो, सेसेसु कप्पेसु एवं चेव, णवरि नो चेव णं देवित्ताए जाव गेवेज्जगा, अणुत्तरोववातिएसुवि एवं, णो चेव णं देवत्ताए देवित्ताए। सेत्तं देवा ॥ (सू० २२१)

'सोहम्मे ण'मित्यादि, सौधर्मे भदन्त! कल्पे द्वात्रिंशद् विमानावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् विमाने सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सत्त्वाः, अमीषां व्याख्यानमिदम्—"प्राणा द्वित्रिचतुः प्रोक्ता, भूताश्च तरवः स्मृताः। जीवाः पञ्चेन्द्रिया ज्ञेयाः, शेषाः सत्त्वा उदीरिताः ॥ १ ॥" पृथ्वीकायतया देवतया देवीतया, इह च बहुषु पुस्तकेष्वेतावदेव सूत्रं दृश्यते, क्वचित्पुनरेतदपि —'आउकाइयत्ताए तेउकाइयत्ताए' इत्यादि तन्न सम्यगवगच्छामस्तेजस्कायस्य तत्रासम्भवात्, 'आसणे'त्यादि, आसनं—सिंहासनादि शयनं—पल्यङ्कः स्तम्भाः—प्रासादाद्यवष्टम्भहेतवः भाण्डमात्रोपकरणं—हारार्द्धहारकुण्डलादि तत्तयोत्पन्नपूर्वाः?, भगवानाह—गौतम! **'असकृत्'** अनेकवारमुत्पन्नपूर्वा इति सम्बन्धः, अथवा **'अनन्तकृत्वः'** अनन्तान् वारान्, सांव्यवहारिकराश्यन्तर्गतैर्जीवैः सर्वस्थानानां प्रायोऽनन्तशः प्राप्तत्वात्, एवमीशानेऽपि वक्तव्यं, सनत्कुमारेऽप्येवमेव, नवरं **'नो चेव णं देवित्ताए'** इति विशेषः तत्र देवीनामुत्पादाभावात्, एवं यावद् ग्रैवेयकाणि, 'पंचसु णं भंते! अणुत्तरे' इत्यादि पाठसिद्धं नवरं **'नो चेव णं देवित्ताए'** इति, अनन्तकृत्वो देवत्वस्य प्रतिषेधो विजयादिषु चतुर्षूत्कर्षतोऽपि वारद्वयं सर्वार्थसिद्धे महाविमाने एकवारं गमनसम्भवात्, तत ऊर्द्ध्वमवश्यं मनुष्यभवासादनेन मुक्तिप्राप्तेः, देवीत्वस्य च प्रतिषेधस्तत्रोत्पादासम्भवात् ॥ सम्प्रति चतुर्विधानामपि जीवानां सामान्यतो भवस्थितिं कायस्थितिं च प्रतिपिपादयिषुराह—

नेरइयाणं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्को-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, एवं सव्वेसिं पुच्छा, तिरिक्खजोणियाणं जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, एवं मणुस्साणवि, देवाणं जहा णेरतियाणं ॥ देवणेरइयाणं जा चेव ठिती सचेव संचिट्ठणा, तिरिक्खजोणियस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तो उक्कोसेणं वणस्सतिकालो, मणुस्से णं भंते! मणुस्सेति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं ॥ णेइरयमणुस्सदेवाणं अंतरं जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं वणस्सतिकालो। तिरिक्खजोणियस्स अंतरं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोपमसयपुहुत्तसाइरेगं ॥ (सू० २२२) एतेसि णं भंते! णेरइयाणं जाव देवाण य कयरे०?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा णेरइया असं० देवा असं० तिरिया अणंतगुणा, से तं चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ॥ (सू० २२३)

'नेरइयाणं भंते! केवइयं काल' मित्यादि, नैरयिकाणां जघन्यतः स्थितिर्दश वर्षसहस्राणि, एतद् रत्नप्रभाप्रथमप्रस्तटमपेक्ष्योक्तं, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, एतत्सप्तमनरकपृथिव्यपेक्षया, तिर्यग्योनिकानां जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि, एतद्देवकुर्वादिकमपेक्ष्य द्रष्टव्यं, एवं मनुष्याणामपि, देवानां जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि, एतद्भवनपतिव्यन्तरानधिकृत्यावबोद्धव्यं, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि, तानि विजयाद्यपेक्ष्य ॥ 'नेरइयाणं भंते!' इत्यादि, नैरयिको भदन्त! नैरयिकत्वेन कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह–गौतम! 'जा चेव भवट्ठिई सा चेव संचिट्ठणावि' यैव भवस्थितिः सैव 'संचिट्ठणावि' कायस्थितिरपि, नैर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिकस्याव्यवधानेन भूयो नैरयिकेषूत्पादाभावात्, 'नो नेरइए नेरइएसु उववज्जइ' इति वचनात्, **'तिरिक्खजोणिए णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं प्राग्वत्, गौतम! जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा मनुष्यादावुत्पादात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, वनस्पतिकायिकेष्वनन्तकालमवस्थानात्, तमेवानन्तकालं निरूपयति—वनस्पतिकालः, यावान् शास्त्रान्तरे वनस्पतिकाल उक्तस्तावन्तं कालमित्यर्थः, स चैवम्—'अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अणंता लोगा असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा, ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो' सुगमम्, मनुष्यविषयं प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, निर्वचनं—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा तिर्यगादिषूत्पादभावादिति, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि च महाविदेहादिषु सप्तसु मनुष्यभवेषु पूर्वकोट्यायुष्केषु अष्टमे च देवकुर्वादिषूत्पद्यमानस्य वेदितव्यानि। देवानां तु नैरयिकवद् यैव भवस्थितिः सैव कायस्थितिरपि, देवानामपि मृत्वा भूयोऽनन्तरं देवत्वेनोत्पादाभावात्' ''नो देवे देवेसु उववज्जइ'' इति वचनात्। साम्प्रतमन्तरं चिचिन्तयिषुराह—**'नेरइयस्स णं भंते'!** इत्यादि, नैरयिकस्य भदन्त! अन्तरं—नैरयिकत्वात्परिभ्रष्टस्य भूयो नैरयिकत्वप्राप्तेरपान्तरालं कालतः कियच्चिरं भवति?, कियन्तं कालं यावद्भवतीत्यर्थः, भगवानाह—जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कथमिति चेत्, उच्यते, नरकादुद्धृत्य मनुष्यभवे तिर्यग्भवे वाऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयो नरकेषूत्पादात्, तत्र मनुष्यभवभावनेयम्—कश्चिन्नरकादुद्धृत्य गर्भजमनुष्यत्वेनोत्पद्य सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तो विशिष्टसंज्ञानोपेतो वैक्रियलब्धिमान् राज्याद्याकाङ्क्षी परचक्राद्युपद्रवमाकर्ण्य स्वशक्तिप्रभावतश्चतुरङ्गं सैन्यं विकुर्विंत्वा सङ्ग्रामयित्वा च महारौद्रध्यानोपगतो गर्भस्थ एव कालं करोति कृत्वा च कालं भूयो नरकेषूत्पद्यते तत एवमन्तर्मुहूर्त्तं, तिर्यग्भवे नरकादुद्धृतो गर्भव्युत्क्रान्तिकतन्दुलमत्स्यत्वेनोत्पद्य महारौद्रध्यानोपगतोऽन्तर्मुहूर्त्तं जीवित्वा भूयो नरकेषु जात इति, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

परम्परया वनस्पतिपूत्पादादवसातव्यः, तथा चाह–वनस्पतिकालः, स च प्रागेवोक्तः । तिर्यग्योनिविषयं प्रश्नसूत्रं पूर्ववत्, निर्वचनं–जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्च कस्यापि तिर्यक्त्वेन मृत्वा मनुष्यभवेऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयस्तिर्यक्त्वेनोत्पद्यमानस्य द्रष्टव्यं, उत्कर्षतः सातिरेकं सागरोपमशतपृथक्त्वं, तच्च नैरन्तर्येण देवनारकमनुष्यभवभ्रमणेनावसातव्यं । मनुष्यविषयमपि प्रश्नसूत्रं तथैव, निर्वचनं–जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्च मनुष्यभवादुद्धृत्य तिर्यग्भवेऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयो मनुष्यत्वेनोत्पद्यमानस्यावसातव्यं, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालः प्रागुक्तो वनस्पतिकालः । देवविषयमपि प्रश्नसूत्रं सुगमं, निर्वचनं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कश्चिद्देवभवाच्च्युत्वा गर्भजमनुष्यत्वेनोत्पद्य सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तो विशिष्टसञ्ज्ञानोपेतस्तथाविधस्य श्रमणस्य श्रमणोपासकस्य वाऽन्ते धर्म्यमार्यं वचः श्रुत्वा धर्मध्यानोपगतो गर्भस्थ एव कालं करोति कालं च कृत्वा देवेषूत्पद्यते तत एवमन्तर्मुहूर्त्तं, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो यथोक्तस्वरूपो वनस्पतिकालः प्रतिपत्तव्यः ॥ साम्प्रतमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि ण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह–गौतम! सर्वस्तोका मनुष्याः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागवर्त्तिनभःप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो नैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेर्यत्प्रथमं वर्गमूलं तद्वितीयेन वर्गमूलेन गुण्यते गुणिते च सति यावान् प्रदेशराशिर्भवति तावत्प्रमाणासु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो देवा असङ्ख्येयगुणाः, व्यन्तराणां ज्योतिष्काणां च नैरयिकेभ्योऽप्यसङ्ख्येयगुणतया महादण्डके पठितत्वात्, तेभ्योऽपि तिर्यञ्चोऽनन्ताः, वनस्पतिजीवानामनन्तानन्तत्वात् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां चतुर्विधप्रतिपत्तौ विमानाधिकारे द्वितीयो वैमानिकोद्देशकः समाप्तः, तत्समाप्तौ च समाप्ता चतुर्विधा प्रतिपत्तिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय-प्रतिपत्तौ वैमानिक-उद्देशक: (२) परिसमाप्त:, तत् समाप्ते वैमानिक-उद्देशक: अपि परिसमाप्त:

अत्र तृतीया "चतुर्विधा" प्रतिपत्ति: परिसमाप्ता:

प्रत सूत्रांक [२२४]

दीप अनुक्रम [३४४]

अथ पञ्चविधजीवाख्या चतुर्थी प्रतिपत्तिः ।

तदेवमुक्ता चतुर्विधा प्रतिपत्तिः, सम्प्रति क्रमप्राप्तां पञ्चविधप्रतिपत्तिमाह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु—पंचविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तं०—एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया । से किं तं एगिंदिया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य, एवं जाव पंचिंदिया दुविहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । एगिंदियस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, बेइंदिय० जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं बारस संवच्छराणि, एवं तेइंदियस्स एगूणपण्णं राइंदियाणं, चउरिंदियस्स छम्मासा, पंचेंदियस्स जह० अंतोमु० उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, अपज्जत्तएगिंदियस्स णं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणवि अंतो० एवं सव्वेसिं, पज्जत्तेगिंदियाणं णं जाव पंचिन्दियाणं पुच्छा, जहन्नेणं अंतो० उक्को० बावीसं वाससहस्साइं अंतमुहुत्तोणाइं, एवं उक्कोसियावि ठिती अंतोमुहुत्तोणा सव्वेसिं पज्जत्ताणं कायव्वा ॥ एगिंदिए णं भंते! एगिंदिएत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो । बेइंदियस्स णं भंते! बेइंदियत्ति कालओ केवचिरं होइ?, जह० अंतो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्थी "पञ्चविधा" प्रतिपत्ति: आरब्धा:

संसारिजीवानाम् पञ्चविधत्वेन प्ररुपणं— एकेन्द्रियात् पञ्चेन्द्रिय-पर्यन्त जीवाधिकार: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [२२४]

दीप अनुक्रम [३४४]

मु० उक्कोसेणं संखेज्जं कालं जाव चउरिंदिए संखेज्जं कालं, पंचेंदिए णं भंते! पंचिंदिएत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० सागरोवमसहस्सं सातिरेगं ॥ एगिंदिए णं अपज्जत्तए णं भंते! कालओ केवचिरं होंति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं जाव पंचिंदियअपज्जत्तए। पज्जत्तगएगिंदिए णं भंते! कालओ केवचिरं होंति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं । एवं बेइंदिएवि, णवरिं संखेज्जाइं वासाइं। तेइंदिए णं भंते!० संखेज्जा राइंदिया। चउरिंदिए णं० संखेज्जा मासा। पज्जत्तपंचिंदिए सागरोवमसयपुहत्तं सातिरेगं ॥ एगिंदियस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं। बेंदियस्स णं अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो । एवं तेइंदियस्स चउरिंदियस्स पंचेंदियस्स, अपज्जत्तगाणं एवं चेव, पज्जत्तगाणवि एवं चेव ॥ (सू० २२४)

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः–पञ्चविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्तास्ते 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवन्तः, तमेव प्रकारमाह–तद्यथा–एकेन्द्रिया द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः, अमीषां पदानां व्याख्यानं प्राग्वत् ॥ 'से किं त'मित्यादीनि पञ्च पर्याप्तापर्याप्तसूत्राणि, 'एगिंदियस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिई?' इत्यादीनि पञ्च स्थितिसूत्राणि पाठसिद्धानि, अपर्याप्तकविशेषणविशिष्टान्यपि पञ्च स्थितिसूत्राणि पाठसिद्धानि, नवरं जघन्यादन्तर्मुहूर्त्तादुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तं बृहत्तरमवसातव्यं, पर्याप्तविशेषण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

विशिष्टान्यपि पञ्च स्थितिसूत्राणि सुप्रतीतानि, नवरमुत्कर्षतो द्वाविंशतिर्वर्षसहस्रादीन्यन्तर्मुहूर्त्तोनानि, अपर्याप्तककालेनान्तर्मुहूर्त्तेन हीनत्वात् ॥ सम्प्रति कायस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—**'एगिंदिए णं भंते! एगिंदिए'त्ति** इत्यादि, जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मृत्वा द्वीन्द्रियादिषूत्पादात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्तकालमेव निरूपयति—वनस्पतिकालः, वनस्पतिकालस्यैकेन्द्रियत्वात् एकेन्द्रियपदे तस्यापि परिग्रहात्, वनस्पतिकालश्च प्रागेवोक्तः। द्वित्रिचतुरिन्द्रियसूत्रे सङ्ख्येयं कालं—सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि "विगलिंदियाण वाससहस्सा संखेज्जा" इति वचनात्, पञ्चेन्द्रियसूत्रे सातिरेकं सागरोपमसहस्रं, तच्च नैरयिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवभवभ्रमणेन वेदितव्यं ॥ **'एगिंदियअपज्जत्तए णं भंते'** इत्यादि, जघन्यत उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तमपर्याप्तलब्धेरेतावत्कालप्रमाणत्वात्, एवं शेषाण्यपि चत्वार्यपर्याप्तकसूत्राणि भावनीयानि, एकेन्द्रियपर्याप्तकसूत्रे सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, एकेन्द्रियस्य हि पृथिवीकायस्योत्कर्षतो द्वात्रिंशतिर्वर्षसहस्राणि भवस्थितिः अप्कायस्य सप्त वर्षसहस्राणि तेजस्कायस्य त्रीणि रात्रिन्दिवानि वायुकायस्य त्रीणि वर्षसहस्राणि वनस्पतिकायस्य दश वर्षसहस्राणि, ततो निरन्तरकतिपयपर्याप्तभवसङ्कलनया सङ्ख्येयान्येव वर्षसहस्राणि घटन्त इति। द्वीन्द्रियपर्याप्तसूत्रे उत्कर्षतः सङ्ख्येयानि वर्षाणि, द्वीन्द्रियस्य हि उत्कर्षतो भवस्थितिपरिमाणं द्वादश वर्षाणि न च सर्वेष्वपि भवेषूत्कृष्टा स्थितिस्ततः कतिपयनिरन्तरपर्याप्तभवसङ्कलनयापि सङ्ख्येयानि वर्षाण्येव लभ्यन्ते न तु वर्षशतानि वर्षसहस्राणि वा। त्रीन्द्रियपर्याप्तसूत्रे सङ्ख्येयानि रात्रिन्दिवानि, तेषां भवस्थितेरुत्कर्षतोऽप्येकोनपञ्चाशद्दिनमानतया कतिपयनिरन्तरपर्याप्तभवसङ्कलनायामपि सङ्ख्येयानां रात्रिन्दिवानामेव लभ्यमानत्वात्। चतुरिन्द्रियपर्याप्तसूत्रे सङ्ख्येया मासास्तेषां भवस्थितेरुत्कर्षतः षण्मासप्रमाणतया कतिपयनिरन्तरपर्याप्तभवकालसङ्कलनया सङ्ख्येयानां मासानां प्राप्यमानत्वात्। पञ्चेन्द्रियपर्याप्तसूत्रे सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तच्च पूर्ववत् ॥ **'एगिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालतो केवचिरं होइ?'** इति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२४]

दीप अनुक्रम [३४४]

श्रीजीवा-जीवाभि० मलयगि-रीयावृत्तिः ॥ ४०९ ॥

प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तच्चैकेन्द्रियादुद्धृत्य द्वीन्द्रियादावन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूय एकेन्द्रियत्वेनोत्पद्यमानस्य वेदितव्यं, उत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे सङ्ख्येयवर्षाभ्यधिके, यावानेव हि त्रसकायस्य कायस्थितिकालस्तावदेवैकेन्द्रियस्यान्तरं, त्रसकायस्थितिकालश्च यथोक्तप्रमाणः, तथा च वक्ष्यति—'तसकाइए णं भंते! तसकायत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं' । द्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियसूत्रेषु जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च पूर्वप्रकारेण भावनीयं, उत्कर्षतः सर्वत्रापि वनस्पतिकालः, द्वीन्द्रियादिभ्य उद्धृत्य वनस्पतिषु यथोक्तप्रमाणमनन्तमपि कालमवस्थानात् । यथैवामूनि पञ्च सूत्राण्यन्तरविषयाण्यौधिकान्युक्तानि तथैव पर्याप्तविषयाण्यपर्याप्तविषयाण्यपि भणनीयानि, तानि चैवम्—'एगिंदियअपज्जत्तस्स णं भंते! अंतरं कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तमुक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं, बेइंदियअपज्जत्तस्स णं भंते! अंतरं कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो, एवं जाव पंचेंदियअपज्जत्तस्स ।' एवं पञ्च पर्याप्तसूत्राण्यपि वक्तव्यानि ॥ साम्प्रतमल्पबहुत्वमाह—

एएसि णं भंते! एगिंदि बेइं० तेइं० चउ० पंचिंदियाणं कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेइंदिया विसेसाहिया एगिंदिया अणंतगुणा। एवं अपज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा पंचेंदिया अपज्जत्तगा चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया बेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया एगिंदिया अपज्जत्तगा अणंतगुणा सइंदियाप० वि०॥ सव्वत्थोवा चतुरिं-

४ प्रतिपत्तौ एकेन्द्रियादिस्थित्यादि उद्देशः २ सू० २२४

॥ ४०९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

दिया पज्जत्तगा पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया बेंदियपज्जत्तगा विसेसाहिया तेइंदियपज्जत्तगा विसेसाहिया एगिंदियपज्जत्तगा अणंतगुणा, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ॥ एतेसि णं भंते! सइंदियाणं पज्जत्तगअपज्जत्तगाणं कयरे २?, गोयमा! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा सइंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा। एवं एगिंदियावि ॥ एतेसि णं भंते! बेइंदियाणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं अप्पाबहुं?, गोयमा! सव्वत्थोवा बेइंदिया पज्जत्तगा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, एवं तेंदियचउरिंदियपंचेंदियावि ॥ एएसि णं भंते! एगिंदियाणं बेइंदि० तेइंदि० चउरिंदि० पंचेंदियाण य पज्जत्तगाण य अपज्जत्तगाणं य कयरे २?, गोयमा! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा पंचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया बेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया पंचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा चउरिंदिया अपज्जत्ता विसेसाहिया तेइंदियअपज्जत्ता विसेसाहिया बेइंदिया अपज्जत्ता विसेसाहिया एगिंदियअपज्जत्ता अणंतगुणा सइंदिया अपज्जत्ता विसेसाहिया एगिंदियपज्जत्ता संखेज्जगुणा सइंदियपज्जत्ता विसेसाहिया सइंदिया विसेसाहिया। सेत्तं पंचविधा संसारसमावण्णगा जीवा ॥ (सू० २२५)

'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सर्वस्तोकाः पञ्चेन्द्रियाः, सङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणविष्कम्भसूचीप्रमितप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यश्चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, विष्कम्भसूच्यास्तेषां प्रभूत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि त्रीन्द्रिया विशेषाधिकास्तेषां विष्कम्भसूच्याः प्रभूततरसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रिया विशेषाधिकास्तेषां विष्कम्भसूच्याः प्रभूततमसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीमानत्वात्, तेभ्य एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः, वनस्पतीनामनन्तानन्तत्वात् ॥ सम्प्रत्येतेषामेवापर्याप्तविशेषणविशिष्टानामल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः पञ्चेन्द्रिया अपर्याप्तकाः, एकस्मिन् प्रतरे यावन्त्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्यश्चतुरिन्द्रियापर्याप्ता विशेषाधिकाः प्रभूततराङ्गुलासङ्ख्येयभागखण्डप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्त्रीन्द्रियापर्याप्ता विशेषाधिकाः प्रभूततरप्रतराङ्गुलासङ्ख्येयभागखण्डप्रमाणत्वात्, तेभ्यो द्वीन्द्रियापर्याप्ता विशेषाधिकाः प्रभूततमप्रतराङ्गुलासङ्ख्येयभागखण्डमानत्वात्, तेभ्य एकेन्द्रियापर्याप्ता अनन्तगुणाः, वनस्पतिकायिकानामपर्याप्तानामनन्तानन्ततया सदा प्राप्यमाणत्वात् ॥ अधुनैतेषामेव पर्याप्तविशेषणविशिष्टानामल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाश्चतुरिन्द्रियाःपर्याप्ता यतोऽल्पायुषश्चतुरिन्द्रियास्ततः प्रभूतकालमवस्थानाभावात् पृच्छासमये स्तोका अवाप्यन्ते, ते च स्तोका अपि प्रतरे यावन्त्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणा वेदितव्याः, तेभ्यः पञ्चेन्द्रियपर्याप्ता विशेषाधिकाः, प्रभूततराङ्गुलासङ्ख्येयभागखण्डमानत्वात्, तेभ्योऽपि द्वीन्द्रियाः पर्याप्ता विशेषाधिकाः प्रभूततरप्रतराङ्गुलसङ्ख्येयभागखण्डप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि त्रीन्द्रियपर्याप्ता विशेषाधिकाः, स्वभावत एव तेषां प्रभूततराङ्गुलसङ्ख्येयभागखण्डप्रमाणत्वात्, तेभ्य एकेन्द्रियाः पर्याप्ता अनन्तगुणाः, वनस्पतिकायिकानां पर्याप्तानामनन्तत्वात् ॥ साम्प्रतमेतेषामेव प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तानां समुदितानामल्पबहुत्वमभिधित्सुः प्रथमत एकेन्द्रियाणामाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं गतं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका एकेन्द्रिया अपर्याप्ताः, पर्याप्तकाः सङ्ख्येयगुणाः, एकेन्द्रियेषु हि बहवः सूक्ष्माः सर्वलो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२२५]

दीप अनुक्रम [३४५]

कापन्नत्वात्, सूक्ष्माश्चापर्याप्ताः सर्वस्तोकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, द्वीन्द्रियसूत्रे सर्वस्तोका द्वीन्द्रियापर्याप्ता यावन्ति प्रतरेऽङ्गुलस्य सङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणत्वात् तेषां, तेभ्योऽपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः प्रतरगताङ्गुलासङ्ख्येयभागखण्डप्रमाणत्वात्, एवं त्रिचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाल्पबहुत्वान्यपि वक्तव्यानि ॥ साम्प्रतमेकेन्द्रियाणां समुदितानां पर्याप्तापर्याप्तानामल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, इदं प्रागुक्ततृतीयद्वितीयाल्पबहुत्वभावनानुसारेण स्वयं भावनीयं, तत्त्वतो भावितत्वात्, उपसंहारमाह—'सेत्तं पंचविहा' इत्यादि ॥ इतिश्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां पञ्चविधा प्रतिपत्तिः चतुर्थी समाप्ता ॥

उक्ता पञ्चविधा प्रतिपत्तिरधुना क्रमप्राप्तां षड्विधप्रतिपत्तिमभिधित्सुराह—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा ते एवमाहंसु, तंजहा—पुढविकाइया आउक्काइया तेउ० वाउ० वणस्सतिकाइया तसकाइया ॥ से किं तं पुढवि०?, पुढवी० दुविहा पण्णत्ता तं०—सुहुमपुढविक्काइया बादरपुढविकाइया, सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं बायरपुढविकाइयावि, एवं चउक्कएणं भेएणं आउतेउवाउवणस्सतिकाइयाणं चतु० णेयव्वा। से किं तं तसकाइया?, २ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥ (सू० २२६) पुढविकाइयस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं, एवं सव्वेसिं ठिती णेयव्वा, तसकाइयस्स जहन्नेणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र चतुर्थी "पञ्चविधा" प्रतिपत्ति: परिसमाप्ता: अथ पञ्चमी "षड्विधा" प्रतिपाति: आरब्धा:

*** संसारिजीवानाम् षड्विधत्वेन प्ररुपणं— पृथ्वि, अप्, तेउ, वायु, वनस्पतिपर्यन्त एवं त्रस-जीवाधिकार: आरभ्यते

अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं जहन्नेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं सव्वेसिं उक्कोसिया ठिती अंतोमुहुत्तऊणा कायव्वा ॥ (सू० २२७) पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइयत्तिकालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया। एवं जाव आउ० तेउ० वाउकाइयाणं वणस्सइकाइयाणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जतिभागो॥ तसकाइए णं भंते!० जहन्नेणं अंतोमु० उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं । अपज्जत्तगाणं छण्हवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं—'वाससहस्सा संखा पुढविदगाणिलतरूणं पज्जत्ता। तेऊ राईदिसंखा तससागरसंतपुहुत्ताइं ॥ १ ॥' पज्जत्तगाणवि सव्वेसिं एवं ॥ पुढविकाइयस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणप्फतिकालो । एवं आउतेउवाउकाइयाणं वणस्सइकालो, तसकाइयाणवि, वणस्सइकाइयस्स पुढविकाइयकालो । एवं अपज्जत्तगाणवि वणस्सइकालो, वणस्सईणं पुढविकालो, पज्जत्तगाणवि एवं चेव वणस्सइकालो, पज्जत्तवणस्सईणं पुढविकालो ॥ (सू० २२८)

'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः षड्विधाः संसारसमापन्नका जीवास्ते 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेणोक्तवन्तः, तमेव प्रकारमाह, तद्यथा—पृथ्वीकायिका इत्यादि प्राग् व्याख्यातं॥ 'से किं तं पुढविक्काइया' इत्यादीनि पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिविषयाणि त्रीणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

त्रीणि त्रसकायविषयमेकमिति सर्वसङ्ख्यया षोडश सूत्राणि पाठसिद्धानि ॥ **'पुढविक्काइयस्स णं भंते!'** इत्यादि स्थितिविषयं सूत्रषट्कं सुप्रतीतं, तत्र जघन्यं सर्वत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पृथिवीकायिकस्य द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि अप्कायिकस्य सप्त तेजस्कायिकस्य त्रीणि रात्रिन्दिवानि वातकायस्य त्रीणि वर्षसहस्राणि वनस्पतिकायस्य दशवर्षसहस्राणि त्रसकायस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । अपर्याप्तविषयाण्यपि षट् सूत्राणि पाठसिद्धानि, सर्वत्र जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्ताभिधानात्, नवरमुत्कृष्टमन्तर्मुहूर्त्तं बृहत्तरं वेदितव्यं । पर्याप्तविषया षट्सूत्री पाठसिद्धा, नवरमन्तर्मुहूर्त्तोनत्वं अपर्याप्तकालभाविनाऽऽन्तर्मुहूर्त्तेन हीनत्वात् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—**'पुढविक्काइए णं भंते! पुढविक्काइय'**त्ति इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, पृथ्वीकायादुद्धृत्यान्यत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः पृथिवीकायत्वेन कस्याप्युत्पादात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, तमेव कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः, एषा कालतो मार्गणा, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, किमुक्तं भवति?—असङ्ख्येयेषु लोकप्रमाणेष्वाकाशखण्डेषु प्रतिसमयमेकैकप्रदेशापहारे यावता कालेन तान्यसङ्ख्येयान्यपि लोकाकाशखण्डानि निर्लेपितानि भवन्ति तावन्तमसङ्ख्येयं कालं यावदिति । एवमप्तेजोवायुसूत्राण्यपि वक्तव्यानि । वनस्पतिसूत्रे जघन्यं तथैव, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेव कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः, कालत एषा मार्गणा, क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः—अनन्तानन्तेषु लोकालोकाकाशेषु प्रतिसमयमेकैकप्रदेशापहारे यावता कालेन तान्यपि लोकालोकाकाशखण्डानि निर्लेपानि भवन्ति तावन्तमनन्तकालमित्यर्थः, तमेव पुद्गलपरावर्त्तेन निरूपयति—असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, पुद्गलपरावर्त्तस्वरूपं पञ्चसङ्ग्रहटीकातो भावनीयं, पुद्गलपरावर्त्तगतमेवासङ्ख्येयत्वं निर्द्धारयति—**'ते णं'**मित्यादि, ते पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, आवलिकाया असङ्ख्येये भागे यावन्तः समयास्तावन्त इत्यर्थः, अयं चार्थोऽन्यत्रापि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२२६--२२८] + गाथा

दीप अनुक्रम [३४६--३५०]

सङ्क्षेपेणोक्तः—"अस्संखोसप्पिणीसप्पिणीउ एगिंदियाण य चउण्हं । ता चेव ऊ अणंता वणस्सईए उ बोद्धव्वा ॥ १॥" त्रसकायसूत्रे द्वे सागरोपमसहस्रे सङ्क्षेयवर्षाभ्यधिके, एतावत एवाव्यवधानेन त्रसकायत्वकालस्य केवलवेदसोपलब्धत्वात् । अपर्याप्तविषयायां षट्सूत्र्यां सर्वत्रापि जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तम्, अपर्याप्तलब्धेरुत्कर्षतोऽप्येतावत्कालप्रमाणत्वात् । पृथिवीकायिकपर्याप्तसूत्रे उत्कर्षतः सङ्क्षेयानि वर्षसहस्राणि, पृथिवीकायिकस्य हि भवस्थितिरुत्कर्षतोऽपि द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि ततः कतिपयनिरन्तरपर्याप्तभवमीलने सङ्क्षेयानि वर्षसहस्राणि लभ्यन्ते नाधिकं । एवमप्कायिकसूत्रेऽपि वक्तव्यं, तेजस्कायिकसूत्रे सङ्क्षेयानि रात्रिन्दिवानि, तेजस्कायिकस्य हि भवस्थितिरुत्कर्षतोऽपि त्रीणि रात्रिन्दिवानि, ततो निरन्तरकतिपयपर्याप्तभवसङ्कलनायामपि सङ्क्षेयानि रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते न तु मासा वर्षाणि वर्षसहस्राणि वा। वायुकायिकसूत्रं वनस्पतिकायिकसूत्रं पृथिवीकायिकसूत्रवत् । त्रसकायसूत्रे सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकम् ॥ सम्प्रत्यन्तरनिरूपणार्थमाह—**'पुढविकाइयस्स णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं पृथिवीकायादुद्धृत्यान्यत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः पृथिवीकायिकत्वेन कस्यचिदुत्पादात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालः प्रागुक्तस्वरूपो वनस्पतिकालः प्रतिपत्तव्यः, पृथिवीकायादुद्धृत्य तावन्तं कालं वनस्पतिष्ववस्थानसम्भवात् । एवमप्तेजोवायुत्रससूत्राण्यपि भावनीयानि । वनस्पतिसूत्रे उत्कर्षतोऽसङ्क्षेयं कालम् 'असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो असंखेज्जा लोगा' इति वक्तव्यं, वनस्पतिकायादुद्धृत्य पृथिव्यादिष्ववस्थानात् तेषु च सर्वेष्वप्युत्कर्षतोऽप्येतावत्कालभावात् ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वमाह—

अप्पाबहुयं–सव्वत्थोवा तसकाइया तेउक्काइया असंखेज्जगुणा पुढविकाइया विसेसाहिया आउकाइया विसेसाहिया वाउक्काइया विसेसाहिया वणस्सतिकाइया अणंतगुणा एवं अपज्जत्तगावि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पज्जत्तगावि ॥ एतेसि णं भंते! पुढविकाइयाणं पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण य कयरे२हिंतो अप्पा वा एवं जाव विसेसाहिया?, गोयमा! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, एतेसि णं० सव्वत्थोवा आउक्काइया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा जाव वणस्सतिकाइयावि, सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ॥ एएसि णं भंते! पुढविकाइयाणं जाव तसकाइयाणं पज्जत्तगअपज्जत्तगाण य कयरे२हिंतो अप्पा वा ४?, सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा तसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा तेउक्काइया अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा पुढविक्काइया आउक्काइया वाउक्काइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया तेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा पुढविआउवाउपज्जत्तगा विसेसाहिया, वणस्सतिकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया, वणस्सतिकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ॥ (सूत्रं २२९) सुहुमस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं एवं जाव सुहुमणिओयस्स, एवं अपज्जत्तगाणवि पज्जत्तगाणवि जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं ॥ (सू० २३०)

'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोकास्त्रसकायिकाः, द्वीन्द्रियादीनामेव त्रसकायत्वात् तेषां च शेषकायापेक्षयाऽल्पत्वात्, तेभ्यस्तेजस्का-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यिका असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्यः पृथिवीकायिका विशेषाधिकाः, प्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात् तेषां च शेषकायापेक्षयाऽल्पत्वात्, तेभ्योऽप्कायिका विशेषाधिकाः, प्रभूततरासङ्ख्येयभागलोकाकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यो वायुकायिका विशेषाधिकाः, प्रभूततमासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशमानत्वात्, तेभ्यो वनस्पतिकायिका अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशमानत्वात् ॥ साम्प्रतमेतेषामेवापर्याप्तानां द्वितीयमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि णं'**मित्यादि, एतदपि तथैव । अधुनैतेषामेव पर्याप्तानामल्पबहुत्वमाह—**'एएसि णं'**मित्यादि, एतदपि तथैव ॥ साम्प्रतमेतेषामेव पृथिवीकायादीनां प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तगतालपबहुत्वमाह—**'एएसि णं'**मित्यादि, सर्वस्तोकाः पृथिवीकायिका अपर्याप्ताः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, पृथिवीकायिका हि बहवः सूक्ष्माः सकललोकगतत्वात्, तेषु च पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, एवमप्तेजोवायुवनस्पतिसूत्राणि भावनीयानि, त्रसकायसूत्रे सर्वस्तोकाः पर्याप्तास्त्रसकायिका अपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः, त्रसकायानां पर्याप्तानां यथाक्रमं प्रतरगताङ्गुलसङ्ख्येयभागखण्डप्रमाणत्वात् ॥ साम्प्रतमेतेषां समुदितानां पर्याप्तापर्याप्तानामल्पबहुत्वमाह—**'एएसि णं भंते!'** इत्यादि, सर्वस्तोकास्त्रसकायिकाः पर्याप्तास्तेभ्यस्त्रसकायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, अत्र कारणं प्रागेवोक्तं, ततस्तेजस्कायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, ततः पृथिव्यब्वायवोऽपर्याप्तकाः क्रमेण विशेषाधिकाः प्रभूतप्रभूततरप्रभूततमासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तदनन्तरं तेजस्कायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानां सङ्ख्येयगुणत्वात्, ततः पृथिव्यब्वायवः पर्याप्ताः क्रमेण विशेषाधिकाः, ततो वनस्पतिकायिका अपर्याप्ता अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्यो वनस्पतिकायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः सूक्ष्मेष्वपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानां सङ्ख्येयगुणत्वात् सूक्ष्माश्च सर्वबहव इति तदपेक्षमिदमल्पबहुत्वम् ॥ सम्प्रत्यमीषामेव कायानां सूक्ष्माणां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

स्थित्यादि चिचिन्तयिषुराह–**'सुहुमस्स णं भंते'** इत्यादि, सूक्ष्मस्य सामान्यतो निगोदरूपस्यानिगोदरूपस्य वा भदन्त! कियन्तं कालं स्थिति: प्रज्ञप्ता?, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेणाप्यन्तर्मुहूर्त्तं, नवरमुत्कर्षतो विशेषाधिकमवसातव्यम्, अन्यथोत्कर्षायोगात्। एवं सूक्ष्मपृथिवीकायाप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकवनस्पतिकायसूक्ष्मनिगोदविषयाण्यपि षट् सूत्राणि वक्तव्यानि, अथ सूक्ष्मवनस्पतिर्निगोदा एव ततस्तत्सूत्रेणैव गतमिति किमर्थं पृथग् निगोदसूत्रं?, तदयुक्तं सम्यग्वस्तुतत्त्वापरिज्ञानात्, सूक्ष्मवनस्पतयो हि जीवा विवक्षिता:, सूक्ष्मनिगोदास्तु प्रत्येकमनन्तानां जीवानामाधारभूता: शरीररूपास्ततो न कश्चिद्दोष:, उक्तञ्च—"गोला य असंखेज्जा असंखनिगोदो य गोलओ भणिओ। एक्किक्कंमि निगोए अणंतजीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥ एगो असंखभागो वट्टइ उव्वट्टणोववायंमि। एगनिगोदे निच्चं एवं सेसेसुवि स एव ॥ २ ॥ अंतोमुहुत्तमेत्तं ठिई निगोयाण जंति निद्दिट्ठा। पलट्टंति निगोया तम्हा अंतोमुहुत्तेणं ॥ ३ ॥" आसामक्षरगमनिका–सूक्ष्मनिगोदै: सकल एव लोक: सर्वतो व्याप्तोऽञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गवत्, तस्मिन्नित्थं निगोदैर्व्याप्ते लोके निगोदमात्रावगाहना असङ्ख्येया निगोदा वृत्ताकारा बृहत्प्रमाणा गोलका इति व्यपदिश्यन्ते, निगोद इति च नाम अनन्तानां जीवानामेकं शरीरं, तत उक्तम्–असङ्ख्येया गोला:, एकैकस्मिंश्च गोलकेऽसङ्ख्येया निगोदा एकैकश्च निगोद: अनन्तजीव इति, एकस्मिंश्च निगोदे येऽनन्ता जीवास्तेषामेकोऽसङ्ख्येयतमो भाग: प्रतिसमयमुद्वर्त्ततेऽन्यश्चोत्पद्यते, तथा हि विवक्षिते समये विवक्षितस्य निगोदस्यैकोऽसङ्ख्येयतमो भाग उद्वर्त्ततेऽन्यश्चासङ्ख्येयतमो भागस्तस्मिन्नपूर्व उत्पद्यते, द्वितीयेऽपि समयेऽन्योऽसङ्ख्येयभाग उद्वर्त्तते अन्यश्चापूर्व उत्पद्यते, एवं सकलकालमनुसमयमुद्वर्त्तनोपपातौ, अत एव 'एगनिगोदे निच्च'मिति नित्यग्रहणं, यथा चैकस्मिन्निगोदे तथा सर्वेष्वप्यसङ्ख्येयेषु सर्वलोकव्यापिषु निगोदेषु प्रतिपत्तव्यं, सर्वेषामपि च निगोदानां निगोदजीवानां स्थितिर्विनिर्दिष्टाऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२२९--२३०]

दीप अनुक्रम [३५१--३५२]

तस्मात्सर्वेऽपि निगोदा अनुसमयमुद्वर्त्तनोत्पाताभ्यामन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण परावर्त्तन्ते न च शून्या भवन्तीति । एवं सप्तसूत्री अपर्याप्तविषया सप्तसूत्री पर्याप्तविषया वक्तव्या, सर्वत्रापि जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तम् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—

सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं जाव असंखेज्जा लोया, सव्वेसिं पुढविकालो जाव सुहुमणिओयस्स पुढविकालो, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, एवं पज्जत्तगाणवि सव्वेसिं जहण्णेणवि उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं ॥ (सू० २३१) सुहुमस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं अंतोमु० उक्को० असंखेज्जं कालं कालओ असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जतिभागो, सुहुमवणस्सतिकाइयस्स सुहुमणिओयस्सवि जाव असंखेज्जइभागो । पुढविकाइयादीणं वणस्सतिकालो । एवं अपज्जत्तगाणं पज्जत्तगाणवि ॥ (सू०२३२)

'सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्तिकालओ' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, अन्तर्मुहूर्त्तानन्तरं बादरपृथिव्यादावुत्पादात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयकालं, तमेवासङ्ख्येयकालं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति–असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः, एषा कालतो मार्गणा क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, असङ्ख्येयानां लोकाकाशानां प्रतिसमयमेकैकाकाशप्रदेशापहारे यावता कालेन निर्लेपता भवति तावान् असङ्ख्येयः काल इति भावः । एवं सूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिनिगोदसूत्राण्यपि भावनीयानि । सम्प्रति सूक्ष्मादीनामेवापर्याप्तानां कायस्थितिमभिधित्सुराह—**'सुहुमअपज्जत्तए णं भंते'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्यतोऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

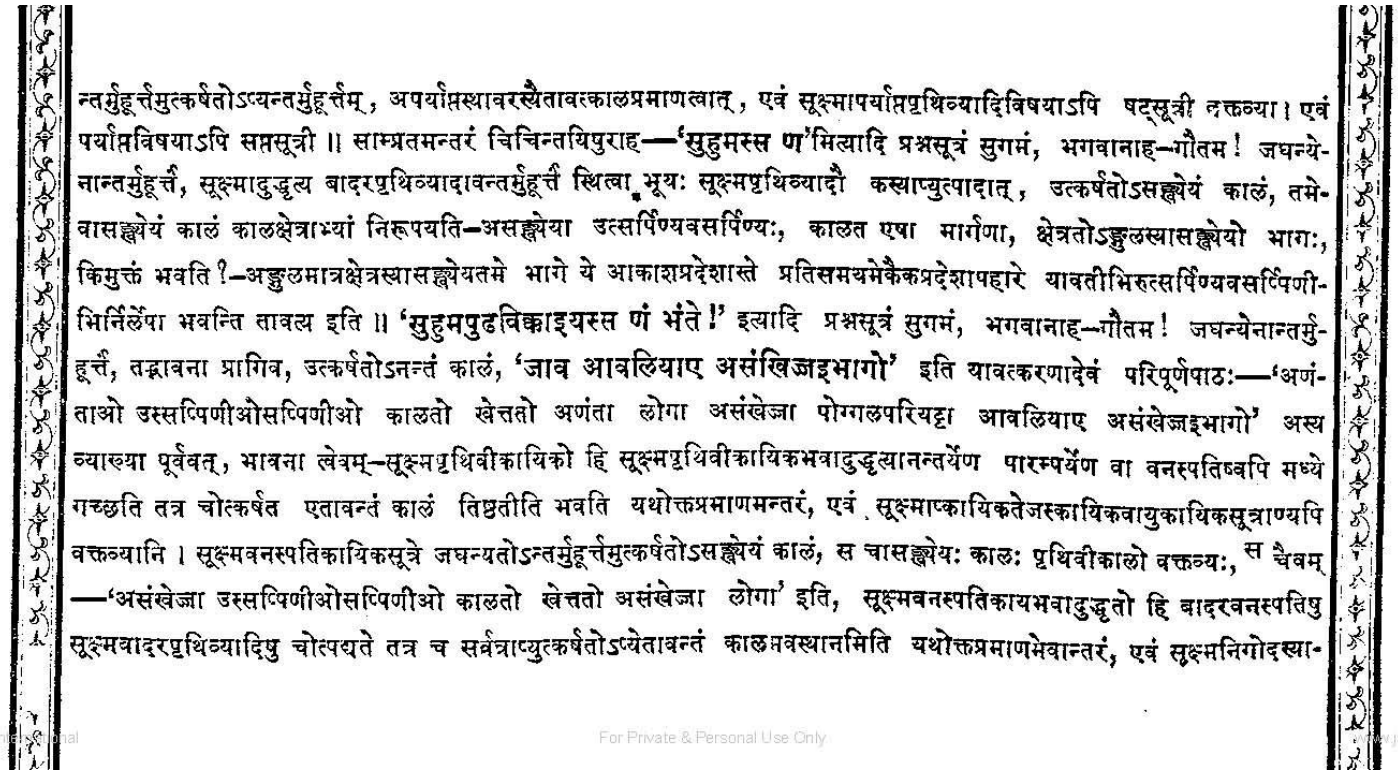

जी० ७०

न्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तम्, अपर्याप्तस्यावरस्यैतावत्कालप्रमाणत्वात्, एवं सूक्ष्मापर्याप्तपृथिव्यादिविषयाऽपि षट्सूत्री वक्तव्या। एवं पर्याप्तविषयाऽपि सप्तसूत्री ॥ साम्प्रतमन्तरं चिचिन्तयिषुराह—'सुहुमस्स णं'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, सूक्ष्मादुद्धृत्य बादरपृथिव्यादावन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः सूक्ष्मपृथिव्यादौ कस्याप्युत्पादात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, तमेवासङ्ख्येयं कालं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति–असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः, कालत एषा मार्गणा, क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भागः, किमुक्तं भवति?–अङ्गुलमात्रक्षेत्रस्यासङ्ख्येयतमे भागे ये आकाशप्रदेशास्ते प्रतिसमयमेकैकप्रदेशापहारे यावतीभिरुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभिर्निर्लेपा भवन्ति तावत्य इति ॥ 'सुहुमपुढविक्काइयस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तद्भावना प्रागिव, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, 'जाव आवलियाए असंखिज्जइभागो' इति यावत्करणादेवं परिपूर्णपाठः—'अणंताओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अणंता लोगा असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो' अस्य व्याख्या पूर्ववत्, भावना त्वेवम्–सूक्ष्मपृथिवीकायिको हि सूक्ष्मपृथिवीकायिकभवादुद्धृत्यानन्तर्येण पारम्पर्येण वा वनस्पतिष्वपि मध्ये गच्छति तत्र चोत्कर्षत एतावन्तं कालं तिष्ठतीति भवति यथोक्तप्रमाणमन्तरं, एवं सूक्ष्माप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकसूत्राण्यपि वक्तव्यानि। सूक्ष्मवनस्पतिकायिकसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, स चासङ्ख्येयः कालः पृथिवीकालो वक्तव्यः, स चैवम्—'असंखेज्जा उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो असंखेज्जा लोगा' इति, सूक्ष्मवनस्पतिकायभवादुद्धृतो हि बादरवनस्पतिषु सूक्ष्मबादरपृथिव्यादिषु चोत्पद्यते तत्र च सर्वत्राप्युत्कर्षतोऽप्येतावन्तं कालमवस्थानमिति यथोक्तप्रमाणमेवान्तरं, एवं सूक्ष्मनिगोदस्था-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्यन्तरं वक्तव्यं, यथा चेयमौधिकी सप्तसूत्री उक्ता तथाऽपर्याप्तविषया सप्तसूत्री पर्याप्तविषया च सप्तसूत्री वक्तव्या, नानात्वाभावात्॥ साम्प्रतमेतेषामल्पबहुत्वमाह—

एवं अप्पाबहुगं, सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया सुहुमआउवाऊ विसेसाहिया सुहुमणिओया असंखेज्जगुणा सुहुमवणस्सतिकाइया अणंतगुणा सुहुमा विसेसाहिया, एवं अपज्जत्तगाणं, पज्जत्तगाणवि एवं चेव ॥ एतेसि णं भंते! सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे० ?, सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा संखेज्जगुणा पज्जत्तगा एवं जाव सुहुमणिगोया ॥ एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमणिओयाण य पज्जत्तापज्जत्ता० कयरे २?, सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमआउअपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमवाउअपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमपुढविआउवाउपज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमणिओया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमणिओया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमवणस्सतिकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा सुहुमअपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमवणस्सइपज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमा पज्जत्ता विसेसाहिया ॥ (सू० २३३)

'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोकाः सूक्ष्मतेजस्कायिकाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मपृथिवीकायिका विशेषाधिकाः, प्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशपरिमाणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्माप्कायिका विशेषाधिकाः, प्रभूततरासङ्ख्येयलोकाकाशप्रमाणत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२३३]
दीप अनुक्रम [३५५]

तेभ्यः सूक्ष्मवायुकायिका विशेषाधिकाः, प्रभूततमासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिमानत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा असङ्ख्येयगुणाः, तेषां प्रतिगोलकमसङ्ख्येयत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिका अनन्तगुणाः, प्रतिनिगोदमनन्तानां सद्भावात्, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्मा विशेषाधिकाः, सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात्, तेषामौधिकानामिदमल्पबहुत्वम् । इदानीमेतेषामेवापर्याप्तानामाह—'एएसि णं भंते! सुहुमअपज्जत्ताण'मित्यादि सर्वं प्राग्वद् भावनीयं । साम्प्रतमेतेषामेव पर्याप्तानां तृतीयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते! सुहुमपज्जत्तगाण'मित्यादि, इदमपि प्रागुक्तक्रमेणैव भावनीयं ॥ अधुनाऽमीषामेव सूक्ष्मादीनां प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तगतान्यल्पबहुत्वान्याह—'एएसि णं भंते! सुहुमाणं पज्जत्तगाण'मित्यादि, इह बादरेषु पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, एकैकपर्याप्तनिश्रया असङ्ख्येयानामपर्याप्तानामुत्पादात्, तथा चोक्तं **प्रज्ञापनायां** प्रथमे प्रज्ञापनाख्ये पदे—"पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति, सूक्ष्मेषु पुनर्नायं क्रमः, पर्याप्ताश्चापर्याप्तापेक्षया चिरकालावस्थायिन इति सदैव ते बहवो लभ्यन्ते तत उक्तं सर्वस्तोकाः सूक्ष्मा अपर्याप्ताः तेभ्यः सूक्ष्माः पर्याप्तकाः सङ्ख्येयगुणाः, एवं पृथ्वीकायादिष्वपि प्रत्येकं भावनीयम् ॥ गतं चतुर्थमल्पबहुत्वमिदानीं सर्वेषां समुदितानां पर्याप्तापर्याप्तानां पञ्चममल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोकाः सूक्ष्मतेजस्कायिका अपर्याप्ताः, कारणं प्रागेवोक्तं, तेभ्यः सूक्ष्मपृथिव्यब्वायवोऽपर्याप्ताः क्रमेण विशेषाधिकाः, अत्रापि कारणं प्रागेवोक्तं, तेभ्यः सूक्ष्मतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, अपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानां सङ्ख्येयगुणानामेव भावितत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मपृथिव्यब्वायवः पर्याप्ताः क्रमेण विशेषाधिकाः, कारणं प्रागेवोक्तं, ततः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणास्तेषामतिप्राचुर्यात्, तेभ्यः सूक्ष्मा निगोदाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानामोघतः सङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिका अपर्याप्ता अन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्तगुणाः, प्रतिनिगोदमनन्तानां तेषां भावात्, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्मा अपर्याप्ता विशेषाधिकाः, सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेषु हि अपर्याप्तेभ्यः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, यच्चापान्तराले विशेषाधिकत्वं तदल्पमिति न सङ्ख्येयगुणत्वव्याघातः, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्माः पर्याप्ता विशेषाधिकाः, सूक्ष्मपृथिव्यादीनामपि पर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात् ॥ सम्प्रति बादरादीनां स्थित्यादि निरूपयति—

बायरस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमु० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, एवं बायरतसकाइयस्सवि बायरपुढवीकाइयस्स बावीसवाससहस्साइं बायरआउस्स सत्तवाससहस्सं बायरतेउस्स तिण्णि राइंदिया बायरवाउस्स तिण्णि वाससहस्साइं बायरवण० दसवाससहस्साइं, एवं पत्तेयसरीरबादरस्सवि, णिओयस्स जहन्नेणवि उक्कोसेणवि अंतोमु०, एवं बायरणिओयस्सवि, अपज्जत्तगाणं सव्वेसिं अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं उक्कोसिया ठिई अंतोमुहुत्तूणा कायव्वा सव्वेसिं ॥ (सू० २३४)

'बायरस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्धं मरणात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, एवं बादरपृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिप्रत्येकबादरनिगोदबादरत्रसकायिकसूत्राण्यपि वक्तव्यानि, सर्वत्र हि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षचिन्तायामयं विशेषः—बादरपृथिवीकायिकस्योत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि बादराप्कायिकस्य सप्त वर्षसहस्राणि बादरतेजस्कायिकस्य त्रीणि रात्रिन्दिवानि बादरवायुकायिकस्य त्रीणि वर्षसहस्राणि सामान्यतो बादरवनस्पतिकायिकस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२३४]

दीप अनुक्रम [३५६]

दश वर्षसहस्राणि प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायस्य दश वर्षसहस्राणि सामान्यतो निगोदस्य जघन्येनाप्युत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं बादरनिगोदस्य जघन्यत उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं बादरत्रसकायस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सम्प्रत्येतेषामेव सामान्यतो बादरादीनां दशानामपर्याप्तानां स्थितिं चिचिन्तयिषुः सूत्रदशकमाह—**'बायरअपज्जत्तगस्स णं भंते!'** इत्यादि पाठसिद्धं, सर्वत्र जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तोभिधानात् ॥ साम्प्रतमेतेषामेव पर्याप्तानां स्थितिं चिन्तयति—**'बादरपज्जत्तगस्स णं भंते!'** इत्यादि, जघन्यतः सर्वत्राप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सामान्यतो बादरस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यन्तर्मुहूर्त्तोनानि, अपर्याप्तकावस्थाभाविनाऽन्तर्मुहूर्त्तेनोनत्वात्, एवं बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तकस्य द्वाविंशतिर्वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि, बादराप्कायिकस्य पर्याप्तकस्य सप्त वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि बादरतेजस्कायिकपर्याप्तकस्य त्रीणि रात्रिन्दिवानि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि, बादरवायुकायिकपर्याप्तकस्य त्रीणि वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि, बादरवनस्पतिकायपर्याप्तकस्य दश वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि, प्रत्येकबादरवनस्पतिकायिकपर्याप्तकस्यापि दश वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि, सामान्यतो निगोदपर्याप्तकस्य बादरनिगोदपर्याप्तकस्य च जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, बादरत्रसकायिकपर्याप्तस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि ॥ साम्प्रतं कायस्थितिमाह—

बायरे णं भंते! बायरेत्ति कालओ केवचिरं होति?, जह० अंतो० उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जतिभागो, बायरपुढविकाइयआउतेउवाउ० पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयस्स बायरनिओयस्स० [बायरवणस्सइस्स जह०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतो० उक्को० असं० असं० उस्स० कालओ खेत्तओ अंगु० असं० पत्तेगसरीरबादरवणस्सतिकाइ-यस्स बायरनिगोअस्स पुढवीव, बायरणिओयस्स णं जह० अन्तो० उक्को० अणंतं कालं अणंता उस्स० कालओ खेत्तओ अड्ढाइज्जा पोग्गल०] एतेसिं जहण्णेणं अंतोमु० उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवमको-डाकोडीओ संखातीयाओ समाओ अंगुलअसंखभागो तहा—असंखेज्जा उ० ओहे य बायरतरु-अणुबंधो सेसओ वोच्छं । उस्सप्पिणि २ अड्ढाइयपोग्गलाण परियट्टा ॥ बेउदधिसहस्सा खलु साधिया होंति तसकाए ॥१॥ अंतोमुहुत्तकालो होइ अपज्जत्तगाण सव्वेसिं ॥ पज्जत्तबायरस्स य बायरतसकाइयस्सावि ॥ २ ॥ एतेसिं ठिई सागरोवमसतपुहत्तं साइरेगं । तेउस्स संख राई[दिया] दुविहणिओए मुहुत्तमद्धं तु । सेसाणं संखेज्जा वाससहस्सा य सव्वेसिं ॥ ३ ॥ (सू० २३५)

'बायरे णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह—गौतम! जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, तमेवासङ्ख्येयं कालं कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति—'असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अंगुलस्स असंखेज्जइभागो' अस्य व्याख्या प्राग्वत् । बादरपृथ्वीकायिकसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सप्ततिः सागरोपमकोटीकोट्यः, एवं बादराप्कायिकबादरतेजस्कायिक-बादरवायुकायिकानामपि, सामान्यतो बादरवनस्पतिकायिकसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, तमेव कालक्षेत्राभ्यां नि-रूपयति—असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयभागः । प्रत्येकबादरवनस्पतिकायिकसूत्रं बादरपृथ्वीकायिक-वत्, सामान्यतो निगोदसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तस्यैव कालक्षेत्राभ्यां निरूपणं करोति—अनन्ता उत्सर्पिण्यव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

सर्पिण्यः, एषा कालतः प्ररूपणा, क्षेत्रतोऽङ्गुलपृथक्त्वतृतीयाः पुद्गलपरावर्त्ताः । बादरनिगोदसूत्रं बादरपृथ्वीकायिकवत् । बादरत्रसकायसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे सङ्ख्येयवर्षाभ्यधिके । साम्प्रतमेतेषामेवापर्याप्तानां कायस्थितिं निरूपयन् सूत्रदशकमाह—**'बायरअपज्जत्तए णं भंते! बायरअपज्जत्तएत्ति कालतो'** इत्यादि सर्वत्र जघन्येनोत्कर्षेण चान्तर्मुहूर्त्तम् । अधुनैतेषामेव पर्याप्तानां कायस्थितिमाह—**'बायरपज्जत्तए णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तद्भावना प्राग्वत्, उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तत ऊर्द्ध्वमवश्यं बादरस्य सतः पर्याप्तलब्धिविच्युतेः । बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सङ्ख्येयानि वर्षसहस्राणि, तत ऊर्द्ध्वं तथास्वाभाव्याद् बादरपृथिवीकायस्य सतः पर्याप्तिलब्धिभ्रंशात् । एवमप्कायसूत्रमपि वक्तव्यं, तेजस्कायसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सङ्ख्येयानि रात्रिन्दिवानि, तेजस्कायिकस्य हि उत्कृष्टा भवस्थितिः त्रीणि रात्रिन्दिवानि, उत्कृष्टस्थितिकस्य पर्याप्तभवा निरन्तरं कतिपया एवेति सङ्ख्येयान्येव रात्रिन्दिवानि । वायुकायिकसामान्यबादरवनस्पतिकायप्रत्येकबादरवनस्पतिकायसूत्राण्यपि बादरपर्याप्तपृथिवीकायसूत्रवत् । सामान्यतो निगोदपर्याप्तसूत्रे च जघन्यत उच्छ्वासान्तर्मुहूर्त्तं, बादरत्रसकायपर्याप्तसूत्रं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तच्च नैरयिकतिर्यग्मनुष्यदेवभवभ्रमणेन पूरयितव्यम् ॥ साम्प्रतमन्तरं प्रतिपिपादयिषुराह—

अंतरं बायरस्स बायरवणस्सतिस्स णिओयस्स बायरणिओयस्स एतेसिं चउण्हवि पुढविकालो जाव असंखेज्जा लोया, सेसाणं वणस्सतिकालो। एवं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणवि अंतरं, ओहे य बायरतरु ओघनिओए बायरणिओए य कालमसंखेज्जं अंतरं सेसाण वणस्सतिकालो ॥ (सू०२३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'बादरस्स णं भंते! अंतरं कालतो' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, तमेव कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति–असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, यदेव हि सूक्ष्मस्य सतः कायस्थितिपरिमाणं तदेव बादरस्यान्तरपरिमाणं सूक्ष्मस्य च कायस्थितिपरिमाणमेतदेवेति । बादरपृथिवीकायिकसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालः प्रागुक्तस्वरूपो वेदितव्यः । एवं बादराप्कायिकबादरतेजस्कायिकसूत्राण्यपि वक्तव्यानि । सामान्यतो बादरवनस्पतिकायिकसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, स चासङ्ख्येयः कालः पृथिवीकालो वेदितव्यः, स चैवम्–असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः । प्रत्येकबादरवनस्पतिकायिकसूत्रं बादरपृथिवीकायिकसूत्रवत्, सामान्यतो निगोदसूत्रं च सामान्यतो बादरवनस्पतिकायिकसूत्रवत्, बादरत्रसकायिकसूत्रं बादरपृथिवीकायिकसूत्रवत् । एवमपर्याप्तविषया दशसूत्री पर्याप्तविषया च दशसूत्री यथोक्तक्रमेण वक्तव्या, नानात्वाभावात् ॥ साम्प्रतमल्पबहुत्वमाह—

अप्पा० सव्वत्थोवा बायरतसकाइया बायरतेउकाइया असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबादरवणस्सति० असंखेज्जगुणा बायरणिओया असंखे० बायरपुढवि असंखे० आउवाउ असंखेज्जगुणा बायरवणस्सतिकाइया अणंतगुणा बायरा विसेसाहिया १। एवं अपज्जत्तगाणवि २। पज्जत्तगाणं सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया बायरतसकाइया असंखेज्जगुणा पत्तेगसरीरबायरा असंखेज्जगुणा सेसा तहेव जाव बादरा विसेसाहिया ३। एतेसि णं भंते! बायराणं पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे २?, सव्वत्थोवा बायरा पज्जत्ता बायरा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा, एवं सव्वे जहा बायरतसकाइया ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते– एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

एएसि णं भंते! बायराणं बायरपुढविकाइयाणं जाव बायरतसकाइयाण य पज्जत्तापज्जत्ताणं कयरे २?, सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्तगा बायरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायरवणस्सतिकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरणिओया पज्जत्तगा असंखेज्ज० पुढविआउवाउपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरतेउअपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायरवणस्सतिअप० असंखे० बायरा णिओया अपज्जत्तगा असंखे० बायरपुढविआउवाउ .अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरवणस्सइ पज्जत्तगा अणंतगुणा बायरपज्जत्तगा विसेसाहिया बायरवणस्सति अपज्जत्ता असंखगुणा बायरा अपज्जत्तगा विसेसाहिया बायरा प० विसेसाहिया ५। एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं जाव सुहुमनिगोदाणं बायराणं बायरपुढविकाइयाणं जाव बायरतसकाइयाण य कयरे२हिंतो०?, गोयमा! सव्वत्थोवा बायरतसकाइया बायरतेउकाइया असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायरवणा असंखे० तहेव जाव बायरवाउकाइया असंखेज्जगुणा सुहुमतेउक्काइया असंखे० सुहुमपुढवि० विसेसाहिया सुहुमआउ० सुहुमवाउ० विसेसा० सुहुमनिओया असंखेज्जगुणा बायरवणस्सतिकाइया अणंतगुणा बायराविसेसाहिया सुहुमवणस्सइकाइया असंखे० सुहुमा विसेसा०। एवं अपज्जत्तगावि पज्जत्तगावि, णवरि सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता बायरतसकाइया पज्जत्ता असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीर० सेसं तहेव जाव सुहुमपज्जत्ता वि-

Jain Education Intern For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

सेसाहिया । एएसि णं भंते! सुहुमाणं बादराण य पज्जत्ताणं अपज्जत्ताण य कयरे २?०, सव्व-त्थोवा बायरा पज्जत्ता बायरा अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा सव्वथोवा सुहुमा अपज्जत्ता सुहुमपज्जत्ता संखेज्जगुणा, एवं सुहुमपुढविबायरपुढवि जाव सुहुमनिओया बायरनिओया नवरं पत्तेयसरीर-बायरवण० सव्वत्थोवा पज्जत्ता अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा, एवं बादरतसकाइयावि ॥ सव्वेसिं पज्जत्तअपज्जत्तगाणं कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा?, सव्वत्थोवा बायरतेउक्काइया पज्जत्ता बायरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ते चेव अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा पत्तेयसरीरबायरव-णस्सइअपज्जत्तगा असंखे० बायरणिओया पज्जत्ता असंखेज्ज० बायरपुढवि० असं० आउवाउप-ज्जत्ता असंखे० बायरतेउकाइयअपज्जत्ता असंखे० पत्तेय० असंखे० बायरनिओयपज्जत्ता असं० बायरपुढवि० आउवाउकाइ० अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असं० सुहुमपुढविआउवाउअपज्जत्ता विसेसा० सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगा संखेज्जगुणा सुहुमपुढविआ-उवाउपज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमणिगोया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमणिगोया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा बायरवणस्सतिकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा बायरा पज्जत्तगा विसेसाहिया बायर-वणस्सइ अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा बायरा अपज्जत्ता विसे० बायरा विसेसाहिया सुहुमवणस्स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३७]

दीप अनुक्रम [३६२]

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

तिकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा सुहुमा अपज्जत्ता विसेसाहिया सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्ता संखेज्जगुणा सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया सुहुमा विसेसाहिया ॥ (सू० २३७)

'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका बादरत्रसकायिकाः, द्वीन्द्रियादीनामेव बादरत्रसत्वात्, तेषां च शेषकायापेक्षयाऽल्पत्वात्, तेभ्यो बादरतेजस्कायिका असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिका असङ्ख्येयगुणाः, स्थानस्यासङ्ख्येयगुणत्वात्, बादरतेजस्कायिका हि मनुष्यक्षेत्र एव भवन्ति, तथा चोक्तं **प्रज्ञापनायां** द्वितीये स्थानाख्ये पदे—'कहि णं भंते! बादरतेउक्काइयाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता?, गोयमा! अंतो मणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु निव्वाघाएणं पन्नरससु कम्मभूमीसु वाघाएणं पंचसु महाविदेहेसु एत्थ णं बायरतेउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता, तथा—जत्थेव बायरतेउक्काइयाणं पज्जत्ताणं ठाणा पन्नत्ता तत्थेव अपज्जत्ताणं बायरतेउकाइयाणं ठाणा पन्नत्ता' इति। बादरवनस्पतिकायिकास्तु त्रिष्वपि लोकेषु, तथा चोक्तं **प्रज्ञापनायां** तस्मिन्नेव स्थानाख्ये द्वितीये पदे—'कहि णं भंते! बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता?, गोयमा! सट्ठाणेणं सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदहिवलएसु अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु उड्ढलोए कप्पेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु उज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु, एत्थ णं बायरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता, तथा जत्थेव बायरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता तत्थेव बायरवणस्सइकाइयाणमपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता' इति। ततः क्षेत्रस्यासङ्ख्येयगुणत्वादुपपद्यन्ते बादरतेजस्कायिकेभ्योऽसङ्ख्येयगुणाः प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः, तेभ्यो बादरनिगोदा असङ्ख्येयगुणास्तेषा-

Jain Education Inte... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२३७]

दीप अनुक्रम [३६२]

मत्यन्तसूक्ष्मावगाहनत्वात् जलेषु च सर्वत्रापि प्रायोभावात्, पनकसेवालादयो हि जलेष्ववश्यंभाविनः, ते च बादरानन्तकायिका इति, तेभ्योऽपि बादरपृथिवीकायिका असङ्ख्येयगुणाः, अष्टासु पृथिवीषु सर्वेषु विमानभवनपर्वतादिषु च भावात्, तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणा बादराप्कायिकाः, समुद्रेषु जलप्राभूत्यात्, तेभ्यो बादरवायुकायिका असङ्ख्येयगुणाः, शुषिरे सर्वत्र वायुसम्भवात्, तेभ्योऽपि बादरवनस्पतिकायिका अनन्तगुणाः, प्रतिबादरनिगोदमनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यः सामान्यतो बादरा विशेषाधिकाः, बादरत्रसकायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात् ॥ गतमेकमौधिकमल्पबहुत्वमिदानीमेतेषामेवापर्याप्तानां द्वितीयमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि, सर्वस्तोका बादरत्रसकायिका अपर्याप्ताः, युक्तिरत्र प्रागुक्तैव, तेभ्यो बादरतेजस्कायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रमाणत्वात्, इत्येवं प्रागुक्तक्रमेणेदमप्यल्पबहुत्वं परिभावनीयम् ॥ गतं द्वितीयमल्पबहुत्वं, साम्प्रतमेतेषामेव पर्याप्तानां तृतीयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका बादरतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः, आवलिकासमयवर्गस्य कतिपयसमयन्यूनैरावलिकासमयैर्गुणितस्य यावान् समयराशिर्भवति तावत्प्रमाणत्वात्तेषाम्, उक्तञ्च—"आवलिवग्गो कमेणावलीए गुणिओ हि बायरो तेऊ" इति, तेभ्यो बादरत्रसकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरे यावन्त्यङ्गुलसङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यः प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरे यावन्त्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणत्वात्तेषाम्, उक्तञ्च—"पत्तेयपज्जत्तवणकाइया उ पयरं हरंति लोगस्स अंगुलअसंखभागेण भाइय"मिति, तेभ्यो बादरनिगोदपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः, तेषामत्यन्तसूक्ष्मावगाहनत्वात् जलाशयेषु च सर्वत्र प्रायोभावात्, तेभ्यो बादरपृथिवीकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, अतिप्रभूतसङ्ख्येयप्रतराङ्गुलासङ्ख्येयभागखण्डमानत्वात्, तेभ्योऽपि बादराप्कायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, अतिप्रभूततरासङ्ख्येयप्रतराङ्गुलासङ्ख्ये-

॥ ४२० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२३७]

दीप अनुक्रम [३६२]

यभागखण्डमानत्वात्, तेभ्यो बादरवायुकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, घनीकृतस्य लोकस्यासङ्ख्येयेषु प्रतरेषु सङ्ख्याततमभागवर्त्तिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ता अनन्तगुणाः, प्रतिबादरैकैकनिगोदमनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यः सामान्यतो बादरपर्याप्तका विशेषाधिकाः, बादरतेजस्कायिकादीनामपि पर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात् ॥ गतं तृतीयमल्पबहुत्वमिदानीमेतेषामेव प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तगतमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, इह बादरैकैकपर्याप्तनिश्रयाऽसङ्ख्येया बादरा अपर्याप्ता उत्पद्यन्ते, "पज्जत्तगनिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमंति, जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्जा" इति वचनात्, ततः सर्वत्र पर्याप्तेभ्योऽपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणा वक्तव्याः । बादरत्रसकायिकसूत्रं तु प्रागुक्तयुक्त्या भावनीयम् ॥ गतं चतुर्थमप्यल्पबहुत्वं, सम्प्रत्येतेषामेव समुदितानां पर्याप्तापर्याप्तानां पञ्चममल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका बादरतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः, तेभ्यो बादरत्रसकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो बादरप्रत्येकवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो बादरनिगोदाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो बादरपृथिवीकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो बादराप्कायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो बादरवायुकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, एतेषु पदेषु युक्तिः प्रागुक्ताऽनुसरणीया, तेभ्यो बादरतेजस्कायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, यतो बादरवायुकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयेषु लोकाकाशप्रदेशेषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणाः बादरतेजस्कायिकाश्चापर्याप्ता असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणास्ततो भवन्त्यसङ्ख्येयगुणाः, ततः प्रत्येकबादरवनस्पतिकायिकबादरनिगोदबादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवायुकायिका अपर्याप्ता यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणा वक्तव्याः, यद्यपि चैते प्रत्येकमसङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणास्तथाऽप्यसङ्ख्यातस्यासङ्ख्यातभेदभिन्नत्वादित्थं यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणत्वं न विरुध्यते, तेभ्यो बादरवायुकायिकापर्याप्तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिका जीवाः प-

जी० ७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२३७]

दीप अनुक्रम [३६२]

र्याप्ता अनन्तगुणाः प्रतिबादरैरेकैकनिगोदमनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यः सामान्यतो बादराः पर्याप्ता विशेषाधिकाः, बादरतेजस्कायिकादीनामपि पर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिका अपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणा एकैकपर्याप्तबादरवनस्पतिकायिकनिगोदनिश्रयाऽसङ्ख्येयानामपर्याप्तबादरवनस्पतिकायिकनिगोदानामुत्पादात्, तेभ्यः सामान्यतो बादरा अपर्याप्ता विशेषाधिका बादरतेजस्कायिकादीनामपर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः पर्याप्तापर्याप्तविशेषणरहिताः सामान्यतो बादरा विशेषाधिकाः बादरपर्याप्ततेजस्कायिकादीनामपर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात् ॥ तदेवं गतानि बादराश्रितानि पञ्चाल्पबहुत्वानि, सम्प्रति सूक्ष्मबादरसमुदायगतानि पञ्चाल्पबहुत्वान्यभिधित्सुराह—**'एएसि ण'**मित्यादि, इह प्रथमं बादरगतमल्पबहुत्वं तत्सूक्ष्मगतात्पबहुत्वपञ्चके यत्प्रथममल्पबहुत्वं तद्वद् भावनीयं यावत् सूक्ष्मनिगोदचिन्ता, तदनन्तरं बादरवनस्पतिकायिका अनन्तगुणाः प्रतिबादरनिगोदमनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यो बादरा विशेषाधिका बादरतेजस्कायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिका असङ्ख्येयगुणाः, बादरनिगोदेभ्यः सूक्ष्मनिगोदानामसङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्मा विशेषाधिकाः सूक्ष्मतेजस्कायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात् ॥ गतमेकमल्पबहुत्वमिदानीमेतेषामेवापर्याप्तानां द्वितीयमाह—**'एएसि ण'**मित्यादि, सर्वस्तोका बादरत्रसकायिका अपर्याप्ताः, ततो बादरतेजस्कायिकबादरवनस्पतिकायिकबादरनिगोदबादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवायुकायिकाः पर्याप्ताः क्रमेण यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना बादरगतात्पबहुत्वपञ्चके यद्वद् द्वितीयमपर्याप्तविषयमल्पबहुत्वं तद्वद् भावनीया, ततो बादरवायुकायिकेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः सूक्ष्मतेजस्कायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, अतिप्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मपृथिवीकायिकसूक्ष्माप्कायिकसूक्ष्मवायुकायिकसूक्ष्मनिगोदा यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना सूक्ष्मात्पबहुत्ववद्भावनीया, पञ्चके यद्वितीयात्पबहुत्वं त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

द्वत्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिका जीवा अपर्याप्ता अनन्तगुणाः, प्रतिबादरैकैकनिगोदमनन्तानां भावात्, तेभ्यः सामान्यतो बादरा अपर्याप्ता विशेषाधिकाः, बादरत्रसकायिकापर्याप्तानामपि तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, बादरनिगोदापर्याप्तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तानामसङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्मा अपर्याप्ता विशेषाधिकाः, सूक्ष्मतेजस्कायिकापर्याप्तादीनामपि तत्र प्रक्षेपात् ॥ गतं द्वितीयमल्पबहुत्वमिदानीं तेषामेव पर्याप्तानां तृतीयमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका बादरतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः, तेभ्यो बादरत्रसकायिकबादरप्रत्येकवनस्पतिकायिकबादरनिगोदबादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवायुकायिकाः पर्याप्ता यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, अत्र भावना बादरगतालपबहुत्वपञ्चके यत्तृतीयं पर्याप्तविषयमल्पबहुत्वं तद्वत्कर्त्तव्या, बादरपर्याप्तवायुकायिकेभ्यः सूक्ष्मतेजस्कायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, बादरवायुकायिका हि असङ्ख्येयप्रतरप्रदेशराशिप्रमाणाः, सूक्ष्मतेजस्कायिकास्तु पर्याप्ता असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणास्ततोऽसङ्ख्येयगुणाः, ततः सूक्ष्मपृथिवीकायिकसूक्ष्माप्कायिकसूक्ष्मवायुकायिकाः पर्याप्ताः क्रमेण यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततः सूक्ष्मवायुकायिकेभ्यः पर्याप्तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः, तेषामतिप्रभूततया प्रतिगोलकं भावात्, तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिका जीवाः पर्याप्तका अनन्तगुणाः, प्रतिबादरैकैकनिगोदमनन्तानां भावात्, तेभ्यः सामान्यतो बादराः पर्याप्ता विशेषाधिकाः, बादरतेजस्कायिकादीनामपि पर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, बादरनिगोदपर्याप्तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तानामसङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्माः पर्याप्ता विशेषाधिकाः, सूक्ष्मतेजस्कायिकादीनामपि पर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात् ॥ गतं तृतीयमल्पबहुत्वमिदानीमेतेषामेव सूक्ष्मबादरादीनां प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तानां पृथक् पृथगल्पबहुत्वमाह—**'एएसि णं भंते! सुहुमाणं बायराण य पज्जत्तापज्जत्ताण'**-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्यादि, सर्वत्रेयं भावना—सर्वस्तोका बादराः पर्याप्ताः परिमितक्षेत्रवर्त्तित्वात्, तेभ्यो बादरा अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, एकैकबादरपर्याप्तनिश्राऽसङ्ख्येयानां बादरापर्याप्तानामुत्पादात्, तेभ्यः सूक्ष्मापर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, सर्वलोकापन्नतया तेषां क्षेत्रस्यासङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, चिरकालावस्थायितया तेषां सदैव सङ्ख्येयगुणतया प्राप्यमानत्वात्, सर्वसङ्ख्यया चामी सप्त सूत्राणि, तद्यथा—प्रथमं सामान्यतः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तविषयं द्वितीयं सूक्ष्मबादरपृथिवीकायिकपर्याप्तापर्याप्तविषयं, तृतीयं सूक्ष्मबादराप्कायिकपर्याप्तापर्याप्तविषयं, चतुर्थं सूक्ष्मबादरतेजस्कायिकपर्याप्तापर्याप्तविषयं, पञ्चमं सूक्ष्मबादरवायुकायिकपर्याप्तापर्याप्तविषयं, षष्ठं सूक्ष्मबादरवनस्पतिकायिकपर्याप्तापर्याप्तविषयं, सप्तमं सूक्ष्मबादरनिगोदपर्याप्तापर्याप्तविषयमिति ॥ गतं चतुर्थमल्पबहुत्वमिदानीमेतेषामेव सूक्ष्मपृथिवीकायिकादीनां प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तानां समुदायेन पञ्चममल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते! सुहुमाणं सुहुमपुढविक्काइयाण'मित्यादि, सर्वस्तोका बादरतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः, आवलिकासमयवर्गे कतिपयसमयन्यूनैरावलिकासमयैर्गुणिते यावान् समयराशिस्तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो बादरत्रसकायिकाः पर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरे यावन्त्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, तेभ्यो बादरत्रसकायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, प्रतरे यावन्त्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणत्वात्तेषां, ततः प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकबादरनिगोदबादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवायुकायिकाः पर्याप्ता यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, यद्यप्येते प्रत्येकं प्रतरे यावन्त्यङ्गुलासङ्ख्येयभागमात्राणि खण्डानि तावत्प्रमाणास्तथाऽप्यङ्गुलासङ्ख्येयभागस्यासङ्ख्येयभेदभिन्नत्वादित्थं यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणत्वमभिधीयमानं न विरुध्यते, तेभ्यो बादरतेजस्कायिका अपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, ततः प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिकबादरनिगोदबादरपृथिवीकायिकबादराप्कायिकबादरवायुका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

यिका अपर्याप्ता यथोत्तरमसङ्ख्येयगुणाः, ततो बादरवायुकायिकेभ्योऽपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मतेजस्कायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, ततः सूक्ष्मपृथिवीकायिकसूक्ष्माप्कायिकसूक्ष्मवायुकायिका अपर्याप्ता यथोत्तरं विशेषाधिकाः, ततः सूक्ष्मतेजस्कायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानामोघतः सङ्ख्येयगुणत्वात्, ततः सूक्ष्मपृथियीकायिकसूक्ष्माप्कायिकसूक्ष्मवायुकायिकाः पर्याप्ता यथोत्तरं विशेषाधिकाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्तका असङ्ख्येयगुणाः, तेषामतिप्राभूत्येन सर्वलोकेषु भावात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा असङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वपर्याप्तानां सदैवोघतः सङ्ख्येयगुणत्वात्, एते च बादरपर्याप्ततेजस्कायिकादयः पर्याप्तनिगोदपर्यवसानाः षोडश पदार्था यद्यप्यन्यत्राविशेषेणासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणतया संगीयन्ते तथाऽप्यसङ्ख्यातस्यासङ्ख्यातभेदभिन्नत्वादित्थमसङ्ख्येयगुणत्वं विशेषाधिकत्वं सङ्ख्येयगुणत्वं च प्रतिपाद्यमानं न विरोधभागिति, तेभ्यः पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदेभ्यो बादरवनस्पतिकायिका अपर्याप्ता अनन्तगुणाः, प्रतिबादरैकैकनिगोदमनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यः सामान्यतो बादराः पर्याप्ता विशेषाधिकाः, बादरपर्याप्ततेजस्कायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यो बादरवनस्पतिकायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, एकैकपर्याप्तनिगोदनिश्रयाऽसङ्ख्येयानां बादरनिगोदापर्याप्तानामुत्पादात्, तेभ्यः सामान्यतो बादरा अपर्याप्ता विशेषाधिकाः, बादरतेजस्कायिकादीनामप्यपर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सामान्यतो बादरा विशेषाधिकाः, पर्याप्तानामपि तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिका अपर्याप्ता असङ्ख्येयगुणाः, बादरनिगोदेभ्यः सूक्ष्मनिगोदानामपर्याप्तानामप्यसङ्ख्येयगुणत्वात्, ततः सामान्यतः सूक्ष्मा अपर्याप्तका विशेषाधिकाः, सूक्ष्मपृथिवीकायिकादीनामप्यपर्याप्तानां तत्र प्रक्षेपात्, तेभ्यः सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मवनस्पतिकायिकापर्याप्तेभ्यो हि सूक्ष्मवनस्पतिकायिकाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वप्योघतोऽपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानां सङ्ख्येयगुणत्वात्, ततः सामान्यतः सूक्ष्मपर्याप्तेभ्योऽपि सङ्ख्ये-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२३७]

दीप अनुक्रम [३६२]

यगुणाः, विशेषाधिकत्वस्य सङ्ख्येयगुणत्वबाधनायोगात्, तेभ्यः सामान्यतः सूक्ष्माः पर्याप्तका विशेषाधिकाः, पर्याप्तसूक्ष्मपृथिवीकायिकादीनामपि तत्र प्रक्षेपात्, ततः सामान्यतः पर्याप्तापर्याप्तविशेषणरहिताः सूक्ष्मा विशेषाधिकाः, अपर्याप्तानामपि तत्र प्रक्षेपात् ॥ इह पूर्वं निगोदाः स्थित्यादिभिश्चिन्तितास्ततो निगोदवक्तव्यतामाह—

कतिविहा णं भंते! णिओया पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा णिओया पण्णत्ता, तंजहा—णिओया य णिओदजीवा य ॥ णिओया णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा, पं०, तंजहा—सुहुमणिओया य बायरणिओया य॥ सुहुमणिओया णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?, गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ॥ बायरणिओयावि दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ॥ णिओयजीवा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?, दुविहा पण्णत्ता—सुहुमणिओदजीवा य बायरणिओयजीवा य। सुहुमणिगोदजीवा दुविहा पं० तं०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। बादरणिगोदजीवा दुविहा पन्नत्ता तं०—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य॥ (सू० २३८)

'कतिविहा ण'मित्यादि, कतिभेदाः भदन्त! निगोदाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! द्विविधा निगोदाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–निगोदाश्च निगोदजीवाश्च, उभयेषामपि निगोदशब्दवाच्यतया प्रसिद्धत्वात्, तत्र निगोदा–जीवाश्रयविशेषाः निगोदजीवा–विभिन्नतैजसकार्मणा जीवा एव ॥ अधुना निगोदभेदान् पृच्छति—'**निगोया णं भंते!**' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–सूक्ष्मनिगोदाश्च बादरनिगोदाश्च, तत्र सूक्ष्मनिगोदाः सर्वलोकापन्नाः बादरनिगोदा मूलकन्दादयः ॥ '**सुहुमनिगोया**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अथ निगोद-वक्तव्यता आरब्ध:

णं'मित्यादि, सूक्ष्मनिगोदा भदन्त! कतिविधाः प्रज्ञप्ताः?, भगवानाह–गौतम! द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, एवं बादरनिगोदविषयमपि सूत्रं वक्तव्यं। तदेवमुक्ता निगोदाः, अधुना निगोदजीवानधिकृत्य भेदप्रभसूत्रमाह—'निगोयजीवा णं भंते!' इत्यादि सुगमं, भगवानाह–गौतम! निगोदजीवा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–सूक्ष्मनिगोदजीवा बादरनिगोदजीवाश्च, चशब्दौ निगोदजीवतया तुल्यतासूचकौ, एवमन्यत्रापि यथायोगं परिभावनीयौ। 'सुहुमनिगोयजीवा णं भंते' इत्यादि पर्याप्तापर्याप्तविषयं पाठसिद्धम्। सम्प्रति सामान्यतो निगोदसङ्ख्यां जिज्ञासिषुः पृच्छति—

निगोदा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता?, गोयमा! नो संखेज्जा असंखेज्जा नो अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ॥ सुहुमनिगोदा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता?, गो०! णो संखेज्जा असंखेज्जा णो अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि, एवं बायरावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि णो संखेज्जा असंखेज्जा णो अणंता ॥ णिओदजीवा णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता?, गोयमा! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, एवं पज्जत्तावि अपज्जत्तावि, एवं सुहुमणिओयजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि, बादरणिओदजीवावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि ॥ णिओदा णं भंते! पदेसट्ठयाए किं संखेज्जा०? पुच्छा, गोयमा! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता, एवं पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि। एवं सुहुमणिओयावि पज्जत्तगावि अपज्जत्तगावि य, पएसट्ठयाए सव्वे अणंता, एवं बायरनिगोयावि पज्जत्तयावि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२३९]

दीप अनुक्रम [३६४]

अप्पज्जत्तयावि, पएसट्ठयाए सव्वे अणंता, एवं णिओदजीवा नवविहावि पएसट्ठयाए सव्वे अणंता ॥ एएसि णं भंते! णिओयाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्तयाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे२हिंतो अप्पा वा बहुया वा०?, गोयमा! सव्वत्थोवा बादरणिओयपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए बादरनिगोदा अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओदा अपज्जत्तगा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओदा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखिज्जगुणा, एवं पदेसट्ठयाएवि ॥ दव्वट्ठपदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा बादरणिओया य पज्जत्ता दव्वट्ठयाए जाव सुहुमणिओदा पज्जत्ता य दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, सुहुमणिओएहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिगोदा पज्जत्ता पएसट्ठया अणंतगुणा बायरणिओदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंख० जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा। एवं णिओयजीवावि, णवरि संकमए जाव सुहुमणिओयजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्ज० पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा, सेसं तहेव जाव सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते! णिगोदाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्ताणं अपज्जत्ताणं णिओयजीवाणं सुहुमाणं बायराणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए कयरे२हिंतो?०, सव्वत्थोवा बायरणिओदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए बायरणिओदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असङ्खेज्जगुणा सुहुमणिगोदा अप० दव्वट्ठयाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

असंखेज्जगुणा सुहुमणिओदा पज्ज० दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणंतगुणा बायरणिओदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओदजीवा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिओदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए बायरणिओदा अपज्जत्ता पएसट्ठयाए असंखे० सुहुमणिओयजीवा अपज्जत्तया पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा सुहुमणिगोदजीवा पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओदजीवेहिंतो पएसट्ठयाए बायरणिगोदा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए अणंतगुणा, बायरणिओया अपज्जत्ता पएस० असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवा बायरणिओया पज्जत्ता दव्वट्ठयाए बायरणिओदा अपज्जत्ता दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा जाव सुहुमणिगोदा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओदाहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओदजीवा पज्जत्ता दव्वट्ठयाए अणंतगुणा सेसा तहेव जाव सुहुमणिओदजीवा पज्जत्तगा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा सुहुमणिओयजीवेहिंतो पज्जत्तएहिंतो दव्वट्ठयाए बायरणिओयजीवा पज्जत्ता पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा सेसा तहेव जाव सुहुमणिओया पज्जत्ता पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा ॥ सेत्तं छव्विहा संसारसमावण्णगा ॥ (सू० २३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'निगोदा ण'मित्यादि, 'निगोदाः' जीवाश्रयविशेषा भदन्त! **'द्रव्यार्थतया'** द्रव्यरूपतया किं सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ताः?, भगवानाह–गौतम! नो सङ्ख्येयाः, अङ्गुलासङ्ख्येयभागावगाहनानां तेषां सर्वलोकापन्नत्वात्, किन्त्वसङ्ख्येयाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, नाप्यनन्तास्तथा केवलवेदसाऽनुपलम्भात्। एवमपर्याप्तसामान्यनिगोदसूत्रं पर्याप्तसामान्यनिगोदसूत्रं च भावनीयम्। यथा च सामान्यनिगोदविषयं सूत्रत्रयमुक्तम् एवं सूक्ष्मनिगोदविषयमपि सूत्रत्रयं बादरनिगोदविषयमपि सूत्रत्रयं पृथग् वक्तव्यं, भावना च पूर्वानुसारेण स्वयं विधेया॥ सम्प्रति द्रव्यार्थतया (निगोदजीव) सङ्ख्यां पिपृच्छिषुराह—**'निगोयजीवा णं भंते! दव्वट्ठयाए'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! नो सङ्ख्येया नाप्यसङ्ख्येयाः किन्त्वनन्ताः प्रतिनिगोदमनन्तानां निगोदद्रव्यजीवानां भावात्। एवमपर्याप्तसूत्रं पर्याप्तसूत्रं च वक्तव्यं, तदेवं सामान्यतो निगोदद्रव्यविषयं सूत्रत्रिकमुक्तम्, एवं सूक्ष्मनिगोदजीवविषयं सूत्रत्रिकं बादरनिगोदजीवविषयं च सूत्रत्रिकं च वक्तव्यं सर्वसङ्ख्यया नव सूत्राणि। [एवमेव प्रदेशार्थताविषयाण्यपि नव सूत्राणि नानात्वाभावात्, भावना च सर्वत्रापि सुप्रतीता, ये किल द्रव्यार्थतयाऽनन्तास्ते प्रदेशार्थतया सुतरामनन्ताः प्रतिद्रव्यमसङ्ख्यातानां प्रदेशानां भावात्, सर्वसङ्ख्या चामून्यष्टादश सूत्राणि] ॥ तदेवं द्रव्यार्थविषयाणि नव सूत्राण्युक्तानि सम्प्रति प्रदेशार्थताविषयाणि नव सूत्राणि विवक्षुः प्रथमतः सामान्यतो निगोदविषयं सूत्रत्रयमाह—**'निगोया णं भंते! पएसट्ठयाए'** इत्यादि, 'निगोदाः' उक्तस्वरूपा णमिति वाक्यालङ्कारे भदन्त! **'प्रदेशार्थतया'** प्रदेशरूपतया चिन्त्यमानाः किं सङ्ख्येया असङ्ख्येया अनन्ताः?, भगवानाह–गौतम! नो सङ्ख्येया नो असङ्ख्येयाः किन्त्वनन्ताः, एकैकस्मिन् निगोदे प्रदेशानामनन्तत्वात्, एवं शेषाण्यष्टौ सूत्राणि पूर्वक्रमेण भावनीयानि ॥ सम्प्रत्येतेषामेव सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तनिगोदानां द्रव्यार्थप्रदेशार्थोभयार्थतया परस्परमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि णं भंते! णिगोदाण'**मि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२३९]

दीप अनुक्रम [३६४]

त्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सर्वस्तोका बादरनिगोदा मूलकन्दादिगताः पर्याप्तका द्रव्यार्थतया, प्रतिनियतक्षेत्रवर्त्तित्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्तका द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, एकैकपर्याप्तबादरनिगोदनिश्रयाऽसङ्ख्येयानामपर्याप्तानां बादरनिगोदानामुत्पादात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्तका द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, सकललोकापन्नतया क्षेत्रस्यासङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वोघतोऽपर्याप्तेभ्यः पर्याप्तानां सङ्ख्येयगुणत्वात्, **'पएसट्ठयाए'** इति अत ऊर्द्धं प्रदेशार्थतया चिन्ता क्रियते, तामेव करोति–सर्वस्तोका बादरनिगोदाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया द्रव्याणां स्तोकत्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणा द्रव्याणामसङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः द्रव्याणां सङ्ख्येयगुणत्वात् । 'दव्वट्ठपएसट्ठयाए'त्ति अधुना द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया चिन्ता क्रियते–सर्वस्तोका बादरनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया, बादरनिगोदा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतया असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतया असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिः प्राक्तन्येव, तेभ्यो बादरनिगोदाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया अनन्तगुणाः, एकैकस्य निगोदस्य अनन्ताणुकानन्तस्कन्धनिष्पन्नत्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, द्रव्याणामसङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्योः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतया असङ्ख्येयगुणाः, युक्तिः प्राक्तन्येव, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ताः सङ्ख्येयगुणाः, द्रव्याणां सङ्ख्येयगुणत्वात्, साम्प्रतमेतेषामेव सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तनिगोदजीवानां द्रव्यार्थप्रदेशार्थोभयार्थतया परस्परमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि ण'**मित्यादि, सर्वस्तोका बादरजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया, निगोदानां स्तोकत्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणा, निगोदानामसङ्ख्येयगुणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः अपर्याप्तका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२३९]

दीप अनुक्रम [३६४]

द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, कारणं पूर्ववद् ऊह्यं, प्रदेशार्थतया सर्वस्तोका बादरनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया, द्रव्याणां स्तोकत्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, द्रव्याणामसङ्ख्येयगुणत्वात्, एवं तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोका बादरनिगोदजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया, तेभ्यो बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो बादरनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतिबादरनिगोदपर्याप्तजीवमसङ्ख्येयानां लोकाकाशप्रदेशप्रमाणानां प्रदेशानां भावात्, तेभ्यः बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः बादरनिगोदापर्याप्तेभ्यो बादरनिगोदपर्याप्तानामसङ्ख्यातगुणत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्तकाः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, भावना प्रागिव ॥ सम्प्रति सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तनिगोदनिगोदजीवानां द्रव्यार्थप्रदेशार्थोभयार्थतया परस्परमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि ण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका बादरनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, अत्र सर्वत्रापि युक्तिः प्रागुक्तैव, सूक्ष्मनिगोदेभ्यः पर्याप्तेभ्यो द्रव्यार्थतया बादरनिगोदजीवाः पर्याप्ता अनन्तगुणाः, एकैकस्मिन् निगोदेऽनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यो बादरनिगोदजीवाः अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः निगोदानामसङ्ख्यातत्वात्, एवं तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२३९]

दीप अनुक्रम [३६४]

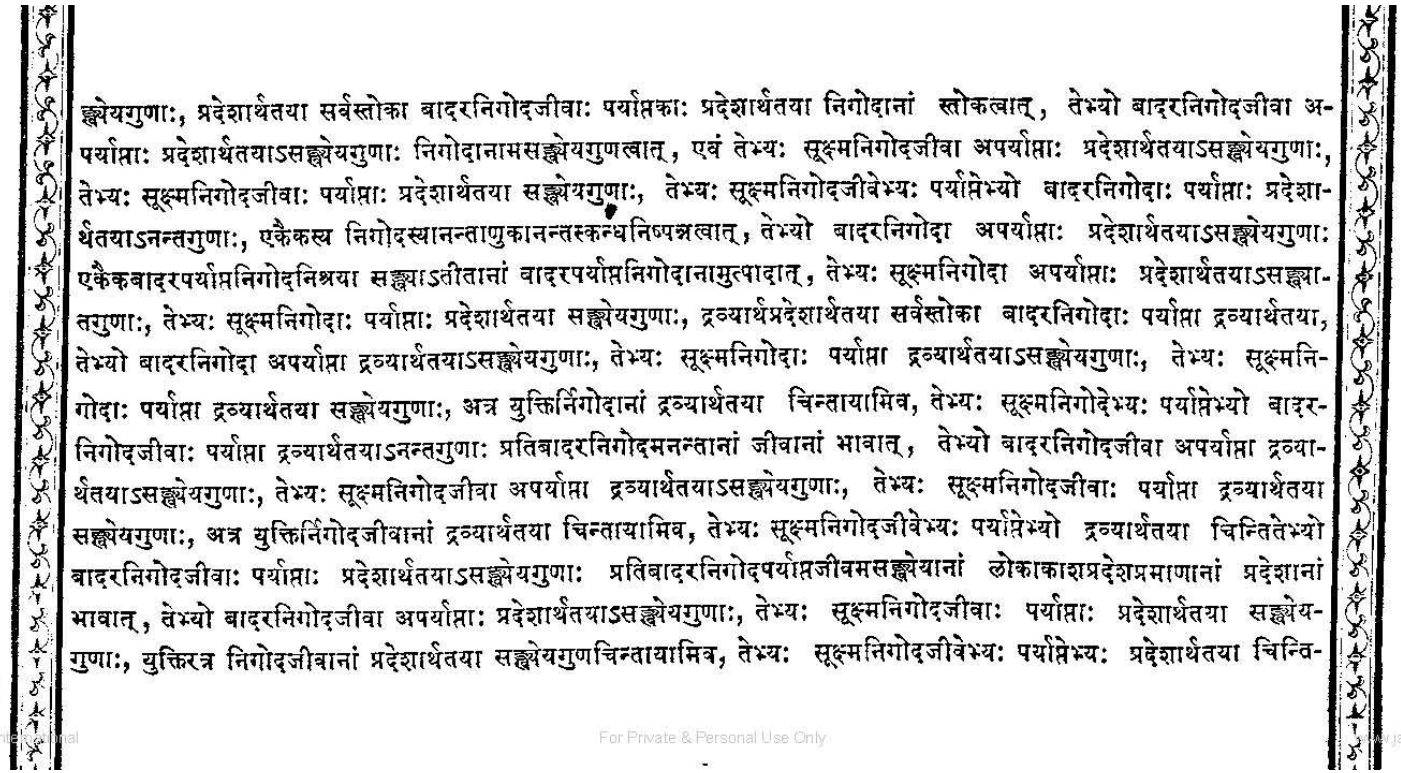

क्षेयगुणाः, प्रदेशार्थतया सर्वस्तोका बादरनिगोदजीवाः पर्याप्तकाः प्रदेशार्थतया निगोदानां स्तोकत्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः निगोदानामसङ्ख्येयगुणत्वात्, एवं तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवेभ्यः पर्याप्तेभ्यो बादरनिगोदाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽनन्तगुणाः, एकैकस्य निगोदस्यानन्ताणुकानन्तस्कन्धनिष्पन्नत्वात्, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः एकैकबादरपर्याप्तनिगोदनिश्रया सङ्ख्याऽतीतानां बादरपर्याप्तनिगोदानामुत्पादात्, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्यातगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, द्रव्यार्थप्रदेशार्थतया सर्वस्तोका बादरनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, अत्र युक्तिर्निगोदानां द्रव्यार्थतया चिन्तायामिव, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदेभ्यः पर्याप्तेभ्यो बादरनिगोदजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽनन्तगुणाः प्रतिबादरनिगोदमनन्तानां जीवानां भावात्, तेभ्यो बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवा अपर्याप्ता द्रव्यार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ता द्रव्यार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, अत्र युक्तिर्निगोदजीवानां द्रव्यार्थतया चिन्तायामिव, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवेभ्यः पर्याप्तेभ्यो द्रव्यार्थतया चिन्तितेभ्यो बादरनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः प्रतिबादरनिगोदपर्याप्तजीवमसङ्ख्येयानां लोकाकाशप्रदेशप्रमाणानां प्रदेशानां भावात्, तेभ्यो बादरनिगोदजीवा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिरत्र निगोदजीवानां प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणचिन्तायामिव, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवेभ्यः पर्याप्तेभ्यः प्रदेशार्थतया चिन्वि-

जी० ७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२३९]

दीप अनुक्रम [३६४]

तेभ्यो बादरनिगोदाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽनन्तगुणाः, एकैकस्मिन् निगोदेऽनन्तानामणूनां सद्भावात्, तेभ्यो बादरनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदा अपर्याप्ताः प्रदेशार्थतयाऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सूक्ष्मनिगोदजीवाः पर्याप्ताः प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयगुणाः, अत्र युक्तिर्निगोदानां प्रदेशार्थतया चिन्तायामिव, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि, एते षड्विधसंसारसमापन्नका जीवाः ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां पञ्चम्यां प्रतिपत्तौ षड्विधप्रतिपत्तिः ॥

अथ षष्ठी प्रतिपत्तिः

तदेवमुक्ता षड्विधप्रतिपत्तिः, अधुना क्रमप्राप्तां सप्तविधप्रतिपत्तिमाह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु सत्तविहा संसारसमावण्णगा ते एवमाहंसु, तंजहा—नेरइया तिरिक्खा तिरिक्खजोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ ॥ णेरतियस्स ठिती जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, तिरिक्खजोणियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं, एवं तिरिक्खजोणिणीएवि, मणुस्साणवि मणुस्सीणवि, देवाणं ठिती जहा णेरइयाणं, देवीणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपण्णपलिओवमाणि ॥ नेरइयदेवदेवीणं जचेव ठिती सचेव संचिट्ठणा। तिरिक्खजोणिणीणं जहन्नेणं अंतोमु० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं। एवं मणुस्सस्स मणुस्सीएवि ॥ णेरइयस्स अंतरं जह० अंतो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अत्र पञ्चमी "षड्विधा" प्रतिपत्ति: परिसमाप्ता: अथ षष्ठी "सप्तविधा" प्रतिपत्ति: आरब्धा:

*** संसारिजीवानाम् सप्तविधत्वेन प्ररुपणं— नैरयिक, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चस्त्री, देव, देवी अधिकार: आरभ्यते

मु० उक्कोसेणं वणस्सतिकालो। एवं सव्वाणं तिरिक्खजोणियवज्जाणं, तिरिक्खजोणियाणं जहण्णेणं अंतोमु० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं ॥ अप्पाबहुयं–सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ मणुस्सा असंखेज्जगुणा नेरइया असंखेज्जगुणा तिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ देवा असंखेज्जगुणा देवीओ संखेज्जगुणाओ तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा ॥ (सू० २४०)

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः सप्तविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–नैरयिकास्तिर्यग्योनिकास्तिर्यग्योनिक्यः मनुष्या मानुष्यः देवा देव्यः ॥ तत्रामीषां सप्तानामपि क्रमेण स्थितिमाह—'नेरइयस्स णं भंते!' इत्यादि सप्तसूत्री, नैरयिकस्य जघन्येन दशवर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । तिर्यग्योनिकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि । एवं तिर्यग्योनिकीमनुष्यमानुषीसूत्राण्यपि वक्तव्यानि । देवसूत्रं नैरयिकवत् । देवीसूत्रे जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षतः पञ्चपञ्चाशत् पल्योपमानि, ईशानदेवीनामपरिगृहीतानामुत्कर्षत एतावत्स्थितिकत्वात् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—'नेरइया णं भंते!' इत्यादि, नैरयिकाणां यदेव भवस्थितिपरिमाणं तदेव कायस्थितिपरिमाणमपि, नैरयिकस्य मृत्वा भूयोऽनन्तरं नैरयिकेषूत्पादाभावात् । तिर्यग्योनिकसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरमन्यत्रोत्पादात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालमनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, अस्य भावार्थव्याख्या प्रागिव । तिर्यग्योनिकीसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तत ऊर्द्धं मृत्वाऽन्यत्रोत्पादात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि, तानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४०]

दीप अनुक्रम [३६५]

निरन्तरं सप्तसु पूर्वकोट्यायुष्केषु भवेष्वष्टमे च भवे देवकुर्वादिपूत्पन्नाया द्रष्टव्यानि । एवमेव मनुष्यसूत्रं मानुषीसूत्रं च, देवस्य देव्याश्च यैव भवस्थितिः सैव कायस्थितिः, देवस्य देव्याश्च मृत्वाऽनन्तरं तद्भावेनोत्पादाभावात् ॥ साम्प्रतमेषामन्तरं चिचिन्तयिषुराह—'नेरइयस्स णं भंते!' इत्यादि, नैरयिकस्य जघन्येनान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च नरकादुद्वृत्तस्य तिर्यग्मनुष्यगर्भे एवाशुभाध्यवसायेन मरणतः परिभावनीयं, सानुबन्धकर्म्मफलमेतदिति तात्पर्यार्थः, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालः, नरकादुद्वृत्तस्य पारम्पर्येणानन्तं कालं वनस्पतिष्ववस्थानात्, तिर्यग्योनिकस्य जघन्येनान्तरमन्तमुहूर्त्तं, तच्च तिर्यग्योनिकभवादुद्धृत्यान्यत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयस्तिर्यग्योनित्वेनोत्पद्यमानस्य वेदितव्यम्, उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकम् । तिर्यग्योनिकीसूत्रे मनुष्यसूत्रे मानुषीसूत्रे देवीसूत्रे च जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः ॥ सम्प्रत्येतेषामेव सप्तानां पदानामल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—सर्वस्तोका मानुष्यः, कतिपयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, ताभ्यो मनुष्या असङ्ख्येयगुणाः, संमूर्च्छिममनुष्याणां श्रेण्यसङ्ख्येयप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तिर्यग्योनिकाः स्त्रियोऽसङ्ख्येयगुणाः, प्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्तिश्रेण्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, ताभ्यो देवाः सङ्ख्येयगुणाः, वानमन्तरज्योतिष्काणामपि जलचरतिर्यग्योनिकीभ्यः सङ्ख्येयगुणतया महादण्डके पठितत्वात्, तेभ्यो देव्यः सङ्ख्येयगुणा द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, "बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहियाओ होंति देवाणं देवीओ" इति वचनात्, ताभ्यस्तिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः, वनस्पतिजीवानामनन्तानन्तत्वात्, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां षष्ठ्यां प्रतिपत्तौ सप्तविधप्रतिपत्तिः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र षष्ठी "सप्तविधा" परिसमाप्ता:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२४१]

दीप अनुक्रम [३६६]

अथ सप्तमी प्रतिपत्तिः

तदेवमुक्ता सप्तविधप्रतिपत्तिरधुना क्रमप्राप्तामष्टविधप्रतिपत्तिमाह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु—अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा ते एवमाहंसु—पढमसमयनेरतिया अपढमसमयनेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणुस्सा अपढमसमयमणुस्सा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा ॥ पढमसमयनेरइयस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! पढमसमयनेरइयस्स जह० एक्कं समयं उक्को० एक्कं समयं। अपढमसमयनेरइयस्स जह० दसवाससहस्साइं समऊणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं। पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जह० एक्कं समयं उक्को० एक्कं समयं, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं समऊणाइं, एवं मणुस्साणवि जहा तिरिक्खजोणियाणं, देवाणं जहा णेरतियाणं ठिती ॥ णेरइयदेवाणं जचेव ठिती सचेव संचिट्ठणा दुविहाणवि। पढमसमयतिरिक्खजोणिए णं भंते! पढ० कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० एक्कं समयं उक्को० एक्कं समयं, अपढमतिरिक्खजोणियस्स जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कस्सेणं वणस्सतिकालो। पढमसमयमणुस्साणं जह० उ० एक्कं समयं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अथ सप्तमी "अष्टविधा" प्रतिपत्ति: आरब्धा:

अपढममणुस्स० जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्क० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहत्तमब्भहियाइं ॥ अंतरं पढमसमयणेरतियस्स जह० दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्को० वणस्सतिकालो, अपढमसमय० जह० अंतोमु० उक्क० वणस्सतिकालो। पढमसमयतिरिक्खजोणिए जह० दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्को० वणस्सतिकालो, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स जह० खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं। पढमसमयमणुस्सस्स जह० दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समऊणाइं उक्को० वणस्सतिकालो, अपढमसमयमणुस्सस्स जह० खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्को० वणस्सतिकालो। देवाणं जहा नेरइयाणं जह० दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्को० वणस्सइकालो, अपढमसमय० जह० अंतो० उक्को० वणस्सइकालो ॥ अप्पाबहु० एतेसि णं भंते! पढमसमयनेरइयाणं जाव पढमसमयदेवाण य कतरे २ हिंतो०?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा पढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा ॥ अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमदेवाणं एवं चेव अप्पबहु० णवरि अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ॥ एतेसिं पढमसमयनेरइयाणं अपढम० णेरतियाणं कयरे २?, सव्वत्थोवा पढमसमयणेरतिया अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा, एवं सव्वे ॥ पढमसमयणेरइयाणं जाव अपढमसमय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाण य कयरे २?, सव्वत्थोवा पढमसमयमणुस्सा अपढमसमयमणुस्सा असंखेज्जगुणा पढमसमयणेरइया असंखिज्जगुणा पढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा पढमसमयतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा अपढमसमयनेरइया असंखेज्जगुणा अपढमसमयदेवा असंखेज्जगुणा अपढमसमयतिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। सेत्तं अट्ठविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ॥ (सू० २४१)
अट्ठविहपडिवत्ती समत्ता ॥

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः–अष्टविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–प्रथमसमयनैरयिका अप्रथमसमयनैरयिकाः, प्रथमसमयतिर्यग्योनिका अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकाः, प्रथमसमयमनुष्या अप्रथमसमयमनुष्याः, प्रथमसमयदेवा अप्रथमसमयदेवाः, तत्र प्रथमसमयनारका नारकायुःप्रथमसमयसंवेदिनः अप्रथमसमयनारका नारकायुर्द्व्यादिसमयवर्त्तिनः, एवं तिर्यग्योनिकादयो भावनीयाः ॥ साम्प्रतमेतेषामष्टानां क्रमेण स्थितिमाह—'पढमसमयनेरइयस्स ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! एकं समयं, द्व्यादिषु समयेषु प्रथमसमयत्वविशेषणायोगात्, अप्रथमसमयप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येन दशवर्षसहस्राणि समयोनानि, समयातिक्रान्तावेवाप्रथमसमयविशेषणत्वभावात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि समयोनानि। तिर्यग्योनिकादीनां प्रथमसमयानां सर्वेषामेकं समयं, अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकानां जघन्येन क्षुल्लकभवग्रहणं समयोनं, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि समयोनानि। एवं अप्रथमसमयमनुष्याणामपि। अप्रथमसमयदेवानां जघन्येन दश वर्षसहस्राणि समयोनानि, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि समयोनानि ॥ अधुनैषामेव कायस्थितिमाह—'पढमसमयनेरइया णं भंते! पढमसमयनेरइयत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

कालतो केवचिरं होइ?' इति प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! एकं समयं, तदनन्तरं प्रथमसमयत्वविशेषणायोगात् । अप्रथमसमयसूत्रे यदेव स्थितिपरिमाणं तदेव कायस्थितिपरिमाणमपि, देवनैरयिकाणां भूयो भूयस्तद्भावभावितया नैरन्तर्येणोत्पादायोगात् । प्रथमसमयतिर्यग्योनिकसूत्रं प्रथमसमयनैरयिकसूत्रवत्, अप्रथमतिर्यग्योनिकसूत्रे जघन्येन क्षुल्लकभवग्रहणं समयोनं, समयोनता प्रथमसमयहीनत्वात्, उत्कर्षतोऽनन्तकालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालः प्रागुक्तस्वरूपः । प्रथमसमयमनुष्यसूत्रं पूर्ववत्, अप्रथमसमयमनुष्यसूत्रे जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं समयोनं, तदनन्तरं मृत्वाऽन्यत्रोत्पादात्, उत्कर्षतस्त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि समयोनानि, तानि सप्तसु भवेषु पूर्वकोट्यायुष्केष्वष्टमे भवे देवकुर्वादिपूत्पद्यमानस्य वेदितव्यानि, देवा यथा नैरयिकाः ॥ साम्प्रतमेतेषामेवाष्टानामन्तरं क्रमेण चिन्तयन्नाह—**'पढमसमयनेरइयस्स णं भंते!'** इत्यादि, प्रथमसमयनैरयिकस्य भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह–गौतम! जघन्यतो दशवर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, तानि दशवर्षसहस्रस्थितिकस्य नैरयिकस्य नरकादुद्वृत्त्यान्यत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयो नैरयिकत्वेनोत्पद्यमानस्य वेदितव्यानि, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालो वनस्पतिकालः प्रतिपत्तव्यः, नरकादुद्धृत्य पारम्पर्येण वनस्पतिषु गत्वाऽनन्तमपि कालमवस्थानात्, अप्रथमसमयनैरयिकसूत्रे जघन्यमन्तरं समयाधिकमन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च नरकादुद्धृत्य तिर्यग्गर्भे मनुष्यगर्भे वाऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयो नरकेषूत्पद्यमानस्य भावनीयं, समयाधिकता च प्रथमसमयस्याधिकत्वात्, क्वचिदन्तर्मुहूर्त्तमित्येव दृश्यते, तत्र प्रथमसमयोऽन्तर्मुहूर्त्त एवान्तर्भावित इति पृथग्नोक्तः, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः। प्रथमसमयतिर्यग्योनिकसूत्रे जघन्येनान्तरं द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे समयोने, ते च क्षुल्लकमनुष्यभवग्रहणव्यवधानतः पुनस्तिर्यक्ष्वेवोत्पद्यमानस्यावसातव्ये, तथाहि–एकं प्रथमसमयोनं तिर्यक्क्षुल्लकभवग्रहणं द्वितीयं संपूर्णमेव मनुष्यक्षुल्लकभवग्रहणमिति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, तदतिक्रमे मनुष्यभवव्यवधानेन भूयः प्रथमसमयतिर्यक्त्वोपपत्तेः, अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकसूत्रे जघन्येनान्तरं क्षुल्लकभवग्रहणं समयाधिकं, तत्तु तिर्यग्योनिकक्षुल्लकभवग्रहणचरमसमयस्याधिकृताप्रथमसमयत्वात्तत्र मृतस्य मनुष्यक्षुल्लकभवग्रहणेन व्यवधाने सति तिर्यक्त्वेनोत्पद्यमानस्य प्रथमसमयातिक्रमे वेदितव्यं, अप्रथमसमयान्तरस्यैतावन्मात्रत्वात्, उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, देवादिभवानामेतावन्मात्रकालत्वात् । मनुष्यवक्तव्यता तिर्यग्वक्तव्यतैव, नवरं तत्र तिर्यक्क्षुल्लकभवग्रहणेन व्यवधानं भावनीयम् । देवसूत्रद्वयं नैरयिकसूत्रद्वयवत् ॥ सम्प्रत्येषामेव चतुर्णां प्रथमसमयानां परस्परमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः प्रथमसमयमनुष्याः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागमात्रत्वात्, तेभ्यः प्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, अतिप्रभूतानामेकस्मिन् समये उत्पादसम्भवात्, तेभ्यः प्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, व्यन्तरज्योतिष्काणामतिप्रभूततराणामेकस्मिन् समये उत्पादसम्भवात्, तेभ्यः प्रथमसमयतिर्यञ्चोऽसङ्ख्येयगुणाः, इह ये नारकादिगतित्रयादागत्य तिर्यक्त्वप्रथमसमये ये वर्त्तन्ते ते प्रथमसमयतिर्यञ्चो, न शेषाः, ततो यद्यपि प्रतिनिगोदमसङ्ख्येयो भागः सदा विग्रहगतिप्रथमसमयवर्त्ती लभ्यते तथाऽपि निगोदानामपि तिर्यक्त्वान्न ते प्रथमसमयतिर्यञ्चः ते एभ्यः सङ्ख्येयगुणा एव ॥ साम्प्रतमेतेषामेव चतुर्णामप्रथमसमयानां परस्परमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका अप्रथमसमयमनुष्याः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागत्वात्, तेभ्योऽप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः प्रथमवर्गमूले द्वितीयवर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणासु श्रेणिषु यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्योऽप्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, व्यन्तरज्योतिष्कानामपि प्रभूतत्वात्, तेभ्योऽप्रथमसमयतिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः, वनस्पतीनामनन्तत्वात् ॥ साम्प्रतमेतेषामेव नैरयिकादीनां प्रत्येकं प्रथमसमयाप्रथमसमयगतमल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रथमसमयनैरयिकाः, एकस्मिन् समये सङ्ख्यातीताना [ग्रन्थाग्रम् १३०००] मपि स्तोकानामेवोत्पादात्, तेभ्योऽप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, चिरकालावस्थायिनां तेषामन्याऽन्योत्पादेनातिप्रभूतभावात् । एवं तिर्यग्योनिकमनुष्यदेवसूत्राण्यपि वक्तव्यानि, नवरं तिर्यग्योनिकसूत्रेऽप्रथमसमयतिर्यग्योनिका अनन्तगुणा वक्तव्याः, वनस्पतिजीवानामनन्तत्वात् ॥ साम्प्रतमेषामेव नैरयिकादीनां प्रथमाप्रथमसमयानां समुदायेन परस्परमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम ! सर्वस्तोकाः प्रथमसमयमनुष्याः, एकस्मिन् समये सङ्ख्यातीतानामपि स्तोकानामेवोत्पादात्, तेभ्योऽप्रथमसमयमनुष्या असङ्ख्येयगुणाः, चिरकालावस्थायितयाऽतिप्राभूत्येन लभ्यमानत्वात्, तेभ्यः प्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, अतिप्रभूततराणामेकस्मिन् समये उत्पादसम्भवात्, तेभ्यः प्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, व्यन्तरज्योतिष्काणामेकस्मिन्नपि समये प्राचुर्येण कदाचिदुत्पादात्, तेभ्यः प्रथमसमयतिर्यग्योनिका असङ्ख्येयगुणाः, नारकवर्जगतित्रयादप्युत्पादसम्भवात्, तेभ्योऽप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, अङ्गुलमात्रक्षेत्रप्रदेशराशेः प्रथमवर्गमूले द्वितीयेन वर्गमूलेन गुणिते यावान् प्रदेशराशिस्तावत्प्रमाणत्वात्, तेभ्योऽप्रथमसमयतिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः, वनस्पतिजीवानामनन्तत्वात्, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां सप्तम्यां प्रतिपत्तौ अष्टविधप्रतिपत्तिः ॥

अथाष्टमी प्रतिपत्तिः

तदेवमुक्ताऽष्टविधप्रतिपत्तिरधुना क्रमप्राप्तां नवविधप्रतिपत्तिमाह—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु णवविधा संसारसमावण्णगा ते एवमाहंसु—पुढविक्काइया आउक्काइया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं
अत्र सप्तमी "अष्टविधा" प्रतिपत्ति: परिसमाप्ता: अथ अष्टमी "नवविधा" प्रतिपत्ति: आरब्धा:
*** संसारिजीवानाम् षड्विधत्वेन प्ररुपणं— पृथ्वि, अप्, तेउ, वायु, वनस्पतिपर्यन्त एवं द्वि-इन्द्रियादि चत्वार: जीवाधिकार: आरभ्यते

प्रत सूत्रांक [२४२]

दीप अनुक्रम [३६७]

तेउक्काइया वाउक्काइया वणस्सइकाइया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया ॥ ठिती सव्वेसिं भाणियव्वा ॥ पुढविक्काइयाणं संचिट्ठणा पुढविकालो जाव वाउक्काइयाणं, वणस्सईणं वणस्सतिकालो, बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया संखेज्जं कालं, पंचेंदियाणं सागरोवमसहस्सं सातिरेगं ॥ अंतरं सव्वेसिं अणंतं कालं, वणस्सतिकाइयाणं असंखेज्जं कालं ॥ अप्पाबहुगं, सव्वत्थोवा पंचिंदिया चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेइंदिया विसेसाहिया तेउक्काइया असंखे० पुढविका० आउ० वाउ० विसेसाहिया वणस्सतिकाइया अणंतगुणा । सेत्तं णवविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ॥ (सू० २४२) णवविहपडिवत्ती समत्ता ॥

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो नवविधाः संसारसमापन्ना जीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–पृथिवीकायिका अप्कायिकास्तेजस्कायिका वायुकायिका वनस्पतिकायिका द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः, अमीषां शब्दार्थभावना प्राग्वत् ॥ साम्प्रतमेतेषां स्थितिनिरूपणार्थं सूत्रनवकमाह—**'पुढविक्काइयस्स णं भंते!'** इत्यादि, एष सङ्क्षेपार्थः–सर्वत्रापि जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पृथिवीकायिकस्य द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि, अप्कायिकस्य सप्तवर्षसहस्राणि, तेजस्कायिकस्य त्रीणि रात्रिन्दिवानि, वायुकायिकस्य त्रीणि वर्षसहस्राणि, वनस्पतिकायिकस्य दशवर्षसहस्राणि, द्वीन्द्रियस्य द्वादश संवत्सराणि, त्रीन्द्रियस्यैकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि, चतुरिन्द्रियस्य षण्मासाः, पञ्चेन्द्रियस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ॥ सम्प्रति कायस्थितिप्रतिपादनार्थं सूत्रनवकमाह—**'पुढविक्काइए णं भंते!'** इत्यादि, सर्वत्र जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पृथिवीकायस्यासङ्ख्येयं कालमसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्ख्येया लोकाः, एवमग्नेजोवायुकायिकानामपि द्रष्टव्यं, वनस्पतिकायिकस्यानन्तं कालमनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, द्वीन्द्रियस्य सङ्ख्येयं कालं, एवं त्रीन्द्रियस्य चतुरिन्द्रियस्य पञ्चेन्द्रियस्य च सागरोपमसहस्रं सातिरेकम् ॥ साम्प्रतमन्तरप्रतिपादनार्थमाह—**'पुढविक्काइयस्स ण'**मित्यादि, पृथिवीकायिकस्य भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम्, अन्यत्रान्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः पृथिवीकायिकत्वेन कस्याप्युत्पादात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालमनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, पृथिवीकायादुद्धृत्य वनस्पतिष्वेतावन्तं कालं कस्याप्यवस्थानसम्भवात्, एवमग्नेजोवायुद्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियाणामपि वक्तव्यं, वनस्पतिकायिकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तद्भावना प्रागिव, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालमसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, शेषकायेषूत्कर्षतोऽप्येतावन्तं कालमवस्थानसम्भवात् ॥ साम्प्रतमेतेषामल्पबहुत्वमाह—**'एएसि ण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः पञ्चेन्द्रियाः सङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणविष्कम्भसूचीप्रमितप्रतरासङ्ख्येयभागवर्त्यसङ्ख्येयश्रेणिगताकाशप्रदेशराशिप्रमाणत्वात्, तेभ्यश्चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, विष्कम्भसूच्यास्तेषां प्रभूतसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽपि त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेषां विष्कम्भसूच्याः प्रभूततरसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यो द्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेषां विष्कम्भसूच्याः प्रभूततमसङ्ख्येययोजनकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, तेभ्यस्तेजस्कायिका असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्यः पृथिवीकायिका विशेषाधिकाः, प्रभूतासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्योऽप्कायिका विशेषाधिकाः, प्रभूततरासङ्ख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्यो वायुकायिका विशेषाधिकाः, प्रभूततमासङ्ख्येयलो-

॥ ४३२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२४२]

दीप अनुक्रम [३६७]

काकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, तेभ्यो वनस्पतिकायिका अनन्तगुणाः, अनन्तलोकाकाशप्रदेशप्रमाणत्वात्, उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि सुगमम् ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां अष्टम्यां प्रतिपत्तौ नवविधप्रतिपत्तिः समाप्ता ॥

अथ नवमी प्रतिपत्तिः

उक्ता नवविधप्रतिपत्तिः, सम्प्रति क्रमप्राप्तां दशविधप्रतिपत्तिं प्रतिपादयति—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु दसविधा संसारसमावण्णगा जीवा ते एवमाहंसु तंजहा—पढमसमयएगिंदिया अपढमसमयएगिंदिया पढमसमयबेइंदिया अपढमसमयबेइंदिया जाव पढमसमयपंचिंदिया अपढमसमयपंचिंदिया, पढमसमयएगिंदियस्स णं भंते! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्को० एक्कं, अपढमसमयएगिंदियस्स जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्को० बावीसं वाससहस्साइं समऊणाइं, एवं सव्वेसिं पढमसमयिकाणं जहण्णेणं एक्को समओ उक्कोसेणं एक्को समओ, अपढम० जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्कोसेणं जा जस्स ठिती सा समऊणा जाव पंचिंदियाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं ॥ संचिट्ठणा पढमसमइयस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं एक्कं समयं, अपढमसमयकाणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं

जी० ७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र अष्टमी "नवविधा" प्रतिपत्ति: परिसमाप्ता: अथ नवमी "दशविधा" प्रतिपत्ति: आरब्धा:

उक्कस्सेणं एगिंदियाणं वणस्सतिकालो, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियाणं संखेज्जं कालं पंचेंदियाणं सागरोवमसहस्सं सातिरेगं ॥ पढमसमयएगिंदियाणं केवतियं अंतरं होति ?, गोयमा ! जहन्नेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं, उक्को० वणस्सतिकालो, अपढमएगिंदिय० अंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवाससमब्भहियाइं, सेसाणं सव्वेसिं पढमसमयिकाणं अंतरं जह० दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं समऊणाइं उक्को० वणस्सतिकालो, अपढमसमयिकाणं सेसाणं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उक्को० वणस्सतिकालो ॥ पढमसमइयाणं सव्वेसिं सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया पढम० चउरिंदिया विसेसाहिया पढम० तेइंदिया विसेसाहिया प० बेइंदिया विसेसाहिया प० एगिंदिया विसेसाहिया ॥ एवं अपढमसमयिकावि णवरि अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा । दोण्हं अप्पबहू, सव्वत्थोवा पढमसमयएगिंदिया अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा सेसाणं सव्वत्थोवा पढमसमयिगा अपढम० असंखेज्जगुणा ॥ एतेसि णं भंते ! पढमसमयएगिंदियाणं अपढमसमयएगिंदियाणं जाव अपढमसमयपंचिंदियाण य कयरे २ ?, सव्वत्थोवा पढमसमयपंचेंदिया पढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया पढमसमयतेइंदिया विसेसाहिया एवं हेट्ठामुहा जाव पढमसमयएगिंदिया विसेसाहिया अपढमसमयपंचेंदिया असंखेज्जगुणा अपढमसमयचउरिंदिया विसेसाहिया जाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अपढमसमयएगिंदिया अणंतगुणा ॥ (सू० २४३) ॥ सेत्तं दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, सेत्तं संसारसमावण्णगजीवाभिगमे ॥

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो दशविधा: संसारसमापन्ना जीवा: प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–प्रथमसमयैकेन्द्रिया अप्रथमसमयैकेन्द्रिया: प्रथमसमयद्वीन्द्रिया अप्रथमसमयद्वीन्द्रिया: प्रथमसमयत्रीन्द्रिया अप्रथमसमयत्रीन्द्रिया: प्रथमसमयचतुरिन्द्रिया अप्रथमसमयचतुरिन्द्रिया: प्रथमसमयपञ्चेन्द्रिया अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रिया: प्रथमसमयाप्रथमसमयव्याख्यानं पूर्ववत् ॥ साम्प्रतमेतेषामेव दशानां क्रमेण स्थितिं निरूपयति—**'पढमसमये'**त्यादि, प्रथमसमयैकेन्द्रियस्य भदन्त ! कियन्तं कालं स्थिति: प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह–गौतम ! एकं समयं, द्वितीयादिषु समयेषु प्रथमसमयत्वविशेषणस्यायोगात्, एवं प्रथमसमयद्वीन्द्रियादिसूत्रेष्वपि वक्तव्यं, अप्रथमसमयैकेन्द्रियसूत्रे जघन्यत: क्षुल्लकभवग्रहणं–षट्पञ्चाशदधिकावलिकाशतद्वयप्रमाणं समयोनं, समयोनता प्रथमसमयेऽप्रथमसमयत्वायोगात्, उत्कर्षतो द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि समयोनानि, प्रथमसमयेन हीनत्वात्, अप्रथमसमयद्वीन्द्रियसूत्रे जघन्यं पूर्ववत्, उत्कर्षतो द्वादश संवत्सरा: समयोना:, अप्रथमसमयत्रीन्द्रियसूत्रेऽपि जघन्यं तथैव, उत्कर्षत एकोनपञ्चाशद्रात्रिन्दिवानि समयोनानि, अप्रथमसमयचतुरिन्द्रियसूत्रेऽपि जघन्यं तथैव, उत्कर्षत: षण्मासा: समयोना:, अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रियसूत्रे जघन्यं प्राग्वत्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि समयोनानि, समयोनता सर्वत्रापि प्रथमसमयेन हीना प्रतिपत्तव्या ॥ साम्प्रतमेतेषां क्रमेण कायस्थितिमाह—**'पढमसमये'** इत्यादि, प्रथमसमयैकेन्द्रियो भदन्त ! प्रथमसमयैकेन्द्रिय इति–प्रथमसमयैकेन्द्रियत्वेन कालत: **'कियच्चिरं'** कियन्तं कालं यावद्भवति ?, भगवानाह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

–गौतम! एकं समयं तत ऊर्द्ध्वं प्रथमसमयत्वायोगात्, एवं प्रथमसमयद्वीन्द्रियादिष्वपि वाच्यं । अप्रथमसमयैकेन्द्रियसूत्रे जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं समयोनं, तत ऊर्द्ध्वमन्यत्र कस्याप्युत्पादात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, एतावन्तं कालं वनस्पतिष्ववस्थानसंभवात् । अप्रथमसमयद्वीन्द्रियसूत्रे जघन्यं तथैव, उत्कर्षतः सङ्ख्येयं कालं, तत ऊर्द्ध्वमवश्यमुद्वर्त्तनाद्, एवमप्रथमसमयत्रिचतुरिन्द्रियसूत्रे अपि वक्तव्ये, अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रियसूत्रे जघन्यं तथैव, उत्कर्षतः सातिरेकं सागरोपमसहस्रं, देवादिभवभ्रमणस्य सातत्येनोत्कर्षतोऽप्येतावत्कालप्रमाणत्वात् ॥ साम्प्रतमन्तरं चिचिन्तयिषुराह—**'पढमसमये'**त्यादि, प्रथमसमयैकेन्द्रियस्य भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह–गौतम! जघन्यतो द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे समयोने, ते च क्षुल्लकभवग्रहणे द्वीन्द्रियादिभवग्रहणव्यवधानतः पुनरेकेन्द्रियेष्वेवोत्पद्यमानस्यावसातव्ये, तथाहि–एकं प्रथमसमयोनमेकेन्द्रियक्षुल्लकभवग्रहणमेव, द्वितीयं संपूर्णमेव द्वीन्द्रियाद्यन्यतमक्षुल्लकभवग्रहणमिति, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स चानन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽनन्ता लोकाः असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भाग इत्येवंस्वरूपः, तथाहि–एतावन्तं हि कालं सोऽप्रथमसमयो नतु प्रथमसमयः, ततो द्वीन्द्रियादिषु क्षुल्लकभवग्रहणमवस्थायैकेन्द्रियत्वेनोत्पद्यमानः प्रथमे समये प्रथमसमय इति भवत्युत्कर्षतो वनस्पतिकालोऽन्तरं, अप्रथमसमयैकेन्द्रियस्य जघन्यमन्तरं क्षुल्लकभवग्रहणं समयाधिकं, तच्चैकेन्द्रियभवगतचरमसमयस्याप्यप्रथमसमयत्वात्तत्र मृतस्य द्वीन्द्रियादिक्षुल्लकभवग्रहणेन व्यवधाने सति भूय एकेन्द्रियत्वेनोत्पन्नस्य प्रथमसमयातिक्रमे वेदितव्यं, एतावन्तं कालमप्रथमसमयान्तरभावात्, उत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे सङ्ख्येयवर्षाभ्यधिके, द्वीन्द्रियादिभवभ्रमणस्योत्कर्षतोऽपि सातत्येनैतावन्तं कालं सम्भवात्, प्र-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

थमसमयद्वीन्द्रियस्य जघन्येनान्तरं द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे समयोने, तद्यथा–एकं द्वीन्द्रियक्षुल्लकभवग्रहणमेव प्रथमसमयोनं, द्वितीयं सम्पूर्णमेवैकेन्द्रियत्रीन्द्रियाद्यन्यतमक्षुल्लकभवग्रहणं, (मिति, एवं प्रथमसमयत्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियाणामप्यन्तरं वेदितव्यं, अप्रथमसमयद्वीन्द्रियस्य जघन्येनान्तरं क्षुल्लकभवग्रहणं समयाधिकं तच्चैकेन्द्रियादिषु) [एवं प्रथमसमयत्रीन्द्रिय]क्षुल्लकभवं स्थित्वा भूयो द्वीन्द्रियत्वेनोत्पन्नस्य प्रथमसमयातिक्रमे वेदितव्यं, उत्कर्षतोऽनन्तं कालमनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, एतावांश्च द्वीन्द्रियभवाद्उद्धृत्यैतावन्तं कालं वनस्पतिषु स्थित्वा भूयो द्वीन्द्रियत्वेनोत्पन्नस्य प्रथमसमयातिक्रमे भावनीयः, एवमप्रथमसमयत्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियाणामपि जघन्यमुत्कृष्टं चान्तरं वक्तव्यं, भावनाप्येतदनुसारेण स्वयं भावनीया ॥ साम्प्रतमेतेषामेकेन्द्रियादिप्रथमसमयानां परस्परमल्पबहुत्वमाह—**'एएसि ण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सर्वस्तोकाः प्रथमसमयपञ्चेन्द्रियाः, अल्पानामेवैकस्मिन् समये तेषामुत्पादात्, तेभ्यः प्रथमसमयचतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, प्रभूतानां तेषामेकस्मिन् समये उत्पादसम्भवात्, तेभ्यः प्रथमसमयत्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, प्रभूततराणां तेषामेकस्मिन् समये उत्पादात्, तेभ्यः प्रथमसमयद्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः, प्रभूतानां तेषामेकस्मिन् समये उत्पादात्, तेभ्यः प्रथमसमयैकेन्द्रिया विशेषाधिकाः, इह ये द्वीन्द्रियादिभ्य उद्धृत्य एकेन्द्रियत्वेनोत्पद्यन्ते त एव प्रथमे समये वर्त्तमानाः प्रथमसमयैकेन्द्रिया नान्ये, ते च प्रथमसमयद्वीन्द्रियेभ्यो विशेषाधिका एव नासङ्ख्येया नानन्तगुणा इति ॥ साम्प्रतमप्रथमसमयानामेतेषामल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सर्वस्तोका अप्रथमसमयपञ्चेन्द्रियाः, तेभ्योऽप्रथमसमयचतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽप्रथमसमयत्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽप्रथमसमयद्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः, अत्र युक्तिर्नवविधप्रतिपत्तौ सामान्यतो द्वित्रिच-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४३]

दीप अनुक्रम [३६८]

तुष्पञ्चेन्द्रियाणां बहुत्वचिन्तायामिव भावनीया, तेभ्योऽप्रथमसमयैकेन्द्रिया अनन्तगुणा वनस्पतिजीवानामनन्तत्वात् ॥ साम्प्रतमेकेन्द्रियादीनां प्रत्येकं प्रथमसमयाप्रथमसमयानां परस्परमल्पबहुत्वमभिधित्सुः प्रथमतः एकेन्द्रियाणां तावदाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः प्रथमसमयैकेन्द्रियाः, अल्पानामेवैकस्मिन् समये द्वीन्द्रियादिभ्य आगतानामुत्पादात्, तेभ्योऽप्रथमसमयैकेन्द्रिया अनन्तगुणा वनस्पतीनामनन्तत्वात्। द्वीन्द्रियसूत्रे सर्वस्तोकाः प्रथमसमयद्वीन्द्रिया अप्रथमसमयद्वीन्द्रिया असङ्ख्येयगुणाः, द्वीन्द्रियाणां सर्वसङ्ख्यायाऽप्यसङ्ख्यातत्वात्, एवं त्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियसूत्राण्यपि वक्तव्यानि ॥ साम्प्रतमेतेषां दशानामपि परस्परमल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोकाः प्रथमसमयपञ्चेन्द्रियाः, तेभ्यः प्रथमसमयचतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्यः प्रथमसमयत्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्यः प्रथमसमयद्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्यः प्रथमसमयैकेन्द्रिया विशेषाधिकाः, अत्र युक्तिः प्रथमाल्पबहुत्ववत्, तेभ्योऽप्रथमसमयपञ्चेन्द्रिया असङ्ख्येयगुणाः, अप्रथमसमयैकेन्द्रिया हि द्वीन्द्रियादिभ्य उद्धृत्यैकेन्द्रियभवप्रथमसमये वर्त्तमानास्ते च स्तोका एव, पञ्चेन्द्रियास्त्वप्रथमसमयवर्त्तिनश्चिरकालावस्थितया गतिचतुष्टयेऽप्यतिप्रभूतास्ततोऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्रथमसमयचतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽप्रथमसमयत्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽप्रथमसमयद्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः, तेभ्योऽप्रथमसमयैकेन्द्रिया अनन्तगुणाः, अत्र युक्तिर्द्वितीयाल्पबहुत्ववत्, उपसंहारमाह—**'सेत्तं दसविहा संसारसमापन्ना जीवा'**। मूलोपसंहारमाह—**'सेत्तं संसारसमापन्नजीवाभिगमे'** ॥ इति श्रीमलयगिरिविरचितायां जीवाभिगमटीकायां दशविधप्रतिपत्तिः समाप्ता ॥ तत्समाप्तौ च समाप्तः संसारसमापन्नजीवाभिगमः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अत्र नवमी "दशविधा" प्रतिपत्तिः परिसमाप्ता:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२४४]

दीप अनुक्रम [३६९]

तदेवमुक्तः संसारसमापन्नजीवाभिगमः, साम्प्रतं संसारासंसारसमापन्नजीवाभिगममभिधित्सुराह—

से किं तं सव्वजीवाभिगमे?, सव्वजीवेसु णं इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति एगे एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता जाव दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ॥ तत्थ जे ते एवमाहंसु दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—सिद्धा य असिद्धा य इति ॥ सिद्धे णं भंते! सिद्धेत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! सातीअपज्जवसिए ॥ असिद्धे णं भंते! असिद्धेत्ति०?, गोयमा! असिद्धे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए अणातीए वा सपज्जवसिए ॥ सिद्धस्स णं भंते! केवतिकालं अंतरं होति?, गोयमा! सातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ असिद्धस्स णं भंते! केवइयं अंतरं होइ?, गोयमा! अणातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणातियस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ एएसि णं भंते! सिद्धाणं असिद्धाण य कयरे २?, गोयमा! सव्वत्थोवा सिद्धा असिद्धा अणंतगुणा (सू० २४४)

'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽसौ सर्वजीवाभिगमः?, सर्वजीवाः संसारिमुक्तभेदाः, गुरुराह—'सव्वजीवेसु ण'मित्यादि, सर्वजीवेषु सामान्येन 'एताः' अनन्तरं वक्ष्यमाणा नव प्रतिपत्तयः 'एवम्' अनन्तरमुपदर्श्यमानेन प्रकारेणाख्यायन्ते, ता एवाह—एके एवमुक्तवन्तो—द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, एक एवमुक्तवन्तस्त्रिविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः, एवं यावदेके एवमुक्तवन्तो दशविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः ॥ 'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—सिद्धाश्चासिद्धाश्च, सितं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ सर्वजीव-प्रतिपत्ति: १-[द्विविधा] आरब्धा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४४]

दीप अनुक्रम [३६९]

बद्धमष्टप्रकारं कर्म्म ध्मातं–भस्मीकृतं यैस्ते सिद्धाः, पृषोदरादित्वादिष्टरूपनिष्पत्तिः, निर्दग्धकर्म्मेन्धना मुक्ता इत्यर्थः, 'असिद्धाः' संसारिणः, चशब्दौ स्वगतानेकभेदसंदर्शनार्थौ ॥ सम्प्रति सिद्धस्य कायस्थितिमाह—'सिद्धे ण'मित्यादि, सिद्धो भदन्त! सिद्ध इति–सिद्धत्वेन कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह–गौतम! सिद्धः सादिकोऽपर्यवसितः, तत्र सादिता संसारविप्रमुक्तिसमये सिद्धत्वभावात्, अपर्यवसितता सिद्धत्वच्युतेरसम्भवात् ॥ असिद्धविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! असिद्धो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–अनादिकोऽपर्यवसितः अनादिकः सपर्यवसितः, तत्र यो न जातुचिदपि सेत्स्यति अभव्यत्वात्तथाविधसामग्र्यभावाद्वा सोऽनाद्यपर्यवसितः, यस्तु सिद्धिं गतः सोऽनादिसपर्यवसितः ॥ साम्प्रतमन्तरं चिचिन्तयिषुराह—'सिद्धस्स णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सिद्धस्य सादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम्, अत्र 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायात् हेतौ षष्ठी, ततोऽयमर्थः–यस्मात्सिद्धः सादिरपर्यवसितस्तस्मान्नास्त्यन्तरम्, अन्यथाऽपर्यवसितत्वायोगात् ॥ असिद्धसूत्रे असिद्धस्यानादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम्, अपर्यवसितत्वादेवासिद्धत्वाप्रच्युतेः, अनादिकसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं, भूयोऽसिद्धत्वायोगात् ॥ साम्प्रतमेतेषामेवाल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सर्वस्तोकाः सिद्धाः असिद्धा अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामतिप्रभूतत्वात् ॥

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव । सइंदिए णं भंते! कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते—अणातीए वा अपज्जवसिए अणाईए वा सपज्जवसिए, अणिंदिए सातीए वा अपज्जवसिए, दोण्हवि अंतरं नत्थि। सव्वत्थोवा अणिं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२४५]

दीप अनुक्रम [३७०]

दिया सइंदिया अणंतगुणा। अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव, एवं सजोगी चेव अजोगी चेव तहेव, [एवं सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव, ससरीरा चेव असरीरा चेव] संचिट्ठणं अंतरं अप्पाबहुयं जहा सइन्दियाणं॥ अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सवेदगा चेव अवेदगा चेव॥ सवेदए णं भंते! सवे०? गोयमा! सवेयए तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—अणादीए अपज्जवसिते अणादीए सपज्जवसिए साइए सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जह० अंतोमु० उक्को० अणंतं कालं जाव खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं॥ अवेदए णं भंते! अवेयएत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! अवेदए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सातीए वा अपज्जवसिते साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिते से जहण्णेणं एक्कं समयं उक्को० अंतोमुहुत्तं॥ सवेयगस्स णं भंते! केवतिकालं अंतरं होइ?, अणादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणादियस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, सादीयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥ अवेदगस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?, सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, सातीयस्स सपज्जवसियस्स जह० अंतोमु० उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अप्पाबहुगं, सव्वत्थोवा अवेयगा सवेयगा अणंतगुणा। एवं सकसाई चेव अकसाई चेव २ जहा सवे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४५]

दीप अनुक्रम [३७०]

यके तहेव भाणियव्वे ॥ अहवा दुविहा सव्वजीवा—सलेसा य अलेसा य जहा असिद्धा सिद्धा, सव्वत्थोवा अलेसा सलेसा अणंतगुणा (सू० २४५)

अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सेन्द्रियाश्च अनिन्द्रियाश्च, तत्र सेन्द्रियाः—संसारिणः अनिन्द्रियाः—सिद्धाः, उपाधिभेदात्पृथगुपन्यासः । एवं सकायिकादिष्वपि भावनीयं, तत्र सेन्द्रियस्य कायस्थितिरन्तरं चासिद्धवद्वक्तव्यं, अनिन्द्रियस्य सिद्धवत्, तच्चैवम्—'सइंदिए णं भंते! सइंदियत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! सइंदिए दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए, अणिंदिए णं भंते! अणिंदिएत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! साइए अपज्जवसिए, सइंदियस्स णं भंते! कालओ केवचिरं अंतरं होइ?, गोयमा! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! साइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं' इति, अल्पबहुत्वसूत्रं पूर्ववद्भावनीयं । एवं कायस्थित्यन्तराल्पबहुत्वसूत्राणि सकायिकाकायिकविषयाणि सयोग्ययोगिविषयाण्यपि भावयितव्यानि, तच्चैवम्—'अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव, एवं सजोगी चेव अजोगी चेव तहेव, एवं सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव ससरीरा चेव असरीरा चेव संचिट्ठणं अंतरं अप्पाबहुयं जहा सकाइयाणं ।' भूयः प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह—'अहवे'त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सवेदकाश्च अवेदकाश्च । तत्र सवेदकस्य कायस्थितिमाह—'सवेदए णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सवेदकस्त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनाद्यपर्यवसितः अनादिसपर्यवसितः सादिसपर्यवसितश्च, तत्रानाद्यपर्यवसितोऽभव्यो भव्यो वा तथाविधसामग्र्यभावान्मुक्तिमगन्ता, उक्तञ्च—"भव्वावि न सिज्झंति केइ" इत्यादि, अनादिसपर्यवसितो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

भव्यो मुक्तिगामी पूर्वमप्रतिपन्नोपशमश्रेणिः, सादिसपर्यवसितः पूर्वं प्रतिपन्नोपशमश्रेणिः, उपशमश्रेणिं प्रतिपद्य वेदोपशमोत्तरकालावेदकत्वमनुभूय श्रेणिसमाप्तौ भवक्षयादपान्तराले मरणतो वा प्रतिपततो वेदोदये पुनः सवेदकत्वोपपत्तेः, तत्र योऽसौ सादिसपर्यवसितो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं श्रेणिसमाप्तौ सवेदकत्वे सति पुनरन्तर्मुहूर्त्तेन श्रेणिप्रतिपत्ताववेदकत्वभावात्, आह–किमेकस्मिन् जन्मनि वेलाद्वयमुपशमश्रेणिलाभो भवति? यदेवमुच्यते, सत्यमेतद्भवति, तथा चाह **मूलटीकाकारः**—"नैकस्मिन् जन्मनि उपशमश्रेणिः क्षपकश्रेणिश्च जायते, उपशमश्रेणिद्वयं तु भवत्येवे"ति, तत एवमुपपद्यते–जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, तमेव कालक्षेत्राभ्यां निरूपयति–अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः एषा कालतो मार्गणा, क्षेत्रतोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं देशोनम्, एतावतः कालादूर्द्ध्वं पूर्वप्रतिपन्नोपशमश्रेणेरवश्यं मुक्त्यासन्नतया श्रेणिप्रतिपत्ताववेदकत्वभावात् ॥ **'अवेदए णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह–गौतम! अवेदको द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–सादिको वाऽपर्यवसितः [समयानन्तरं] क्षीणवेदः, सादिको वा सपर्यवसित–उपशान्तवेदः, तत्र योऽसौ सादिसपर्यवसितोऽवेदकः स च जघन्येनैकं समयं, उपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य वेदोपशमसमयानन्तरेऽपि मरणे पुनः सवेदकत्वोपपत्तेः, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुपशान्तवेदश्रेणिकालं, तत ऊर्द्ध्वं श्रेणेः प्रतिपतने नियमतः सवेदकत्वभावात् ॥ अन्तरं प्रतिपिपादयिषुराह—**'सवेदगस्स णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अनादिकस्यापर्यवसितस्य सवेदकस्य नास्त्यन्तरं, अपर्यवसिततया सदा तद्भावापरित्यागात्, अनादिकस्य सपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं, अनादिसपर्यवसितो ह्यपान्तराले उपशमश्रेणिमप्रतिपद्य भावी क्षीणवेदो न च क्षीणवेदस्य पुनः सवेदकत्वं प्रतिपाताभावात्, सादिकस्य सपर्यवसितस्य सवेदकस्य जघन्येनैकं समयमन्तरं, द्वितीयवारमुपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्य वेदोपशमसमयानन्तरं कस्यापि मरणसम्भवात्, उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तं द्वितीयं वारमुपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्योपशा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२४५]

दीप अनुक्रम [३७०]

॥ ४३८ ॥

न्तवेदस्य श्रेणिसमाप्तेरूर्द्धं पुनः सवेदकत्वभावात् ॥ अवेदकसूत्रे सादिकस्यापर्यवसितस्यावेदकस्य नास्त्यन्तरं, क्षीणवेदस्य पुनः सवेदत्वाभावात्, वेदानां निर्मूलकापंकपितत्वात्, सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, उपशमश्रेणिसमाप्तौ सवेदकत्वे सति पुनरन्तर्मुहूर्त्तेनोपशमश्रेणिलाभतोऽवेदकत्वोपपत्तेः, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, एकवारमुपश्रेणिं प्रतिपद्य तत्रावेदको भूत्वा श्रेणिसमाप्तौ सवेदकत्वे सति पुनरेतावता कालेन श्रेणिप्रतिपत्ताववेदकत्वोपपत्तेः ॥ अल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते! जीवा' इत्यादि पूर्ववत् ॥ प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह—'अहवे'त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सकषायिकाश्च अकषायिकाश्च, सह कषाया येषां वैर्वा ते सकषायाः त एव सकषायिकाः, प्राकृतत्वात् स्वार्थे इकप्रत्ययः, एवं न विद्यन्ते कषाया येषां ते अकषायाः २ एवाकषायिकाः ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—'सकसाइयस्से'त्यादि, सकषायिकस्य त्रिविधस्यापि संचिट्ठणा कायस्थितिरन्तरं च यथा सवेदकस्य, अकषायिकस्य द्विविधभेदस्यापि कायस्थितिरन्तरं च यथाऽवेदकस्य, तच्चैवम्—'सकसाइए णं भंते! सकसाइयत्ति कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! सकसाइए तिविहे पन्नत्ते, तंजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अणंता ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ कालतो खेत्ततो अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, अकसाइए णं भंते! अकसाइयत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! अकसाइए दुविहे पन्नत्ते, तंजहा—साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं । सकसाइयस्स णं भंते! अंतरं कालतो केवचिरं होइ?, गोयमा! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं

॥ ४३८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं, अकसाइयस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?, साइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अनंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं'मिति, अस्य व्याख्या पूर्ववत् । अल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते! जीवाणं सकसाइयाण'मित्यादि प्राग्वत् ॥ प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह—

णाणी चेव अण्णाणी चेव ॥ णाणी णं भंते! कालओ०?, २ दुविहे पन्नत्ते—सातीए वा अपज्जवसिए सादीए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिते से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं छावट्ठिसागरोवमाइं सातिरेगाइं, अण्णाणी जहा सवेदया ॥ णाणिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं । अण्णाणियस्स दोण्हवि आदिल्लाणं णत्थि अंतरं, सादीयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमु० उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं । अप्पाबहु सव्वत्थोवा णाणी अण्णाणी अणंतगुणा ॥ अहवा दुविहा सव्वजीवा पन्नत्ता—सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, संचिट्ठणा अन्तरं च जहण्णेणं उक्कोसेणवि अन्तोमुहुत्तं, अप्पाबहु सागारो० संखे० (सू० २४६)

'अहवे'त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सलेश्याश्च अलेश्याश्च, तत्र सलेश्यस्य कायस्थितिरन्तरं चासिद्धस्येव, अलेश्यस्य कायस्थितिरन्तरं च यथा सिद्धस्य । अल्पबहुत्वं प्राग्वत् । भूयः प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह—'अहवे'त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—ज्ञानिनश्च अज्ञानिनश्च, ज्ञानमेषामस्तीति ज्ञानिनः न ज्ञानिनोऽज्ञानिनः मिथ्याज्ञाना इत्यर्थः ॥ सम्प्रति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४६]

दीप अनुक्रम [३७१]

श्रीजीवाजीवाभि० मलयगिरीयावृत्तिः ॥ ४३९ ॥

कायस्थितिमाह—'णाणी ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! ज्ञानी द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–सादिको वाऽपर्यवसितः, स च केवली केवलज्ञानस्य साद्यसपर्यवसितत्वात्, सादिको वा सपर्यवसितो मतिज्ञानादिमान्, मतिज्ञानादीनां छद्मस्थिकतया सादिसपर्यवसितत्वात्, 'तत्थ ण'मित्यादि, तत्र योऽसौ सादिकः सपर्यवसितः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, सम्यक्त्वस्य जघन्यत एतावन्मात्रकालत्वात् सम्यक्त्ववतश्च ज्ञानित्वात्, यथोक्तम्—"सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यासः" इति, उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, सम्यग्दर्शनकालस्याप्युत्कर्षत एतावन्मात्रत्वात्, अप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य विजयादिगमनश्रवणात्, तथा च भाष्यम्—"दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइं। अइरेगं नरभवियं नाणाजीवाण सव्वद्धा ॥ १ ॥" [द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य अथवा त्रीनच्युते तानि । अतिरेको नरभविकं नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥] 'अण्णाणी णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अज्ञानी त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–अनादिको वाऽपर्यवसितः अनादिको वा सपर्यवसितः सादिको वा सपर्यवसितः, तत्रानाद्यपर्यवसितो यो न जातुचिदपि सिद्धिं गन्ता, अनादिसपर्यवसितो योऽनादिमिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वमासाद्याप्रतिपतितसम्यक्त्व एव क्षपकश्रेणिं प्रतिपत्स्यते, सादिसपर्यवसितः सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा जातमिथ्यादृष्टिः, स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं सम्यक्त्वात् प्रतिपत्य पुनरन्तर्मुहूर्त्तेन कस्यापि सम्यग्दर्शनावाप्तिसम्भवात्, उत्कर्षेणानन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं ॥ साम्प्रतमन्तरं प्रतिपादयति—'णाणिस्स णं भंते!' इत्यादि, ज्ञानिनो भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह–गौतम! सादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, अपर्यवसितत्वेन सदा तद्भावापरित्यागात्, सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता मिथ्यादर्शनकालेन व्यवधानेन भूयोऽपि ज्ञानभावात्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः

९ प्रतिपत्तौ सर्वजीव ज्ञानिस्थित्यादिः उद्देशः २ सू० २४६

॥ ४३९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्ध पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वात्प्रतिपतितस्यैतावन्तं कालं मिथ्यात्वमनुभूय तदनन्तरमवश्यं सम्यक्त्वासादनात् । **'अण्णाणिस्स णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, अपर्यवसितत्वादेव, अनादिसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं अवाप्तकेवलज्ञानस्य प्रतिपाताभावात्, सादिसपर्यवसानस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, जघन्यस्य सम्यग्दर्शनकालस्यैतावन्मात्रत्वात्, उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, एतावतोऽपि कालादूर्द्ध्वं सम्यग्दर्शनप्रतिपाते सत्यज्ञानभावात् । अल्पबहुत्वसूत्रं प्राग्वत् । प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह—**'अहवे'**त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च, सम्प्रति कायस्थितिमाह—**'सागारोवउत्ता णं भंते!'** इह छद्मस्था एव सर्वजीवा विवक्षिता न केवलिनोऽपि **'विचित्रत्वात् सूत्रगते'**रिति द्वयानामपि कायस्थितावन्तरे च जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तं, अन्यथा केवलिनामुपयोगस्य साकारस्यानाकारस्य चैकसामयिकत्वात् कायस्थितावन्तरे चैकसामयिकोऽप्युच्येत । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका अनाकारोपयुक्ताः, अनाकारोपयोगस्य स्तोककालतया प्रच्छासमये तेषां स्तोकानामेवावाप्यमानत्वात्, साकारोपयुक्ताः सङ्ख्येयगुणाः, अनाकारोपयोगाद्धातः साकारोपयोगाद्धायाः सङ्ख्येयगुणत्वात् ॥

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—आहारगा चेव अणाहारगा चेव ॥ आहारए णं भंते! जाव केवचिरं होति?, गोयमा! आहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य, छउमत्थआहारए णं जाव केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमऊणं उक्को० असंखेज्जं कालं जाव काल० खेत्तओ अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२४७]

दीप अनुक्रम [३७२]

केवलिआहारए णं जाव केवचिरं होइ?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी ॥ अणाहारए णं भंते! केवचिरं०?, गोयमा! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—छउमत्थअणाहारए य केवलिअणाहारए य, छउमत्थअणाहारए णं जाव केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कस्सेणं दो समया। केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सिद्धकेवलिअणाहारए य भवत्थकेवलिअणाहारए य ॥ सिद्धकेवलियणाहारए णं भंते! कालओ केवचिरं होति?, सातिए अपज्जवसिए ॥ भवत्थकेवलियणाहारए णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, भवत्थकेवलिय० दुविहे पण्णत्ते—सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य। सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते! कालओ केवचिरं?, अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया। अजोगिभवत्थकेवलि० जह० अंतो० उक्को० अंतोमुहुत्तं ॥ छउमत्थआहारगस्स केवतियं कालं अंतरं?, गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्को० दो समया। केवलिआहारगस्स अंतरं अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया ॥ छउमत्थअणाहारगस्स अंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमऊणं उक्क० असंखेज्जं कालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं। सिद्धकेवलिअणाहारगस्स सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स जह० अंतो० उक्कोसेणवि, अ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

जोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स णत्थि अंतरं ॥ एएसि णं भंते! आहारगाणं अणाहारगाण य कयरे २ हिंतो अप्पा बहु०?, गोयमा! सव्वत्थोवा अणाहारगा आहारगा असंखेज्जा ॥ (सू०२४७)

'अहवे'त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–आहारकाश्च अनाहारकाश्च ॥ अधुना कायस्थितिमाह—'आहारगे णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! आहारको द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–छद्मस्थाहारकः केवल्याहारकः, तत्र छद्मस्थाहारको जघन्येन क्षुल्लकभवग्रहणं द्विसमयोनं, एतच्च जघन्याधिकाराद्विग्रहेणागत्य क्षुल्लकभवग्रहणवत्सूत्रपाते परिभावनीयं, तत्र यद्यपि नाम लोकान्तनिष्कुटादावुत्पादे चतुःसामयिकी पञ्चसामयिकी च विग्रहगतिर्भवति तथाऽपि बाहुल्येन त्रिसामयिकयेवेति तामेवाधिकृत्य सूत्रमिदमुक्तं, इत्थमेवान्येषामपि पूर्वाचार्याणां प्रवृत्तिदर्शनात्, उक्तञ्च—"एकं द्वौ वाऽनाहारकः" (तत्त्वा० अ० २ सू० ३१) इति, त्रिसामयिक्यां च विग्रहगतावाद्यौ द्वौ समयावनाहारक इति ताभ्यां हीनमुक्तं, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालम्, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भागः, किमुक्तं भवति?–अङ्गुलमात्रक्षेत्राङ्गुलासङ्ख्येयभागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावन्तः प्रतिसमयमेकैकप्रदेशापहारे यावता कालेन निर्लेपा भवन्ति तावत्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य इति, तावन्तं हि कालमविग्रहेणोत्पाद्यते, अविग्रहोत्पत्तौ च सततमाहारकः। केवल्याहारकप्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, स चान्तकृत् केवली प्रतिपत्तव्यः, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, सा च पूर्वकोट्यायुषो नववर्षादारभ्योत्पन्नकेवलज्ञानस्य परिभावनीया ॥ अनाहारकविषयं सूत्रमाह—'अणाहारए णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अनाहारको द्विविधः प्रज्ञप्तः—छद्मस्थोऽनाहारकः केवल्यनाहारकश्च, छद्मस्थानाहारकप्रश्नसूत्रं सुगमं भगवानाह–गौतम! जघन्यत एकं समयं, जघन्याधिकाराद्विसामयिकीं विग्रहगतिमपेक्ष्यैतदवसातव्यं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४७]

दीप अनुक्रम [३७२]

उत्कर्षतो द्वौ समयौ त्रिसामयिक्या एव विग्रहगतेर्बाहुल्येनाश्रयणात्, आह च चूर्णिकृत्—"यद्यपि भगवत्यां चतुःसामयिकोऽनाहारक उक्तस्तथाऽप्यत्र नाङ्गीक्रियते, कदाचित्कोऽसौ भावो येन, बाहुल्यमेवाङ्गीक्रियते, बाहुल्याच्च समयद्वयमेवे"ति । केवल्यनाहारकसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह–गौतम! केवल्यनाहारको द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–भवस्थकेवल्यनाहारकः सिद्धकेवल्यनाहारकः ॥ **'सिद्धकेवलिअणाहारए णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! सादिकापर्यवसितः, सिद्धस्य साद्यपर्यवसिततयाऽनाहारकत्वस्यापि तद्विशिष्टस्य तथाभावात् ॥ **'भवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! भवस्थकेवल्यनाहारको द्विविधः प्रज्ञप्तः–सयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकोऽयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकश्च, तत्रायोगिभवस्थकेवल्यनाहारकप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, अयोगित्वं नाम हि शैलेश्यवस्था तस्यां नियमादनाहारक औदारिकादिकाययोगाभावात्, शैलेश्यवस्था च जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तं, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टमधिकमवसेयं, अन्यथोभयपदोपन्यासायोगात् ॥ **'सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अजघन्योत्कर्षेण त्रयः समयाः, ते चाष्टसामयिककेवलिसमुद्घातावस्थायां तृतीयचतुर्थपञ्चमरूपाः तेषु केवलकार्म्मणकाययोगभावात्, उक्तञ्च—"कार्म्मणशरीरयोगी चतुर्थके पञ्चमे तृतीये च । समयत्रयेऽपि तस्माद्भवत्यनाहारको नियमात् ॥ १ ॥" साम्प्रतमन्तरं चिन्तयन्नाह—**'छउमत्थाहारयस्स णं भंते!'** इत्यादि, छद्मस्थाहारकस्य भदन्त! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति?, भगवानाह–गौतम! जघन्येनैकं समयमुत्कर्षतो द्वौ समयौ, यावानेव हि कालो जघन्यत उत्कर्षतश्च छद्मस्थानाहारकस्य तावानाहारकस्यान्तरकालः, स च कालो जघन्येनैकः समयः उत्कर्षतो बाहुल्यमङ्गीकृत्य व्यवह्रियमाणायां त्रिसामयिक्यां विग्रहगतौ द्वौ समयावित्याहारकस्या-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२४७]

दीप अनुक्रम [३७२]

प्यन्तरं तावदिति । केवल्याहारकप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अजघन्योत्कर्षेण त्रयः समयाः, केवल्याहारको हि सयोगिभवस्थकेवली, तस्य चानाहारकत्वं त्रीनेव समयान् यथोक्तं प्रागित्यन्तरं केवल्याहारकस्य तावदिति ॥ सम्प्रत्यनाहारकस्यान्तरं चिचिन्तयिषुः प्रथमतश्छद्मस्थानाहारकस्याह—**'छउमत्थाणाहारयस्स णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येन क्षुल्लकभवग्रहणं द्विसमयोनं, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं यावदङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भागः, यावानेव हि छद्मस्थाहारकस्य कालस्तावानेव छद्मस्थानाहारकस्यान्तरं, छद्मस्थाहारकस्य च जघन्यतः कालोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भागः, एतावन्तं कालं सततमविग्रहेणोत्पादसम्भवात्, ततश्छद्मस्थानाहारकस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावदन्तरमिति । अथ स्थाने २ क्षुल्लकभवग्रहणमित्युक्तं तत्र क्षुल्लकभवग्रहणमिति कः शब्दार्थः?, उच्यते, क्षुल्लं लघु स्तोकमित्येकोऽर्थः क्षुल्लमेव क्षुल्लकं–एकायुष्कसंवेदनकालो भवस्तस्य ग्रहणं–संबन्धनं भवग्रहणं, क्षुल्लकं च तद् भवग्रहणं च क्षुल्लकभवग्रहणं, तच्चावलिकातश्चिन्त्यमानं षट्पञ्चाशदधिकमावलिकाशतद्वयं, अथैकस्मिन् आनप्राणे कियन्ति क्षुल्लकभवग्रहणानि भवन्ति?, उच्यते, किञ्चित्समधिकानि सप्तदश, कथमिति चेदुच्यते–इह मुहूर्त्तमध्ये सर्वसङ्ख्यया पञ्चषष्टिः सहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशानि क्षुल्लकभवग्रहणानां भवन्ति, यत उक्तं **चूर्णौ**— "पन्नट्ठिसहस्साइं पंचेव सया हवंति छत्तीसा । खुड्डागभवग्गहणा हवंति अंतोमुहुत्तंमि ॥१॥" आनप्राणाश्च मुहूर्त्ते त्रीणि सहस्राणि सप्त शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि, उक्तञ्च—"तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च ऊसासा । एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ १ ॥" ततोऽत्र त्रैराशिककर्म्मावतारः, यदि त्रिसप्तत्यधिकसप्तशतोत्तरैरुच्छ्वासानां पञ्चषष्टिः सहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशानि क्षुल्लकभवग्रहणानां भवन्ति तत एकेनोच्छ्वासेन किं लभामहे?, राशित्रयस्थापना–३७७३।६५५३६।१। अत्रान्त्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२४७]

दीप अनुक्रम [३७२]

राशिना एककलक्षणेन मध्यराशेर्गुणनाज्जातः स तावानेव, 'एकेन गुणितं तदेव भवती'ति न्यायात्, तत आद्येन राशिना भागहरणं, लब्धाः सप्तदश क्षुल्लकभवाः, शेषास्त्वंशास्तिष्ठन्ति तत्र त्रयोदश शतानि पञ्चनवत्यधिकानि, उक्तञ्च—"सत्तरस भवग्गहणा खुड्डाणं भवंति आणुपाणुंमि । तेरस चेव सयाइं पंचाणइ चेव अंसाणं ॥ १ ॥" अथैतावद्भिरंशैः कियत्य आवलिका लभ्यन्ते?, उच्यते, सप्तधिकचतुर्नवतिः, तथाहि—षट्पञ्चाशदधिकेन शतद्वयेनावलिकानां त्रयोदश शतानि पञ्चनवतानि गुण्यन्ते, जातानि त्रीणि लक्षाणि सप्तपञ्चाशत्सहस्राणि शतमेकं विंशत्यधिकं ३५७१२०, छेदराशिः स एव ३७७३, लब्धा चतुर्नवतिरावलिकाः, शेषास्त्वंशा आवलिकायास्तिष्ठन्ति चतुर्विंशतिः शतानि अष्टपञ्चाशानि, छेदः स एव ३७७३, एवं यदा एकस्मिन्नानप्राणे आवलिकाः सङ्ख्यातुमिष्यन्ते तदा सप्तदश द्वाभ्यां षट्पञ्चाशदधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यन्ते, गुणयित्वा चोपरितनाश्चतुर्नवतिरावलिकाः प्रक्षिप्यन्ते, तत आवलिकानां चतुश्चत्वारिंशत् शतानि षट्चत्वारिंशानि भवन्ति, उक्तञ्च—"एक्को उ आणुपाणू चोयालीसं सया उ छायाला । आवलियपमाणेणं अणंतनाणीहिं निद्दिट्ठो ॥ १ ॥" यदि पुनर्मुहूर्त्ते आवलिकाः सङ्ख्यातुमिष्यन्ते तत एतान्येव चतुश्चत्वारिंशच्छतानि त्रिसप्तत्यधिकानि भवन्तीति सप्तत्रिंच्छतैस्त्रिसप्तत्यधिकैर्गुण्यन्ते, जाता एका कोटी सप्तषष्टिः शतसहस्राणि चतुःसप्ततिः सहस्राणि सप्तशतानि अष्टापञ्चाशदधिकानि १६७७४७५८, येऽपि चावलिकाया अंशाश्चतुर्विंशतिशतानि अष्टपञ्चाशदधिकानि २४५८ तेऽपि मुहूर्त्तगतोच्छ्वासराशिना ३७७३ गुण्यन्ते, अस्यैव छेदस्य ते अंशा इत्यावलिकानयनार्थं तेनैव भागो ह्रियते, लब्धास्तावत्य एवावलिकाश्चतुर्विंशतिशतान्यष्टापञ्चाशानि २४५८, तानि मूलराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाता मूलराशेरेका कोटिः सप्तषष्टिर्लक्षाः सप्तसप्ततिः सहस्राणि द्वे शते षोडशोत्तरे, एतावत्य आवलिका मुहूर्त्ते भवन्ति, यदिवा मुहूर्त्तगतानां क्षुल्लकभवग्रहणानां पञ्चषष्टिः सहस्राणि पञ्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

शतानि षट्त्रिंशानि एकभवग्रहणप्रमाणेन षट्पञ्चाशेन शतद्वयेनावलिकानां गुण्यन्ते तथाऽपि तावत्य एवावलिका भवन्ति, उक्तञ्च—"एगा कोडी सत्तट्ठि लक्ख सत्तत्तरी सहस्सा य । दो य सया सोलहिया आवलियाओ मुहुत्तंमि ॥ १ ॥" एवं च यदुच्यते 'संखेज्जाओ आवलियाओ एगे ऊसासनीसासे' इत्यादि तदतीव समीचीनमिति कृतं प्रसङ्गेन, प्रकृतं प्रस्तुमः । तत्र सयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकस्यान्तरमभिधित्सुराह—'सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारयस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षेणाप्यन्तर्मुहूर्त्तं, समुद्घातप्रतिपत्तेरनन्तरमेवान्तर्मुहूर्त्तेन शैलेशीप्रतिपत्तिभावात्, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसातव्यं अन्यथोभयपदोपन्यासायोगात् । अयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकसूत्रे नास्त्यन्तरं, अयोग्यवस्थायां सर्वस्याप्यनाहारकत्वात् । एवं सिद्धस्यापि साद्यपर्यवसितस्यानाहारकस्यान्तराभावो भावनीयः ॥ साम्प्रतमेतेषामाहारकानाहारकाणामल्पबहुत्वमाह—'एएसि णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका अनाहारकाः, सिद्धविग्रहगत्यापन्नसमुद्घातगतसयोगिकेवल्ययोगिकेवलिनामेवानाहारकत्वात्, तेभ्य आहारका असङ्ख्येयगुणाः, अथ सिद्धेभ्योऽनन्तगुणा वनस्पतिजीवास्ते च प्राय आहारका इत्यनन्तगुणाः कथं न भवन्ति?, उच्यते, इह प्रतिनिगोदमसङ्ख्येयो भागः प्रतिसमयं सदा विग्रहगत्यापन्नो लभ्यते, विग्रहगत्यापन्ना अनाहारकाः, "विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य । सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारगा जीवा ॥ १ ॥" [विग्रहगत्यापन्नाः समुद्घताः अयोगिनश्च केवलिनः सिद्धाश्चानाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥ १ ॥"] इतिवचनात् ततोऽसङ्ख्येयगुणा एवाहारका घटन्ते नानन्तगुणा इति ॥ प्रकारान्तरेण भूयो द्वैविध्यमाह—

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सभासगा अभासगा य ॥ सभासए णं भंते! स-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

भासएत्तिकालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्को० अंतोमुहुत्तं ॥ अभासए णं भंते०!, गोयमा! अभासए दुविहे पण्णत्ते—साइए वा अपज्जवसिए सातीए वा सपज्जवसिए, तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं अणंता उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ वणस्सतिकालो ॥ भासगस्स णं भंते! केवतिकालं अंतरं होति?, जह० अंतो० उक्क० अणंतं कालं वणस्सतिकालो। अभासग० सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, सातीयसपज्जवसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्क० अंतो०। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा भासगा अभासगा अणंतगुणा ॥ अहवा दुविहा सव्वजीवा ससरीरी य असरीरी य असरीरी जहा सिद्धा, थोवा असरीरी ससरीरी अणंतगुणा ॥ (सू० २४८)

'अहवे'त्यादि, अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—भाषकाश्च अभाषकाश्च, भाषमाणा भाषका इतरेऽभाषकाः ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—'सभासए णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! जघन्येनैकं समयं भाषाद्रव्यग्रहणसमय एव मरणतोऽन्यतो वा कुतश्चित्कारणात्तद्व्यापारस्याप्युपरमात्, उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्तं, तावन्तं कालं निरन्तरं भाषाद्रव्यग्रहणनिसर्गसम्भवात्, तत ऊर्द्ध्वं जीवस्वाभाव्यान्नियमत एवोपरमति ॥ अभाषकप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अभाषको द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—सादिको वाऽपर्यवसितः सिद्धः, सादिको वा सपर्यवसितः स च पृथिव्यादिः, तत्र योऽसौ सादिः सपर्यवसितः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, भाषणादुपरम्यान्तर्मुहूर्त्तेन कस्यापि भूयोऽपि भाषणप्रवृत्तेः, पृथिव्यादिभवस्य वा जघन्यत एतावन्मात्रकालत्वात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

स चानन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, एतावन्तं कालं वनस्पतिष्वभाषकत्वात् ॥ साम्प्रतमन्तरं चिचिन्तयिषुराह—'भासगस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, अभाषककालस्य भाषकान्तरत्वात् । अभाषकसूत्रे साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनैकं समयमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, भाषककालस्याभाषकान्तरत्वात्, तस्य च जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावन्मात्रत्वात्, अल्पबहुत्वसूत्रं प्रतीतम् ॥ 'अहवे'त्यादि, सशरीराः—असिद्धा अशरीराः—सिद्धाः, ततः सर्वाण्यपि सशरीराशरीरसूत्राणि सिद्धासिद्धसूत्राणीव भावनीयानि ॥

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—चरिमा चेव अचरिमा चेव ॥ चरिमे णं भंते! चरिमेत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! चरिमे अणादीए सपज्जवसिए, अचरिमे दुविहे—अणातीए वा अपज्जवसिए सातीए अपज्जवसिते, दोण्हंपि णत्थि अंतरं, अप्पाबहुं सव्वत्थोवा अचरिमा चरिमा अणंतगुणा । [अहवा दुविहा सव्वजीवा सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, दोण्हंपि संचिट्ठणावि अंतरंपि जह० अंतो० उ० अंतो०, अप्पाबहु० सव्वत्थोवा अणागारोवउत्ता सागारोवउत्ता असंखेज्जगुणा] सेत्तं दुविहा सव्वजीवा पन्नत्ता] ॥ (सू० २४९)

'अहवे'त्यादि, चरमाः—चरमभववन्तो भव्यविशेषा ये सेत्स्यन्ति, तद्विपरीता अचरमाः—अभव्याः सिद्धाश्च । कायस्थितिसूत्रे चरमोऽनादिसपर्यवसितोऽन्यथा चरमत्वायोगात् । अचरमसूत्रेऽचरमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिको वाऽपर्यवसितः सादिको वाऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

पर्यवसितः, तत्रानाद्यपर्यवसितोऽभव्यः साद्यपर्यवसितः सिद्धः ॥ साम्प्रतमन्तरमाह—'चरिमस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, चरमत्वापगमे सति पुनश्चरमत्वायोगात्, अचरमस्याप्यनाद्यपर्यवसितस्य साद्यपर्यवसितस्य वा नास्त्यन्तरं अविद्यमानचरमत्वात्। अल्पबहुत्वे सर्वस्तोका अचरमाः, अभव्यानां सिद्धानामेव चाचरमत्वात्, चरमा अनन्तगुणाः, सामान्यभव्यापेक्षमेतत्, अन्यथाऽनन्तगुणत्वायोगात्, आह च मूलटीकाकारः—"चरमा अनन्तगुणाः, सामान्यभव्यापेक्षमेतदिति भावनीयं, दुर्लक्ष्यः सूत्राणां विषयविभागः" इति। सम्प्रत्युपसंहारमाह—'सेत्तं दुविहा' ते एते द्विविधाः सर्वजीवाः, अत्र क्वचिद्विविधवक्तव्यतासङ्ग्रहणिगाथा—"सिद्धसइंदियकाए जोए वेए कसायलेसा य। नाणुवओगाहारा भाससरीरी य चरमो य ॥ १ ॥" सम्प्रति त्रिविधवक्तव्यतामाह—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ॥ सम्मदिट्ठी णं भंते! कालओ केवच्चिरं होति?, गोयमा! सम्मदिट्ठी दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—सातीए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ जे ते सातीए सपज्जवसिते से जह० अंतो० उक्क० छावट्ठिं सागरोवमाइं सातिरेगाइं, मिच्छादिट्ठी तिविहे साइए वा सपज्जवसिए अणातीए वा अपज्जवसिते अणातीए वा सपज्जवसिते, तत्थ जे ते सातीए सपज्जपसिए से जह० अंतो० उक्क० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं सम्मामिच्छादिट्ठी जह० अंतो० उक्क० अंतोमुहुत्तं ॥ सम्मदिट्ठिस्स अंतरं साइयस्स अपज्जव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्ति: १-[द्विविधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्ति: २-[त्रिविधा] आरब्धा:

सियस्स नत्थि अंतरं, सातीयस्स सपज्जवसियस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं, मिच्छादिट्ठिस्स अणादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणातीयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, साइयस्स सपज्जवसियस्स जह० अंतो० उक्को० छावट्ठि सागरोवमाइं सातिरेगाइं, सम्मामिच्छादिट्ठिस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा सम्मामिच्छादिट्ठी सम्मदिट्ठी अणंतगुणा मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ (सू० २५०)

'तत्थ णं जे ते' इत्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तस्त्रिविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयश्च, अमीषां शब्दार्थभावना प्राग्वत् ॥ सम्प्रति कायस्थितिमाह—**'सम्मदिट्ठी णं भंते!'** इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सम्यग्दृष्टिर्द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—सादिको वाऽपर्यवसितः क्षायिकसम्यग्दृष्टिः, सादिको वा सपर्यवसितः क्षायोपशमिकादिसम्यग्दर्शनी, तत्र योऽसौ सादिसपर्यवसितः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, कर्म्मपरिणामस्य विचित्रत्वेनैतावतः कालादूर्द्ध्वं पुनर्मिथ्यात्वगमनात्, उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि, तत ऊर्द्ध्वं नियमतः क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शनापगमात् । मिथ्यादृष्टिप्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! मिथ्यादृष्टिस्त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनाद्यपर्यवसितः अनादिसपर्यवसितः सादिसपर्यवसितश्च, तत्र योऽसौ सादिसपर्यवसितः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तावता कालेन पुनः कस्यापि सम्यग्दर्शनलाभात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, पूर्वप्रतिपन्नसम्यक्त्वस्यैतावतः कालादूर्द्ध्वं पुनरवश्यं सम्यग्दर्शनलाभात्,

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२५०]

दीप अनुक्रम [३७५]

पूर्वसम्यक्त्वप्रभावेन संसारस्य परित्तीकरणात् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिसूत्रे जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, सम्यग्मिथ्यादर्शनकालस्य स्वभावत एवैतावन्मात्रत्वात्, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसातव्यम् ॥ साम्प्रतमन्तरमाह—'सम्मदिट्ठिस्स णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, सम्यक्त्वात् प्रतिपत्यान्तर्मुहूर्त्तेन भूयः कस्यापि सम्यक्त्वप्रतिपत्तेः, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावदपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तम् । मिथ्यादृष्टिसूत्रेऽनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपरित्यागात्, अनादिसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं, अन्यथाऽनादित्वायोगात्, सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, सम्यग्दर्शनकाल एव हि मिथ्यादर्शनस्य प्रायोऽन्तरं, सम्यग्दर्शनकालश्च जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावानिति । सम्यग्मिथ्यादृष्टिसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सम्यग्मिथ्यादर्शनात् प्रतिपत्यान्तर्मुहूर्त्तेन भूयः कस्यापि सम्यग्मिथ्यादर्शनभावात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावदपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, यदि सम्यग्मिथ्यादर्शनात् प्रतिपतितस्य भूयः सम्यग्मिथ्यादर्शनलाभस्तत एतावता कालेन नियमेन अन्यथा तु मुक्तिः । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोकाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः, तत्परिणामस्य स्तोककालतया पृच्छासमये तेषां स्तोकानामवाप्यमानत्वात्, सम्यग्दृष्टयोऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्यो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः, वनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तत्वात् तेषां च मिथ्यादृष्टित्वात् ॥

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—परित्ता अपरित्ता नोपरित्तानोअपरित्ता । परित्ते णं भंते! कालतो केवचिरं होति?, परित्ते दुविहे पण्णत्ते—कायपरित्ते य संसारपरित्ते य । कायपरित्ते णं भंते०!, जह० अंतोमु० उक्को० असंखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोगा । संसारपरित्ते णं

॥ ४४५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२५१]

दीप अनुक्रम [३७६]

भंते! संसारपरित्तेत्ति कालओ केवचिरं होति?, जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। अपरित्ते णं भंते!०, अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते, कायअपरित्ते य संसारअपरित्ते य, कायअपरित्ते णं जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं, वणस्सतिकालो, संसारापरित्ते दुविहे पण्णत्ते–अणादीए वा अपज्जवसिते अणादीए वा सपज्जवसिते, णोपरित्तेणोअपरित्ते सातीए अपज्जवसिते। कायपरित्तस्स जह० अंतरं अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, संसारपरित्तस्स णत्थि अंतरं, कायापरित्तस्स जह० अंतो० उक्को० असंखिज्जं कालं पुढविकालो। संसारापरित्तस्स अणाइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, णोपरीत्तनोअपरित्तस्सवि णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा परित्ता णोपरित्तानोअपरित्ता अनंतगुणा अपरित्ता अनंतगुणा (सू० २५१)

'अहवे'त्यादि, अथवा सर्वजीवाश्चिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–परीत्ता अपरीत्ता नोपरित्तानोअपरीत्ताश्च ॥ सम्प्रति कायस्थितिचिन्तापरीत्तविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! परीत्तो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–कायपरीत्तः संसारपरीत्तश्च, कायपरीत्तो नाम प्रत्येकशरीरी, संसारपरीत्तोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तान्तःसंसारः, तत्र कायपरीत्तविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, स च साधारणेभ्यः परीत्तेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनः साधारणेषु गच्छतो वेदितव्यः, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, तथा चाह–पृथिवीकालः, किमुक्तं भवति?–पृथिव्यादिप्रत्येकशरीरकालः, तत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२५१]

दीप अनुक्रम [३७६]

ऊर्द्ध नियमतः संसारिणः साधारणभावात् ॥ संसारपरीत्तविषयं प्रश्नसूत्रं पाठसिद्धं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तावता कालेनान्तकृत्केवललाभेन सिद्धिगमनात्, उत्कर्षेणानन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतो देशोनमपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं यावत्, तत ऊर्द्ध नियमतः सिद्धिगमनाद्, अन्यथा संसारपरीत्तत्वायोगात् ॥ 'अपरीत्ते णं भंते!' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! अपरीत्तो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–कायापरीत्तः संसारापरीत्तश्च, कायापरीत्तः–साधारणः, संसारापरीत्तः–कृष्णपाक्षिकः, तत्र कायापरीत्तविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्ध कस्यापि प्रत्येकशरीरेषु गमनात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स च वनस्पतिकालः, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ताः, ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः । संसारापरीत्तप्रश्नसूत्रं प्रतीतं, भगवानाह–गौतम! संसारापरीत्तो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–अनादिकोऽपर्यवसितो, यो न जातुचिदपि सिद्धिं गन्ता, अनादिको वा सपर्यवसितो भव्यविशेषः । नोपरीत्तनोअपरीत्तविषयं प्रश्नसूत्रं प्रतीतं, नोपरीत्तनोअपरीत्तो हि सिद्धः, स च साद्यपर्यवसित एव प्रतिपाताभावात् ॥ साम्प्रतमन्तरमाह— **'कायापरीत्तस्स ण'**मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, साधारणेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः प्रत्येकशरीरेष्वागमनात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तः कालः प्रागुक्तस्वरूपो वनस्पतिकालः, तावन्तं कालं साधारणेष्ववस्थानात् ॥ संसारपरीत्तविषयं प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह–गौतम! नास्त्यन्तरं, संसारपरीतत्वापगमे पुनः संसारपरीतत्वाभावात्, मुक्तस्य प्रतिपातासम्भवात् । कायापरीत्तसूत्रे जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, प्रत्येकशरीरेष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः कायापरीत्तेषु कस्याप्यागमनसम्भवात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं यावद्, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, पृथिव्यादिप्रत्येकशरीरभवभ्रमणकाल-

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...ainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

स्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रत्वात्, तथा चाह–पृथिवीकालः पृथिव्यादिप्रत्येकशरीरकाल इत्यर्थः । संसारापरीत्तसूत्रेऽनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, अनादिसपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, संसारापरीतत्वापगमे पुनः संसारापरीतत्वस्यासम्भवात्, नोपरीत्तनो-अपरीतस्यापि साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात् । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोकाः परीत्ताः, कायपरीत्तानां संसारपरीत्तानां चाल्पत्वात्, नोपरीत्तानोअपरीत्ता अनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तत्वात्, अपरीत्ता अनन्तगुणाः, कृष्णपाक्षिकाणामतिप्रभूतत्वात् ॥

अहवा तिविहा सव्वजीवा पं० तं०—पज्जत्तगा अपज्जत्तगा नोपज्जत्तगानोअपज्जत्तगा, पज्जत्तके णं भंते!०, जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं साइरेगं । अपज्जत्तगे णं भंते!, जह० अंतो० उक्को० अंतो० नोपज्जत्तणोअपज्जत्तए सातीए अपज्जवसिते । पज्जत्तगस्स अंतरं जह० अंतो० उक्को० अंतो०, अपज्जत्तगस्स जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं, तइयस्स णत्थि अंतरं । अप्पाबहु० सव्वत्थोवा नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तगा अपज्जत्तगा अणंतगुणा पज्जत्तगा संखिज्जगुणा (सू० २५२)

'अहवे'त्यादि, अथवा प्रकारान्तरेण सर्वजीवास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–पर्याप्तका अपर्याप्तका नोपर्याप्तकानोअपर्याप्तकाश्च, तत्र पर्याप्तककायस्थितिचिन्तायां जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, अपर्याप्तकेभ्यः पर्याप्तेषूत्पद्यान्तर्मुहूर्त्तात्परतोऽपर्याप्तकेषु भूयोऽपि गमनात्, उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तत ऊर्द्धं नियमतोऽपर्याप्तकभावात्, लब्ध्यपेक्षं चेदं सूत्रं, तेनापान्तराले उपपातापर्याप्तकत्वेऽपि न कश्चिद्दोषः । अपर्याप्तकसूत्रे जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, अपर्याप्तलब्धेर्जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावन्मात्रकालत्वात्, नवरं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५२]

दीप अनुक्रम [३७७]

जघन्यपदादुत्कृष्टपदमधिकमवसातव्यं, अन्यथोभयपदोपन्यासायोगात्, उभयप्रतिषेधवर्त्ती सिद्धः, स च साद्यपर्यवसितः । अन्तरचिन्तायां पर्याप्तकस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तमन्तरं, अपर्याप्तकाल एव हि पर्याप्तकस्यान्तरं, अपर्याप्तककालश्च जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तं, अपर्याप्तकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, पर्याप्तककालस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावत्प्रमाणत्वात्, नोपर्याप्तनोअपर्याप्तकस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात् ॥ अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका नोपर्याप्तकनोअपर्याप्तकाः, सिद्धानां शेषजीवापेक्षयाऽल्पत्वात्, अपर्याप्तका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामपर्याप्तानामनन्तानन्तानां सदा लभ्यमानत्वात्, तेभ्यः पर्याप्तकाः सङ्ख्येयगुणाः, सूक्ष्मेष्वोघतोऽपर्याप्तकेभ्यः पर्याप्तकानां सङ्ख्येयगुणतयाऽवाप्यमानत्वात् ॥

अहवा तिविहा सव्वजीवा पं० तं०—सुहुमा बायरा नोसुहुमानोबायरा, सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्ति कालओ केवचिरं०?, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसे० असंखिज्जं कालं पुढविकालो, बायरा जह० अंतो० उक्को० असंखिज्जं कालं असंखिज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ अंगुलस्स असंखिज्जइभागो, नोसुहुमनोबायरए साइए अपज्जवसिए, सुहुमस्स अंतरं बायरकालो, बायरस्स अंतरं सुहुमकालो, तइयस्स नोसुहुमणोबायरस्स अंतरं नत्थि। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा नोसुहमानोबायरा बायरा अणंतगुणा सुहुमा असंखेज्जगुणा ॥ (सू० २५३)

'अहवे'त्यादि, अथवा प्रकारान्तरेण सर्वजीवास्त्रिविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–सूक्ष्मा बादराः नोसूक्ष्मानोबादराः । कायस्थितिचिन्तायां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२५३]

दीप अनुक्रम [३७८]

सूक्ष्मस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्धं भूयोऽपि बादरेषु कस्याप्यागमनात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, बादरस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं कस्यचिद् भूयोऽपि सूक्ष्मेषु गमनात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भागः, एतावतः कालादूर्द्धं नियोगतः संसारिणः सूक्ष्मेषु गमनात्, उभयप्रतिषेधवर्त्ती सिद्धः स च साद्यपर्यवसितः ॥ अन्तरचिन्तायां सूक्ष्मस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालमसङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽङ्गुलस्यासङ्ख्येयो भागः, बादरकालस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावत्प्रमाणत्वात् । बादरस्यान्तरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, सूक्ष्मस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावत्कालप्रमाणत्वात्, नोसूक्ष्मनोबादरस्य साद्यपर्यवसितस्य, हेतौ षष्ठी, 'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां विभक्तीनां प्रायो दर्शन'मिति न्यायात्, ततोऽयमर्थः–साद्यपर्यवसितत्वान्नास्त्यन्तरमन्यथाऽपर्यवसितत्वायोगात् । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका नोसूक्ष्मानोबादराः, सिद्धानामल्पत्वात्, तेभ्यो बादरा अनन्तगुणाः, बादरनिगोदजीवानां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तत्वात्, तेभ्यः सूक्ष्मा असङ्ख्येयगुणाः, बादरनिगोदेभ्यः सूक्ष्मनिगोदानामसङ्ख्यातगुणत्वात् ॥

अहवा तिविहा सव्वजीव्वा पण्णत्ता, तंजहा—सण्णी असण्णी नोसण्णीनोअसण्णी, सन्नी भंते! कालओ०?, जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं, असण्णी जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, नोसण्णीनोअसण्णी साइए अपज्जवसिते। सण्णिस्स अंतरं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, असण्णिस्स अंतरं जह० अंतो० उक्को० सागरोक्मसयपुहुत्तं सातिरेगं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

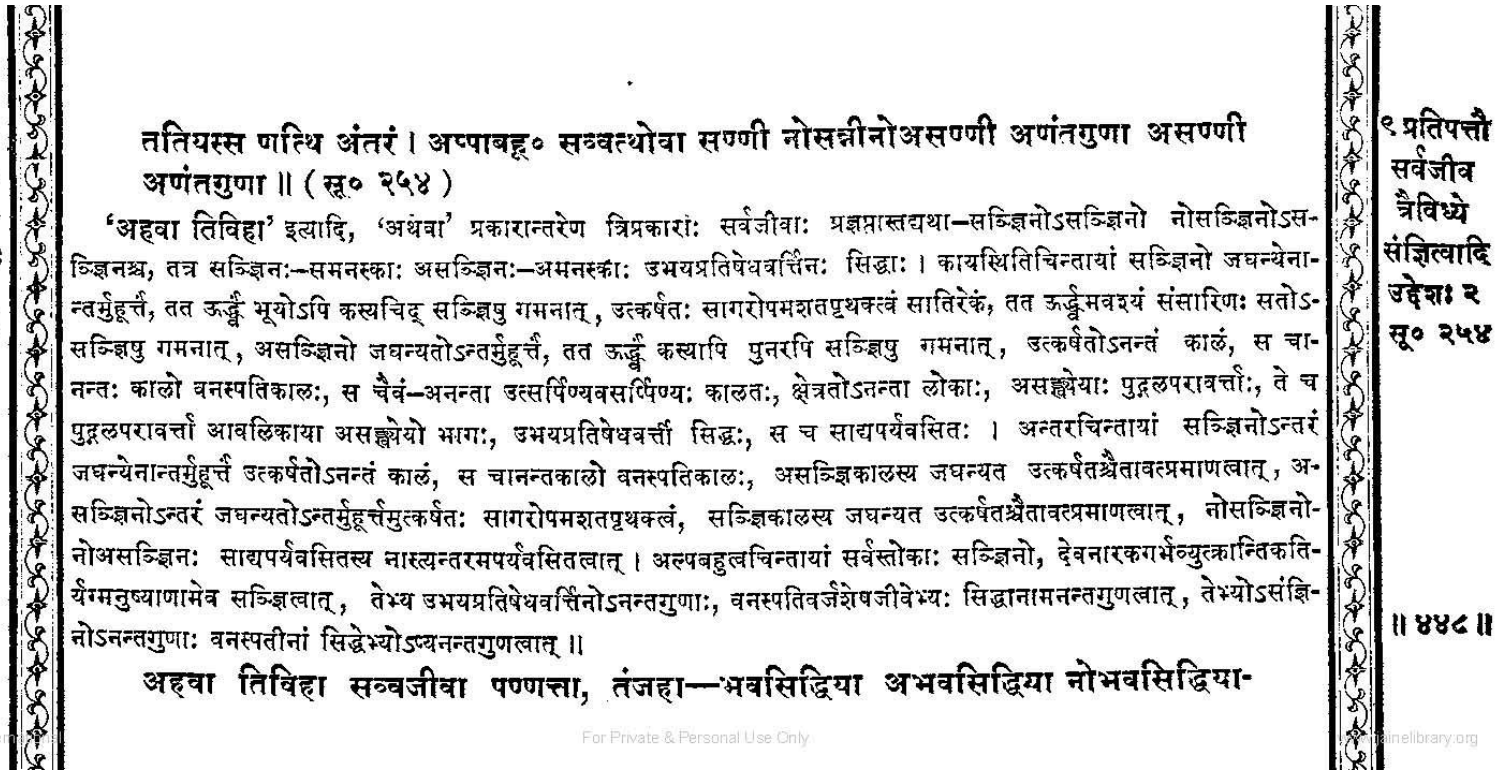

तियस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहू० सव्वत्थोवा सण्णी नोसन्नीनोअसण्णी अणंतगुणा असण्णी अणंतगुणा ॥ (सू० २५४)

'अहवा तिविहा' इत्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण त्रिप्रकारा: सर्वजीवा: प्रज्ञप्तास्तद्यथा–सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनो नोसञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनश्च, तत्र सञ्ज्ञिन:–समनस्का: असञ्ज्ञिन:–अमनस्का: उभयप्रतिषेधवर्त्तिन: सिद्धा: । कायस्थितिचिन्तायां सञ्ज्ञिनो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्धं भूयोऽपि कस्यचिद् सञ्ज्ञिषु गमनात्, उत्कर्षत: सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तत ऊर्द्धमवश्यं संसारिण: सतोऽसञ्ज्ञिषु गमनात्, असञ्ज्ञिनो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्धं कस्यापि पुनरपि सञ्ज्ञिषु गमनात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्त: कालो वनस्पतिकाल:, स चैवं–अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य: कालत:, क्षेत्रतोऽनन्ता लोका:, असङ्ख्येया: पुद्गलपरावर्त्ता:, ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भाग:, उभयप्रतिषेधवर्त्ती सिद्ध:, स च साद्यपर्यवसित: । अन्तरचिन्तायां सञ्ज्ञिनोऽन्तरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, स चानन्तकालो वनस्पतिकाल:, असञ्ज्ञिकालस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावत्प्रमाणत्वात्, असञ्ज्ञिनोऽन्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षत: सागरोपमशतपृथक्त्वं, सञ्ज्ञिकालस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चैतावत्प्रमाणत्वात्, नोसञ्ज्ञिनोनोअसञ्ज्ञिन: साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात् । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका: सञ्ज्ञिनो, देवनारकगर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यग्मनुष्याणामेव सञ्ज्ञित्वात्, तेभ्य उभयप्रतिषेधवर्त्तिनोऽनन्तगुणा:, वनस्पतिवर्जशेषजीवेभ्य: सिद्धानामनन्तगुणत्वात्, तेभ्योऽसंज्ञिनोऽनन्तगुणा: वनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वात् ॥

अहवा तिविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—भवसिद्धिया अभवसिद्धिया नोभवसिद्धिया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२५५-२५६]

दीप अनुक्रम [३८०--३८१]

नोअभवसिद्धिया, अणाइया सपज्जवसिया भवसिद्धिया, अणाइया अपज्जवसिया अभवसिद्धिया, साई अपज्जवसिया नोभवसिद्धियानोअभवसिद्धिया। तिण्हंपि नत्थि अंतरं । अप्पाबहु० सव्वत्थोवा अभवसिद्धिया णोभवसिद्धीयानोअभवसिद्धीया अनंतगुणा भवसिद्धिया अणंतगुणा। (सू० २५५) अहवा तिविहा सव्व० तंजहा—तसा थावरा नोतसानोथावरा, तसस्स णं भंते! कालओ०?, जह० अंतो० उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं, थावरस्स संचिट्ठणा वणस्सतिकालो, णोतसानोथावरा सातीं अपज्जवसिया। तसस्स अंतरं वणस्सतिकालो, थावरस्स अंतरं दो सागरोवमसहस्साइं साइरेगाइं, णोतसथावरस्स णत्थि अंतरं । अप्पाबहु० सव्वत्थोवा तसा नोतसानोथावरा अणंतगुणा थावरा अणंतगुणा। से तं तिविधा सव्वजीवा पण्णत्ता (सू० २५६)

'अहवे'त्यादि, अथवा—प्रकारान्तरेण त्रिविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—'भवसिद्धिकाः' भवे सिद्धिर्येषां ते भवसिद्धिका भव्या इत्यर्थः, अभवसिद्धिका—अभव्याः, नोभवसिद्धिकानोअभवसिद्धिकाः सिद्धाः, सिद्धानां संसारातीततया भवसिद्धिकत्वाभवसिद्धिकत्वविशेषणरहितत्वात्। कायस्थितिचिन्तायां भवसिद्धिकोऽनादिसपर्यवसितोऽन्यथा भवसिद्धिकत्वायोगात्, अभवसिद्धिकोऽनाद्यपर्यवसितः, अभवसिद्धिकत्वादेवान्यथा तद्भावायोगात्, नोभवसिद्धिकोनोअभवसिद्धिकः साद्यपर्यवसितः, सिद्धस्य संसारक्षयात्प्रादुर्भूतस्य प्रतिपातासम्भवात्। अन्तरचिन्तायां भवसिद्धिकस्यानादिसपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, भवसिद्धिकत्वापगमे पुनर्भवसिद्धिकत्वा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

योगात्, अभवसिद्धिकस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसिततया सदा तद्भावापरित्यागात्, नोभवसिद्धिकनोअभवसिद्धिकस्यापि साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्। अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका अभवसिद्धिकाः, अभव्यानां जघन्ययुक्तानन्तकतुल्यत्वात्, नोभवसिद्धिकानोअभवसिद्धिका अनन्तगुणाः, सिद्धानामभव्येभ्योऽनन्तगुणत्वात्, तेभ्यो भवसिद्धिका अनन्तगुणाः, भव्यराशेः सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वात्। उपसंहारमाह—**'सेत्तं तिविहा सव्वजीवा पन्नत्ता'** ॥ तदेवं त्रिविधसर्वजीवप्रतिपत्तिरुक्ता, सम्प्रति चतुर्विधसर्वजीवप्रतिपत्तिमभिधित्सुराह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु तं०—मणजोगी वइजोगी कायजोगी अजोगी। मणजोगी णं भंते! जह० एक्कं समयं उक्को० अंतोमु०, एवं वइजोगीवि, कायजोगी जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, अजोगी सातीए अपज्जवसिए। मणजोगिस्स अंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्को० वणस्सइकालो, एवं वइजोगिस्सवि, कायजोगिस्स जह० एक्कं समयं उक्को० अंतो०, अयोगिस्स णत्थि अंतरं। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा मणजोगी वइजोगी संखिज्जगुणा अजोगा अणंतगुणा कायजोगी अणंतगुणा ॥ (सू० २५७)

'तत्थ जे ते एव'मित्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तश्चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—मनोयोगिनो वाग्योगिनः काययोगिनोऽयोगिनश्चेति, तत्र कायस्थितिचिन्तायां मनोयोगी जघन्यत एकं समयं, विशिष्टमनोयोग्यपुद्गलग्रहणापेक्षमेतत्सूत्रं, ततो द्वितीये समये मरणेनोपरमतो भाषकवदेकसमयता प्रतिपत्तव्या, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तथा च जीवस्वभावतया नियमत उपरमात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्ति: २-[त्रिविधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्ति: ३-[चतुर्विधा] आरब्धा:

भाषकवत्, मनोयोगरहितवाग्योगवानेव वाग्योगी द्वीन्द्रियादिः, जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतदपि सूत्रं विशिष्टवाग्द्रव्यग्रहणापेक्षमवसातव्यं, काययोगी वाग्योगमनोयोगविकल एकेन्द्रियादिः, जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, द्वीन्द्रियादिभ्य उद्धृत्य पृथिव्यादिष्वन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा भूयः कस्यापि द्वीन्द्रियादिषु गमनात्, उत्कर्षतः प्रागुक्तस्वरूपो वनस्पतिकालः, अयोगी सिद्धः, स च साद्यपर्यवसितः। अन्तरचिन्तायां मनोयोगिनोऽन्तरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्धं भूयो विशिष्टमनोयोग्यपुद्गलग्रहणसम्भवात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, तावन्तं कालं स्थित्वा भूयो मनोयोगिष्वागमनसम्भवात्, एवं वाग्योगिनोऽपि जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं भावनीयं, औदारिककाययोगिनो जघन्यत एकं समयं, औदारिकलक्षणं कायमपेक्ष्यैतत्सूत्रं, यतो द्विसामायिक्यामपान्तरालगतावेकः समयोऽन्तरं, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, इदं हि सूत्रं परिपूर्णौदारिकशरीरपर्याप्तिपरिसमाप्त्यपेक्षं, तत्र विग्रहसमयादारभ्य यावदौदारिकशरीरपर्याप्तिपरिसमाप्तिस्तावदन्तर्मुहूर्त्तं, तत उक्तमुत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, न चैतत्स्वमनीषिकाविजृम्भितं, यत आह **चूर्णिकृत्**—'काययोगिस्स जह० एक्कं समयं, कहं?, एकसामायिकविग्रहगतस्य, उक्कोसं अंतरं अंतोमुहुत्तं, विग्रहसमयादारभ्य औदारिकशरीरपर्याप्तकस्य यावदेवमन्तर्मुहूर्त्तं द्रष्टव्य"मिति, सूत्राणि ह्यमूनि विचित्राभिप्रायतया दुर्लक्ष्याणीति सम्यक्सम्प्रदायादवसातव्यानि, सम्प्रदायश्च यथोक्तस्वरूप इति न काचिदनुपपत्तिः, न च सूत्राभिप्रायमज्ञात्वा अनुपपत्तिरुद्भावनीया, महाशातनायोगतो महाऽनर्थप्रसक्तेः, सूत्रकृतो हि भगवन्तो महीयांसः प्रमाणीकृताश्च महीयस्तरैस्तत्कालवर्त्तिभिरन्यैर्विद्वद्भिस्ततो न तत्सूत्रेषु मनागप्यनुपपत्तिः, केवलं सम्प्रदायावसाये यत्नो विधेयः, ये तु सूत्राभिप्रायमज्ञात्वा यथा कथञ्चिदनुपपत्तिमुद्भावयन्ते ते महतो महीयस आशातयन्तीति दीर्घतरसंसारभाजः, आह च **टीकाकारः**—"एवं विचित्राणि सूत्राणि सम्यक्सम्प्रदायादवसेयानीत्यविज्ञाय तदभिप्रायं नानुपपत्तिचोदना कार्या, महाशा-

Jain Education Inter... For Private & Personal Use Only ...jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२५७]

दीप अनुक्रम [३८२]

॥ ४५० ॥

तनायोगतो महाऽनर्थप्रसङ्गादिति" एवं च ये सम्प्रति दुष्षमानुभावतः प्रवचनस्योपप्लवाय धूमकेतव इवोत्थिताः सकलकालसुकराव्यवच्छिन्नसुविधिमार्गानुष्ठातृसुविहितसाधुषु मत्सरिणस्तेऽपि वृद्धपरम्परायातसम्प्रदायादवसेयं सूत्राभिप्रायमपास्योत्सूत्रं प्ररूपयन्तो महाशातनाभाजः प्रतिपत्तव्या अपकर्णयितव्याश्च दूरतस्तत्त्ववेदिभिरिति कृतं प्रसङ्गेन । सम्प्रत्यल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं, भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका मनोयोगिनो, देवनारकगर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणामेव मनोयोगित्वात्, तेभ्यो वाग्योगिनोऽसङ्ख्येयगुणाः, द्वित्रिचतुरसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां वाग्योगित्वात्, अयोगिनोऽनन्तगुणाः सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्यः काययोगिनोऽनन्तगुणाः वनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तत्वात् ॥

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थिवेयगा पुरिसवेयगा नपुंसगवेयगा अवेयगा, इत्थिवेयगा णं भंते! इत्थिवेदएत्ति कालतो केवचिरं होति?, गोयमा! (एगेण आएसेण०) पलियसयं दसुत्तरं अट्ठारस चोद्दस पलितपुहुत्तं, समओ जहण्णो, पुरिसवेदस्स जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसयपुहत्तं सातिरेगं, नपुंसगवेदस्स जह० एक्कं समयं उक्को० अणंतं कालं वणस्सतिकालो । अवेयए दुविहे प०—सातीए वा अपज्जवसिते सातीए वा सपज्जवसिए से जह० एक्कं स० उक्को० अंतोमु० । इत्थिवेदस्स अंतरं जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, पुरिसवेदस्स जह० एगं समयं उक्को० वणस्सइकालो, नपुंसगवेदस्स जह० अंतो० उक्को० सागरोव-

॥ ४५० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

मसयपुहुत्तं सातिरेगं, अवेदगो जहा हेट्ठा। अप्पाबहु० सव्वत्थोवा पुरिसवेदगा इत्थिवेदगा संखेज्जगुणा अवेदगा अणंतगुणा नपुंसगवेयगा अणंतगुणा ॥ (सू० २५८)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–स्त्रीवेदकाः पुरुषवेदका नपुंसकवेदका अवेदकाः। कायस्थितिचिन्तायां स्त्रीवेदकस्य 'एगेणं आएसेणं जह० एगं समय'मित्यादि पूर्वं त्रिविधप्रतिपत्तौ प्रपञ्चतो व्याख्यातमिति न भूयो व्याख्यायते, पुरुषवेदस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, स्त्रीवेदादिभ्य उद्धृत्य पुरुषवेदानामन्तर्मुहूर्त्तं जीवित्वा भूयः स्त्रीवेदादिषु कस्यापि गमनात्। अथ यथा स्त्रीवेदस्य नपुंसकस्य वा उपशमश्रेणावुपशमे जाते तदनन्तरमेकं समयं तं वेदमनुभूय मृतस्यैकसमयता व्याव-र्ण्यते तथा पुरुषवेदस्यापि जघन्यत एकसमयता कस्मान्न भवति?, उच्यते, उपशमश्रेण्यन्तर्गतो मृतः सर्वोऽपि पुरुषवेदेषूत्पद्यते नान्य-वेदेषु, तेन स्त्रीवेदस्य नपुंसकवेदस्य चोक्तप्रकारेण जघन्यत एकसमयता लभ्यते, न पुरुषवेदस्य, तस्य जन्मान्तरेऽपि सातत्येन गमनात्, ततो जघन्यं पुरुषवेदस्योपदर्शितेनैव प्रकारेणेत्यन्तर्मुहूर्त्तं, उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तच्च देवमनुष्यतिर्यग्भवभ्रमणेन वेदितव्यं, नपुंसकवेदो जघन्यत एकं समयं, स चैकः समय उपशमश्रेणौ वेदोपशमानन्तरमेकं समयं नपुंसकवेदमनुभूय मृतस्य परि-भावनीयो मरणानन्तरं पुरुषवेदेषूत्पादात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स च प्रागनेकधा दर्शितः, अवेदको द्विविधः–साद्यपर्यवसितः क्षीणवेदः सादिसपर्यवसित उपशान्तवेदः, स च जघन्यत एकं समयं, द्वितीये समये मरणतो देवगतौ पुरुषवेदसम्भवात्, उत्कर्षतो-ऽन्तर्मुहूर्त्तं, तदनन्तरं मरणतः पुरुषवेदसङ्क्रान्त्या प्रतिपाततो येन वेदेनोपशमश्रेणिं प्रतिपन्नस्तद्वेदोदयापत्त्या सवेदकत्वात्। अन्तर-चिन्तायां स्त्रीवेदस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्चोपशान्तवेदे पुनरन्तर्मुहूर्त्तेन स्त्रीवेदोदयापत्त्या, यदिवा स्त्रीभ्य उद्धृत्य पुरुषवेदेषु नपुं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२५८]

दीप अनुक्रम [३८३]

सकवेदेषु वाऽन्तर्मुहूर्त्तं जीवित्वा पुनः स्त्रीत्वेनोत्पत्त्या भावनीयं, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, पुरुषवेदस्यान्तरं जघन्यत एकं समयं, पुरुषस्य स्ववेदोपशमसमयानन्तरं मरणे पुरुषेष्वेवोत्पादात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, नपुंसकवेदस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तच्च स्त्रीवेदोक्तप्रकारेण भावयितव्यं, उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, तत ऊर्द्ध्वं नियमतः संसारिणः सतो नपुंसकवेदोदयभावात्, अवेदकस्य साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तेन कस्यापि श्रेणिसमारम्भात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, तावतः कालादूर्द्ध्वं पूर्वप्रतिपन्नोपशमश्रेणिकस्य पुनः श्रेणिसमारम्भात्। अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोकाः पुरुषवेदकाः गतित्रयेऽप्यल्पत्वात्, स्त्रीवेदकाः सङ्ख्येयगुणाः, तिर्यग्गतौ त्रिगुणत्वात् (मनुष्यगतौ सप्तविंशतिगुणत्वात्) देवगतौ द्वात्रिंशद्गुणत्वात्, अवेदका अनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात्, नपुंसकवेदका अनन्तगुणाः, वनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वात् ॥

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी अवधिदंसणी केवलिदंसणी ॥ चक्खुदंसणी णं भंते!०?, जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसहस्सं सातिरेगं, अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते–अणातीए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए। ओहिदंसणिस्स जह० इक्कं समयं उक्को० दो छावट्ठी सागरोवमाणं साइरेगाओ, केवलदंसणी साइए अपज्जवसिए ॥ चक्खुदंसणिस्स अंतरं जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो। अचक्खुदंसणिस्स दुविहस्स नत्थि अंतरं। ओहिदंसणस्स जह० अंतोमु० उक्कोसे० वणस्सइकालो। केवलदं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

सणिस्स णत्थि अंतरं । अप्पाबहुयं सव्वत्थोवा ओहिदंसणी चक्खुदंसणी असंखेज्जगुणा केवलदंसणी अणंतगुणा अचक्खुदंसणी अणंतगुणा ॥ (सू० २५९)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण चतुर्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—चक्षुर्दर्शनिनोऽचक्षुर्दर्शनिनोऽवधिदर्शनिनः केवलदर्शनिनः ॥ अमीषां कायस्थितिमाह—**'चक्खुदंसणी णं भंते!'** इत्यादि, चक्षुर्दर्शनी जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, अचक्षुर्दर्शनिभ्य उद्भृत्य चक्षुर्दर्शनिषूत्पद्य तावन्तं कालं स्थित्वा पुनरचक्षुर्दर्शनिषु कस्यापि गमनात्, उत्कर्षतः सागरोपमसहस्रं सातिरेकं, अचक्षुर्दर्शनी द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनाद्यपर्यवसितो यो न जातुचिदपि सिद्धिं गन्ता, अनादिसपर्यवसितो भव्यविशेषो यः सेत्स्यति, अवधिदर्शनी जघन्यत एकं समयं, अवधिप्रतिपत्त्यनन्तरमेव कस्यापि मरणतो मिथ्यात्वगमनतो दुष्टाध्यवसायभावतोऽवधिप्रतिपातात्, उत्कर्षतो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां सातिरेके, तत्रैका षट्षष्टिः एवं—विभङ्गज्ञानी तिर्यक्पञ्चेन्द्रियो मनुष्यो वाऽधः सप्तम्यामुत्पन्नः, तत्र त्रयस्त्रिंशतं सागरोपमाणि स्थित्वा तत्र च प्रत्यासन्ने उद्वर्त्तनाकाले सम्यक्त्वं प्राप्य पुनः परित्यजति ततोऽप्रतिपतितेनैव विभङ्गेन पूर्वकोट्यायुष्केषु तिर्यक्षु जातस्ततः पुनरप्यप्रतिपतितविभङ्ग एवाधः सप्तम्यामुत्पन्नः, तत्र च त्रयस्त्रिंशतं सागरोपमाणि स्थित्वा पुनरप्युद्वर्त्तनाकाले प्रत्यासन्ने सम्यक्त्वं प्राप्य पुनः परित्यजति, ततः पुनरप्यप्रतिपतितेनैव विभङ्गेन पूर्वकोट्यायुष्केषु तिर्यक्षूपजातो, वेलाद्वयमपि चाविग्रहेणाधः सप्तम्यास्तिर्यक्षूत्पादयितव्यः, विग्रहे विभङ्गस्य प्रतिषेधात्, उक्तं च—"विभंगनाणी पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूया य आहारगा नो अणाहारगा" इति, नन्वपान्तराले किमर्थं सम्यक्त्वं प्रतिपाद्यते?, उच्यते, विभङ्गस्य स्तोककालावस्थायित्वात्, उक्तञ्च—"विभंगनाणी जह० एगं समयं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं"ति, तदनन्तरमप्रतिपतितविभङ्ग एव मनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ष्यत्वं प्राप्य सम्यक्त्वपूर्वं संयममासाद्य विजयादिषु द्वारद्वयमुत्पद्यमानस्य द्वितीया षट्षष्टिर्भावनीया, अवधिदर्शनं च विभङ्गेऽवधिज्ञाने च तुल्यमतो द्वे षट्षष्टी सागरोपमाणां सातिरेके स्थितिरवधिदर्शिनः, केवलदर्शनी साद्यपर्यवसितः ॥ साम्प्रतमन्तरमाह— **'चक्खुदंसणिस्स णं भंते!'** इत्यादि, चक्षुर्दर्शनिनोऽन्तरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तावत्प्रमाणेनाचक्षुर्दर्शनभवेन व्यवधानात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स च प्रागुक्तस्वरूपः, अचक्षुर्दर्शनिनोऽनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, अनादिसपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं अचक्षुर्दर्शनित्वापगमे भूयोऽचक्षुर्दर्शनित्वायोगात्, क्षीणघातिकर्म्मणः प्रतिपातासम्भवात्, अवधिदर्शनिनो जघन्येनैकं समयमन्तरं, प्रतिपातसमयानन्तरसमय एव कस्यापि पुनस्तल्लाभभावात्, क्वचिदन्तर्मुहूर्त्तमिति पाठः, स च सुगमः तावता व्यवधानेन पुनस्तल्लाभभावात्, न चायं निर्मूलः पाठो, मूलटीकाकारेणापि मतान्तरेण समर्थितत्वात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, तावतः कालादूर्द्ध्वमवश्यमवधिदर्शनसम्भवात् अनादिमिथ्यादृष्टेरप्यविरोधात्, ज्ञानं हि सम्यक्त्वसचिवं न दर्शनमपीति भावना, केवलदर्शिनः साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात् । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका अवधिदर्शिनो, देवनारककतिपयगर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्याणामेव तद्भावात्, चक्षुर्दर्शिनोऽसङ्ख्येयगुणाः, संमूर्च्छिमतिर्यक्पञ्चेन्द्रियचतुरिन्द्रियाणामपि तस्य भावात्, केवलदर्शिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्योऽचक्षुर्दर्शिनोऽनन्तगुणाः, एकेन्द्रियाणामप्यचक्षुर्दर्शित्वात् ॥

अहवा चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—संजया असंजया संजयासंजया नोसंजयानोअसंजयानोसंजयासंजया। संजए णं भंते!०? जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, असंजया जहा अण्णाणी, संजयासंजते जह० अंतोमु० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, नोसंजतनो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

असंजयनोसंजयासंजए सातीए अपज्जवसिए, संजयस्स संजयासंजयस्स दोण्हवि अंतरं जह० अंतोमु० उक्को० अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, असंजयस्स आदिदुवे णत्थि अंतरं, सातीयस्स सपज्जवसियस्स जह० एक्कं स० उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, चउत्थगस्स णत्थि अंतरं ॥ अप्पाबहु० सव्वत्थोवा संजयासंजया संजया असंखेज्जगुणा णोसंजयणोअसंजयणोसंजयासंजया अणंतगुणा असंजया अणंतगुणा ॥ सेत्तं चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता (सू० २६०)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण सर्वेजीवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–संयताः असंयताः संयतासंयताः नोसंयतानोअसंयतानो संयतासंयताः ॥ कायस्थितिमाह—'संजए णं भंते!' इत्यादि, संयतो जघन्यत एकं समयं, सर्वविरतिपरिणामसमयानन्तरसमय एव कस्यापि मरणात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, असंयतस्त्रिविधः–अनाद्यपर्यवसितः अनादिसपर्यवसितः सादिसपर्यवसितश्च, तत्रानाद्यपर्यवसितो यो न जातुचिदपि संयमं प्राप्स्यति, अनादिसपर्यवसितो यः संयमं लप्स्यति, लब्धेन च तेनैव संयमेन सिद्धिं गन्ता, सादिसपर्यवसितो सर्वविरतेर्देशविरतेर्वा परिभ्रष्टः, स हि सादिः नियमभाविसपर्यवसितत्वापेक्षया च सपर्यवसितः, स च जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तावता कालेन कस्यापि संयतत्वलाभात् 'तिण्हं सहस्स पुहुत्त'मित्यादि वचनात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, संयतासंयतो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, संयतासंयतत्वप्रतिपत्तेः भङ्गबहुलतया जघन्यतोऽप्येतावन्मात्रकालप्रमाणत्वात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, बालकाले तदभावात्, त्रितयप्रतिषेधवर्त्ती सिद्धः, स च साद्यपर्यवसित एव । अन्तरमाह—'संजयस्स ण'मित्यादि, संयतस्य जघन्येनान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, तावता कालेन पुनः कस्यापि सं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२६०]

दीप अनुक्रम [३८५]

यतत्वलाभात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनम्, एतावतः कालादूर्द्धं पूर्वमवाप्तसंयमस्य नियमतः संयमलाभात्, अनाद्यपर्यवसितस्यासंयतस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, अनादिसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं, तस्य प्रतिपातासम्भवात्, सादिसपर्यवसितस्य जघन्यत एकं समयं, स चैकसमयः प्राग्व्याख्यातः संयतसमयः, एवमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, असंयतत्वव्यवधायकस्य संयतकालस्य संयतासंयतकालस्य वा उत्कर्षतोऽप्येतावत्प्रमाणत्वात्, संयतासंयतस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तद्भावपाते एतावता कालेन तल्लाभसिद्धेः, उत्कर्षतः संयतवत्, त्रितयप्रतिषेधवर्त्तिनः सिद्धस्य साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं अपर्यवसिततया सदा तद्भावापरित्यागात् ॥ अल्पबहुत्वमाह—'एएसि ण'मित्यादि, सर्वस्तोका जीवाः संयताः, सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, संयतासंयता असङ्ख्येयगुणाः, असङ्ख्येयानां तिरश्चां देशविरतिभावात्, त्रितयप्रतिषेधवर्त्तिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्योऽसंयता अनन्तगुणाः वनस्पतीनां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तत्वात्। उपसंहारमाह—'सेत्त'मित्यादि ॥ उक्ताश्चतुर्विधाः सर्वजीवाः, सम्प्रति पञ्चविधानाह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु पंचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—कोहकसायी माणकसायी मायाकसायी लोभकसायी अकसायी ॥ कोहकसाई माणकसाई मायाकसाई णं जह० अंतो० उक्को० अंतोमु०, लोभकसाइस्स जह० एकं स० उक्को० अंतो०, अकसाई दुविहे जहा हेट्ठा ॥ कोहकसाई माणकसाईमायाकसाईणं अंतरं जह० एक्कं० स० उक्को० अंतो० लोहकसाइस्स अंतरं जह० अंतो० उक्को० अंतो०, अकसाई तहा जहा हेट्ठा ॥ अप्पाबहु—अकसाइणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपत्तौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ३-[चतुर्विधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ४-[पञ्चविधा] आरब्धाः

सव्वत्थोवा माणकसाई तहा अणंतगुणा। कोहे माया लोभे विसेसमहिया मुणेतव्वा ॥ १ ॥
(सू० २६१)

'तत्थ जे ते' इत्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–क्रोधकषायिणो मानकषायिणो मायाकषायिणो लोभकषायिणोऽकषायिणश्च ॥ अमीषां कायस्थितिमाह—**'कोहकसाई णं भंते'** इत्यादि, क्रोधकषायी जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्त्तं, "क्रोधाद्युपयोगकालोऽन्तर्मुहूर्त्त"मिति वचनात्, एवं मानकषायी मायाकषायी च वक्तव्यः, लोभकषायी जघन्येनैकं समयं, स चोपशमश्रेणेः प्रतिपतन् लोभकषायोदयप्रथमसमयानन्तरं मृतः प्रतिपत्तव्यो, मरणसमये कस्यापि क्रोधाद्युदयसम्भवात्, क्रमेण प्रतिपतनं हि मरणाभावे न तु मरणेऽपीति, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, अकषायी द्विविधः–साद्यपर्यवसितः केवली, सादिसपर्यवसित उपशान्तकषायः, स च जघन्येनैकं समयं द्वितीये समये मरणतः क्रोधाद्युदयेन सकषायत्वप्राप्तेः, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुपशान्तमोहगुणस्थानककालस्यैतावत्प्रमाणत्वादित्येके, अन्ये त्वभिदधति–जघन्यतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, न लोभोपशमप्रवृत्तस्यान्तेऽन्तर्मुहूर्त्तादधो मरणमिति वृद्धवादात्, उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमुपशान्तमोहगुणस्थानककालस्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रत्वात्, नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसातव्यं, युक्तं चैतत् सूत्रकृतोऽभिप्रायेण प्रतिभासते, लोभकषायिणो जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्मुहूर्त्तान्तराभिधानात्, वक्ष्यति च—"लोभकसाइयस्स जह० अंतो० उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तमंतर"मिति ॥ साम्प्रतमन्तरमाह—**'कोहकसाइस्स णं भंते!'** इत्यादि, क्रोधकषायिणोऽन्तरं जघन्येनैकं समयं, तदुपशमसमयानन्तरं मरणे भूयः कस्यापि तदुदयात्, उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एवं मानकषायिमायाकषायिसूत्रे अपि वक्तव्ये, लोभकषायिणो जघन्येनोत्कृष्टेनाप्यन्तर्मुहूर्त्तं नवरंमुत्कृष्टं बृहत्तरमवसातव्यम्, अकषा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२६१] + गाथा

दीप अनुक्रम [३८६--३८७]

यिणः साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं अपर्यवसितत्वात्, सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तावता कालेन भूयः श्रेणिलाभात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः, क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, पूर्वमनुभूताकषायित्वस्यैतावता कालेन भूयो नियमेनाकषायित्वभावात् ॥ अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका अकषायिणः, सिद्धानामेवाकषायित्वात्, तेभ्यो मानकषायिणोऽनन्तगुणाः, निगोदजीवानां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वात्, तेभ्यः क्रोधकषायिणो विशेषाधिकाः, क्रोधकषायोदयस्य चिरकालावस्थायित्वात्, एवं तेभ्यो मायाकषायिणो विशेषाधिकाः, तेभ्यो लोभकषायिणो विशेषाधिकाः, मायालोभोदययोश्चिरतरकालावस्थायित्वात् ॥

अहवा पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया मणुस्सा देवा सिद्धा। संचिट्ठणांतराणि जह हेट्ठा भणियाणि। अप्पाबहु० थोवा मणुस्सा णेरइया असंखेज्जगुणा देवा असंखेज्जगुणा सिद्धा अणंतगुणा तिरिया अणंतगुणा । सेत्तं पंचविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ॥
(सू० २६२)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण पञ्चविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यञ्चो मनुष्या देवाः सिद्धाः, अमीषां कायस्थितिरन्तरमल्पबहुत्वं च प्रागेवाभिहितमिति न भूयो भाव्यते । उपसंहारमाह—'सेत्तं पंचविहा सव्वजीवा पन्नत्ता' ॥ तदेवमुक्ताः पञ्चविधाः सर्वजीवाः, सम्प्रति षड्विधानाह—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ४-[पञ्चविधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ५-[षड्विधा] आरब्धा:

प्रत सूत्रांक [२६३]

दीप अनुक्रम [३८९]

तत्थ जे ते एवमाहंसु छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी ओहिनाणी मणपज्जवणाणी केवलनाणी अण्णाणी, आभिणिबोहियणाणी णं भंते? आभिणिबोहियणाणित्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! जह० अन्तोमुहुत्तं उक्को० छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं एवं सुयणाणीवि, ओहिणाणी णं भंते!०?, जह० एक्कं समयं उक्को० छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं, मणपज्जवणाणी णं भंते!०?, जह० एक्कं समयं उक्को० देसूणा पुव्वकोडी, केवलनाणी णं भंते!०? सादीए अपज्जवसिए, अन्नाणिणो तिविहा पं० तं०—अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए, तत्थ साइए सपज्जवसिए जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं। अंतरं आभिणिबोहियणाणिस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं अवड्ढं पुग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं सुय० अंतरं० मणपज्जव०, केवलनाणिणो णत्थि अंतरं, अन्नाणि० साइसपज्जवसियस्स जह० अंतो० उक्को० छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं। अप्पा० सव्वत्थोवा मण० ओहि० असंखे० आभि० सुय० विसेसा० सट्ठाणे दोवि तुल्ला केव० अणंत० अण्णाणी अणंतगुणा॥ अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—(एवंविधः पाठ इतः प्राग् आवश्यको न चोपलब्धो दृश्यमानादर्शेषु क्वचिदपि) एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया पंचेंदिया अणिंदिया। संचिट्ठणांतरा जहा हेट्ठा। अप्पाबहु—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२६३]

दीप अनुक्रम [३८९]

सव्वत्थोवा पंचेंदिया चउरिंदिया विसेसा० तेइंदिया विसेसा० बेंदिया विसेसा० एगिंदिया अणंतगुणा अणिंदिया अणंतगुणा ॥ (सू० २६३)

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनः केवलज्ञानिनोऽज्ञानिनश्च । सम्प्रत्यमीषां कायस्थितिमाह—'आभिणिबोहियनाणी णं भंते!' इत्यादि, आभिनिबोधिकज्ञानी जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, सम्यक्त्वकालस्य जघन्यत एतावन्मात्रत्वात्, उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, तानि च विजयादिषु वारद्वयादिगमनेन भावनीयानि, एवं श्रुतज्ञानिनोऽपि वक्तव्यं, आभिनिबोधिकश्रुतज्ञानयोः परस्परा-विनाभूतत्वात्, 'जत्थ आभिणिबोहियणाणं तत्थ सुयनाणं, जत्थ सुयनाणं तत्थ आभिणिबोहियनाणं, दोवि एयाइं अण्णोण्णमणुगयाइं' इति वचनात्, अवधिज्ञानी जघन्यत एकं समयं, सा चैकसमयता मरणतः प्रतिपातेन मिथ्यात्वगमनतो वा विभङ्गज्ञानभावतः प्रतिपत्तव्या, उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, तान्याभिनिबोधिकज्ञानवद्भावनीयानि, मनःपर्यवज्ञानी जघन्यत एकं समयं, द्वितीय समये मरणतः प्रतिपातात्, उत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, चारित्रकालस्योत्कर्षतोऽप्येतावन्मात्रत्वात्, केवलज्ञानी साद्यपर्यवसितः । अज्ञानी त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–अनाद्यपर्यवसितः अनादिसपर्यवसितः सादिसपर्यवसितश्च, तत्र योऽसौ सादिसपर्यवसितोऽसौ जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, तत ऊर्द्धं कस्यापि सम्यक्त्वलाभतो भूयोऽपि ज्ञानित्वभावात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावद्पार्द्धं देशोनं पुद्गलपरावर्त्तं, ज्ञानित्वात्परिभ्रष्टस्यैतावता कालेन नियमतो भूयोऽपि ज्ञानित्वभावात् । अन्तरचिन्तायामाभिनिबोधिकज्ञानिनो जघन्येनान्तरमन्तर्मुहूर्त्तं, कस्याप्येतावत्कालेन भूयोऽप्याभिनिबोधिकज्ञानित्वभावात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावदपार्द्धं पुद्गल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

परावर्त्तं देशोनं, एवं श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्चान्तरं वक्तव्यं, केवलज्ञानिनः साद्यपर्यवसितत्वान्नास्त्यन्तरं, अज्ञानिनोऽनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं अपर्यवसितत्वात्, अनादिसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं भूयस्तद्भावायोगात्, पुनरज्ञानित्वं हि भवत् सादिसपर्यवसितं भवति न त्वनादिसपर्यवसितं, सादिसपर्यवसितस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तावता कालेन भूयोऽपि कस्याप्यज्ञानित्वप्राप्तेः, उत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि । अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका मनःपर्यवज्ञानिनश्चारित्रिणामेव केषाञ्चित्तद्भावात् 'तं संजयस्स सव्वप्पमायरहियस्स विविधरिद्धिमतो' इति वचनात्, तेभ्योऽवधिज्ञानिनोऽसङ्ख्यातगुणाः, देवनारकाणामप्यवधिज्ञानभावात्, तेभ्य आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च द्वयेऽपि विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, आभिनिबोधिकश्रुतज्ञानयोः परस्परविनाभावात्, तेभ्यः केवलज्ञानिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्योऽज्ञानिनोऽनन्तगुणाः, वनस्पतिकायानां सिद्धेभ्योऽप्यनन्तत्वात् ॥ 'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–एकेन्द्रिया द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रिया अनिन्द्रियाः । एतेषां कायस्थितिरन्तरमल्पबहुत्वं प्रागेव भावितम् ॥

अहवा छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—ओरालियसरीरी वेउव्वियसरीरी आहारगसरीरी तेयगसरीरी कम्मगसरीरी असरीरी ॥ ओरालियसरीरी णं भंते! कालओ केवचिरं होइ?, जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमऊणं, उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं जाव अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, वेउव्वियसरीरी जह० एक्कं समयं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, आहारगसरीरी जह० अंतो० उक्को० अंतो०, तेयगसरीरी दुविहे—अणादीए वा अपज्जवसिए अणादीए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

वा सपज्जवसिते, एवं कम्मगसरीरीवि, असरीरी सातीए अपज्जवसिते ॥ अंतरं ओरालियसरीरस्स जह० एक्कं समयं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, वेउव्वियसरीरस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं वणस्सतिकालो, आहारगस्स सरीरस्स जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, तेय० कम्मसरीरस्स य दुण्हवि णत्थि अंतरं ॥ अप्पाबहु० सव्वत्थोवा आहारगसरीरी वेउव्वियसरीरी असंखेज्जगुणा ओरालियसरीरी असंखेज्जगुणा असरीरी अणंतगुणा तेयाकम्मसरीरी दोवि तुल्ला अणंतगुणा ॥ सेत्तं छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता ॥ (सू० २६४)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण षड्विधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–औदारिकशरीरिणः वैक्रियशरीरिणः आहारकशरीरिणः तैजसशरीरिणः कार्मणशरीरिणः अशरीरिणश्च ॥ अमीषां कायस्थितिमाह—'ओरालियसरीरी णं भंते' इत्यादि, औदारिकशरीरी जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं द्विसमयोनं, विग्रहे आद्ययोर्द्वयोः समययोः कार्मणशरीरित्वात्, उत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं तावन्तं कालमविग्रहेणोत्पादसम्भवात् । वैक्रियशरीरी जघन्येनैकं समयं, विकुर्वणासमयानन्तरसमये एव कस्यापि मरणसम्भवात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, तानि चैवं–कश्चिच्चारित्रवान् वैक्रियशरीरं कृत्वाऽन्तर्मुहूर्त्तं जीवित्वा स्थितिक्षयादविग्रहेणानुत्तरसुरेषूपजायते, आहारकशरीरी जघन्येनाप्यन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तं, तैजसशरीरी कार्मणशरीरी च प्रत्येकं द्विविधः–अनाद्यपर्यवसितो यो न मुक्तिं गन्ता, अनादिसपर्यवसितो मुक्तिगामी, अशरीरी साद्यपर्यवसितः । अन्तरचिन्तायामौदारिकशरीरिणोऽ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२६४]

दीप अनुक्रम [३९०]

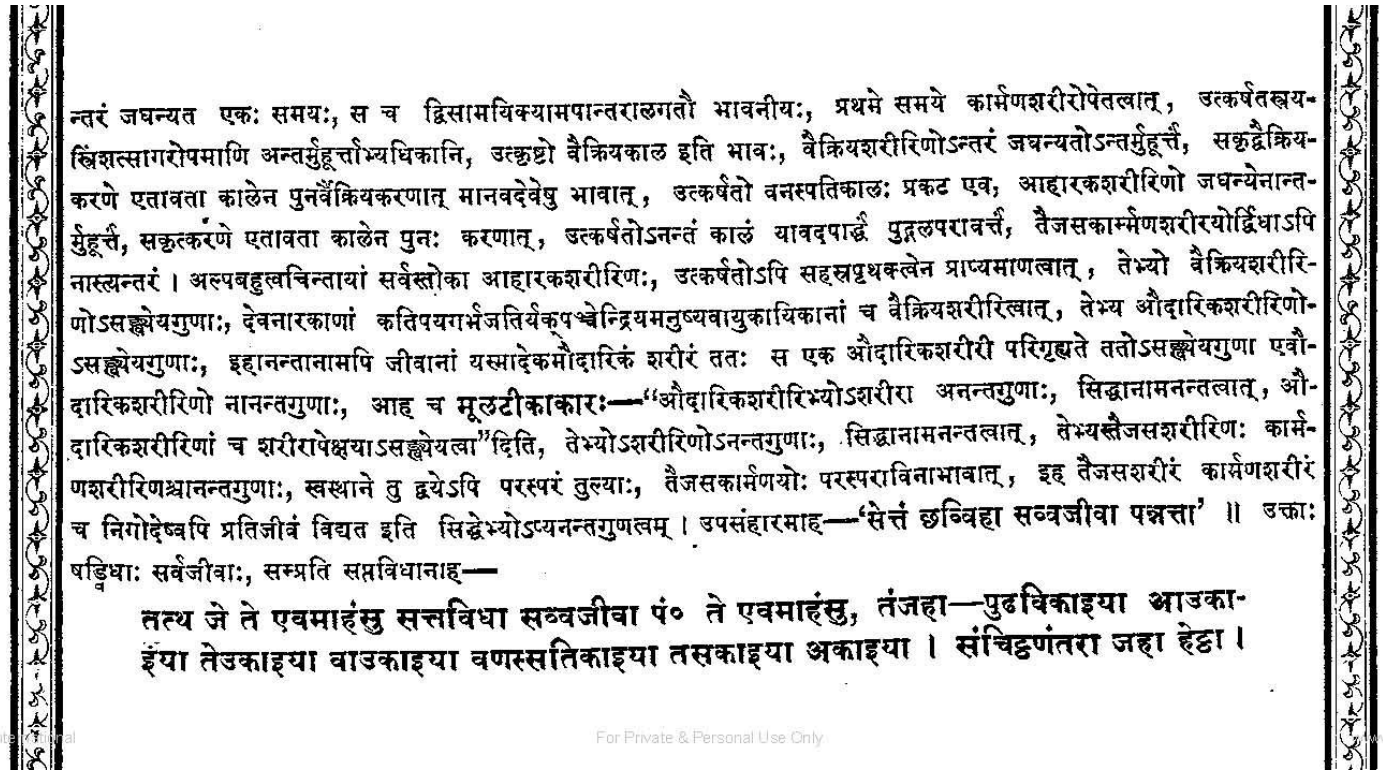

न्तरं जघन्यत एक: समय:, स च द्विसामयिक्यामपान्तरालगतौ भावनीय:, प्रथमे समये कार्मणशरीरोपेतत्वात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, उत्कृष्टो वैक्रियकाल इति भाव:, वैक्रियशरीरिणोऽन्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, सकृद्वैक्रियकरणे एतावता कालेन पुनर्वैक्रियकरणात् मानवदेवेषु भावात्, उत्कर्षतो वनस्पतिकाल: प्रकट एव, आहारकशरीरिणो जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं, सकृत्करणे एतावता कालेन पुन: करणात्, उत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावदपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं, तैजसकार्म्मणशरीरयोर्द्विधाऽपि नास्त्यन्तरं। अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका आहारकशरीरिण:, उत्कर्षतोऽपि सहस्रपृथक्त्वेन प्राप्यमाणत्वात्, तेभ्यो वैक्रियशरीरिणोऽसङ्ख्येयगुणा:, देवनारकाणां कतिपयगर्भजतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यवायुकायिकानां च वैक्रियशरीरित्वात्, तेभ्य औदारिकशरीरिणोऽसङ्ख्येयगुणा:, इहानन्तानामपि जीवानां यस्मादेकमौदारिकं शरीरं तत: स एक औदारिकशरीरी परिगृह्यते ततोऽसङ्ख्येयगुणा एवौदारिकशरीरिणो नानन्तगुणा:, आह च मूलटीकाकार:—"औदारिकशरीरिभ्योऽशरीरा अनन्तगुणा:, सिद्धानामनन्तत्वात्, औदारिकशरीरिणां च शरीरापेक्षयाऽसङ्ख्येयत्वा"दिति, तेभ्योऽशरीरिणोऽनन्तगुणा:, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्यस्तैजसशरीरिण: कार्मणशरीरिणश्चानन्तगुणा:, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्या:, तैजसकार्मणयो: परस्पराविनाभावात्, इह तैजसशरीरं कार्मणशरीरं च निगोदेष्वपि प्रतिजीवं विद्यत इति सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणत्वम्। उपसंहारमाह—'सेत्तं छव्विहा सव्वजीवा पन्नत्ता' ॥ उक्ता: षड्विधा: सर्वजीवा:, सम्प्रति सप्तविधानाह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु सत्तविधा सव्वजीवा पं० ते एवमाहंसु, तंजहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सतिकाइया तसकाइया अकाइया । संचिट्ठणंतरा जहा हेट्ठा ।

जी० ७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्ति: ५-[षड्विधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्ति: ६-[सप्तविधा] आरब्धा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२६५]

दीप अनुक्रम [३९१]

अप्पाबहु० सव्वत्थोवा तसकाइया तेउकाइया असंखेज्जगुणा पुढविकाइया विसे० आउ० विसे० वाउ० विसेसा० सिद्धा अणंतगुणा वणस्सइकाइया अणंतगुणा ॥ (सू० २६५)

'तत्थ जे ते' इत्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तः सप्तविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–पृथिवीकायिका अप्कायिकाः तेजस्कायिका वायुकायिका वनस्पतिकायिकाः त्रसकायिकाः अकायिकाश्च । पृथिवीकायिकादीनां कायस्थितिरन्तरमल्पबहुत्वं च प्रागेव भावितमिति न भूयो भाव्यते ॥

अहवा सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—कण्हलेस्सा नीललेस्सा काउलेस्सा तेउलेस्सा पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सा अलेस्सा॥ कण्हलेसे णं भंते! कण्हलेसत्ति कालओ केवचिरं होइ, गोयमा! ज० अंतो० उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, णीललेस्से णं जह० अंतो० उक्क० दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागअब्भहियाइं, काउलेस्से णं भंते!०, जह० अंतो० उक्क० तिन्नि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जतिभागमब्भहियाइं, तेउलेस्से णं भंते!, जह० अं० उक्क० दोण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं, पम्हलेसे णं भंते!, जह० अंतो० उक्क० दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, सुक्कलेसे णं भंते!०?, जहन्नेणं अंतो० उक्कोसेणं तित्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, अलेस्से णं भंते! सादीए अपज्जवसिते ॥ कण्हलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, जह० अंतो० उक्को० ते-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२६६]

दीप अनुक्रम [३९२]

तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तम०, एवं नीललेसस्सवि, काउलेसस्सवि, तेउलेसस्स णं भंते! अंतरं का०?, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं पम्हलेसस्सवि सुक्कलेसस्सवि दोण्हवि एवमंतरं, अलेसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, गोयमा! सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ एतेसि णं भंते! जीवाणं कण्हलेसाणं नीललेसाणं काउले० तेउ० पम्ह० सुक्क० अलेसाण य कयरे २?०, गोयमा! सव्वत्थोवा सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सा संखेज्जगुणा तेउलेस्सा संखिज्जगुणा अलेस्सा अणंतगुणा काउलेस्सा अणंतगुणा नीललेस्सा विसेसाहिया कण्हलेस्सा विसेसाहिया । सेत्तं सत्तविहा सव्वजीवा पन्नत्ता ॥ (सू० २६६)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण सर्वजीवाः सप्तविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कृष्णलेश्याः नीललेश्याः कापोतलेश्याः तेजोलेश्याः पद्मलेश्याः शुक्ललेश्याः अलेश्याः ॥ साम्प्रतमेतेषां कायस्थितिमाह—'कण्हलेसे णं भंते!' इत्यादि, कृष्णलेश्या जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तिर्यङ्मनुष्याणां कृष्णलेश्याया अन्तर्मुहूर्त्तावस्थायित्वात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, देवनारका हि पाश्चात्यभवगतचरमान्तर्मुहूर्त्तादारभ्याग्रेतनभवगतप्रथमान्तर्मुहूर्त्तं यावदवस्थितलेश्याकाः, अधःसप्तमपृथिवीनारकाश्च कृष्णलेश्याकाः पाश्चात्याग्रेतनभवगतचरमादिमान्तर्मुहूर्त्ते द्वे अप्येकमन्तर्मुहूर्त्तं, तस्यासङ्ख्यातभेदात्मकत्वात्, तत उपपद्यन्ते कृष्णलेश्याकस्यान्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, नीललेश्याको जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं तच्च प्राग्वत्, उत्कर्षतो दश सागरोपमाणि पल्योपमासङ्ख्येयभागाधिकानि, धूमप्रभाप्रथमप्रस्तटनारकाणां नीललेश्याकानामेतावत्स्थितिकत्वात्, पाश्चात्याग्रेतनभवगते च चरमादिमान्तर्मुहूर्त्ते पल्यो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२६६]

दीप अनुक्रम [३९२]

पमासङ्ख्येयभागान्तःप्रविष्टे न पृथग्विवक्षिते, कापोतलेश्याको जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं प्राग्वत्, उत्कर्षतस्त्रीणि सागरोपमाणि पल्योपमासङ्ख्येयभागाभ्यधिकानि, वालुकाप्रथमप्रस्तटगतनारकाणां कापोतलेश्याकानामेतावत्स्थितिकत्वात्, तेजोलेश्याको जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं तथैव उत्कर्षतो द्वे सागरोपमे पल्योपमासङ्ख्येयभागाभ्यधिके, ते चेशानदेवानामवसातव्ये, पद्मलेश्याको जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं प्राग्वत्, उत्कर्षतो दश सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, तानि ब्रह्मलोकवासिनां देवानामवसातव्यानि, शुक्ललेश्याको जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं प्राग्वत्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, तानि चानुत्तरसुराणां प्रतिपत्तव्यानि, तेषां शुक्ललेश्याकत्वात् ॥ अन्तरचिन्तायां कृष्णलेश्याकस्यान्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, तिर्यङ्मनुष्याणामन्तर्मुहूर्त्तेन लेश्यापरावर्त्तनात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, शुक्ललेश्योत्कृष्टकालस्य कृष्णलेश्यान्तरोत्कृष्टकालत्वात्, एवं नीललेश्याकापोतलेश्ययोरपि जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तरं वक्तव्यं, तेजःपद्मशुक्लानामन्तरं जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, स च प्रतीत एवेति, अलेश्यस्य साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात् ॥ अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोकाः शुक्ललेश्याः, लान्तकादिदेवानां पर्याप्तगर्भव्युत्क्रान्तककतिपयपञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां शुक्ललेश्यासम्भवात्, तेभ्यः पद्मलेश्याः सङ्ख्येयगुणाः, सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोककल्पवासिनां सर्वेषां प्रभूतपर्याप्तगर्भव्युत्क्रान्तिकतिर्यङ्मनुष्याणां च पद्मलेश्यात्वात्, अथ लान्तकादिदेवेभ्यः सनत्कुमारादिकल्पत्रयवासिनो देवा असङ्ख्यातगुणाः ततः शुक्ललेश्येभ्यः पद्मलेश्या असङ्ख्यातगुणाः प्राप्नुवन्ति, कथं सङ्ख्येयगुणा उक्ताः?, उच्यते, इह जघन्यपदेऽप्यसङ्ख्यातानां सनत्कुमारादिकल्पत्रयवासिभ्योऽसङ्ख्येयगुणानां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां शुक्ललेश्या, ततः पद्मलेश्याकाः शुक्ललेश्याकेभ्यः सङ्ख्येयगुणाः, तेजोलेश्याकाः तेभ्योऽपि सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि सङ्ख्येयगुणेषु तिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्येषु भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवेषु च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२६६]

दीप अनुक्रम [३९२]

तेजोलेश्याभावात्, भावना सङ्ख्येयगुणत्वे प्राग्वत्, तेभ्योऽप्यनन्तगुणा अलेश्याः, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्योऽपि कापोतलेश्या अनन्तगुणाः, सिद्धेभ्योऽप्यनन्तगुणानां वनस्पतिकायिकानां कापोतलेश्यावतां सद्भावात्, तेभ्योऽपि नीललेश्या विशेषाधिकाः, तेभ्योऽपि कृष्णलेश्या विशेषाधिकाः, क्लिष्टतराध्यवसायानां प्रभूततराणां सद्भावात् । उपसंहारमाह—'सेत्तं सत्तविहा सव्वजीवा पन्नत्ता' ॥ उक्ताः सप्तविधाः सर्वजीवाः, साम्प्रतमष्टविधानाह—

तत्थ जे ते एवमाहंसु अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता ते णं एवमाहंसु, तंजहा—आभिणिबोहियनाणी सुय० ओहि० मण० केवल० मतिअन्नाणी सुयअण्णाणी विभंगअण्णाणी ॥ आभिणिबोहियणाणी णं भंते! आभिणिबोहियणाणीत्ति कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० छावट्ठिसागरोवमाइं सातिरेगाइं, एवं सुयणाणीवि । ओहिणाणी णं भंते!०?, जह० एक्कं समयं उक्को० छावट्ठिसागरोवमाइं सातिरेगाइं, मणपज्जवणाणी णं भंते!०? जह० एक्कं स० उक्क० देसूणा पुव्वकोडी, केवलणाणी णं भंते!०? सादीए अपज्जवसिते, मतिअण्णाणी णं भंते!०? मइअण्णाणी तिविहे पण्णत्ते तं० अणाइए वा अपज्जवसिए अणादीए वा सपज्जवसिए सातीए वा सपज्जवसिते, तत्थ णं जे से सादीए सपज्जवसिते से जह० अंतो० उक्को० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, सुयअण्णाणी एवं चेव, विभंगअण्णाणी णं भंते! विभंग० जह० एक्कं समयं उ० तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं ॥ आभिणिबोहियणाणिस्स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ६-[सप्तविधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ७-[अष्टविधा] आरब्धाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२६७]

दीप अनुक्रम [३९३]

णं भंते! अंतरं कालओ०?, जह० अंतो० उक्क० अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं सुयणाणिस्सवि, ओहिणाणिस्सवि, मणपज्जवणाणिस्सवि, केवलणाणिस्स णं भंते! अंतरं०?, सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं । मइअण्णाणिस्स णं भंते! अंतरं०?, अणादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणादीयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, सादीयस्स सपज्जवसियस्स जह० अंतो० उक्को० छावट्ठिं सागरोवमाइं सातिरेगाइं, एवं सुयअण्णाणिस्सवि, विभंगणाणिस्स णं भंते! अंतरं०?, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो ॥ एएसि णं भंते! आभिणिबोहियणाणीणं सुयणाणि० ओहि० मण० केवल० मइअण्णाणि० सुयअण्णाणि० विभंगणाणीण य कतरे०?, गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी ओहिणाणी असंखेज्जगुणा आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी एए दोवि तुल्ला विसेसाहिया, विभंगणाणी असंखिज्जगुणा, केवलणाणी अणंतगुणा, मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य दोवि तुल्ला अणंतगुणा ॥ (सू० २६७)

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तोऽष्टविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनः केवलज्ञानिनो मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनो विभङ्गज्ञानिनश्च ॥ कायस्थितिचिन्तायामाभिनिबोधिकज्ञानी जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, एवं श्रुतज्ञान्यपि, अवधिज्ञानी जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि सातिरेकाणि, मनःपर्यवज्ञानी जघन्यत एकं समयमुत्कर्षतो देशोना पूर्वकोटी, केवलज्ञानी साद्यपर्यवसितः, म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

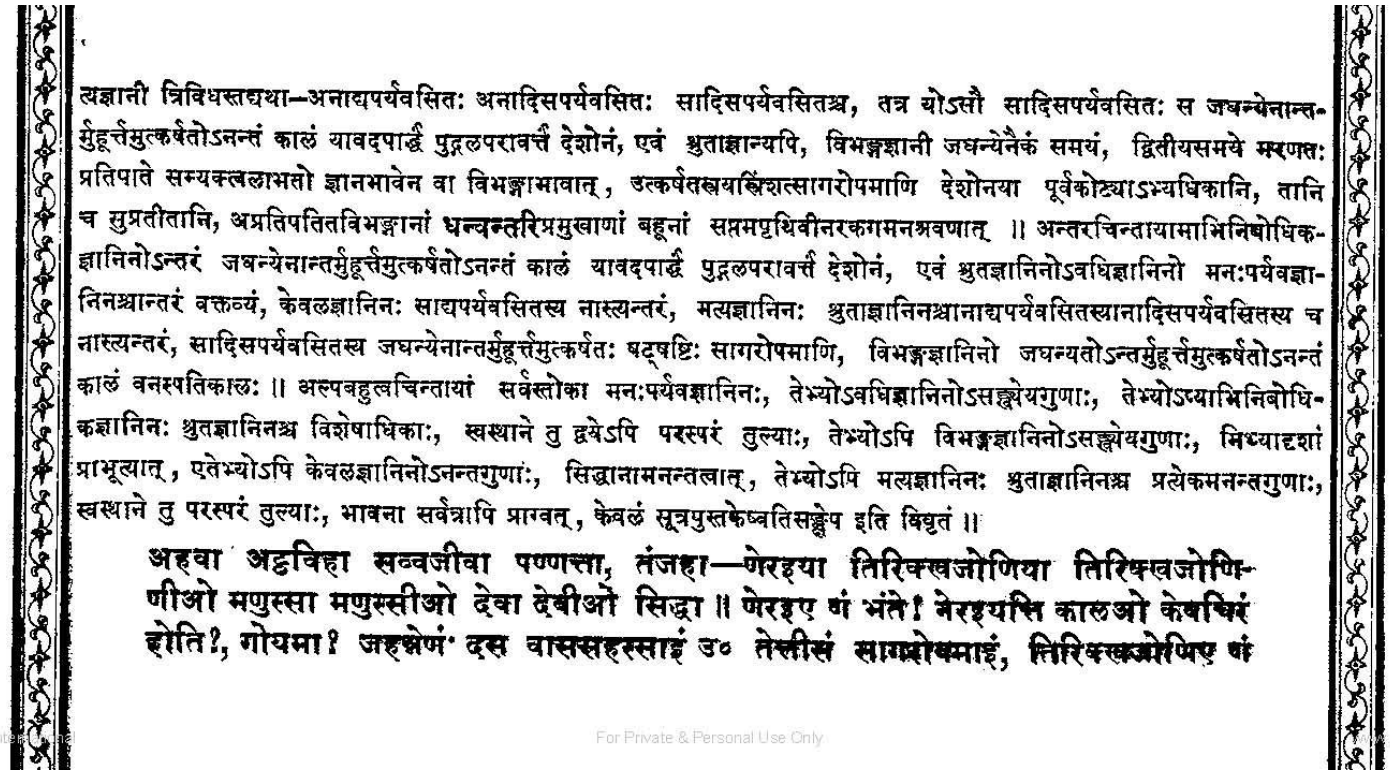

त्यज्ञानी त्रिविधस्तद्यथा—अनाद्यपर्यवसितः अनादिसपर्यवसितः सादिसपर्यवसितश्च, तत्र योऽसौ सादिसपर्यवसितः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावदपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, एवं श्रुताज्ञान्यपि, विभङ्गज्ञानी जघन्येनैकं समयं, द्वितीयसमये मरणतः प्रतिपाते सम्यक्त्वलाभतो ज्ञानभावेन वा विभङ्गाभावात्, उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनया पूर्वकोट्याऽभ्यधिकानि, तानि च सुप्रतीतानि, अप्रतिपतितविभङ्गानां धन्वन्तरिप्रमुखाणां बहूनां सप्तमपृथिवीनरकगमनश्रवणात् ॥ अन्तरचिन्तायामाभिनिबोधिकज्ञानिनोऽन्तरं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं यावदपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं, एवं श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनो मनःपर्यवज्ञानिनश्चान्तरं वक्तव्यं, केवलज्ञानिनः साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्चानाद्यपर्यवसितस्यानादिसपर्यवसितस्य च नास्त्यन्तरं, सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः षट्षष्टिः सागरोपमाणि, विभङ्गज्ञानिनो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं वनस्पतिकालः ॥ अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका मनःपर्यवज्ञानिनः, तेभ्योऽवधिज्ञानिनोऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्याभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च विशेषाधिकाः, स्वस्थाने तु द्वयेऽपि परस्परं तुल्याः, तेभ्योऽपि विभङ्गज्ञानिनोऽसङ्ख्येयगुणाः, मिथ्यादृशां प्राभूत्यात्, एतेभ्योऽपि केवलज्ञानिनोऽनन्तगुणाः, सिद्धानामनन्तत्वात्, तेभ्योऽपि मत्यज्ञानिनः श्रुताज्ञानिनश्च प्रत्येकमनन्तगुणाः, स्वस्थाने तु परस्परं तुल्याः, भावना सर्वत्रापि प्राग्वत्, केवलं सूत्रपुस्तकेष्वतिसङ्क्षेप इति विवृतं ॥

अहवा अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ मणुस्सा मणुस्सीओ देवा देवीओ सिद्धा ॥ णेरइए णं भंते! णेरइयत्ति कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उ० तेत्तीसं सागरोवमाइं, तिरिक्खजोणिए णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

भंते!० २, जह० अंतोमु० उक्को० वणस्सतिकालो, तिरिक्खजोणिणी णं भंते!०?, जह० अंतो० उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं मणूसे मणूसी, देवे जहा नेरइए, देवी णं भंते!०?, जह० दस वाससहस्साइं उ० पणपन्नं पलिओवमाइं, सिद्धे णं भंते! सिद्धेत्ति०?, गोयमा! सादीए अपज्जवसिए। णेरइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, तिरिक्खजोणियस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसतपुहुत्तं सातिरेगं, तिरिक्खजोणिणी णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० वणस्सतिकालो, एवं मणुस्सस्सवि मणुस्सीएवि, देवस्सवि देवीएवि, सिद्धस्स णं भंते! अंतरं सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं॥ एतेसि णं भंते! णेरइयाणं तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीणं मणूसाणं मणूसीणं देवाणं देवीणं सिद्धाण य कयरे०?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सीओ मणुस्सा असंखेज्जगुणा नेरइया असंखिज्जगुणा तिरिक्खजोणिणीओ असंखिज्जगुणाओ देवा संखिज्जगुणा देवीओ संखेज्जगुणाओ सिद्धा अणंतगुणा तिरिक्खजोणिया अनंतगुणा। सेत्तं अट्ठविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ (सू० २६८)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण अष्टविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—नैरयिकास्तिर्यग्योनास्तिर्यग्योन्यो मनुष्या मनुष्यो देवा देव्यः सिद्धाः। तत्र नैरयिकादीनां देवीपर्यन्तानां कायस्थितिरन्तरं च संसारसमापन्नसप्तविधप्रतिपत्ताविव, सिद्धस्तु कायस्थितिचि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२६८]

दीप अनुक्रम [३९४]

न्तायां साद्यपर्यवसितः, अन्तरचिन्तायां नास्त्यन्तरं ॥ अल्पबहुत्वं, सर्वस्तोका मनुष्याः, सङ्ख्येयकोटीकोटीप्रमाणत्वात्, ताभ्यो मानुष्योऽसङ्ख्येयगुणाः, श्रेण्यसङ्ख्येयभागप्रमाणत्वात्, तेभ्यो नैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यस्तिर्यग्योन्योऽसङ्ख्येयगुणाः, ताभ्यो देवाः सङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यो देव्यः सङ्ख्येयगुणाः, युक्तिः सर्वत्रापि संसारसमापन्नसप्तविधप्रतिपत्ताविव, देवीभ्यः सिद्धा अनन्तगुणाः, तेभ्योऽपि तिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः । उपसंहारमाह—'सेत्तं अट्ठविहा सव्वजीवा पन्नत्ता' उक्ता अष्टविधाः सर्वजीवाः, सम्प्रति नवविधानाह—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु णवविधा सव्वजीवा पं० ते णं एवमाहंसु, तंजहा—एगिंदिया बेंदिया तेंदिया चउरिंदिया णेरइया पंचेंदियतिरिक्खजोणिया मणूसा देवा सिद्धा ॥ एगिंदिए णं भंते! एगिंदियत्ति कालओ केवचिरं होइ?, गोयमा! जह० अंतोमु० उक्को० वणस्स०, बेंदिए णं भंते! जह० अंतो० उक्को० संखेज्जं कालं, एवं तेइंदिएवि, चउ०, णेरइया णं भंते!० २ जह० दस वाससहस्साइं उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं, पंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जह० अंतो० उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, एवं मणूसेवि, देवा जहा णेरइया, सिद्धे णं भंते!० २? सादीए अपज्जवसिए ॥ एगिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं, बेंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० वणस्सति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ७-[अष्टविधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्तिः ८-[नवविधा] आरब्धाः

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

कालो, एवं तेंदियस्सवि चउरिंदियस्सवि णेरइयस्सवि पंचेंदियतिरिक्खजोणियस्सवि मणुस्सवि देवस्सवि सव्वेसिमेवं अंतरं भाणियव्वं, सिद्धस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ एतेसि णं भंते! एगिंदियाणं बेइंदि० तेइंदि० चउरिंदियाणं णेरइयाणं पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं मणूसाणं देवाणं सिद्धाण य कयरे २?, गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा णेरइया असंखेज्जगुणा देवा असंखेज्जगुणा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया असंखेज्जगुणा चउरिंदिया विसेसाहिया तेइंदिया विसेसाहिया बेंदिया विसे० सिद्धा अणंतगुणा एगिंदिया अणंतगुणा ॥ (सू० २६९)

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो नवविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—एकेन्द्रिया द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया नैरयिकास्तिर्यग्योनिका मनुष्या देवाः सिद्धाः ॥ अमीषां कायस्थितिचिन्तायामेकेन्द्रियस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, द्वीन्द्रियस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहुर्त्तमुत्कर्षतः सङ्ख्येयं कालं, एवं त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रिययोरपि वक्तव्यं, नैरयिकस्य जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि, तिर्यग्योनिकपञ्चेन्द्रियस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः पूर्वकोटीपृथक्त्वाभ्यधिकानि त्रीणि पल्योपमानि, एवं मनुष्यस्यापि, देवानां यथा नैरयिकाणां ॥ अन्तरचिन्तायामेकेन्द्रियस्य जघन्यमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो द्वे सागरोपमसहस्रे सङ्ख्येयवर्षाभ्यधिके, द्वित्रिचतुरिन्द्रियनैरयिकतिर्यक्पञ्चेन्द्रियमनुष्यदेवानां जघन्यतः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, सिद्धस्य साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं ॥ अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोका मनुष्या नैरयिका असङ्ख्येयगुणाः देवा असङ्ख्येयगुणाः तिर्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

कृपञ्चेन्द्रिया असङ्ख्येयगुणाः चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः द्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः सिद्धा अनन्तगुणाः एकेन्द्रिया अनन्तगुणाः ॥

अहवा णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—पढमसमयनेरइया अपढमसमयणेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणूसा अपढमसमयमणूसा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा सिद्धा य ॥ पढमसमयणेरइया णं भंते!०?, गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयणेरइयस्स णं भंते!० २?, जहन्नेणं दस वाससहस्साइं समऊणाइं, उक्को० तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं, पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते!०?, एक्कं समयं, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते!०?, जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्को० वणस्सतिकालो, पढमसमयमणूसे णं भंते!०, एक्कं समयं, अपढमसमयमणूस्से णं भंते!०?, जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्को० तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, देवे जहा णेरइए, सिद्धे णं भंते! सिद्धेत्ति कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! सादीए अपज्जवसिते ॥ पढमसमयणेरइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, गोयमा! जह० दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्कोसेणं वणस्सतिकालो, अपढमसमयणेरइयस्स णं भंते! अंतरं०?, जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते! अंतरं कालतो०?, जह० दो खु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

डुगाइं भवग्गहणाइं समऊणाइं उक्को० वण०, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते! अंतरं कालतो०?, जह० खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं उ० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं, पढमसमयमणूसस्स जहा पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स, अपढमसमयमणूसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, ज० खुड्डागं भवग्गह० समयाहियं उ० वण०, पढमसमयदेवस्स जहा पढमसमयणेरतियस्स, अपढमसमयदेवस्स जहा अपढमसमयणेरइयस्स, सिद्धस्स णं भंते!०, सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ एएसि णं भंते! पढमसमयनेरइयाणं पढमस० तिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमस० देवाण य कयरे० २?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयमणूसा पढमसमयणेरइया असंखिज्जगुणा पढमसमयदेवा असं० पढमस० तिरिक्खजो० असं०। एएसि णं भंते! अपढमस० नेरइयाणं अपढमसमयतिरिक्खजोणि० अपढमसमयमणूसाणं अपढमसमयदेवाण य कयरे० २?, गोयमा! सव्वत्थोवा अपढमसमयमणूसा अपढमसम० नेरइ० असं० अपढमसमयदेवा अस० अपढमसमयतिरि० अणंतगुणा। एतेसि णं भंते! पढमस० नेरइयाणं अपढमसम० णेरइयाण य कयरे० २?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयणेरइया अपढमसमयणेरइया असंखेज्जगुणा, एतेसि णं भंते! पढमसमयतिरिजोक्ख० अपढमस० तिरि० जोणि० कतरे०?, गोयमा! सव्व० पढमसमयतिरि० अपढमसमयतिरि० जोणि० अणंत०, मणुयदेवअप्पाबहुयं जहा णेरइ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२७०]

दीप अनुक्रम [३९६]

याणं। एतेसि णं भंते! पढमस० णेरइ० पढमस० तिरिक्खाणं पढमस० मणूसाणं पढमसमय-देवाणं अपढमसमयनेरइ० अपढमसमयतिरिक्खजोणि० अपढमसमयमणूसा० अपढमसमयदे-वाणं सिद्धाण य कयरे० २?, गोयमा! सव्व० पढमस० मणूसा अपढमसम० मणु० असं० पढ-मसमयनेरइ० असं० पढमसमयदेवा असंखे० पढमसमयतिरिक्खजो० असं० अपढमसमयनेर० असं० अपढमस० देवा असंखे० सिद्धा अणं० अपढमस० तिरि० अणंतगुणा। सेत्तं नवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता॥ (सू० २७०)

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण नवविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–प्रथमसमयनैरयिका अप्रथमसमयनैरयिकाः प्रथमस-मयतिर्यग्योनिका अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकाः प्रथमसमयमनुष्या अप्रथमसमयमनुष्याः प्रथमसमयदेवा अप्रथमसमयदेवाः सिद्धाः॥ कायस्थितिचिन्तायां प्रथमसमयनैरयिकस्य कायस्थितिरेकं समयं, अप्रथमसमयनैरयिकस्य जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि समयोनानि उत्कर्षतस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि समयोनानि, प्रथमसमयतिर्यग्योनिकस्यैकं समयं, अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकस्य जघन्यतः क्षुल्लकभ-वग्रहणं समयोनमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, प्रथमसमयमनुष्यस्यैकं समयं, अप्रथमसमयस्य जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं समयोनमुत्कर्षतः पूर्वकोटिपृथक्त्वाभ्यधिकानि त्रीणि पल्योपमानि, देवा यथा नैरयिकाः, सिद्धाः साद्यपर्यवसिताः॥ अन्तरचिन्तायां प्रथमसमयनैर-यिकस्य जघन्यमन्तरं दशवर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, अप्रथमसमयनैरयिकस्य जघन्यतोऽन्तर-मन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, प्रथमसमयतिर्यग्योनिकस्य जघन्यतो द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे समयोने उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, अप्र-

जी० ७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७०]

दीप अनुक्रम [३९६]

थमसमयतिर्यग्योनिकस्य जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं समयाधिकं उत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, प्रथमसमयमनुष्यस्य जघन्यतो द्वे क्षुल्लकभवग्रहणे समयोने उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, अप्रथमसमयमनुष्यस्य जघन्यतः क्षुल्लकभवग्रहणं समयाधिकमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, प्रथमसमयदेवस्य जघन्यतो दश वर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि उत्कर्षतो वनस्पतिकालः, अप्रथमसमयदेवस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, सिद्धस्य साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं ॥ सम्प्रत्यल्पबहुत्वचिन्ता, तत्राल्पबहुत्वान्यत्र चत्वारि, तद्यथा–प्रथमं प्रथमसमयनैरयिकादीनां, द्वितीयमप्रथमसमथनैरयिकादीनां, तृतीयं प्रथमाप्रथमसमयनैरयिकादीनां प्रत्येकं, चतुर्थं सर्वसमुदायेन, तत्र प्रथममिदम्–सर्वस्तोकाः प्रथमसमयमनुष्याः, तेभ्यः प्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः प्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः प्रथमसमयतिर्यग्योनिका असङ्ख्येयगुणाः, नारकादिशेषगतित्रयादागतानामेव प्रथमसमये वर्त्तमानानां प्रथमसमयतिर्यग्योनिकत्वात् । द्वितीयमेवम्–सर्वस्तोका अप्रथमसमयमनुष्याः, तेभ्योऽप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्रथमसमयतिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः, निगोदजीवानामनन्तत्वात् । तृतीयमेवम्–सर्वस्तोकाः प्रथमसमयनैरयिका अप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, तथा प्रथमसमयतिर्यग्योनिकाः सर्वस्तोकाः अप्रथमसमयतिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः, तथा सर्वस्तोकाः प्रथमसमयमनुष्याः अप्रथमसमयमनुष्या असङ्ख्येयगुणाः, तथा सर्वस्तोकाः प्रथमसमयदेवाः अप्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः । सर्वसमुदायगतं चतुर्थमेवम्–सर्वस्तोकाः प्रथमसमयमनुष्याः अप्रथमसमयमनुष्या असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः प्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि प्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि प्रथमसमयतिर्यञ्चोऽसङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽपि अप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्योऽप्यप्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः, तेभ्यः सिद्धा अनन्तगुणाः, तेभ्योऽप्रथमसमय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२७१]

दीप अनुक्रम [३९७]

तिर्यग्योनिका अनन्तगुणाः । उपसंहारमाह—'सेत्तं नवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता' ॥ उक्ता नवविधाः सर्वजीवाः, सम्प्रति दश-विधानाह—

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता ते णं एवमाहंसु, तंजहा—पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणस्सतिकाइया बिंदिया तिंदिया चउरिं० पंचें० अणिंदिया ॥ पुढविकाइए णं भंते! पुढविकाइएत्ति कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० असंखेज्जं कालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ असंखेज्जा लोया, एवं आउतेउवाउकाइए, वणस्सतिकाइए णं भंते!० २?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, बेंदिए णं भंते!०?, जह० अंतो० उक्को० संखेज्जं कालं, एवं तेइंदिएवि चउरिंदिएवि, पंचिंदिए णं भंते!०?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० सागरोवमसहस्सं सातिरेगं, अणिंदिए णं भंते!०?, सादीए अपज्जवसिए ॥ पुढविकाइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! जह० अंतो० उक्को० वणस्सतिकालो, एवं आउकाइयस्स तेउ० वाउ०, वणस्सइकाइयस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, जा चेव पुढविकाइयस्स संचिट्ठणा, बियतियचउरिंदियपंचेंदियाणं एतेसिं चउण्हंपि अंतरं जह० अंतो० उक्को० वणस्सइकालो, अणिंदियस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ ए-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र सर्वजीव-प्रतिपत्ति: ८-[नवविधा] परिसमाप्ता अथ सर्वजीव-प्रतिपत्ति: ९-[दशविधा] आरब्धा:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२७१]

दीप अनुक्रम [३९७]

तेसि णं भंते! पुढविकाइयाणं आउ० तेउ० वाउ० वण० बेंदियाणं तेइंदियाणं चउरिं० पंचेंदियाणं अणिंदियाण य कतरे २०?, गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिया चतुरिंदिया विसेसाहिया तेइंदि० विसे० बेंदि० विसे० तेउकाइया असंखिज्जगुणा पुढविकाइया वि० आउ० वि० वाउ० वि० अणिंदिया अणंतगुणा वणस्सतिकाइया अणंतगुणा ॥ (सू० २७१)

'तत्थे'त्यादि, तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो दशविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्त एवमुक्तवन्तस्तद्यथा–पृथिवीकायिकाः अप्कायिकाः तेजस्कायिकाः वायुकायिकाः वनस्पतिकायिकाः द्वीन्द्रियाः त्रीन्द्रियाः चतुरिन्द्रियाः पञ्चेन्द्रियाः अनिन्द्रियाः, तत्र पृथिवीकायिकस्य कायस्थितिर्जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, एवमप्तेजोवायूनामपि वक्तव्यं, वनस्पतिकायिकस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतोऽनन्तं कालं, अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्येयाः पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्येयो भागः, द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां जघन्यतः प्रत्येकमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः प्रत्येकं सङ्ख्येयः कालः, पञ्चेन्द्रियस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतः सागरोपमशतपृथक्त्वं सातिरेकं, अनिन्द्रियः साद्यपर्यवसितः ॥ अन्तरचिन्तायां पृथिवीकायिकस्य जघन्यतोऽन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमुत्कर्षतो वनस्पतिकालः, एवं यावत्पञ्चेन्द्रियस्य, नवरं वनस्पतिकायिकस्योत्कर्षतोऽसङ्ख्येयं कालं, असङ्ख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽसङ्ख्येया लोकाः, अनिन्द्रियस्य नास्त्यन्तरं, साद्यपर्यवसितत्वात् ॥ अल्पबहुत्वचिन्तायां सर्वस्तोकाः पञ्चेन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया विशेषाधिकाः त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः द्वीन्द्रिया विशेषाधिकाः तेजस्कायिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

असङ्खेयगुणा: पृथिवीकायिका विशेषाधिका: अप्कायिका विशेषाधिका: वायुकायिका विशेषाधिका: अनिन्द्रिया अनन्तगुणा: वनस्पतिकायिका अनन्तगुणा: ॥

अहवा दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—पढमसमयणेरइया अपढमसमयनेरइया पढमसमयतिरिक्खजोणिया अपढमसमयतिरिक्खजोणिया पढमसमयमणूसा अपढमसमयमणूसा पढमसमयदेवा अपढमसमयदेवा पढमसमयसिद्धा अपढमसमयसिद्धा ॥ पढमसमयणेरइया णं भंते! पढमसमयणेरइएत्ति कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयनेरइए णं भंते!०? जहन्नेणं दस वाससहस्साइं समऊणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समऊणाइं, पढमसमयतिरिक्खजोणिया णं भंते!० २?, गोयमा! एक्कं समयं, अपढमसमयतिरिक्ख० जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्को० वणस्सइकालो, पढमसमयमणूसे णं भंते!० २?, एक्कं समयं, अपढमस० मणूसे णं भंते!०?, जह० खुड्डागं भवग्गहणं समऊणं उक्को० तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं, देवे जहा णेरइए, पढमसमयसिद्धे णं भंते!० २?, एक्कं समयं, अपढमसमयसिद्धे णं भंते!० २?, सादीए अपज्जवसिए। पढमसमयणेर० भंते! अंतरं कालओ०?, ज० दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं उक्को० वण०, अपढमसमयणेर० अंतरं कालओ केव०?, जह० अंतो० उ० वण०, पढमसमयतिरिक्खजोणियस्स अंतरं केवचिरं होइ?, गो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [२७२]

दीप अनुक्रम [३९८]

यमा! जह० दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्को० वण०, अपढमसमयतिरिक्खजोणियस्स णं भंते!०?, जह० खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं उक्को० सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं, पढमसमयमणूसस्स णं भंते! अंतरं कालओ०?, जह० दो खुड्डागभवग्गहणाइं समऊणाइं उक्को० वण०, अपढमसमयमणूसस्स णं भंते! अंतरं०?, जह० खुड्डागं भव० समयाहियं उक्को० वणस्स०, देवस्स णं अंतरं जहा णेरइयस्स, पढमसमयसिद्धस्स णं भंते! अंतरं?, णत्थि, अपढमसमयसिद्धस्स णं भंते! अंतरं कालओ केवचिरं होति?, गोयमा! सादीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ॥ एतेसि णं भंते! पढमस० णेर० पढमस० तिरिक्खजोणियाणं पढमसमयमणूसाणं पढमसमयदेवाणं पढमसमयसिद्धाण य कतरे २०?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा पढमसमयमणूसा असंखे० पढमस० णेरइया असंखेज्जगुणा पढमस० देवा असं० पढमस० तिरि० असं० । एतेसि णं भंते! अपढमसमयनेरइयाणं जाव अपढमसमयसिद्धाण य कयरे०?, गोयमा! सव्वत्थोवा अपढमस० मणूसा अपढमस० नेरइया असंखि० अपढमस० देवा असंखि० अपढमस० सिद्धा अणंतगुणा अपढमस० तिरि० जो० अणंतगुणा। एतेसि णं भंते! पढमस० णेरइयाणं अपढमस० णेरइयाण य कतरे २?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमस० णेरइया अपढमस० नेरइया असंखे०, एतेसि णं भंते! पढमस० तिरिक्खजोणियाणं अपढमस० तिरिक्खजोणि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशक: वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देश: २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

प्रत सूत्रांक [२७२]

दीप अनुक्रम [३९८]

याण य कतरे २? गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयतिरिक्खजो० अपढमस० तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा, एतेसि णं भंते! पढमस० मणूसाणं अपढमसमयमणूसाण य कतरे २?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसम० मणूसा अपढमस० मणूसा असंखे०, जहा मणूसा तहा देवावि, एतेसि णं भंते! पढमसमयसिद्धाणं अपढमसमयसिद्धाण य कयरे २ अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमसमयसिद्धा अपढमसम० सिद्धा अणंतगुणा। एतेसि णं भंते! पढमसमयणेरइयाणं अपढमसमयणेरइयाणं पढमस० तिरि० जोणि० अपढमस० तिरि० जो० प० समयमणू० अपढमस० मणू० पढ० स० देवाणं अप० सम० देवाणं पढमस० सिद्धाणं अपढमसम० सिद्धाण य कतरे २ अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसे०?, गोयमा! सव्वत्थोवा पढमस० सिद्धा पढमस० मणू० असं० अप० सम० मणू० असंखि० पढमसम० णेरइ० असं० पढमस० देवा असं० पढमस० तिरि० असं० अपढमस० णेर० असंखे० अपढमस० देवा असं० अपढमस० सिद्धा अणंत० अपढमस० तिरि० अणंतगुणा। सेत्तं दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता। सेत्तं सव्वजीवाभिगमे ॥ (सू० २७२) ॥ इति जीवाजीवाभिगमसुत्तं सम्मत्तं ॥ सूत्रे ग्रन्थाग्रम् ४७५० ॥

'अहवे'त्यादि, 'अथवा' प्रकारान्तरेण दशविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा–प्रथमसमयनैरयिकाः अप्रथमसमयनैरयिकाः प्रथम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७२]

दीप अनुक्रम [३९८]

समयतिर्यग्योनिकाः अप्रथमसमयतिर्यग्योनिकाः प्रथमसमयमनुष्याः अप्रथमसमयमनुष्याः प्रथमसमयदेवाः अप्रथमसमयदेवाः प्रथमसमयसिद्धाः अप्रथमसमयसिद्धाः ॥ कायस्थितिरन्तरं च प्रथमसमयनारकादीनामप्रथमसमयदेवपर्यन्तानां पूर्ववत्, प्रथमसमयसिद्धस्य कायस्थितिरेकं समयं, अप्रथमसमयसिद्धः सादपर्यवसितः, प्रथमसमयसिद्धस्य नास्त्यन्तरं, भूयः प्रथमसमयसिद्धत्वाभावात्, अप्रथमसमयसिद्धस्यापि नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात् ॥ अल्पबहुत्वान्यत्रापि चत्वारि, तत्र प्रथममिदं–सर्वस्तोकाः प्रथमसमयसिद्धाः, अष्टोत्तरशतादूर्ध्वमभावात्, तेभ्यः प्रथमसमयमनुष्या असङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः प्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः प्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः प्रथमसमयतिर्यञ्चोऽसङ्ख्येयगुणाः । द्वितीयमिदं–सर्वस्तोका अप्रथमसमयमनुष्या अप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः अप्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः अप्रथमसमयसिद्धा अनन्तगुणाः अप्रथमसमयतिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः । तृतीयं प्रत्येकभाविनैरयिकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां पूर्ववत्, सिद्धानामेवं–सर्वस्तोकाः प्रथमसमयसिद्धा अप्रथमसमयसिद्धा अनन्तगुणाः । समुदायगतं चतुर्थमेवं–सर्वस्तोकाः प्रथमसमयसिद्धाः तेभ्यः प्रथमसमयमनुष्या असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्रथमसमयमनुष्या असङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः प्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः प्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्यः प्रथमसमयतिर्यञ्चोऽसङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्रथमसमयनैरयिका असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्रथमसमयदेवा असङ्ख्येयगुणाः तेभ्योऽप्रथमसमयसिद्धा अनन्तगुणाः तेभ्योऽप्रथमसमयतिर्यञ्चोऽनन्तगुणाः, भावना सर्वत्रापि प्राग्वत्, नवरं सूत्रे संक्षेप इति विवृतम् । निगमनमाह—'सेत्तं दुविहा सव्वजीवा पन्नत्ता,' महानिगमनमाह–सोऽयं सर्वजीवाभिगम इति । विवृतमुद्देशतोऽध्ययनमपि महद्वचनविस्तरेणेदमिति गम्भीरार्थं, अविषयोऽस्य सारः स्थूलबुद्धीनां, न खलु पश्यति सूक्ष्मान् रूपविशेषान् चन्द्रलोचनः, स्थूलदर्शनमपि हिताय मध्यमाध्यं, द्वेषमयोऽयोऽशयं तत्फलयो-

॥ ४६६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र मूल-संपादने शिर्षक-स्थाने एका स्खलना वर्तते— एता प्रतिपतौ न कोऽपि उद्देशकः वर्तते, तत् कारणात् अत्र "उद्देशः २" इति निरर्थकम् मुद्रितं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित...आगमसूत्र-[१४], उपांगसूत्र-[३] "जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं मलयगिरि-प्रणीता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२७२]

दीप अनुक्रम [३९८]

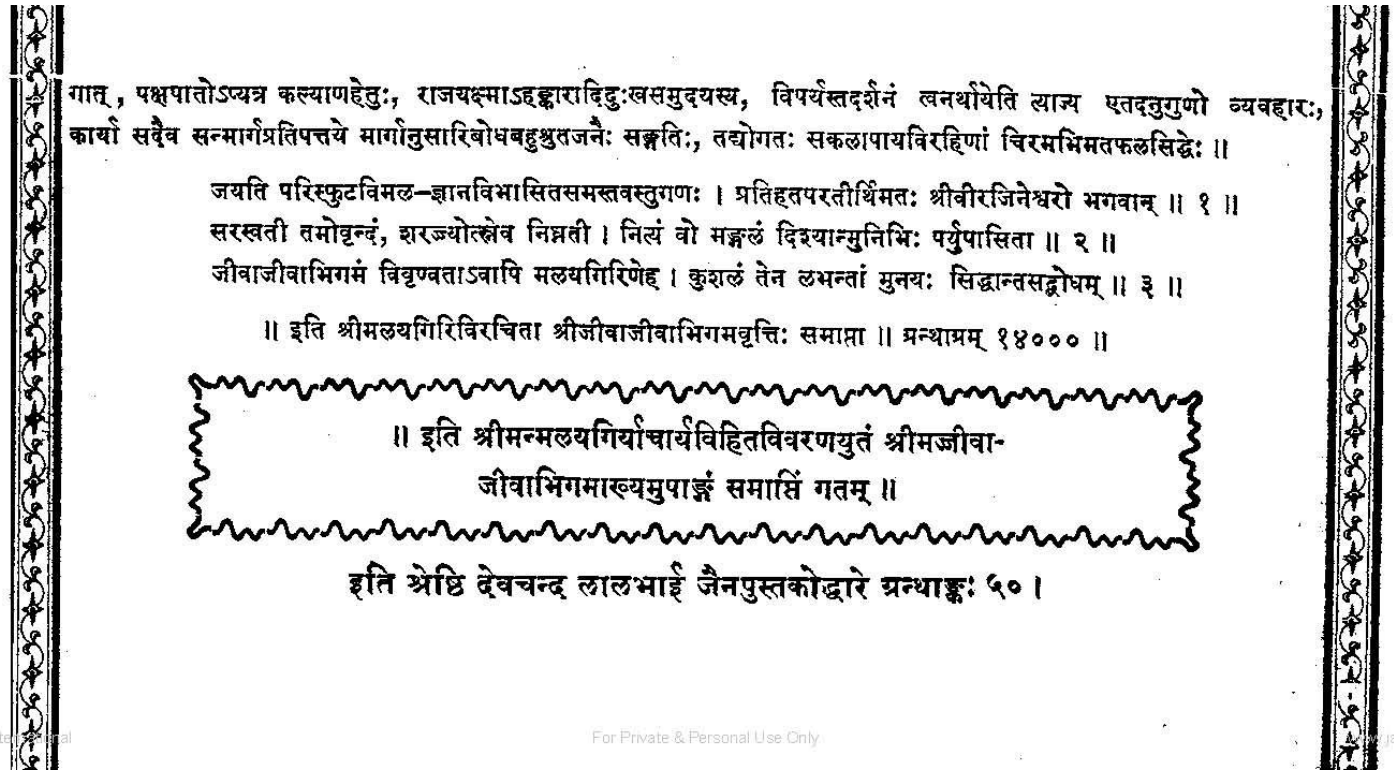

गात्, पक्षपातोऽप्यत्र कल्याणहेतुः, राजयक्ष्माऽहङ्कारादिदुःखसमुदयस्य, विपर्यस्तदर्शनं त्वनर्थायेति त्याज्य एतदनुगुणो व्यवहारः, कार्यो सदैव सन्मार्गप्रतिपत्तये मार्गानुसारिबोधबहुश्रुतजनैः सङ्गतिः, तद्योगतः सकलापायविरहिणां चिरमभिमतफलसिद्धेः ॥

जयति परिस्फुटविमल–ज्ञानविभासितसमस्तवस्तुगणः । प्रतिहतपरतीर्थिमतः श्रीवीरजिनेश्वरो भगवान् ॥ १ ॥
सरस्वती तमोवृन्दं, शरज्ज्योत्स्नेव निघ्नती । नित्यं वो मङ्गलं दिश्यान्मुनिभिः पर्युपासिता ॥ २ ॥
जीवाजीवाभिगमं विवृण्वताऽवापि मलयगिरिणेह । कुशलं तेन लभन्तां मुनयः सिद्धान्तसद्बोधम् ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीमलयगिरिविरचिता श्रीजीवाजीवाभिगमवृत्तिः समाप्ता ॥ ग्रन्थाग्रम् १४००० ॥

॥ इति श्रीमन्मलयगिर्याचार्यविहितविवरणयुतं श्रीमज्जीवा-
जीवाभिगमाख्यमुपाङ्गं समाप्तिं गतम् ॥

इति श्रेष्ठि देवचन्द लालभाई जैनपुस्तकोद्धारे ग्रन्थाङ्कः ५० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग 17	जीवाजीवाभिगम -उवंगसूत्र [३/२] मूलं एवं मलयगिरिसूरिजी रचिता टीका परिसमाप्ता:

मूल संशोधकः सम्पादकश्च पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

किंचित् वैशिष्ट्य समर्पितेन सह पुनः संकलनकर्ता मुनि दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९-३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविदया, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प[बारसा]सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

आगम [14/2]

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

“जीवाजीवाभिगम (उपांगसूत्र”-३/२) [मूलं एवं मलयगिरि-प्रणित वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

“जीवाजीवाभिगम” मूलं एवं वृत्ति:” नामेण परिसमाप्त:

“सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि” श्रेणि, भाग- 17

आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक

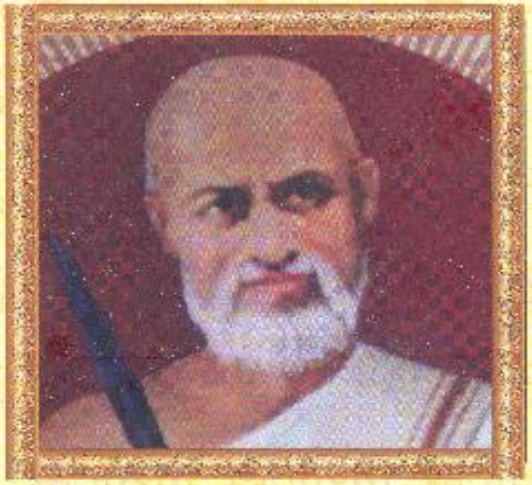

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता

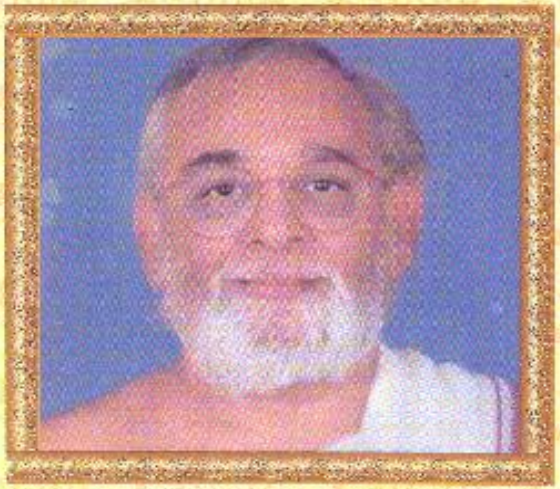

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता

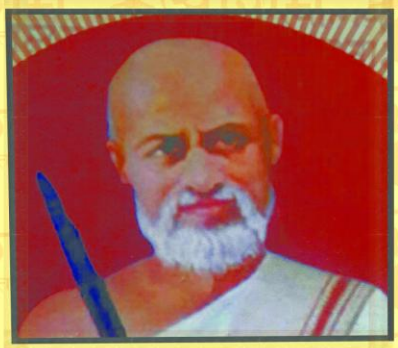

मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम १४

"जीवाजीवाभिगम" मूलं एवं वृत्तिः [2]

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]